

BIBLIOTHECA INDICA;

A

COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED UNDER THE SUPERINTENDENCE OF

THE ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

NEW SERIES.

Nos. 51, 54, 59, 63, 68, 72 AND 73.

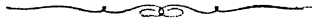


THE BRĪHAT SĀÑHITA

OF VARĀHA-MIHĪRA.

EDITED BY DR. H. KERN,

SANSKRIT COLLEGE, BENARES.



CALCUTTA:

PRINTED AT THE BAPTIST MISSION PRESS.

1865.

बृहत्संहिता ।

श्रीवराहमिहिरविरचिता ।

श्रीभट्ट-कर्ण-परिशोधिता ।

कलिकातानगरे

बाप्तिष्ठमिश्रन्-यन्त्रे यन्त्रोऽयं मुद्राङ्कितोऽभूत् ।

शकाब्दाः १७८६ । इ० १८६४ ॥

E R R A T A.

Page	line	for	कवन्व	read	कवन्व
— ११,	” 5,	”	कवन्व	”	कवन्व
— १९,	” 18,	”	कवन्व	”	कवन्व
— १७,	” 6,	”	सूर्च्छि०	”	सूर्च्छि०
— ४९,	” 15,	”	रोगोत्त्व०	”	रोगोत्त्व०
— २२४,	” 2,	”	यद्वर्चि	”	यद्वर्चि
— २२९,	” 6,	”	०भाभ्यां	”	०धाभ्यां
— २५५,	” 18,	”	पार्श्वी०	”	पार्श्वी०
— २५७,	” 17,	”	षड्भिः षड्भि०	”	षड्भिः षड्भि०
— २५७,	” 20,	”	षड्भा०	”	षड्भा०
— २५८,	” 3,	”	षड्भिः षड्भि०	”	षड्भिः षड्भि०
— २५८,	” 17,	”	षड्भा०	”	षड्भा०
— २५९,	” 7,	”	षड्भा०	”	षड्भा०
— ३०५,	” 8,	”	स्थायं	”	स्थाय

VARIOUS READINGS.



CHAPTER I.

1. A प्रसुति वि०.—A सदृशशतमयू०.—2. D रचनीभिर्.—4. यदि om. in A, B, C (text and commentary). A, S, B, N कृतैः, C gives and explains both rr.—5. A, D, B आलक्ष्य.—8. S अत्र महान् —9. B, D, S, E होरास्त्रो, N होराशास्त्रवि०.—S, विनययय.—10. S, E, N, and one Cod. of C विसरग्रथ.—The title of this Chapter in A, B, D is : इत्याचार्यश्रीवराह-मिहिरस्य कृतौ संहितायामुपनयनाध्यायः प्रथमः, in S इति श्रीव०, in N इत्या-चार्यवराहमिहिर (sic) शास्त्रोपनयनं नामाध्यायः प्रथमः, in C इति महोत्पलर-चितायां संहितायाम् शास्त्रोपनयाध्यायः प्रथमः ; at the end of other Chapters occurs बृहत्संहितायाम्, which, as being the most appropriate title, I have employed throughout.

CHAPTER II.

Page 3, line 11 from the top : A, C, B, D, E अननुसूयकः, S, N अनुसूयकः, which I have changed into अनसूयकः.—A सुसंहित.—Line 15 : D, S, E प्रतिभावान्, so N sec. manu.—Line 16 : N, and one Cod. of C परिपद्.—Line 18 : S, E पौष्टिकविद्याभिचारकुशलः स्नानविद्याभिज्ञो. N पौष्टिकपराभिचारज्ञः स्नानविद्याभिज्ञो, D स्नानविधिविद्याभिज्ञे.—Line 19 : ज्ञान om. in and C, A, B, D.—S, E, प्रष्टा० for श्रष्टा०.—Page 4, line 1 : S, E रोम without क.—S, N वाशिष्ट.—All but C, N सौर्य.—Line 2 : पंचसु om. in S, E.—Line 3 : S, E प्रमाण for प्राण.—C in his text : बुटिबुद्याद्यवयवस्य, like E, but from his explanation it seems to result that he meant, बुटिबुद्याद्यवयवाद्यस्य, like S.—Line 4 : A सासानानां.—Line 7 : C, B, N हेद् for विहेद्.—A, S, N सासानां.—Line 9 : C, N लेखा for रेखा.—Line 10 : अज्ञ om. in C, N.—Line 13 : C, N वर्षादेशानां

—Line 14: One Cod. of C, and N, प्रत्येकं.—Line 15: E प्रतिवेद for परिवेद, D प्रतिभेद.—Line 21: C उक्तं चाव गर्गेण महर्षिणा, N भवतीत्युक्तं च गर्गेण.—Page 5, line 1: S, E प्रतिविद्धं.—Line 4: N भवति for ज्ञयः.—Line 5: All but A अर्थ, A अर्थ, which I have changed into अर्थः.—Line 6: All but C यस्य.—Line 8: A° रम् for° र्याम्.—Line 13: C आचार्य for आर्य, N उक्तं च विष्णुगुप्तेन.—Line 18: C adds च after अपि.—S द्रेःकाण, A, B, N द्रेष्काण.—C नवांश् without क.—Line 20: A, D om. वल, N बलाबलनि०.—Page 6, line 2: C, N तत्काल.—A, S, B, D प्रश्नप्रतिप्रश्न.—Line 4: C यात्रायां तु.—Line 6: D, S, E चेद्विदप्रद.—Line 7: C ग्राकुन and गकुन- A, B, D निवेशन.—Line 8: A, S, B, D यथाकालसंप्रयोगः, N the same, but °कालं.—A, S, B, D दुर्गालम्.—Line 13: N, E निष्कलास्.—Line 15: C, N तेषां च om. तेषु.—Line 17: C अक्षमय for अक्षमन.—Line 18: C अगस्त्य.—Line 19: N ग्रहभुक्तयो.—20: A शश्वद्ग्रहसमागम, S, E राश्वद्ग्रहसमागम.—N °सो ग्रहाधिपतयो. The MSS. but C, add after गर्भलक्षण the words: धारणाप्रवर्षण; originally they were wanting also in N, where they have been added on the margin by a different hand. Line 21: S योग for योगाः.—Page 7, line 2: N प्रतिमालक्षणवनसंप्रवेशप्रतिष्ठापनप्रासादलक्षण.—Line 3 N °कार्गल.—Line 4: C, N खंजनक.—S, E दृत for दृत.—Line 5: All but C, N वृष for गो.—Line 7: C, N शयन.—S आसनकलशल०.—N दंतकाष्ठप्रतिमादीपलक्षणानि। तथा गकुनद्वतशुभाशुभनिमित्तानि सामान्यानि.—Line 8: A, D, S शुभाशुभनिमित्तानि.—Line 9: D, S, E प्रतिपलक्षणम्, A प्रतिपलक्षणम्.—Line 9: N अन्यकर्मणा नियुक्तन, —Line 10: N तानि चैकाकिना न.—Line 11: एव om. in C, N.—Line 12: A, S अन्ये ऽपि.—चत्वारो om. in N, but on the margin बडशः, and षोडश, A, S, E, B, D षोडश.—S, E षोडश्याः for भर्तव्याः, C writes कर्षव्याः. but this is merely a blunder of the copyist.—Line 14: D, N add प्रतियामं before यस्माद्.—Line 15: C तस्याय for तेषां च.—Line 17: S before distich 7, the following: उपसृश्य शुचिभूत्वा यं यं गणयेद्गृहम्। तत्तस्थानमवाप्नोति न चासा भूणहा भवेत् ॥.—The following numbers refer to the distichs. 8, E निष्प०.—N जातिषांगविशारदं.—11. C अधिगन्त्वो.—S, E °प्रणो.—S, E सुखं for त्रियं.—A समभोचता.—12. A, S, E °वत्सरके.—14. C writes चैनं, N चैव.—16. The MSS., but C, N, कर्षोपद्वति, C notices a v. r. पिहितकर्षो, N originally संप्रश्न for पिहितैः.—18. A, S उपवासं.—C तामिसे.—19. All but N संविभाष्यते.—20. N संपत्स्त्रा०.—A, S तद्विभिन्नकथा, N विद्वद्भिन्नकथा; both originate perhaps in a v. r तद्विद्वद्भिन्नकथा=तद्विद्वद्भिन्नकथा.—21. N अयार्थिना.—22. वाजिनां च.—C घथैको.—23. E दुष्प्रेक्षितदुष्कृतानि.—N नारां दृष्टा कृत्वा च दैवविदं.—S, E

add the following stanza : 'प्राप्तुं सिद्धिमनुत्तमां भगवत्कं रत्नैः सपुत्रैः फलैरभ्यर्था-
भिमुखं मनोगतमया प्रहस्य चेद्विच्छसि। देवज्ञं नहि कोपयेत् प्रकृपितं प्रहेदसावर्कव-
द्यादृक् तस्य मनो भवत्यवितथं प्रष्टुः फलं तादृशम्.'

CHAPTER III.

1. A, B, D, N, and one Cod. of C, अक्षेया for आक्षेया.—All but C आनीत्कदापि नूनं.—2. E, and one Cod. of C कर्कटाद्यं.—N, and perhaps C उक्ताभाव.—4. S, E कर्कटमसंप्राप्तो, A कर्कटकमप्राप्तो.—E ०रासैन्द्रोम्.—6, S लाट्टा, E दुष्ट.—N विनिश्चिन्ति for स नि०.—S सदा भूपान्.—7. S स्थान for स्थान.—9. C in his text शिखरावमर्दी, like A, S, B, D, but afterwards शिखरामर्दी, like E.—10. A, N दाहाः.—11. E दर्शनं यदि च, N यदि चेत्.—12. All but C, N, E च वि for परि.—13. A, S, B, D मुनयो व्युत्थ०.—14. All but N, E निश्चास.—N अक्ष for अक्षि.—N क्षाम for सन्न.—15. S स्वनृपं पर०.—N, E om. च.—C, S, E, N पुराकृतं—E वावदंति, A ब्रुवन्ति, S संब्रुवन्ति.—16. S निःप०.—17. स्यात् om. in S, E.—S (अ) कंदपे.
18. N घूर्मात्तम०.—19. A, S, E, B, D (अ)कः खवर्णन्नः.—20. All but C, N, E विवस्था म०.—22. A, S, B, D अथवा सधुषो, C in the text अथवा-
तिधुषो, like N, but afterwards अथवाविधुषो.—E श्वीं, C, N उर्वीम्.—
23. All but C, N कपिलस्य.—N कनकनिभा.—26. C, N करोति नचिरेण.—
27. E नरपतिविरोधकृत्.—28. C द्वादश वर्षाण न करोति.—29. E श्यावे.—
E, N यद्यर्चे ऽर्के हिद्रं.—31. C जनहा for वृषहा.—E भयकृत्.—32. E वेपिने
र्निरुचे च, N वेपने (s) निरुचे वा.—B, D वृषं ततः सचिवं, E तता वृषं सचि-
वः, N = E, but सचिवं, C mentions the r. of B, D.—33. S विद्यात्.—S
राज्य.—36. S यद्वचमाप्नोति सुमहती षोडा.—39. C खर for खर (explained by
शब्द), N has खन, in the others not clear whether ख or ख.

CHAPTER IV.

2. C विहता, the others निहता, which I have changed into निहता.
—4. A अर्क for अर्कात्.—A, N (अ) पराक्ते, S (अ) परार्द्धे.—5. The order
in N is 7, 5, 6.—6. S, N पितृवर्चवि०.—8. N प्रोक्ता for चोक्ता.—11. S
सुमिच्छं.—12. N यद्द्वानि भूयतां यायिनो जयस्तेषां.—14. S, N अत्युच्छायाद्.—
15. N अत्युच्छ्रिता च रेखा.—D मंडलाच्च, S, E, N मंडले च, C in the text
मंडला, afterwards मंडले.—E दंडाच्छे, the others but S, and C in his
comment कुंडाच्छे.—E, N तस्मिन्.—16. C चेम for सस्य, but he notices
also our r.—17. C, N, S० मुखं शृंगं.—21. N यथोक्तागमः.—22. A अग्नि, C

अंगि, S, E, N वंग.—E मरकह, A मरकह, I suspect मरकह, cf. V, 40.—
A पुरषाद्, the others but D पौरषाद्.—D, E मासान्.—23. कौराल-
विश्वेद्रशैलद्र.—24. S वांघव for वाहन—N कौलीद्र.—N शक्तिमत्प्रधिपतीन्,
A, S शक्तिमत्प्रधिपतीन्.—26. N मागधान्.—All but C, मधुरांश्च.—29. N
परिहीन.—N, and one Cod. of C, श्यामनतुः—One Cod. of C, and
secunda m. N, च्चुमर.—S चार.—30. The order in N, E is 32, 30,
31, in C, S 30, 32, 31.—31. A मंडली संयोगो.

CHAPTER V.

This Chapter is in N the 10th, the 5th with him being the 6th of the
others, a. s. o. 5. N र्द for खल्ल.—S, E, N पूर्वाद्.—9. C पार्श्वे च, A,
B, D पार्श्वे.—N दीर्घा तु.—14. N सम् for (अ)यम्, E om., S पराशं.—15.
S, N (अ) र्थेन for तेन and also one Cod. of C in the text.—18. N
विज्ञेयो for दिग्ज्ञेया.—S वल्लतो for वल्लया.—तानि om. in N, E.—19.
After this S, N insert the two following stanzas: करणगता रवि-
दिवसाः खयमाग (७२०) युता ह्युताः खवसुचन्द्रैः (१८०)। लब्धे सप्रविभक्ते शेषं
ब्रह्मादिकं पर्व ॥ १० ॥ अथवा ॥ रविगुणिते शककाले माससमेते ऽचिसागरविभक्ते
यज्ज्वंते भगणाः शेषे षड्भाजिते पर्व ॥ १५ ॥—N अवनौशाय शुभं, the others
अवनौशानां शुभं, but C, although writing thus in the text, explains अश्वेय-
स्वरं according to our r.—25. S, N गणितविदां.—28. S नैऋतिकान्, N
नैऋतिकान्.—29. E पा(ष)ड.—S द्वितीयांशे.—D खे—All but S हतीयेऽशे.
—31. A, B, D अक्षमनकाले.—32. All but C विट्प्रदान्.—S दक्षिणे.—
33. E ब्रह्म.—34. N जीव for बीज.—35. All but A, E स्वरसेनाः.—D उंद्, A
उद् for उद्—S om. ते.—36. N, and perhaps C., गामिनो.—All Mss. ते
before पीडां, manifestly wrong.—N अपिवा for अथवा.—C वृषस्ये, N वृषसंस्थे.
—37. A, D, B वपमान्या.—S वालिका, E वल्लिका.—A सुहा for सुद्धा, E
पुहदेः.—38. S, E सवरान्.—N बल्लव for पल्लव.—A om. मल्लान्.—All but
C, S write कुरुन् शकान्.—E पीडयेदर्थं, N पीडयेद्वन्न.—39. N गेयशक्त.—
40. A, S, B, D मरकहप, C मरकहक, N अगुकहप, the true r. only in E,
cf. Hiouen-Thsang's *Po-lou-ka-chen-pa*, and *Barygaza*, now Bharoach.
—वप for वृष, S कुमारयोधेय.—41. E मल्ल for मल्ल.—S पांचालवैधेयविषायुः
—S, E अषि for अष, N मुनि.—E नाड for नौच.—42. N अंतर्गिरिजाप्रप, °
C notices a v. r., which however is written in the same manner as his
own. r.—S सिंहपुरष, N सिंहवष *prima m.*, *sec. m.* सिंहपुरग.—S वन्य for
मान्य, a r. noticed also by C—All but S, N नारि for वारि.—44. S, N
जिक्कावलेडि, C, A, B, D जिक्कोपलेडि.—N तस्करोपमर्द.—A, S, N भयाः for

भूता.—48. S, E अपमर्दम्.—C प्रधानाभयान् प्रधानदेशांश्च.—50. C दर्पणम्.—
 All but C, S, E निश्वास.—51. C, N, E कुशा°, S चतुश्चामभयं.—52. All
 but C खख for खल्प.—S, E ईतिकरं.—53. C, N वि for च.—A, S, B, D
 अनल for अग्नि.—54. S हि for (अ) य.—56. S कपिले.—S, E, N श्यामाभे.—
 58. One Cod. of C श्यावे, another श्याने.—A, D, N चापि.—All but E,
 and one Cod. of C पाटल.—59. All but S, N पांसु.—61. N सख्यविपत्तिं.—
 S, E धरित्र्याः.—64. All but S, E, N आबंतका.—65. All but S अंतर्द्वे.—
 A, B, D शरयू, C perhaps सरयू for ०यू.—66. S संस्थितानां, N संदतानां.—
 67. One Cod. of C दसेरक, another दासेरक, like D; S, E, N दशार्ण,
 but in N sec. man दाशेर.—68. N prima m. माहेद्र for मखभव.—A, S,
 and E (a Bengali Cod.) पारिपात्र.—C notices a v. r. for गोमन्त, viz.
 गोनर्द, or as written in another Cod. of C गोनर्द, E गोमर्द.—69. C, N
 कोसलान्, S om., the others कोसलान्.—All here खरसेन.—S काशींश्च,
 N काशीं.—70. D कोसलकान्, N sec. man कोशलकान्, A and one Cod.
 of C कोसलकान्.—S, E सपौडान्.—S, E वृष for वृग.—S, E उपरोष्ठा.—
 S विद्याद्, C both विद्याद् and विद्याद्.—72. S, E, N वशिष्ठ.—S कासि.—
 73. S आवंत्यक.—S, E, N वृत्य.—A, S, E, N धनुर्द्धर.—N अविद्यतापसामां.
 74. C चेत्या°—E शक्तान्, S सक्तान्, the others सक्त, but N वृक्षसस्य.—S
 रूप for रूप.—D पुंज.—One Cod. of C उग्र for औग्र, the others but S
 उग्र.—D, E अद्यवा.—C notices a v. r. अमरराडाप विभवर्षीं.—75 B, D,
 N मासे, C मास.—All but C, N कार्पास.—E, N योधेय.—S कलाञ्ज for
 कलिंग.—76. All but E व्येष्टे.—E शाल्वैः.—77. S सौवीर for काश्मीर.—E
 पुलिंद्र.—S, E, N हन्याद्.—78. E पुलिंद्र.—C, D, N ०क्षेत्रजान्.—A कषोज.
 —E अर्थ for अन्न.—79. C, N दरदाशकांश्च, and C notices a v. r. दरदांश्च
 गाश्च, the others ०दान् शं.—80. A वल्लोक, C, D, B वाल्लोक.—82. E
 सख्यविनाशे.—83. A, S विद्यात्.—85. E मार्गा निर्गतो, N मार्गाश्रितो.—86.
 All but N write नैच्छं.—A नैच्छति.—87. S चापसर्पेद्यत्.—A, B, D हार्द,
 S सेमसुभिच्छर्द.—88. E च for तु.—C, D, N, E न for क्क.—90. S, and
 perhaps C बहलं.—All but C अंत्यदरणा.—91. A, B, D रवेः for रवी.—
 All but C शशनि.—94. E परिवेशे.—A, S न्यवधं.—E विधने.—95. E
 सुरचापे.—All ग्रहदुहं.—S, D तदेव, E तथैव.—96. S, E, N पतैः.—C, S,
 E आयाति.—97. S, E आमयः.—98. A ग्रहणाच्छाशने.—E तदा for ततो.

CHAPTER VI.

D, N, E begin this Chapter with the following ṣloka : अथमद्युमुखं व्यालं
 होहिताननमेव च । निक्षिप्तुमुखं च पंच वक्राः कुजस्य तु ॥, with the v. r. in

N वापि वक्रं पंचावनीहृ(ते); it is probably taken from the Commentary, in which the v. r. चेति वक्राणि चित्तिजस्य तु ॥.—3. C in the text, and S, N वापि पचते, but C afterwards वा विपचते, A वा निवर्तते, D वा निवर्तते, E वापि वक्रिते.—4. A, B, D आदेशं for आवहति.—5. A च for स.—All but E भयं.—6. E भाग्यार्थरूपोदितो, D भाग्यार्थरूपोदितो, A भाग्यार्थरूपोदितो.—C, A, S देवते.—N विनाशयति.—8. D मघाया, A मघायां.—10. S विप्रहृत्.—E (in Bengali character) पारिपाच, in A, S not clear whether य or प.—11. B, D, N विषु चोत्तराह, C, E विषु चोत्तरेषु, but C notices also our r.—C, N शाक्रे वा.—E चितितनयः—12. C, N, S, E हस्तमूलेषु.—13. After this there are two śloka more in N, containing in substance the same as 11 and 12.—The title in A is अंगारकचारः—

CHAPTER VII.

1. A वृद्धि for विवृद्धि—S. N च for वा.—2. All, but C, write •रन् श०.—All वैश्व, but as देव belongs as well to इन्दु, as to the following, the required r. is विश्व.—S, E देवानि, A सचाणि, D, E वैश्वदेवानि। मैत्रं हिमकरतनयः, the same in one Cod. of C, in another वैश्वदेवानि सद्रन्; in the commentary of both Codd. however Utpala explains as if he read like D, E. This explanation is certainly wrong because मैत्रं (Anurâdhâ) is included in हस्तादीनि षडृचाणि of vs. 4.—N भिन्दन् for सद्रन्.—3. N मघांतानि चाश्रिते.—D निघात.—4. E प्रभूतार्था.—5. E भाद्रपदा s.—6. C and A अश्विन, N अश्विनि.—A, D उपमर्दन्, S अवमर्दन्.—7. A, B, D (अ) पि for (अ) मि, N, E (अ) ति.—9. A, S, N, and in the text देवानि.—10. All but A फाल्गुनी.—D, E भाद्र.—A, S, N शक्र.—A •श्वयक, D •श्वयैक्.—11. N अवण, the others, but S, अवणं.—S वसुदेवं.—12. C चेन्द्र for शक्र.—15. E अज्वनुवक्रा.—E उक्ताः for रताः—16. E अनुवक्र.—C, E अर्थ for अर्थ, N अर्थ.—N inserts after 16, and S after 18 a stanza containing in other words the substance of 18.—19. D, E, N अक्षगते, A अक्षवाते.—S उद्गमे.—20. E शस्यकेन.—A, B, D शिवाद्य.

CHAPTER VIII.

1. One Cod. of C, and N मद्यनेष सहाद्यमसं वा येन याति सुरमंभी, but other Codd. the common r.—E देवमंभी.—3. C, S उपजीविक.—A द्रव्य for कुचुस.—4. C here शस्य.—S inserts after 4 this śloka, from Garga: प्रवाधांते सहर्षेण वृद्धितो युगपचरेत्। तस्मान्कालाह्वयपूर्णा गरोरब्धः

प्रवतत ॥.—5. A, S, N वौषे.—6. A, S, B, D वृद्धिषान्य.—A, B, D संप्रदो.—
 7. S विद्यात्.—E, N वृष्टि for वृद्धि, C once the former, once the latter.—
 S चेमसस्यानां.—8. N कौश.—9. A, B, D प्रवृद्धि, S निवृत्ति.—10. All, but
 G, अष्टे.—E कुलधर्मजाति.—S कुक्ता for चित्वा.—C ककुं, S कंगु.—N, E
 ग्रसोजानि, a r. noticed also by C; S समीजातिम्.—11. N राजानः.—12.
 S, E, N पाषंडास्ते; the same om. ये; and E स for च.—14. S अश्वयुजे, A
 आश्वयुजे, E अश्वयुजे.—17. A, S, D च for तु.—18. A, S, D नृपाः for
 प्रजाः; the same noticed by C.—19. S, E रोहिष्यानलभं.—21. C, N,
 लब्धेन for फलेन, E लब्धाब्द.—22. All but D, N, E द्वादशककनेष.—A
 ऋचाणि for उद्गनि.—23. C, N उत्तरां.—All but S प्रौढपदां, N पदाप-
 तिच.—24. The Codd. of C vary between इदादिक and इद्गादिक, B, D,
 E have the former, N originally the latter, S गदादिक, A, G उदादिक.
 —E उद्गत्वर.—A, B, D सुताधिपञ्च.—25. S, N प्रसूखा.—C पंचमवर्षमुक्तं, G
 पंचमवर्षमाहः.—26. S अन्य for अंत्य.—S विद्यात्.—27. C in his text अभिप्र-
 वृत्ता, like S, E, N, but C afterwards अभिप्रपन्नो (expl. by तन्स्थितः).—
 C, S, E, N प्रपद्यते for प्रवर्तते.—C तथा for तदा.—29. C. S फलान्यथेषां,
 A, B, D फलानि तेषां.—30. A, S, C write निःपन्न.—S उपयात for उपभ्रांत.
 —31. All but C, A भावसंज्ञौ.—C तु for (च)थ in his text, afterwards
 सु, like N.—32. C त्रिषाद्यवर्षेषु.—C, N, E भयश्च लोकः—A अथ द्वये; N
 (अं) ते.—33. S इति for अपि.—A अथोन्यद् E अतोऽन्यं.—A वर्षं for वृषं.—
 34. A, D च शुभे (s) च, C, N, S तु शुभे तु.—C, N, S विक्रमौ च.—35. A,
 B, D, G च for तु.—N ततश्च for न तश्च, C नतं च, which is explained as
 a Noun Proper.—36. B, D वृद्धिसुदितं च. S वृद्धिदमतश्च A वृद्धितमतश्च, E
 वृद्धिसमतश्च, G वृद्धिसुदितश्च and पार्थिवः, C, N वृद्धिसुदित्वाति पार्थिवं,
 explained as follows : सुदितो हृष्टो ऽतोवात्यर्थं पार्थिवो राजा यतः this expl.
 shows such a degree of ignorance of grammar and of the subject in
 hand, that I suspect the passage to be vitiated.—The original r. may
 have been वृद्धिसदतश्च.—38. A पुरतश्च, N परतो ऽथ.—C notices a r.
 कांतमत्र युगमादितच्छये, the r. of G.—40. G प्रायाः, the others but S प्राथ.
 —41. C, B, E, G शोककृद्; it seems that Utpala knew another r. also;
 here are his words : आद्यः प्रथमः संवत्सरो ऽब्दः शोककृद्दिति पठन्ति शोकं
 कृन्ति हिनोति शोककृत्। यतस्तस्य शोभनं फलमाचार्यो वदथिष्यति पूर्वापरौ
 प्रीतिकरौ प्रजानामिति तस्माच्छोककृद्दिति निःसंदेहः पाठः.—C, A, D अद्यो for
 अतो.—A, D, and some Codd. of C परावसुश्च, for पराभवश्च.—42. All
 but S, E, N पराभवो ऽग्नेः.—43. C, N, E, G अथैवं for अथाब्दः, S अथैव.—
 44. All but C यत्तच्चमं—अब्दं.—45. All but C, G आद्यमब्दं.—S देव for
 देव.—C, G तत्राद्यवर्षं.—A, B, D प्रमाथिनं विक्रममयद्यान्यत्, C, E प्रमाथिनं

विक्रममित्येतान्यत् N the same but *द्यान्यत् G *प्रमाथि चानन्दमतः परः स्यात्, and sec. manu प्रमाथि चानन्दमित्यथान्कत्, S प्रमाथ्यचानन्दमतः परं यत्; the first word is wrong in all, for the name of the year is प्रमादिन्; even the words अलसस्तु जनः in 46 prove that the author must have meant प्रमादिन्. Further I have adopted the r. of S. The origin of the false r. in C, A, B, D, E, N is that this vs. has been confounded with vs. 33.—A, B, D, संज्ञकं for संज्ञितं.—47. C, B, D, N, E विक्रमः for तत्परः A om. the word.—A (अ)थ 'for (अ)न.—48. A त्ववृष्टि, D च वृष्टि.—A, B, D, G, N काशः—50. E अंगारि for उद्गारि, C, A, B, D अंगार.—51. All but S, G तस्मिन् for यस्मिन्.—52. S वङ्गुचानां for विट्ङ्गुङ्गाणां, the others with षू, not ङू.

CHAPTER IX.

1. S, N ऋषभ.—C प्रोक्ताः in the text, but afterwards कथिताः, expl. by प्रोक्ताः—2. S द्वेषापि.—C, S भाद्रपदे.—3. C in the text, D, E अजेत्यं, the others, as well as C in the comment अजालं.—E दहनाः—4. All but C, E उदग्मां.—All but N, E, G दक्षिणेन स्थिं.—5. S यथास्थितानमार्गस्थाः, the others यथास्थितान् समार्गस्थ, changed by me into स्थिता.—6. S, N भाग्याद्यः—8. S, E वीथिषु सितः, A वीथीषु सितः—S, G शुभकट्—S मध्यमफलः, A मध्यफलः—9. S, N मध्यां न्यूनमधमकटकटतमम्। उदगाद्यास्तु यथाक्रममेवं फलनिश्चयं ब्रूयात्, G मध्यन्यूनमधमकटकटतमम्, and further like S; E like S, but कुर्यात् for ब्रूयात्; D मध्यमकटकफलं, C in the text अत्रिक, but in his comment he explains it by अनिट्, so he must have r. अत्रिभ.—A, D अतिकटक for कटकतम.—A वीथीषु फलं.—10. E मगधवज्जिक for महिषं.—C in the text वाज्जिक, after वाज्जिक.—11. All but E स्वरसेन.—A, D घोषयक.—13. C कां अर्जो, A, S कां अर्जो, G कान् अर्जो.—C, N, A गोमन्द.—S चीन for नीच.—14. A, S, D शंकर.—15. N पैबाद्ये, the others पिबाद्ये, changed by me into प्रित्याद्ये.—E हृत्यसकनाविकान्, D हृत्यकनाविकान्.—All but C कान् शं.—S, E पैत्र.—A, D, E मौलिक, B मौलिव, C in one Cod. षूलिक, in another तूलिक; the original r. seems to have been सौलिक.—16. S, D इमिच.—17. A, D टंकणान्.—G, N स्वरं, C only कूरं, the others षूरं.—18. G प्रबाधयति, N प्रबाधाय, E प्रबाधते.—A सचारोद्देवीन्, D, E, N सचारुदेवीम्, B सचारेदेवीम्, S सवाग्देवीम्.—All but A, C अचंती च.—19. C, S अचारोद्दे ब्रविडाभोरां, G अचारुडे ब्रविडाभोरां, A, D अरोद्देभाभोरब्रविडं, B अरोद्देभाभारा (sic).—20. N अनल्पमन्नं.—N क्वचिच भयं.—21. A आरोहेत्.—A, C खलिक, E मौलिक.—22.

All पिचाद्यं.—A पूर्वायां.—23. N, G (च) नलमिते.—All दिवसे, changed by me into the Accus.—24. G भित्वा.—25. C कापालिकमिव व्रतं, A कापाल-
व्रतमिव.—26. C, S उग्रनाः—N हानि for निकर.—27. C रण for गण, N
•धरण्वि०, G •धरायां वि०.—28. All but S अस्त्रे०.—S पोडावहः शुक्रः, the
others, but C, write चरन् शु०.—29. E पंचाल, C once the same, once
पा०.—31. A, B, D, S ऐन्द्राग्न्ये, E ऐन्द्राग्नेये, a misread •ग्नेपि; C, G च for
(च) वि.—32. E मिचरिरोधो.—33. N, E, G पाषंड.—34. N शौडिक.—
S, G, E अजैकभे.—C, E पंचाल.—S स्थित for सित.—35. S, E अचिर्बुधे.—
E ह्ययोडा, D ह्ययायिनां.—36. All but A, E, चतुर्दशी-पंचदशी-अष्टमी,
and (with exception of N) तिथिं, N तिथौ, although चतुर्दशी etc.—A
(च) यथा for तथा.—C, S, N, G एव वा for एति वा.—39 A निरता, C in
his text न रता, but after विरता.—41. All, except C in the text, प्रजां.—
D, E रजोक्कादहनैश्च for दिशो०.—42. All but E सुरालयं.—43. C पिचज-
कामलांश्च, our r. is the r. of S, *prima manu*, for S *sec. manu* = C, the
others कामलपिचजांश्च.—S, G दैशिकान्, C once प्रैशिकान्, another time
योशिकान्.—A, S ह्रादक.—G उपजीवान्.—N प्रीनाति (sic) for पोतानि,
G, E हृद्राति.—44. C, D, E प्रकोपाः, N प्रकोपा.—45. A, S, G कुमुद
कुमुद.—After this stanza D and N have : प्राष्टपि शुक्रः प्राचां दिशि स्थि-
तो ऽप्यं जलं हजति नित्यम् । धान्यं च भूरि कुर्वते दृषं च बद्ध जायते तव ।
अपरां निषेवमाणः काष्ठां शुक्रो जलं हजति भूरि । धान्यं कुर्वते चात्पं दृषं च बद्ध
जायते तव ॥.—N अगुचारः

CHAPTER X.

2. A सुभिसत्तेमन्न, S सुभिसं चेमन्न; E च for सु—3. N नर्त्तन.—D
नैःह०, E निह०; all but C द्वा for कान्.—4. S बद्धलाख्ये.—S, E, G च भू
for चम.—S कौशलभद्र.—C पंचाल.—5. E आयतन for आर्थजन.—G पारद.
—C, A, S रमठ.—A तैलक.—D रंजक.—6. A पांचनद, N पांचनादः—E
घोषक, B, D, G वैषिक.—7. C, N सार्प or सार्थ.—N पौत्रे.—S वासहीक,
the others, but N, वाङ्गीक.—E मौलिक, one Cod. of C हल्लिक.—8. All
but C, N तच्चशिलाः—9. E, G सौचिक.—C in the text बंधव्या (sic)
कौशलानां, but he explains as if he r. like the others; A, B, D, S,
and once C कौशलका.—11. S ऐन्द्राग्न्याख्ये, the others, barring N *prima*
manu, ऐन्द्राग्न्याख्ये.—A, G चीण.—A, B, D, E कुंजुम.—E लाक्षाः, D लाचः
—S यांति.—12. B टकण, D, E टंकन.—S वर्धर for खस, A वर्व, N om.,
but *sec. manu* खस.—A, S काश्मीरसंवि०.—D यांति जना भवति वि०.—13.
B पूजित for सत्कृत, D, पूज्यश्रेष्ठकुलमण्ये० E. A, D सुरगण.—C, B पंचाल.—

14. A, D, S कोशल. — C, N व्रजो, the others व्रजमाग°. — C, D, N, G ताशलिप्यां.—15. C once, N *prima manu*, and S उज्जयनी, the others उज्जयिनी, all but N om. Anusvāra.—S, E पारिपात्रकान्.—N कुंत्य.—16. S विप्रात्रसिणिभिः; N अग्नि for अघ्न.—17. C दृत्तोनां for वार्त्तानां.—S, E बुध्ने, C once the same, once बुध्यन्ते.—18. All अतः, changed by me into अताः.—S inserts after 18, E after 19, and D after 20, the following meaningless distich : एकर्चचरो वर्षाशुभप्रदो द्विभगतिश्च मध्यफलदः । विप्रतिरशुभकरो दिनकरतनयो विनिर्दिष्टः.—19. A, S (अ) तिरौद्र for तिरौद्रातिघोर, G विरोध.—21. S, G वैदूर्य.—C शुभकृत.

CHAPTER XI.

4. A °राद्ये ऽनरि°, B °द्येषु ये ऽनरि°. —S om. ने.—6. B, D, N आधूमितै, E आधूपनै.—7. G दृश्यः फलपाकस्य तावतो भासान्; E °पाकाः.—A, S वर्षाणि for अब्दाश्च, D, N अब्दानि.—S. C, N स्निग्ध अजु, G स्निग्धश्चिर, the others स्निग्धस्तु अजु.—E शुक्रः.—E अतिवृष्टिः, the others but N, G अभिवृष्टः.—9. D, E चूडा.—12. A, S (अ) पि for च.—14. C हिमरजत.—16. एतद् om. in E, N, G; —D has एकं.—17. A, S, N सौम्येशां.—18. C once कनिक, once कनक, G नरक, E जनक.—19. S अधिकाः.—20. G अक्षण for शुक्र.—G पापाः स्युस्त्वे.—21. D, E कुंकुम.—24. S, E श्वावारणा.—S, G वायुसुता; A originally the same, but *sec. manu* °स्ते वायोः, like B, N. —G पापास्ते सप्तसप्ततिः; A om. सप्त.—25. A, S, B, D, N द्वे तु.—N, S चतुरखा.—27. All but A, S पुत्रा for चंडा; C takes पुत्र for the name of the people, but in a quotation from Garga it is manifest that पुत्र is another name for these Ketus; hence the error.—30. A on the margin, and S पठित for प्रोक्त.—31. N, E, G सधूम.—33. A, S, and G *prima manu*, जलकेतुः; N बलकेतुः.—A, S दैर्घम् (sic).—A, S उपयाति.—34. A, C एव, om. च, S इव om. च.—35. N देवकाम्.—36. A, S, E रोगवृष्टिर्दुर्भिक्षैः.—38. C, A, S, G °दौ तथाधिकं.—39. B, N, E, and once C, गतिः.—40. E च for तु G (अ) पि.—A on the margin, and N दत्ते.—41. S दिव्यंतरिचभनौ, A the same but दिव्यां.—42. G तरुशिखरेषु.—A, S दर्शनमुपैति, E दर्शनमुपयाति.—43. All but C शिखो.—44. B, and once C ससूक्त.—46. E, and N *sec. manu* चानतया.—52. All but C पान् श°.—After 52 the following is inserted by A, and after 53 by G, S : गगनार्द्धचारी (A° रात्) सद्यः प्रधानदेशान्भिनाशयेदचिरात् । सकल (G निखिल) गगनानुचारी वैलेप्याभिनाशनः (G °शकः) केतुः.—54. A, S अंति.—All but S स्वर°.—55. A, S जलचरजीवाधिपं.—S आशीनरपं, om. अपि.—56. G

अशिकेशं.—E पैत्रे.—D, S उज्जयिनिक, A खौज्जयिनिक, E खौज्जयिनोयक, G उज्जयिनिक.—57. A, S, B, D प्राज्ञ for तज्ज्ञ.—A कंबोजौ.—58. G कुकुल for रल्लक, S, and C in the text रल्लक, but C afterwards considers it to be अल्लक, and r. with B नायच हन्यते.—S मैत्ये.—A, S पौत्रा०.—59. D जलदेवे.—C, A, S, G वैद्य.—A विश्वदेवे.—60. G केकय—D सीहला०.—A, S, G चांगं, D वंगं.—61. E (अ) तिष्ठे, the others but S, D (अ) भिष्ठे.—D, E चोलावगाण, C in one Cod. चोलावकाण, in another चोलावंगण, S चोलावंगकौकन, A चोलावल्लकौकन, G originally चूलावंगाना, changed afterwards into चोलाकांकाण०.—62. C, A, S, हतो.—G तरप्रभवोच.—S विगत, A विनिहत.—A, S, D, and G in the margin have one stanza more : दृष्टः षोडश वासराज्ञ शुभदः कैथिरप्रदिष्टः शिखी सर्वारम्भफलप्रदो हि नियतं चैत्रे ऽथवा साधवे। अक्षं यत्परिभुक्तपोडित (D भुक्तधूमित) क्षतं यद्वा (D दग्धं) शिखाभेदितं तत्सर्वं परिवर्च्य शुद्धमपरं पाणिग्रहे वासुषु ॥

CHAPTER XII.

The opening stanza is wanting in C, B, E and originally also in G. It is to be found in C only as a quotation from the author's Samāsa-Sanhitā. v. rr. are : (C,) D, G वातापो.—(C) कुक्षिभिः, G निजकुक्षिणा.—D पीत्वा त्वम्बुनिधेः पर्यासि विपुला याम्या च.—(C) पयोद्युतिक्रतिसारः D पयोध्यतिक्रतिसारः, A, S, G मयाच सुकृतिसारः; कृतः is Genit. case.—1. E समुद्रातेः—G निकर for नखर.—S मुक्ता० for रत्ना०.—3. S लंभित for यापित, A *prima manu* लंभित.—6. A प्रियामषण्यप्रदतांगदेहा०.—E लंबाहाराम्यु०;—C अति for अभि.—D ध्वजोच्छ्रायशोभितं, S ध्वजोच्छ्रायशोभं पुरा, E the same, but om. पुरा.—N करिकरट.—A मद्मोदमिश्रि०.—A *sec. manu*, and B द्विरेफालिगीतसंद्रखनैः, G *prima manu* द्विरेफावलीसंहृष्टसंद्रखनैः, *sec. manu* added गीत before सं०, N द्विरेफावलीगीतसंहृष्टसंद्र०, S the same, but मंद, E द्विरेफावलीसंद्रगीतखनैः, C द्विरेफालिसंहृष्टसंद्रखनैः.—A om. शार्दूल.—A, S, D सुरसौसमाध्यासि०, N सुरसौसमाध्यासि०.—A अंभोग्नानासन्नम् D अंभोग्नानाश्रमू, E अंभोग्नानंदविप्राश्रमौघान्वितं.—S अर्चित for अर्चितः.—7. All but C कुसुमा०.—8. E वाकम्.—C आपुष्पतीं, expl. by आपोष्यमानाम्!, A आपुष्पतीं.—A रक्ताद्वक्षित.—S सरत्, the others शरत्, which I have changed into सरित्.—9. All शरद्, changed by me into सरित्.—11. E, G कीर्ण for पूर्ण.—S अह्वीम.—A नामः.—13. All but A, S, N अर्थ for अर्ध.—14. A तथा for तथ.—All but E उज्जयिन्यां.—15. C विभागो.—C once अर्ध, once अर्ध.—16. C, N, G भक्षौ, although C expl. by अपुपादिभिः.—17. C, D ददसर्ध.—All but C, N ददानः.—All but C

- च यदि.—G एति for याति.—18. All but C, G गा.—A सम्यक् for सर्वे.—
20. C mentions the r. किरणैः but he and all the others r. किरणैः—
21. N वा for च.—D भाग्य for हस्त.

CHAPTER XIII.

1. A °ल्लो वि०.—च om. in A.—N, S द्विः, E द्विसैः, A दिग्धिपैः—2. S नरीन०.—3. S, N, D राज्यस्य.—D inserts after 3 this: वर्षसहस्रवित्तयं शतमेकं सप्ततिर्नवापा च। शककालयातमिथं कलेर्गतं धर्मपुत्रात् ॥—4. D वर्षा-
णि.—In C the latter hemistich is so corrupt that I cannot make out his meaning; he writes: प्रागुद्यतोप्यविचारा (or विचरा) ह्यु (or ह्यु) भयं (or नयं) तत्र संयुक्ताः, expl. by यस्य नचचस्य प्रागुद्यतः सप्तर्षिपंक्तिः स्वभा भवति तस्मिन्नेव स्थिताः; at the same time he mentions and explains the other r.—5. N वशिष्ठो.—6. N, S वशिष्ठ.—A उपासिता, N उपासता, once उपासता.—7. A सखं.—9. S वशिष्ठा.—E पारद.—A निहता—11. G गुह्यक for दानव.—S क्रतोश्च.—All but C, N यज्ञहतः—

CHAPTER XIV.

2. C सख, the others but N सख.—G °पौञ्जि०.—All but A, S, N मध्य०.—3. G औपज्योतिष.—All सूर०.—A °वोदेहि०, C, S °वोदेहि०, D °वो-
देहि०.—4. S, E पारिपाच.—C उदुवरकापिष्टक.—5. A बर्वर for कर्वट.—
E, G चंद्र०.—All MSS. सूर्य or सूर्यं.—6. C. खष, D, S खस —A शवरगिरि
—C, A, S, D °टोत्र, perhaps a misread °टोत्र.—S कंतुरगाः.—C, D, E
लोहित्य; A, S °त्यग्द.—S कोरोद.—7. A कासि.—S, and once C मेखल.—
A, S नाच.—C once लिप्तक, once लिप्तिक, A लिप्तक, S लिप्त.—C, A, R, E
कोश०.—S °लिका.—C, A, D, N वर्द्धमानाश्च.—8. S कौशल.—D प्रूलि, C
खलि, A, B, S मौलि, G कौलि.—A, S वेदि० for चेदि, D चैदि०, even C
writes the same, but from a quotation from Parâçara, viz. विन्ध्यान्-
वासिनश्चेदिकवत्स०, it is clear that व is only a copyist's blunder.—N कर्ष
for कंठ. 9. S नारिकेर.—G निपुरा, C once रः, once रो.—S हेमकूट, A,
D, E °क्या, N °क्या, C seems to read °क्या and calls it a place (स्थानं),
—10. A, S स्थली.—C in the text पटिक, afterwards पुरिक, S, E पूरि-
क.—All but D, N दशार्णाः.—C in the text शिविर, afterwards शवर.
which latter is also the form in a quotation from Parâçara.—All चक्षे०.
—11. D कालन्न.—C once सैलि, like E, once सैरि, like D, B, N.—S, N

कण for कीष.—A ताल, G तापितटाः—S मालिंद, A the same or मालिंद.—S मरकटाः, G मरकटाः, A भृगुकटाः.—C, E कर्कोट, S कर्कोट for ककट, G कर्कोटक, om. टंकण.—C once टंकन, N कंकण, A टंकणक.—S कर्षिकार.—G कुंकण, the others but A, B कौकण.—C in the text पुर. C गोमंद.—

13. S चौलाः.—A, B, D, E ऋष्य, C in the text रिष्य.—A, B, N मूकाश्., —14. All but A, S पत्तन.—C perhaps राष्ट्र.—C once वेलूर, once वेसर, A वलूर, D वलूर, G वैडूर, N वेडूर.—C, N पिसिक, D शिविक.—A सूधाद्रि, S सूधाद्रि, the others, it seems, सूधाद्रि, which I have changed into शूधाद्रि, as the MSS. elsewhere write रूपे for शूधे.—15. A तुषवन—A ऋविकाः for ऋषिकाः, B ऋविकाः—S पुर, for मर.—S चार, for ची, D चीन, E चीनक.—All but A, S पत्तन.—A देवर्षिसंघला, C चर्षकर्मसिंहल, E वर्षकसंहल, B चेषर्षिक, N चैर्षक, D वर्षार्षकसिंहल, S वर्षार्षकसिंहल, G चर्वशीसिंहल our r. चैर्ष (=चेर) is conjectural.—D भषभा.—16. All but A, C पत्तन.—A, S वनं.—B तिलिंगल, C, D तिलिंगिल, C समाभद्राः, expl. by सनाः and भद्राः, S तिलिंगनाशनभद्राः.—D कचो.—17. S कंवाज.—A °वचोः—18. C फण, S, N फेन.—C in the text मार्ग, like N, G, and a quotation from Parāçara; afterwards C writes माकर like B, S; E माकर, A मर्गण, D मां. —A कर्णप्रदेश, B, S, E कर्णप्रवरण.—B, S श्वरकाः for पारश्व, A, S पारसव.—C, D, E षंड, N षंड.—A क्रव्यादानाभीर, all others क्रव्याश्याभीर, for which I have adopted by conjecture क्रव्याश्याभीर, i. e. क्रव्याशिन and आभीर.—N चंपूकाः—20. G वनौकः—A, N °रांतिक.—C once शाचक, once शान्तक, and in a quotation from Parāçara सांचक, D शान्तक, E, G, N शान्तिक, A शीतिक, B चोचिक, S वाचिक.—A °द्रिचोणषो, °D °द्रिचोत्काषाः—21. D, S पांचनद.—E पारद.—E भारद्दुति C तारद्दुति like D and another time °चुवि, Parāçara in C तिरिचिति, B, S तारचिक, N तारचुभि.—C, B जंग, A जांग, D, B, S षंग, G *prima manu* छङ्ग, *sec. manu* षंग, N दंग, Parāçara खिंग, I suspect शृंगि.—22. All but E तुषार.—C, B लह for हल.—A लहर, C, D, E लडह, S कलह.—23. A फलुका, G फलुलिका, S, N फलुलका, B फलुगुलुका.—A गुलहा, C, E गुलुहा, G गुरुह, N om.—A मरकच, D मरकुच, G मरुकु, B मरुह तुवकच, E मरकच, S नरक, N *prima manu* मरकस्थ, *sec. manu* पुरकुच, C in the text गुरकुच, afterwards परमुच, Parāçara मरकुच.—C, B, D, S, N खलिक.—24. All but C, S कैलाशो.—A, B, D वसुवान.—25. E, G वशानि.—E अघोष्या, the others but A अघोष्याः—E अंतर्दीपि, A दीप.—26. D दाशे.—C °रिक्.—A, C तचशिला.—C पुष्करावर्त्त, D, E पुष्करावत.—A °तेकलावत, N कैरातक, S कैतावक.—27. S पैलव.—N, G °मान.—G हन.—C कोशल.—S, N सातक, the others but D शान्तक.—28. S, D, G घोषेय.—29. A, D, S टंकण.—C once सैरिच, c ce सैरित्य, like D, E; A सैरिध, N

सैरिष, G सैरिष, S सैरिस.—30. All but A दामर.—C चोष.—A, B कौलिंद, E कौलिंद्र.—A, B भिन्नप° S, E पञ्चव N पञ्चव.—S, E जटाधर, om. कुनठ.—D, E कुनठ, N कुनठ, C, G कुनठ, A, (B?) कुणप.—G खस, N खग.—A, N, and *sec. manu* G कुशिका°.—31. All °ञा without visarga.—C भू.—A वनविदिकसंख्या.—C, D, S वसुधना.—C, D, E चीवर, A वार.—C, A, B, D पुञ्जाद्रि.—33. N, E आवंत्या.—C, B, S आवर्त्ता.—A हरो, E चोरो.—C, E, S कौलिंदः.—The title in C is नचचकूर्म, G कूर्मनचचदेशना-माध्याय, S कूर्णचार (sic).

CHAPTER XV.

2. E, G भोगयुक्त.—4. S श्राप for श्राय.—A घर्म, D संघर्ष, E कर्म.—5. S, D, N नि for अभि.—A शिल्प.—6. S इक्षुवेलाणि.—S, N शिल्प.—7. E सर्प for सर्व.—9. All but S फासुनी.—S मद्यानि for पण्डित.—D, E, G कार्पास.—A, G कुमारिक.—10. D, E, G, S पाषंड.—11. S *sec. manu*, and G शिल्प.—E श्रुति.—12. A शालको.—13. D वायु for वायु. C notices a v. r. वन्य.—14. A पुब्रह्मण्डल°.—15. E, S, G पान.—G शिल्प.—16. S सैन्यानां.—17. D, N मलफल, A, S कुसुमफल, G फलकुसुम.—18. C, A, B, G सक्त for भक्त.—21. C, S सौहृदः.—S स्त्रिया, the others but E स्त्रियो.—A अमरत, B, C, S अमपर.—22. E फाणिक for पाणिक.—A but C, N शोकरिक.—24. All but D, N बुध्रे.—29. All but N विष्णुतायाः.—30. All सौम्येन्द्र, but C once as we.—N अवणा.—D, E, G चांडाल.—A अभिनिर्विशन्ति, the others अभिनिर्दिशन्ति, which I have changed into इति निर्दिशन्ति.—31. S शिखि for रवि.—A, D, E उखकर.—32. All but D ज्ञातमेव.—A दूषितं.—The title in A इति नचचभक्तयः—

CHAPTER XVI.

1. All but D, E प्राग्र°.—G शोणोत्कल.—C वासुहीक, S वासुहिक.—A चोष.—2 C once चिडिका, once विकटा, B विकट, the others but A पारत, A विटकपारता.—C once अंतर.—3. C चव and वच for चंप.—S उडुवर.—S कोशा°.—C, N, G वेदि.—S पौत्रां.—All गोलांगुलाः.—All but E, G वर्द्धमानानि.—4. A बौजानि.—5. E, S पापि.—6. A, S सलिलकोश-लडुर्ग.—A, S मरकह.—All तुषाराः.—One Cod. of C तंकह, S तंकनक, (4 *prima manu* तगुण, *sec. manu* तकण.—7. S चोपध.—S कंद for °कंद.—9. A, C रथ्याया°.—All but N, E, G क्षिप्रा.—E वेष्टः.—11. A भासपुर, C

and *sec. manu* N भासापर, E भाषापरं, D, G दासपुर.—11. A, S भंजिशिखाः, भञ्जिषिकाः, N भंजि, the rest being effaced, D भाञ्जिषकाः, G पारसीकाः, E मंयुषिकाः.—C, N, G, E संकरिणः.—12. om. in C, E, and originally in G; in N it follows vs. 17.—S, D बराट.—13. A खर्वट.—16. C, D, N लोहित्यः—All but N यूगं.—C गंभीरका, A गभीरिका.—A रथाङ्गाश्च, S रथांका च, B रथांगा च, C रथस्याथ (?).—18. S °काः पुष्यशिल्पं.—19. All but C वर for चर.—20. S, and once C आरत्तिक.—A व्रतधारि.—C वेशर.—21. A युञ्ज, D दुञ्ज.—All but C शास्त्राः.—22. G पारद.—N बोधेयाः.—24. विदुषो in the Nomin. case is strange.—25. A टगर.—All but A कुष्ठतगर.—S, E, G चौर.—26. A, and *prima manu* G, सौक्तिकावन.—A पुष्करावनकाः—A, N द्दर्शाणं.—A श्वराः.—28. S मिष्टान्न, A म्ष्टान्न, D, N दृष्यन्न, C दृष्यान्न, E वृषान्न, G विषान्न, the form मिष्ट being more common than म्ष्ट, the r. of S is allowable, although not likely the original one.—30. A पत्तोर्णक, C पत्तोर्णिक, G पत्तोर्णिक, S पत्तोर्णिक.—D, B, E, S गंधपत्राणि for पत्रोच्चानि. A मोच for चोच.—S चंदनश्च.—31. D श्रौदा.—32. C once भूमिका, like S, once भूमिजाः.—C, S नदीतट.—A पुंक्षाः, E पुंक्षाः.—33. All but C, D, N श्रौकरिं.—34. C वातल.—C निःपाव.—35. C सुलिक, S श्रौलिक.—C, D चोक्लाण, A, S वोक्लाण, G कांकण, N चोचण.—38. C, A हून.—D चैल.—C in one Cod. आनगान, in another आवकाण, like S; D चोक्लाण.—39. A परवाद, D परिवाद.—S घर्मिं.—40. S निर्वीत.—A शुभशेषा.—41. C, S, N लक्षणे.—S परिहृद.—C गदभय.—42. C (?), N वापि for चापि.—The title in all but S, N is ग्रहभक्तयः

CHAPTER XVII.

1. C, N यदा यथा वा.—All but, A, E भविष्यम्.—C सिद्धांते, but he notices also the other r.—2. A दिग्बिषये.—3. B, D, E, S अपसव्यैः—A inserts after vs. 3 : इत्थमात्रे भवेद्युद्धं बाहुमात्रे समागमः । वितस्त्रिमात्रे वृक्षेषो भेदश्चैव निरङ्गुलः ॥.—4. A मित्र for मंत्रि.—5. D, E, N, S अंशुविमर्द.—D, E च्चुटुपमर्दाः.—7. A हताः परे प्रहा, D, S om. परे प्रहा, N प्रहा हता.—C ज्ञति for हन्युः.—8. C याय्याक्रंदान्.—All but A, S एवं for एव.—After vs. 8 A inserts : युद्धमदितमुक्षे तारास्पर्शानु भेदतो भेदः । स्यादंशुविमर्दाश्चमथ्यात खलेषु प्रहांतरे समागमाङ्गयम् ॥.—9. All but A अधिरुढो, cf. however Sūrya-Siddh. VII, 19.—All but E निःप्रभो.—11. C, D, E, S, N युक्त for शक्त.—12. D अयत्नेन लक्षणेन.—N तदा for तथा.—13. S बाह्विका.—A, C, N स्वरं.—All but C, N शाल्व.—16. A जिते शशिसुते.—17. D, E अगुणमिश्रस्त्रकोपः, S, N, the same but कोपाः.—18. S केकयाः.—All but C, N शाल्वं.—19.

N, S जिते for हते.—20. S धाति.—21. C जिते for हते.—D, N याधि.—D अष्टा.—D वासवः हजति.—22. N कौशल.—C, A, S, N स्वर०.—23. C सौमन.—A (अ)र्थवृद्धि, C once the same, once (अ)र्थ०, expl. it by सर्वत्र-
 याणां सुलभत्वं, of course wrong.—A तंगण, C तंगन, B तकण.—A पौत्र for
 अंभौत्र, S अंभौड.—S वाष्ठीक.—26. S, D माहिषकर्षकाश्च, E माहिषशकाश्च.

CHAPTER XVIII.

2. In N follows Grahaṅgātakam (the 20th Chapter of the others) and then this Chapter.—All but A हभदं वपाणां.—All but C, E न शुभः for न शिवः.—2. A, E •नाथ यायिनो.—After vs. 2 N inserts a stanza for which see next chapter, vs. 1.—3. D हार्दि, A हार्दी, S हार्दि, E हार्दि.—6. S वाष्ठीक, the others but N वाष्ठीक.—A, N मुद्भाजो, E सुखभाजो.
 7. D तांश्च for तान्.—8. A प्रतीपात्.—D समवायः कारितो वपाणां.—N सार्द्धम् for साकम्.—The title in C is समागमाध्यायः, in S चं समागमः, in N चंद्रग्रहसमागमः

CHAPTER XIX.

1. D opens with the following, which N inserts after vs. 2. of XVIII and repeats here again : संप्राप्ते चैवमासे शशिनि कश्चनैवा वासरे शुक्लपूर्वे धे वारा वत्सरस्य प्रभवति स शिवोऽशोभनो वा फलेभः । तद्वर्णं सर्वसस्यं फलति बलद्युते चेचदेशे स्वकीये तस्मिन् (D यस्मिन्) यद्यङ्गि वृष्टिः क्षपयति दुरितं सूये (N सौम्य)भौमार्कजानाम् ॥ Then follows in D कर्के सूर्यो (MS. सस्या) ऽधिपः प्रोक्ता मेधे मन्त्रो प्रकीर्तितः । चैत्रप्रतिपदादौ यः स वै वर्षाधिपो भवेत् ॥ ; in N : नीनं भुक्त्वा रविर्मेधे धेन वारणे गच्छति । तं तु करणाधिपं विन्द्याच्चैत्रादौ वर्षाधिपो (Sic) ; in S the 1st vs. is : शुक्ले प्रतिपदि चैत्रे ग्रहस्य क्रमागतो वारः । स स्याद्वर्षाधिपतिः करोति सदसत्फलं स्वाब्दे ॥.—N नद्यश्च नैव हि पयः प्रचुरं स्वर्गति for स्यन्दन्नि—स्वन्त्या.—3. S •लादिधराश्चरति.—D पदानुचरैश्च.—4. S, D श्वल्ल for गवल्ल, A गवथ.—A, B, and N *sec. manu* उत्कांठतेन, S उत्कांठि-
 देव, D उत्कांठदेव.—5. D पूर्णं for फुल्ल.—D पुंसो, N नाना for रामा.—S अश्विरते.—D, N रामाः for रामान्.—6. A वरेडुवाटै.—7. C, S वातोद्भूत.—
 C, A, N •धिद्युः for •धद्युः—A निःश्रो०, the others write निखो०.—8. A, D, N अत्युन्नता.—C, D, N, S कुचचिद् for न काचिद्.—S सोमः, D सिम्हे, E दिम्हे, which latter r. is mentioned also by C.—9. D अभिपालनमंप्रसक्ताः—10. S, D नर्षक for नागर.—A गंधर्व.—A, and N *sec. manu* तुष्टिजनितानि.—

11. A, D, S, N अध्याचारात्मि, a r. which seems to be noticed also by C, although he writes अध्याचारात्मि.—C (अ)पि for (अ)न.—A ०चकोष.—12. A पाल for बाल.—C दिने for (अ)थवा.—13. A षु for द्यु.—A मुखानि for मनांसि—14. A प्रष्टद्या—15. S स्वके ऽथ वर्षे.—16. S ०धराभा०, the others but C ०धराभा०.—18. A पंश्रीयते.—A, N वीणां.—S घोषाः—20. C, E, N आरुद्र, D आभङ्ग, S आभङ्ग.—S रजोपिनङ्गा.—21. All but A, N एवशब्दवृ०, but C notices also our r.—22. C, N पुष्टिदानान्यथा.—The title in S is वर्षाधिपलक्षणं, in N वर्षाधिपत्यध्यायः

CHAPTER XX.

This ch. is in N the 18th.—1. A दिशीचमाणा (sic.)—2. B, and one Cod. of C कुंत for प्रास.—4. D, N, S, E भोदिनः—7. D, E समाज for संगमे.—9. A, D ०संज्ञे तु समाः, N *sec. manu* ०संज्ञे तु समा, *prima manus* effaced, the others ०संज्ञे सुसमाः, and all प्रदिष्टा, I have changed the whole into ०संज्ञः सुसमाः प्रदिष्टा.—A ०पातः—The title in A is शृंगार-कलक्षणं.

CHAPTER XXI.

1. A, D तस्माद् for यस्माद्.—2. N परासर.—A वत्स्य. E वात्स, C, D, B वत्स. S, N भृग्वा०.—3. C अविदितचित्त (expl. by अविचित्तचित्त), S अविदित.—A लक्षणो.—4. A, D, S, N किं चातः—E किं वान्यत्परमस्ति शास्त्रं.—A तद् for यद्.—A, D, S, E एवं for एव.—B नरो for कलौ.—A रंचति for भवति.—6. D, E, N, S ०शिरः सितपत्र, C ०शिरसितपत्र.—7. S भवेच्च चंद्र०.—D पंचनवतिशतदिवसे.—8. E कार्ष्णा for कृष्णा, certainly preferable, but doubtful whether from the hand of the author, who may have written कृष्णा, S कृष्णोद्भवा द्यसंरात्रौ (sic).—9. D मार्गशीर्षाद्या, E मार्गशिराद्या, N मार्गशिताद्या.—D पौषसित, E पौषशुक्र—S पचे विनिर्दि०, A, B पचे निर्दि०.—10. A प्रसवम् for प्रसूतम्.—All but A, N कृष्णपचे विनिर्दि०.—A ०दस्य सितम्.—11. D, S, N च for तु.—12. A (अ)श्विदुजस्य.—14. S ह्यादि.—All but C शिव for शिव.—All but N वहल for बडल—15. B, S, E वहल, C once वहल, once बडल.—16. C, A प्रतिस्वर्यका, C explaining the whole as an Adjective!—D, E शुभाः संध्याः—17. E निरुपहताः for निरुपसर्गाः—A निरुसर्गाङ्कुरा.—18. All but E विष्टद्वी.—19. E (अ)थ मार्गमासे.—E ष्टशिशरे.—D पौषे शतं न द्वि०, E, S, N तु for (अ)ति.—21. E कपिलभासा.—23. C भासा, meaning either भासा, or it is a misread भासः—26. C, A, B, D रत्नै for रभि.—D, E त्रिविधेर्हेता, A त्रिविधैर्नाहेता.—28. A पितामहे०.

A ऽधिकतोयदो.—29. The MSS. अहोषा.—30. N मार्गशिरादिव्य०.—S युक्ताः—31. The order of the distichs in C is thus : 30, 35, 36, 31, 32, 33, 34 ; in D : 30, 35, 36, 31, 32, then four distichs manifestly taken from another astrological work : गर्भा निरीक्षणया दिक्ष्वशेषास्तपि (a fault in the metre) ष्यक् ष्यक् द्युनिशम् । ज्योतिःशास्त्रविधिज्ञैरष्टासां वर्तते संख्या ॥ संख्या गर्जितविद्युत्प्रतिस्तर्यैरबौन्दुपरिधिपरिवेषैः । वातानुल्लामजैरपि गर्भाणां भद्रमाणा (?) मिदम् ॥ Then a distich, occurring also in N after 36 ; सत्संध्यासंलग्ना वर्षति (N प्रसवति) गर्भस्तु योजनं (N ०ऽख्यो०) लेकम् । सहगर्जितं द्विगणितं (D द्वियोजनं) षयोजनिका भवेद्विद्युत् ॥ प्रतिस्तर्यकेण वर्षत्येकादश योजनानि गर्भस्तु । सत्यारिवेषो द्वादश समीरणे त्रिंशत्स्यधिकाः ॥ Then follow in D : 32, 33, 37.—32. N ०ऽशब्धधिके.—S गर्भस्युत्तो.—34. S अत for अत. —35. B पंचनिमित्तः, N पंचनिमित्तं.—A तदर्द्धमेकता द्वा०.—vs. 35. and vs. 36. om. in E.—36. N द्रोणे.—D, S, E आढकानि.—S प्रसवेत्, C प्रसवः—37. N सौकरा०.—The title in S is दृष्टिगर्भलक्षणं.

CHAPTER XXII.

1. A, C, B, S ओष्ठ.—2. All अत for अत.—3. S, N वारिष्ठाः, A निर्दिष्टाः—4. E परिच्छिन्न.—5. S वा for तु—D पर्यवस्थिताः—6. N क्रियापिवा.—C पतत्रिणां सुखना वाक्.—7. C, D, N सर्वसंस्थार्थसाधिका.—8. N गतिप्रियाः—C, D, N उद्याभष्टद्वये, A ०ऽर्थसाधका, S ०ऽप्रसाधिका.—The title in D, E is वायुधारणा, in S दृष्टिधारणा, in the opening of this Ch. it was called by C गर्भधारणाध्यायः, by D गर्भवायुधारणाध्यायः

CHAPTER XXIII.

1. C, N ज्येष्ठां.—3. S दृष्टेन.—N चांभसः for वारिष्ठाः—4. E, and perhaps C, in his text ०ऽदृष्टिं.—N, E एके for अन्ये.—S, N वारिष्ठा.—5. A कनकेष्व० for च भेष्व०.—7. All but N अवणामघा०, perhaps the original was अवणामघा०.—All but S फाल्गुन्यां.—All but S विंशतिद्रो०.—8. All ऐंद्रान्यां.—A, E आर्द्धवृष्णां.—9. C षोडश for ष्टादश.—E निरुपद्रुत्वेव, like C in the text, but C afterwards निरुपद्रुत्वेव.—The title in E is प्रवर्षणनिर्णयः

CHAPTER XXIV.

1. S शिलोषय.—All but E, and N *sec. manu* कुसुमासंग.—2. A गर्भपराशरवसिष्ठकश्यपश्चात्शिश्य०, C in the text गर्भवसिष्ठपराशरकश्यपश्च सा

चां शिष्यं, afterwards गर्गपराशरकश्यपश्च शिष्यं, D, S गर्गपराशरकाश्यपाश्च चान् शिष्यं, E गर्गपराशरवसिष्ठकाश्यपसंवाच्य शिष्यं, our r. is that of N.—3. D, S योगार्थं, like C in the text.—4. A, D, S तमिन्.—5. A, N निगद्यं, E निगम्यं.—6. C, B, D, S, N यत् or यन्, A यात्परतो.—7. S °वालोपहितैः पधूपितैः—E अकांडमूलेः—C आबशेद्, A, N आविशेद्, B, D, E अद्युषेद्, S अभ्युषेद्.—8. C mentions a v. r. काम्यसर्वारं.—9. A अक्षणी, S सखां.—A चिगणोत्तरं.—10. C notices a v. r. तेनाच मासाः—C in the text, and E मध्येन, but C expl. by प्रादक्षिणेन, so that he must have r. like the others सन्नेन.—All but C write गच्छन् ग्नुं.—11. All but C, N हसेदुयोने.—C, D, E हितानि for हतानि.—A, B तेषां तु यो.—A तेषां चा? सृष्टिं, C, N, E तेषां तु हृदिं.—12. C, D, S रोहिणीगते.—13. A मान् for मात्र.—14. S खमिव (i. e. खचितमिव?) for ह्रितमिव.—S, N किंशुककुंजमां.—15. S स्फुरित् for खलित.—A विचित्र for चिचित.—17. A °हेमं, the others, but C, °हेमं.—B, D, E कल्प्यै, A पक्ष्यै.—19. All but S निस्त्रयै.—S संदं.—21. A सवर्ण for सरूप, E स्वरूप.—22. S सुष्टिः.—23. A संपत्ति for निष्पत्ति.—N आग्नेयां.—S, N °र्ष, the others, but C, °र्ष for °र्ष.—24. S वायव्यस्यै.—S पृष्ठ for अष्ट.—S दत्ते for धत्ते.—26. and 27. S श्रुत for श्रुत.—29. S तदात्पट्टि.—N समेति.—C शिवां.—30. N, E प्रजाः for जनाः, which r. is also noticed by C.—31. A, B, D कामवशे.—32. S पौडित् for खेदिन्.—S वनितानां for प्रमं.—33. D, E. S विलयं for निधनं.—S शस्यानि.—C, B, D प्राज्ञेयां.—All सख्यार्थद्वयादयः, which I have changed into सख्यार्थद्वयादयः.—35. D प्रविशतां यदि रात्र्यां for भोत्रं etc.—A हृदागतो.—C, B, D, E, N भवति for याति.—C, B पुरा for पुरः—D प्रचुरमंब for भूरि वारि.—N, D न for तु—A मध्यं.—All but A, N, S न च सिते.—36. N om. सस्य and r. संयुता तदा.

CHAPTER XXV.

2. A सर्वाणि सस्यानि च यांति.—S सिद्धिं for दृष्टिं.—C प्रीयां—S न शारदं स्यात्.—3. S (आ)तिदृष्टि for सुष्टि.—4. A शिवसुमित्राय, E शिवं सुमित्रं.—5. N माघपाचं धकारे (intended for °पक्षे (भ्यं)), S °माघकारे.—6. A °खस्य सिते.—S, E च for वा.—A आषाढस्य, S आषाढे ऽपि.—N om. the whole śloka, and C remarks : अनार्षो ऽयं श्लोकः

CHAPTER XXVI.

In A follows वातचक्रं, which in the other MSS. is Ch. XXVII, (q. v.); the आषाढीयोग is exhibited by A in his 27th Ch.—A सस्यं for वीजं.

—A, S, N मंत्रशांथी.—2 A has two ṛ'okas numbered 2, the former of which is like vs. 2 in the others, the latter (occurring also in S after vs. 4) is as follows: खं तुले सत्यधामासि पुरा देवैर्विनिर्मिता। तत्सत्यं वद कस्यापि संशयान्ने विमोचय ॥—3. S गणैः सृष्टः—N द्वि for च.—4. All but C, B सर्वदेवेषु.—A दृश्यते.—5. A चासि for चैवं.—6. A शक्यवक्षस्—S वक्षसंस्थाः—S शिष्य for सूत्र.—S एतेव शिष्योभयकक्षमध्ये.—All but N (and S) कक्ष्येः for कक्षोः.—A, and *prima manu* N शक्यमध्ये.—7. A शक्ये.—N चैव.—S चारसैः स्यंदिमिष्य.—C in the text दृष्टि for दृष्टि. but in his expl. he reads दृष्टि, and notices as v. r. दृष्टि, disapproving of it.—8. S गोत्रवा-
व्यादि.—S, N शिष्यकेन.—9. E तथोरभावे.—D, E, N, S प्रमाणं च.—10. S ह्यं for भ्यं.—N प्रजायां for तुलायां.—11. A उपौष.—12. (अ)ध्यधिकं C, S निगाद्यं—13. This is the last distich in A.—14 is the 1st distich of another Chapter; the 2nd distich with A is = 15, in B, D, E, S, omitted by me; it is as follows: नष्टचंद्रार्कविषयं नष्टतारं न चक्ष्रमः। न तां भाद्रपदां मन्ये यत्र देवो न वर्षति ॥. The two distichs एसायाम् इ. आ. and नष्टं इ. आ. are found in C between Ch. XXVI (वातचक्रं) and Ch. XXVIII (सयष्टष्टिलक्षणं); about the latter of the two he remarks: अनार्षो ऽयं श्लोकः. *S repeats* these two distichs between XXVII and XXVIII, and they form there like in A, the भाद्रपदां.—Our vs. 15 (being the 16th in B, D, E, S) is the 1st of Ch. XXVII in C, N, and the 1st also in the 26th Ch. of A (which, however, in its contents is = XXVII of C).—The title of this Ch. in S is आयाः भाद्रपदयोः

CHAPTER XXVII.

This Chapter (वातचक्रं) is the 26th Ch. of A. The Commentator remarks that the वातचक्रं is not from the author's hand, but as it is met with in many copies, and contains a nice piece of poetry, he deems it deserving of an explanation. He says: अतः परं कोचद्वातचक्रं पठन्ति। तद्वराहमिहिरक्तं न भवति यतो निष्पत्तिरग्निर्कोपो दृष्टिर्नन्दा च (sic) मध्यमा श्रेष्ठा। वज्रजलपवना पुष्टा शुभा च पूर्वादिभिः पवनैः। रत्यनेन पौनःपत्यं भवति। वज्रव्यादर्शेषु तु दृश्यते ऽतो स्त्रगभिः सरसत्वाद्वाख्यायते ॥. Besides the alleged ground, the difference of style and the disorder in the MSS. render it all but certain that Ch. is an interpolated one.—The 1st distich in C, N is = XXVI, 1 of A, and is the 16th of the foregoing Ch. in B, D, E, S (the 15th in our text). Cf. the remarks at the end of XXVI.—The 1st stanza in B, D, S is: पार्वत्या धर्वादग्नयः प्रचलितः सप्ताश्वमे ऽसंगते कर्पूरगुहपरिजातसुरभिः खेदापनेदो यदा। हृष्टोहुष्टविनष्टदुष्ट (D ०कुष्टं, S

०तुष्ट०) वनिता (D ०चकिता०) संतुष्टप्रजा सस्योद्भासितगोकुलाकुलतरा चोष्णे
 तदा लक्ष्यते॥.—1. C, E शटा०.—C, B, D कलाप for अभिघात, S अभिवात.
 —All but C, D यदाकाशते.—C, E पटला, D पटलां, A, B पटलः—A
 संवर्द्धिता, E संवर्द्धिता, B, D, N संपत्तिदां.—C, E सर्वा मही शोभते for विद्यात्
 र. आ. of the others.—2. A यदाग्रेय्यां, C यदा वाक्त्रो.—C, B, D वायुर्वहति
 गगने खंडिततनुः—E मलटविष्कलिततनुः.—D भवति for हवति.—A तदा
 नित्योच्छ्रासैर्.—D निकरान्.—3. E क्षतावतान.—All but C सुरमिः for
 तरुमिः—E, S ध्वनंश्च, C, N ध्वनिः सुपद्यो, A ध्वनिश्च पद्यो.—C, A, S, E
 तद्व्योगसमुत्थितास्तु. D like B, N (our text), but ०तो ऽपि.—A मंदधारिक-
 ठिना.—4. C, E, S लष्णाहत.—5. In A this is numbered 3, a. s. o.—C,
 B, D, E, N प्रविचलसटा.—C, A, B, S पश्चाच्छेद् D पश्चाद्ये.—D, N प्रचुर for
 प्रवर.—C, A, S निकर for श्वर.—C क्षितिः for घरा.—N अचिरल.—6.
 All but C दिवसपते for किरणपते.—B, D, N अलकाले प्रपन्ने.—B, D
 तीव्रवेगः, A, S दृढयोः.—C पवन for हवति.—C, D, N घनवपुः—C पद्मगार्द्दा-
 नुकारौ, noticing also our r. (that of B, E), A, S पद्मगार्द्दावलीढः, D
 पद्मगार्द्दावलीढः—S धारां समुदितः, B, D, N समुदय for प्रमुदित.—C
 सप्तसंभूककंठां, B सप्तसंभूकनाद, D, N मुक्तसंभूकनादां.—B सस्योद्भावेक०, A, S
 सस्योद्भावेक०.—7. B, D द्विगधा० for वात्या०.—C, A, S, N आभोद०.—B,
 D, N कलनाम्नात्ता०, C कलनाम्नात्ता०, S कलनाम्नात्ता, A कलनाम्नात्ता, E कलिना-
 मत्ता.—S, N किरणा.—8. om. in C, B.—A, S ईशानो.—E (श्च)निलः for
 भवेत्.—D अग्रगंधि वाति सुर०, E पद्मगंधि सुर०, N लष्णागंध सुर०.—E वाति
 for वायुः—E पूरिता for दौवना.—B, D, N दौवनां, and the two following
 words in the Accusative.—E om. संपन्न, and r. सस्योद्भावे लक्ष्यते.—The
 number of this Ch. in C, B, D, E, S is 27, in A 26, no number in N.

CHAPTER XXVIII.

In B, D, N follows रजोलक्षणं, which follows after XXXVII in our
 text. After the रजोलक्षणं B, D, N have this Ch. (सद्योदृष्टलक्षणं).—1.
 All but D वर्षप्र०.—A सलिलनिचयं.—A सौम्यद०.—2. A शृष्टो for प्रष्टा.—
 3. A, S, N (श्च) य दोषा.—D, E चोच्चैः.—4. N, S प्रोत्सूयंते.—A स्थलजलग-
 मिनो.—5. D निचयः.—C, N विश्व —D, E गंधाः.—B, D, E शिशुरचित्ताश्च.
 —A पारयः (intended for परिघः) शोतकरस्य for परिवेषाः etc.—C, B,
 D, E, N (श्च) अनचूर्णसं०.—8. C स्थितिदृष्टि.—9. N अथवं.—B, E, S कुक्षुरा,
 C one time कुक्षुरा, another कुक्षुरा.—10. S कुक्षुरा, N कुक्षुरा.—C, D, N
 ववन्ति, S, E वदन्ति, for भवन्ति, B om.—C, N विधन्मुखाः.—C, E समैव, which
 gives no sense, समैव would be unobjectionable.—11. C, E तदापि चिरात्त
 च, B, D तदा त्वरितं मद्यत्.—12. S तदा समागमः, A तदा समागमो भवेत्, B

सदागतो भवेत्.—14. Whether अपा or जया is doubtful in all but E, who has यथा (i. e. जया).—All but C, S, N नखिरेण.—15. A, S स्त्रिखानेक०, C once नक०, once नैक०.—C, B प्राग्बुपाशोभवा, E प्राग्बुपाशोद्भवा, N प्राग्बुपाशोद्भवा, A प्राक्बुपाशोभवा.—A दिवि for भुवि.—16. D (अ)पि for (अ)थ.—E writes here and in the seq. परिवेश.—17. This stanza is spurious according to the Comm. “अनार्षो ऽयं श्लोकः;” it is om. in N.—D निक्षिपि.—B, D त्वचिरेण तद्वा विष्टजंति जलं, E त्वरितेन घना विष्टजंति जलं.—19. B स्तुवपचान्, A, S रवितनयान्.—A सप्तगस्तु.—20. N तोत्रकरा०.—A नियमे च चन्द्रे.—21. All but A, S छद० for न द०; अद० would do as well, the preceding syllable being reckoned as long at the end of the *pāda*.—22. C, N इति for इव, E अतो.—A has one stanza more, the same with III, 37.—The title of this Ch. in A, S is सद्योदृष्टि, in D सद्योवर्षणं, in C सद्योवर्षालक्षणं, in E सद्योवर्षणलक्षणं. The number in E is 28, in B, D 29, in C, S, N omitted, in A 27.

CHAPTER XXIX.

1. A कुसुमफल.—A, S निःपत्ति०.—2. E क्षीरकया.—All but C, B ग्लुक०.—A, S, E, N ०रिकः.—4. C जावू०.—C कंकु०.—A सधकैः पव०.—5. S, E कार्पासं.—A विर० for चिर०.—D कंगून् for मुद्गान्, B कंगूनां.—6. C, N शशा.—8. S कुरवक, N कुवक.—A कदलाभि०.—9. S विद्यात्.—A, S सिंधुवा०.—C, B, E कावकाः for कुकुमं.—10. A, B, D श्रेष्ठा.—C seems to r. सुवर्षण्य्यात्.—E वर for बल.—11. A आभिः.—S हेम for हेमं.—2. A, S अति for अथ.—E om. भवति.—C कुटजकुसुमेन.—13. A बंधयो बंधयो.—14. om. in E.—C, B, D काले for देशे.—All but N, S तिच्छिद्र.—A रुचैः, D रुच, N रुचै, C in the text रुचः, afterwards रुचैः.—The title in A is कुसुमलतानाम(1)धायः.—The number in C, A is 28, in E 29, in B, D 30, in S एकविंशः—

CHAPTER XXX.

1. All agree in r. अर्द्धास्त०, which I have changed into आर्धाल०, i. e. आ + अर्धा०.—S ०मितादुदि०.—2. S शकुनि.—After this distich D inserts a *śloka* taken from Garga's *Sanhitā*: अक्षोरावस्य यं संधिः सा च संघ्या प्रकीर्तिता। द्विनाडिका भवेत् सा तु यावदा ज्योतिदर्शनम्॥.—3. C, D सल्लङ्गो, B क्रोशल्लङ्गो, N वासल्लङ्गो.—4. A, S सेनागमः, N सेनाग-मल्लया.—5. C takes प्राक् संघ्या for a compound.—6. A, S सवले.—7. B घडन, D पवपरिघडन.—8. A om. आशु.—10. All write उद्योति०.—11.

C दिव्यादि, like A, S, B, D, or दिवादि, like N; E दिनादि.—All but S तु for हि.—12. C notices a v. r. ब्रह्मा वा.—A, B, C ऽष्टवे.—13. B, D, E, S ब्रह्मसंनं, a r. noticed also by C.—A, and C in the text, धूमं.—14. C in the text and S संजिह्वा.—A, S विधमं.—C, B, D न तु भावं, which C expl. by अभाव; E तद्भावं.—15. C, B, D, E संधारजो.—16. B, D, N, E विदिङ्गलो.—C writes द्विजातीनां, but from his explan. it results, that he r. द्विजादीनां, like B, D.—17. A प्राक्, C, D प्राग्.—A, S यद्भिमणं.—A om. नि.—S दिशं चंति.—19. A, S प्रतिरूपे.—21. C, E धूमपांशु.—23. E निद्राधं (i. e. द्विद्राधं) for द्विद्राधं.—24. B सितानिता०, C, N सितसिता०.—S ०वरणो.—26. All but A, S तोयकरौ.—S, E, N परिवारणः, A परिकारिणः.—29. E शिवा न.—30. S दुष्ट, N पुष्ट for घुष्ट.—31. N च for (च)य.—33. E संज्ञा.—C, A, B, S योजनामः.—The number of this Ch. in A, C is 29, in E 30, in B, D 31, no number in N, S.

CHAPTER XXXI.

1. C च for स.—2. E स for सः.—3. A सद्यैः—All but C पुरुषैश्च.—4. A वाणिककाश्च, D ०नः स्युर्वणिजश्च, E वाणिजिकाश्च.—E शैव्यां.—A has for title इति दिग्दाहन्निश्चनः; the number in C, A is 30, in E 31, in B, D 32, in N, S no number.

CHAPTER XXXII.

1. All but C महदंतं.—A ०भिवाणि.—3. C notices a v. r. सन्नोडा.—5. A स्फुटिता०.—6. A चिप्रं for चिप.—C, B, D, E भैवोर्.—7. A, S दिवस-निशोः, the original having perhaps दिवनिशोः—D inserts after vs. 7. this distich : पर्वदिनार्धे वायव्यं चाग्नेयो ऽर्धे ऽथ पश्चिमे। ऐन्द्रः (Cod. चांद्रः) पूर्वे तु रात्र्यर्धे पश्चिमार्धे तु वारुणः—8. S कृत्तिका for चैति.—9. All but E, N have विभजन् for विरजन्; the former, although ungrammatical for विभञ्जन्, may nevertheless have been the original r.—10. C, A, B काश, E काष.—C, D, E भवो for भवा.—11. E भौराष्ट्र, A, S भौराष्ट्रक.—14. S दद्रुर्वि०.—C, A ०सर्पिका.—E रोगाश्च.—15. S वाह्लोक, the others but N वाह्लीक.—D, B, E तंकरण.—16. A विश्व for वैश्व; S इंद्रविश्वमिवाणि; N ०मिवाणि.—D, E चाप्यस्य रूपाणि.—18. A om. अति, C once अति, like N, once अत, B, D, S, E श्यु for अति.—D जनित for जाति, B जात om. प्छाति.—S गणकध्वंसि, A गणप्रध्वंसि, D गणकविध्वंसि.—A अतिसागरघट.—A वदनराहं (sic); B, D, E रोगहं.—All but C प्रकोपाय.—19. A युधंगर.—C, E अतिसार for अभिसार.—C लह for लल, E तर.—C अयुत for

वर्षेद.—All but C सुराङ्ग for सुवासु.—20. A om. आप्य.—A ०ह्रिर्धुप्र, E ०ह्रिर्धुप्र.—N, S दैवनि E दैवतानि.—21. A ०ल्लिखिभंजलि०, S ०ल्लिखिभंजलि०.—D बहलाः, C, E बहलाः.—All but E धाराङ्कुर.—22. C चेदि or वेदि, D वेदि, A पेदि.—N वैदेहि०.—23. This and the three following stanzas are taken from the author's *Samāsa-Saṅhitā*, and are wanting in B, D, E, N, and quoted in C; A, S समाससंहितायाम् ॥ उक्ता etc.—A ककुप्प्रविदाहाः—24. A दिव्याध.—C चातिर्दृष्टिर्—A, C जनिम्.—A वन्यसत्यं.—C ऐन्द्रः कार्मुकः—25. C वत्त for तूर्य—A निगद्यं.—28. B, D, S, E, N उपतयन्ते, A उपयतयन्ते.—29. N शुभदृष्टि, A सुदृष्टि.—30. C, E देवराट् तु.—31. C, D (क्)त्यधिकं, S (क्)यधिकं.—D, E षष्टिभिः, S षष्टिनः.—32. All but C वा for च.—The title in S भूकंप०, in D चिंतिकंवाध्यायः.—The number in C is 31, in E 32, in B, D 33, in S, N none, in A 30, but this is a mistake. Immediately after it, A has : शिखायाः फलं पराशरतंत्रे ॥ Then follow two distichs, quoted also by C : आवन्नकान् पुलिन्दान् विदेहकाश्रीरदरदवासातान् (C वासांताः, A वाचांसां) । वक्ष्यामिनांश्च वायव्यवारणे प्राग्प्रयात्योडा ॥ ऐस्लाकवाग्मरथ्यान् पटचराभोरचोनमसकुत्सान् (A चरमनुष्ठयान्) । ऐन्द्रग्रये कस्यो दिनसि राज्ञश्च समदोषान् ॥—After this A repeats vs. 1, 2, 3, 4 of Ch. XXX : दाहा दिग्गां etc. ; at the end इति श्रीदिग्गाहलक्षणभेकविंशतमः !

CHAPTER XXXIII.

2. C नारा पा०.—3. A, S विद्युत्तपो०.—6. D, E, N दश धनुषो.—7. A तांतु.—D अधोऽधोर्ध्वं याति.—S ऊच्छ्र०.—A, B, D, E एव for इव.—9. C once लांगूल, once as in the text—All but C ०गाभा without Visarga.—S रूपी.—10. C, E गिरिकरि.—C in the text श्रीवत्स, afterwards श्रीदत्त like all the others. I suspect that श्रीदत्त is a corrupted form, perhaps from श्रीवत्तः, which may be the original of श्रीवत्स.—11. S, N विभ्रमनी.—12. The MSS. but C तन्निरुता.—13. A दिवाकराद, D दिवा यातुर्जिगमिधेः पुरतः पतिता वा.—14. C ०न्नाः, D, E न्ना.—A हन्युर्धया मू०.—16. C once श्यावा, once श्यामा.—C वाक्पो.—All संनिभा, changed by me into निभा.—D सांध्या.—E ज्जलता for दलिता.—17. A रवींदोः.—B, D, N च for वा.—18. N दैवेषु.—19. A सुदाहणेपु.—20. All पौडा.—21. S, N देशानां.—23. All उत्कृष्ट for उत्कृष्ट.—25. D तिर्थगा, E तिर्थगस्था (sic).—C षट्पांगनां.—26. D, E प्रसर्पती.—28. All but C शुकुर.—A, S गताथवा.—A, B, D S have after vs. 23 this : प्रेतवत् प्रष्टन्यते संति नायकं षट् । कबंधवच दृश्यते श्लोकोपमादिशेत् ॥.—30. C रिपूद्गाचरात्.—The number of this Ch. in A. C is 32, in E 33, in B, D 31, in S, N om.

CHAPTER XXXIV.

1. E परिवेश, here and in the sequel.—2. S हरित.—Only E has °द्वाग्लुक्ताः, C, B, D, N, S °द्वाबुक्ताः, A °द्वानुक्ताः.—3. E अर्पिजीयते.—5. S अनसारी.—7. C, D, E, S वदलः—S चराध०.—E °धसंकोर्षः.—9. All but S, E लग्नालमयस्ययोस्, C however mentions our r., that of S; E has उदयालमयांतयोस्, in A there is a break in the MS., from लग्नाल till राजभयं in the following distich; very likely he r. like S.—11. S चाशुभा, D वाशुभं राज्ञां.—14. A राज्ञो पी०, B राज्ञं पी०, the others राज्ञो पी०, my r. is conjectural.—19. All but C write गूढ.—22. B, D नागरि० all MSS. °कानां for °काणां.—The number of this Ch. in A, C is 33, in E 34, in B, D 35, in S, N om.

CHAPTER XXXV.

2. All MSS. here निश्वास.—3. N अवनिगूढ.—D अनिलोपगं.—A तत् for च.—4. B, D विदिग्द्धं तत्, A, S the same, but च for तत्, E the same, but om. तत् or च.—5. D, E, N तरु.—N वाल्मीके.—8. A, S, N तदेशं.—The title in A, S is इन्द्रधनुः.—The number in A, C is 34, in E 35, in B, D 36, om. in S, N.

CHAPTER XXXVI.

2. E, N शंतायां दिशि.—3. S, D, E °चापनिभं, A °चापानिभं.—5. A, S, N °कतिरेव राजते.—S पुरः.—The title of this Ch. in N is गंधर्वपुर, in A, S गंधर्वनगरं.—The number in A, C is 35, in E 36, in B, D 37, om. in S, N.

CHAPTER XXXVII.

1. B वर्षसमप्रभः, A, S, N वर्षसंनिभः—S वैदूर्य.—3. This vs. is a repetition of III, 37.—All but C, S, E दक्षिणस्थिता.—After vs. 3 all MSS., but C, N repeat XXX, 26. A, S r. here तोयकरी, and further the same ककुप्सु विचारिणः.—The number of this Ch. in A, C is 36, in E 37, in B, D 39.

CHAPTER XXXVIII.

This Ch. is wanting in C, E. In B, D, N it forms the 28th Ch. (9. cf). The style is different from our author's. 1. D, N क्त्रा दिशः सर्वाः

—2. N यस्यां वा.—A, S तथैव, D, N तेनैव, changed by me into तथैव.—
D, N प्रदेशेन for न संदेहः.—3. D, N असिते for श्वेते.—A, S om. रजो, and
r. further घनोपपोडां षपमंविजनांश्च नाशयेद्रक्तः; N जनपदादीनां; not
being able to trace the true r. in A, S, I give the other, although
likely not the original one.—D, N अचिरात् —N आयाति.—N शस्त्रं
विमंताना, D शस्त्रमपि मगुलसंताने; A, S संकुलं, changed by me into
संकुला.—4. D, N द्वयं त्रयं वापि for दिनद्वयं वापि —A, S ०वदो.—A, N, S
हंता.—D पंडितकानां for विच०.—6. N रजो बडलतमम्, D रजौघमतिबहलम्
D, N तस्मिन्देहे नि०.—7. A रजनिभवे for रजसि भवेत्.—S पंचरात्र.—The
substance of this distich is contained in two distichs with D, N, viz.
पतति (MSS. पतिते) त्रिरात्रमव्याहृतं यदा यस्य नरपतेर्नगरे (D ०भागात्) ।
दुर्भिक्षमतुलमभिभवति तत्र चौराकुलं च (D चौरकुलं चेति) ॥ ७ ॥ क्षणदाश्च
तत्र एव पतति परागो (D रजनौचतुष्कमभिभवति) यदा स्वपरसैन्यैः (D स्वपर-
सेनाभिः) । सैन्यचोभं विद्यान्महाभयं (D सैन्यचोभकरमपि महद्भयं) पंचरात्रभवे.
—8. (in D, N 9) D, N तीव्रफलदाह.

CHAPTER XXXIX.

A, S समुपयाति.—A पतति for भवति.—B, D, N खगविरुतः.—3. D, E, N
राजोपजीविनो.—A, S (अ)पि, D तु for च.—4. E रात्रेर्—N ०च सत्वान्.—
The title in A, S is निर्घातफलं.—The number in A, C is 37, in B, D
39, in E अष्टादशविंशः—

CHAPTER XL.

2. C, B, D, N निरीक्षिते.—3. A, S निःपत्ति०.—A अतोव शोधसस्यानां,
the last word also in S; D, E धैर्यसस्यस्य.—4. A, S गतयोर्वा तन्निःपत्तिर्—
9. A, S निःपदयेद्.—10. S, E यामित्र.—A, S सस्यविनाश.—11. S अर्धं for
अर्ध, but if the former was meant, he would write अर्द्ध.—12. After this
distich A, S, N insert : एतेनैव तु विधिना मिथुनस्थे भास्करे परिज्ञेयं । प्राष्ट-
कालसलिलं बलाबलज्ञैः प्रयत्नेन (N परिज्ञेयं) ॥—13. S, E, N समर्घम्, in C
not clear, but he explains it by खल्पमूल्य.—D अभयो०, E उपयो०, C
knows both r. अभयो० and उपयो०, the rest अभयो०.—The number of the
Ch. in A, C is 38, in E 39, in B, D 40, in S, N om.

CHAPTER XLI.

2. N चनक, E चणक for रालक; S रालथवकानां.—4. A, D पत्रकंदं.
—5. A ०सो कुलत्याः, S ०सो कुलित्याः—A कुलाथ.—A निःपावाः—C, D, E

यवगोधूमसर्षपाद्यैव, N यवगोधूमा ससिद्धार्थाः—6. N लोह, —S लण for तिल.—
7. A शैक्य.—8. C लनेक.—C perhaps °ख्यारं.—9. A पंचसंस्थितो, S पंचमसं-
स्थितो.—11. S यस्याः—12. A तत्प्रोक्तद्रव्याणां.—N सामर्थ्यं, E सामान्यं.—N
सुलभता चैव, E सुलभत्वं च, D, C वल्लभत्वं च.—The number of this Ch. in
C, A is 39, in E 40, in B, D 41, in S, N om.

CHAPTER XLII.

1. D, E पौर्णमास्यां.—2. A, S विशेषं.—A, क्रमत्, N, E राशिसंक्रमात्,
A, S, B, D, N डमराय; A, N, S षपतीनां, B भूपानां, D शल्लभूपानां.—3.
C in the text चैषा, afterwards घोषज, B, D, E, N चैष्मिक.—C, B, D, E
कृत्वा for कुर्यात्.—4. A उपनीय.—All but A, S विक्रेता for विक्रोणन्.—5. S
फानिं.—A ह्येदं.—6. D °न्यदा.—N अथो ह्येदः—7. N प्राप्नोति, E चाप्नोति,
C uncertain.—8. C, E वर्षाद्वादु.—D, N लम्बि for दृद्धि.—9. A, S कंदकफं,
C, E फलकंदमूलं.—D °मूलकंदविं, N फलकंदकविधधरत्नमूलानि.—10. E
रत्नानि for काचानि.—11. C, N सृगघटसंस्थे सवितरि-गृह्णोयाद्.—12. A, S
कंदफलमूलधान्यरं.—13. E विनिर्दिष्टः, the others दृष्टः for दिष्टः, but as C
explains it by अभिहित, he must of course have r. दिष्टः—14. This
stanza is divided into two in the MSS. which number their stanzas.—
D (अ)र्धस्य, S (अ)र्द्धस्य for चर्धस्य.—A, S प्रतियहगतान् वृथा.—N सकलं फलं.
—The number of this Ch. in C, A is 40, in E 41, in B, D 42, in
N, S om.

CHAPTER XLIII.

In S follows Ch. XLVI, the Chapters between being wanting,
though the MS. shows no break.—1. All but C write भगवन् इं.—
D, E शरणं शरणं, N शरणं शरणं.—2. E श्नेते for स वः—4. E सर्वदेवानां.
—5. E, N तेषां for चैषां.—7. All write राट्.—9. A वसुमद्, N प्रचुरवसुं.
—10. E शोक for रोग.—E प्रभुतार्थाः—11. E, N पूर्व.—13. A °गयज्ञभूमि-
जाताः—N °र्गविज्ञाताः, E °र्गाभिजाताः—14. A केलर्थे.—15. C (अ)जकर्णः—
C वध for धव.—17. E उपचारं.—18. A वारयते, N वरयति.—19. E
परधे for परशोर्.—22. A, N आरभगे.—A, and perhaps C नेम्यां.—23. E
पक्षेष्टं, the others, but A, पक्षे ह्यष्टं.—26. E निर्घोषैः—27. D अयदासु.—
28. E प्रविशमानां निपातयंती, N प्रविशंती भुवि.—A, तलशब्दे, N वल्लशब्दे.—
29. A om. विधिवद्.—D पुनस्तब्धा विं.—N निवेशधेयं च.—A, N चास्य, D
चास्या, E चास्यां.—31. A सुगंधो for स्निग्धो.—All but A, C (अ)निष्टो.—32.
A समद्रवसनां.—32. N, E कुरंदं.—34. C घटादघटिता.—36. A, N घृतमधु.

नाथ.—A सुगंधे.—A पुर, N पुरः—37. A शुक्रमरीचि.—39. C, A च ध्वजो-
 द्वायात्, N पादेनार्द्धध्वजोद्वायात्.—42. A घरा.—44. A, D मांजिष्ठाभं.—
 45. A दत्ते for दत्तं.—46. E ददौ चान्यत्। अथ चक्रा०.—47. E उत्तंसं for
 उद्वंशं.—For निधंशं B निर्विशंक, D निर्विशकस्ययो, E निर्विशकस्ययो, N
 निवेशं स्ययो.—48. A, N अधोर्द्धाविनिर्मितम्, C, D अध ऊर्द्धाविनिर्मितम्, E
 इवोर्द्धाविनिर्मितम्; the r. in our text is conjectural.—A दधतुः—50. A
 परिणाहव्यंशः—E हानः स्यात्.—51. D प्रयतः—52. A पाशवद्भिः—B, D
 महर्षिमुखैः—53. A यथावद्.—54. A परसुः—55. The metre in this
 stanza appears to be corrupted. A इंद्रसवितारं—E त्वां ऋयामि.—A
 उत्तरे जयिनो.—57. C हल for फल, but he mentions also our r.—58. N,
 E नाचिकं.—59. A शुचिविहित.—A पाठवद्भिः, D पाठवद्भिः, N संपठवद्भिः.—
 C, E अशुभविहितशब्दैः, A अशुभविहितशब्दं, D शुभमभिहितशब्दैः, N अशुभवि-
 हितशब्दं.—D, E ०येच, C ०येत, but the so-called Epic forms are not
 infrequent in our author.—30. D, E संस्तुवद्भिः—C, D, E दत for दृत.—
 All ईशं, but C explains as if he r. ईशः—62. E भयमुपैति महद्रूपस्य.—A,
 D स्यपाणं.—E करोति for वर्दति.—D, E श्येनापि लो०.—63. N, E स्यस्यत्,
 C once the Nomin., once the Accus.—65. A पीडति, N स्थायति, E नश्यति
 for स्थायति.—D अंशे तु.—A and N *sec. manu* वर्धकि; it must be observed
 that generally they would write this word वर्द्धकि.—66. N रज्जुसुर्ग.—D
 बालिका.—67. N उच्छ्रितम्.—D विधिवद्विद्य for समभिपूज्य.—A सवलाभि-
 द्रव्ये.—68. E शिरसितम् for विधिमिमम्.—A अनगम्य.—C, D, B क्वचित् for
 इति.—The title in A, E is इंद्रध्वजलक्षणं, in N इंद्रध्वजोद्वायविधिः.—The
 number of the Ch. is 41 in E, 43 in A, B, D, om. in C, N.

CHAPTER XLIV.

1. A, B, E कमलनाभो, N कमलनाभे—A, C नीरांजनं.—2. C नीरां-
 जन.—A संज्ञकां.—3. E कुधात्.—5. A च व० for नि.—6. N, E च तुरगाणां,
 the others तुरंगानां.—7. A वितूर्यभयैः, E वियुतभयैः—10. A सपर्णकाशां.—
 A कटंभरां or perhaps कटंभरां, the others but C कटंभरां.—C, D, E
 सहदेवां, A, N सहदेवीं, which I have changed to सहदेवोः—A नागकुसुमा,
 N नागकुसुमां.—E सुगम्रां.—D सोमवर्णीं.—11. D दत्वा for दत्त्वा.—A भक्ष्यैर्-
 —13. A अनिलसमोप.—14. A तदेवगधार्थं.—15. After this A inserts the
 following śloka : कुलाभिजात्य त्वं लक्षणयंजनावितः। भर्तारमभिरक्ष त्वं शिवं
 तव भवोदति.—16. A मूले.—A, D, N write शनैर्.—All but C, D निखना०.
 —17. A यथायुक्ता, E यथायुक्तं.—18. A विपरीतस्त्वन्यथा, N वि(प)रीतान्यथा
 कथितः, *sec. manu* ०तेनान्यथा.—D विदतः—20. All but D, E ०योदुस्वरीं.
 —D तुरगं.—21. A ०भिचारणैर्.—The MSS. write षरस्यले.—22. A

आरोह्य.—E गच्छन्तीराजकः—23. A सुगंध.—All but A, E प्रांत for व्रात.—
26. A नरः for वृषः—27. E ज्वलः for (अ)थवा.—28. A सप्रहृष्ट.—The
number of this Ch. in C, E is 42, in A only in figures ३४. intended
for ४३ perhaps.

CHAPTER XLV.

1. N प्रवहे ऽहं.—2. For स्थूले one expects rather स्थूला०.—N ह्युग्रत.—
E सुण्डमुखात्.—6. A समीप.—9. N शर्करागम्यः, E शर्करासंस्थः—10. C
mentions a v. r. बारिवाहस्थः—A निष्टफलः—A ०ससमये.—11. C once
नोरांजन. once निराजन.—A तथा for तथा.—12. C काच, A कानः.—A च
for ऽस्य.—14. A, N धूम.—All but A, N अर्थ—15. N बंधु for साधु.—E
यदि न.—A, E om. च before सप्त.—16. A दिनशेषतः.—E मुहूर्तलग्न०, A
लग्नार्क.—The title of the Ch. in C is खंजनकलक्षणं, in N खंजनकाध्यायः—
The number in C, A, E is 43, in B, D 45, in N om.

CHAPTER XLVI.

2. All but C, E तद्.—E आंतरीच. also in the sequel.—5.
D, E चरति न दिव्यम्.—6. A om. मही.—7. C, D, B लोके च.—8. A
चक्रनभंग.—A नरेन्द्र.—9. C mentions as v. r. सुरयात्रा, which is against
the metre. C, D, E समर्पयामन (expl. by परिवर्तितं), B समर्पयान्न, A
समर्पयानामन, S प्रसर्पयानाशन, I thought समर्पयामन was required.—12. S
वैकृत, A omits the word.—A, S निर्देयं.—15. S दैविककारं.—16. D
भक्ष्ये०.—A, S संवस्तु.—इति लिंगवैकृतं not in C.—18. C, N तस्य च राश्वस्य.
—19. A, S सौम्यग्राम०.—20. E केत्वादिषु चानलेन; thus too the r. of a
second hand in N; A, S ०ध्वनलेन.—21. C, B, and correction in N
चाक्रिजं, A, D S चाग्रिजं, E मध्याक्रजं. Cf. this śloka from Garga's
Sanhitā: अनेशानि (C अनि०) त्रपांसि (C तर्मांसि) स्युर्धदि चापांश्वो रजः ।
धूमस्वानग्रिजा यत्र तत्र विद्यान्द्रहृद्ग्रथं.—D अपि वा—22. D, E, S पुरनगर.—
S चतुःपदांड०, A चतुष्पथांड०, C, B, E चतुष्पादंड०.—A शाद्या०, E शर्ष्या०,
N, C सव्या०, the latter expl. it by आस्तरणं.—23. A ०नानि वा.—A, S
यदि चा.—A युद्धे.—No Avagraha in the MSS.—24. C, E, and *sec. manu*
N आग्रिधैः, A, S, B अग्नेः—Only A, S, N add इत्यग्रिवैकृतं.—26. A, S, B,
D, E विभेदो ह्यष्टौ.—27. A, E संग्रामं.—28. E वीर्यार्थसंचयः.—29. om. in
C.—S पूजितवृक्षे ह्य०, A पूजितं ह्य०.—E विकृतं वा for निर्दिष्टं, D विकृतं च.
30. A, S चापि.—33. A, S, N विधायो०.—N ध्यात्वा for ह्यात्वा.—E इत्यैव—
All but A, S षडेव होमः and होमाः—32. D, E, N चतुर्थभिः for सप्तभिः

- 33. A, S, N संभवे, in C uncertain whether this or संभवो.—34. A, S परवलमाघात्यसंदेहात्.—35. E मुद्गेन for अर्धेन.—A, D अतैलभावः स्यात्.—S विद्याद्.—36. A, S, N विहृतं कुसुमफलं.—37. C, N विहृतं.—D, E, N तच्छेत्र मध्ये.—C दाषं—तज्जं.—38. C, N अनाष्टावतिष्टौ.—C, E परभयं च, D परचक्रमयं च, N *prima manu* as A, but *sec. manu* च परचक्रं.—E व्यञ्जां.—39. A, S न सम्यग्, D, E, S षट्पु न सम्यक्, N यथाक्रमं for सम्यग्.—A, S, D, E षट्पु. None has च, which I have inserted for completing the verse.—40. A, D सप्ताहान् or सप्ताहान्.—D रत्नैरस्त्रोद्योगो.—A मरकं.—41. C, E and *prima manu* N वर्धिते.—S विद्याद्.—D, E, N उपयाति for आयाति.—42. C once द्विद्र, once द्विन्न.—D वात्यप्रतिष्टौ;—A चाय्यं.—43. Is found only in A, S.—44. A, D, N आयातं.—45. A, E नभसि सुरधनुर्.—D यदा दिवा.—47. N शेषाय.—A, S चाशेषाणाम्.—48. All but N, S अष्टमाम्.—A वाहाः.—A, S कलुष.—49. A, S धूमः.—S दोषप्रखलितानि, A गीतप्रखलितानि.—D मरणाय.—C कायोपदिष्टानि.—50. All but A, S सलिलोत्पत्तिर्.—N अगाधे for अखाते.—C, N शान्तिर्ममाम्.—51. N सलिलस्य for वरुणस्य.—A, S इति नद्यादिवैहृतं.—After this N inserts: माधे वृधे च सहिषो। श्रावणे वडवा दिवा खामिनो वधमिच्छति सिद्धि मावः प्रस्तुतिका (?)। तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि सर्वोपद्रवनाशनो॥ शतमष्टोत्तरं कृत्वा वारुणं पायसं चरुं। ॐ वरुणाय स्वाहा ॥ वरुणा दच्छं दश — — स्वाहा ॥ ॐ अद्भ्यः स्वाहा। पुद्गुत्तममतिथ्यथं सावित्रा ष्वृङ्गतिं। इति सिद्धादिप्रतिशान्तिः.—52. E प्रस्तुतिर्, D प्रस्तुतीर्.—A ख for च.—A संक्षेपो.—53. C वेष्टो.—C, A सहिषो, E सहिष.—E आमां for एषां.—D गार्ग्यैः.—54. D योषितः परदेशेषु.—E देशेषु.—All but C, E तु for ता.—A, S हितैषिणा, B हितैर्षिभिः, D हि पार्थिवैः, in N a part of the leaf torn off.—C स तर्पणे.—55. A, S अन्यथा नाशयन्ति ते; the others as in the text, but तु for हि, the latter, however, is the r. of the Gārgī Sanhitā.—56. All but A, N उचाणो.—D वायव्यान्व.—E याने for पिबति.—57. S विद्यात्.—58. A, S शुभावचं.—59. A, N पशुनां, N तु for च.—All, but D, S ंदक्षिणां.—A, S इति तिर्यक्चतुष्पदवैहृतं, N इति प्रसववैहृतं.—60. A वियुत for वियुक्त, N विमुक्त.—C सादनभंगे, A स्यादभंगे, E पादभंगे.—S वा for च.—61. A शब्दे ताडि०, om. वा.—A उत्पत्तौ, S उत्पत्तौ.—62. E शब्द for नाद्.—A, D, E विश्वरं.—After this A, exhibit the following: यत्सहृतं भवति चैवमपाहतं वा द्वारे (r. द्वारं) भवेद्विहृतं (A भवेत् विहृतं, r. भवेत्तु वि०) यदि संहृतं स्यात्। शय्यासनेषु यदिवापि भ्रंशं विकारे तदा खदेवमरणं च वाच्यम् ॥ ६२ ॥—63. The MSS. write स्वर्पा०.—A इति वाद्यवैहृतं.—64. A जाप्याच्च, C जप्याच्च, D, E, N अप्रव्याः—65. N तोषयेत् for तर्पयेत्.—After this A वायव्यवात-वैहृतं.—66. E निर्भयं.—D अङ्गि.—67. E वासंतः for क्रोशंतः, N वा (sic).—

68. S, N श्येनाः for श्वानः—E प्रवृद्धति पुरे द्वारे.—C क्रोशन्ती, the others वासन्ति.—After this A, S insert : प्रदोषे कुक्कुटारावा निशीघ्रे सुराभिध्वनिः । अन्यं स्वामिनमिच्छन्ति अकालफलिता द्रुमाः ॥—70. D °पातः—D °भवः—After this A, S insert : स्थलसलिलचराणां व्यत्ययो मेषकाले वज्रमल्लिर्नावधायो श्लेषकाले ऽभवाय (S भयाय) । मधु भवनविलीनं तत् करोत्याशु प्रुन्यं मरणमपि निलीना मलिका मूर्द्धि नोत्सा ॥—72. S दिनैः for द्विजैः—73. A, S, D दक्षिणाः—D, E मनोर्वेद.—The words इति म् only in A, S.—75. C writes भूमेर्भरणं, but explains by स्फोटनं ; D द्रवणं, it seems—76. A पाषांडानां.—A ईक्षुः—D, E लोकः for राजा.—77. A द्विद्वि भिद्वि.—78. E प्रभ ति for प्रेत.—In A क्षये has been changed into गृहे; E क्षयः—79. A लूटा.—E पतंग.—E नित्योच्छिष्टमखोकं.—D यच्च गृहं.—80. A मरणम्, D मरणरकम्.—81. A, C साहेंद्रीं च, E साहेंद्रेभिः—The words इति श् only in A, S, and the margin of N.—82. This distich is numbered also 82 in A.—83. N उत्पानांस्तान्, and so, it seems, also C.—A, D, E विंशद्.—84. D कंवाः—C, S निखनाः—C, N °मथोदयाः—85. D, S, N मधु for वज्र.—D °साधवं.—86. A अग्निं.—D, E °ञ्जलनास्फोट, S *prima manu* नोस्फोट, *sec. manu* as our text.—A अजल.—B, D संकुल for आहत.—A अरुणसंध्या; N *prima manu* संध्या, in C uncertain, a part of the explanation being omitted.—D घोसं, A घोस्य.—88. All but C, N, S परिवेष.—89. D, E. नद्युदपानसरसां.—A दृहार्द्धपूरण, N *prima manu* दृहार्द्ध, the following illegible, but *sec. manu* दृहार्द्धतरणं, like C ; D दृहार्द्धपूरणं, E दृहार्द्धचरणं, S दृहार्द्धापूरण.—N दारणं, D दरणं.—E चापि गेहीनां.—91. A, S निर्घोषा —A अपापा.—93. D सूर्योदये ऽस्ते.—N मत for स्मृत.—94. A उत्पानविरुषं.—95. N, E चित्रा, A चित्रं.—N स्त्राणां.—S गोज्जावसृग.—96. N शुभा स्मृताः—A, S, N, E अतानव्यत्र.—C ते चातिदारुणाः—97. All but C, E गार्था.—D, E, S, N चेष्टितं च यत्.—D अर्थाक्रमः—The last distich is numbered 99. in A, though it ought to be 104 with him, like in S.—In C the number is 99, in D 98.—The title in C is उत्पानाध्यायः—The number of the Ch. in A, E is 45, in B, D 46, no number in N, S, in C 44.

CHAPTER XLVII.

2. C वराहसिंहरस्य, N वराहस्य.—3. A तस्यैतत्—E नात्र for मे ऽत्र.—The 4th in S is the 9th of the others, but A, and of our text. In A the 4th is om. wholly, and vs. 3 is followed by vs. 5.—7. A, S, N write प्रोक्ष्य, the others प्रोक्ष्य.—S दिनांताः—D, E N रुचिरमयूं, A कविरैर्मयूं.—8. D किरणैः शुभान्वितं.—9. This distich is the 4th in S.—10. C, B, D, N विस्फुलिंगाश्च येषां.—N न चैव याति ध्वंसं.—D ध्वंसं यायाति.—

11. A द्विव, D, and C in the text द्विवि विभानि. —B, D तदा सुशुभा, C तदा शुभदा.—12. A, S भुजंगमथ संसृजेद्.—In C not clear whether विद्रुत or विद्रुत, expl. by चञ्चित.—13. A कचरन्.—14. N, S शशी for शखी.—17. E नागवोथ्याः.—D विप्रमुक्तो.—18, D, N, and once C, मैथ्य.—C एति, but expl. by प्राप्य.—19. A यास्त्रिथग.—21. N परिह्राणि.—22. D, E अस्मिन् स०.—23. N महं द्वा०.—24. C, D, N, E तस्याभावः.—25. A युयुत्सुतः.—26. N भयदं for समयं.—The title in E is वार्हचिचि, (a misread वद्विचिचि).—The number of the Ch. in C, E is 45, in A 46, in B, D 47, in S, N om.—S inserts after it a Mayūra-citrakam taken from another work : मगूरचिचिकशेषभूतं शास्त्रांतरोक्ते ग्रहकारफलं यथा ॥ ; then follow 22 stanzas, at the end of which : इति ग्रंथान्तरात् ॥

CHAPTER XLVIII.

1. A, S, B, D उपषातसंस्थानात्.—A चिंतं.—2. N, E शृणु तां, B, D पुरतः, which is also in the margin of A.—3. It is impossible to make out whether the MSS. intend पृथ्य or पुथ्य; the only Bengāli Cod. E gives here पुथ्य, afterwards पुथ्य. Utpala most decidedly says : पुथ्यज्ञानं पुथ्यनक्षत्रेण क्षपनं ; nevertheless at vs. 38 he expl. the word by च्याषाधज्ञानं. It remains doubtful to me what is the form of the word, as written by Varāha Mihira, but there is no doubt about the original form, which is पुथ्यज्ञानं, as appears from vs. 82, where its synonym is पौषी श्रुतिः. still more explicit is a quotation from Vṛddha-Garga : पुरंदरामिषेकार्थं वृहस्पतिरकल्पयत् । श्रुतिमात्मोथनक्षत्रं यस्य देवो वृहस्पतिः ॥ (v. in another Cod. नक्षत्रं पुथ्यमात्मार्थं यस्य देवो वृहस्पतिः ॥) तत्र देवो ऽग्निः । तः देवराजः पुरंदरः । ततो बलं समारूढो नाशयामास दानवान् ॥ देवाश्च वृहस्पतः पुरीं प्राप्यामरावतीम् । पुथ्यज्ञानं बलकरंतदारभ्य प्रवर्तितम् ॥.—5. C, N प्रतानान्विते.—6. C परापत.—7. A कोकिलादि०.—E चेन्नागारेषु चाप्यथवा.—8. A, D विचिन्तेषु, S वीचिन्तेषु.—All but S दृग्मनसोः—A, S, and *sec. manu* N, प्रातफुल्लहंस, one Cod. of C प्रोन्नतहंस, another as in our text, D प्रोद्धत.—E कुवर.—A स्फुल्लेन्दोवर.—10. D कण for खन.—B, D प्राद्विद्रुकु०, C notices a v. r. प्राद्वद्रुकु०.—11. E वंदित for वस्त्रित, the others, barring N, वलित, but C expl. by क्रोडित.—12. C, N रत्नपात.—13. E ऋगा०, S ऋगया०.—C, D, E येषु for यव.—14. E वर्षे for वसु.—16. One Cod. of C खप्र ? for खध, expl. by खडा, another Cod. however खध, expl. by गर्तं ; B खध or खधकर्करा०.—D आविट्, A, N आविष्, S आविदा.—C, E मधिक.—17. C, N एषा for एवं, D, E एषां.—All but C, N यथायोग्यं.—18. C, A, E, at the end च for वा.—20. D द्विजा नगाश्चैव, E द्विजाः सनागाश्च.

N as in our text, but नगः.—D, E, N ये चाप्यन्येऽश्रमां, C the same or च वाप्यन्येऽश्रमां.—21. A om. चः, the others but C, स्रप०.—A प्राप्या०.—22. A, S पूजां कृत्वा.—A शर्वरां.—25. A गंधर्वाप्सरसरसश्चैव.—26. A, S समुद्राश्चैव मानरः, D रुद्रं मातृगणान्वितं, N the same but रुद्रमां.—A, S कृष्यं for विष्णुं, N विदंसं.—27. All but C यथासं.—A, S विप्रान् for विद्वान्.—28. All but N, S भक्षे०, although C explains it by मोदकोल्लोपिकापूपादिभिः—C, B, D, E पानैश्च वि०.—29. A, S, D, E तस्मिन् for अस्मिन्, B पूजान्यस्मिन्.—31. B, D, N मुनयश्चाम्भिर्, A, S मुनयस्तु चाम्भिर्, C it seems, the same, E corrupt.—A, S अक्षयकद्वज्वर्णे०.—A ०रेणा चार्थये०, S ०रेण चार्थये०.—32. A, S धूपाद्या०.—C, N गंधर्वाप्सरसां.—A, S सुगंधकैः, E सुमनोच्चैः.—33. A, S सर्वे for सर्व, the latter being expl. in C as वज्रभिर्वर्णकैर्विरचितानां.—34. A आदध्यात्.—35. D, E, N धूपाः, C धूपः—A, S तिल्ला, the others तिलाः, I think the Accus. is required.—36. A, S सद्यत्पायसस्य.—All but C, E या for सा.—37. A, S फलापिधानानि बव०, D ०नांश्च वक्ष्याय, B, N ०नान्यवक्ष्याय.—38. A विमिश्रिणा.—A आदध्याद्, S दद्याद्.—39. A ज्योति-
स्यंतां.—A, S, N समगां.—40. D, E सहदेवां.—C, E, N अरिष्टकां.—D निक्षिपेत्, N निःक्षिपेत्.—41. A, B, D चेमां वचां, C notices another v. r. रेडिकाचीं.—N, E सर्वेषथो, all have the unclassie, but very common Vaidie form of the Accus.—43. A, S आनडुहं चर्म, E आनडुहचर्म.—A, S संहताद्युषः—45. C, E चत्वारि तानि.—N, S समासरेत्, D, E, N उपसरेत्.—46. S विन्यस्य च, A विन्यस्यं च, D विन्यस्येचर्म, N विन्यसेचर्म०.—48. B, E, N ०वाप्तपुरुष.—All but C दैवज्ञ.—49. D, N हृष्टानिष्टः—50. C, A, S, B पूजां.—E सर्पिषश्च.—51. A, S चापि.—A, S अधिकगु०, D अधिकगुणा हि यथोत्तरं, B the same, but गुणे, and also N, except गुणं, E अधिकगुणा यथा गुणोत्तरं.—52. C, N आचारम्.—53. All but A, S दिवं वा.—C, B, D, N, कल्पम्, E कलुषम्.—54. D अभिषेचन्, N, E अभिषिचन्.—57. C, N लक्ष्मी—A, S द्यति for छति.—D कुड्म्, E कुड्—D, E, N दिति for दनु.—A, वधु, S वध for कड्—58. D, E, N शुभाश्च for दिवाश्च.—59. All but D कलाकाष्ठाक्षणा.—60. From this distich there is a discrepancy in the MSS. as to the order of the ślokas. In our text (= A, S) 60 = N 60; 61 — 66 = N 62 — 67; 67 = N 61; further the same. In C, B, E the order is thus: our 60, a = 60, a in C; our 60, b = 61, b in C; 61 = 63 C; 62 — 65, a = 64 — 67, a in C; 65, b = 60, b in C; 66, a = 61, a, in C; 66, b = 67, b in C; 67 = 62, C; 68 = 68 C; 69 = 69 C. Our 60 = 60 D; 61 — 65 = 63 — 67 D; 67 = 62, D.—62. A भमंदरः, C मनंदनः, D ०बोहनंदरः, E ०व्याभनंदरः, N ०व्यः सनंदनः—63. D, E, N काश्यपौ.—64. A विहरयः, C, B विदूरितः—A ऊर्ध्वः, the others but C, शैर्वाः—65. C seems to r.

सहानुजाः—66. N °षास्त्राभिविचतु.—D, N °राः सुतपोधनाः—All but E शुभैः—70, C in C, D, E यथाभिषिक्ता मघवानेतेर्म दितमानभैः. N the same but ह्येतैर्.—71. C om. इति; A, S इत्येतैश्चाथर्व, N इत्येतैश्चैरथर्व, D इत्येतैश्चैरथर्व.—C कल्पादितैः—A, S समरुद्रणैः—D °कृष्ण्ड, one Cod. of C °कृष्ण्ड.—D, S, N रोहिण, E रोहिण.—All but A, S हृदयैः, and E त्नामभिविचतु.—A, S समध्या.—A य for च.—72. All but A, S छेति नि.—E जत्वा.—E विधत्—73. D, N तृथ for शंख.—A, S ततश्च पूजां.—74. A, S, D °पोषादिच्छमिर्, E °पोमि°, and N °पापिच्छ°.—79. A, S पार्थिवीम्.—C, A, S तु वि°, E सुविमलां.—C, A, S च for वै.—80. C, A, S यथोचितं, E यथार्हान्.—C श्रेष्ठय.—81. A, S, D अवात्स्थान.—E मोक्षणं.—D, S वर्ज्यं.—82. E अथ for पुष्य.—C, D, E, N फलदं.—D पौष्या, N पौष्यां, E पुष्या.—All but A, S परा for पुरा.—83. D, E, N धूमकेतोश्च.—E, N प्रहापमर्दने, D प्रहापमर्दने.—84. A, S समुत्पाता.—D, E श्राम्यते.—D वापरं.—85—C, D, N पि for च, E न.—A शस्यते, S प्रदृश्यते.—86. D, S दृदिः—E °करमुत्तमं.—87. N अनेनैव तोयेन, E व तोयेन, D वतोयेयेन.—N स्त्रापयेतुं यः The so-called Archaic forms are not rare in Varāha-mihira.—D, E विनिर्युक्तं.—The title of this Chapter in D, N is पृथक्सानविधिः, in E पृथ्याभिषेकः.—The number in C is 46, in A, B 47, in B, D, N 48, om. in S.

CHAPTER XLIX.

1. C, D, N विलरते.—D, N संक्षेपात्.—D, N तु for चव.—D, N संपन्नं.—2. E सचिवस्य for महिष्याः.—3. E भवेन.—A, S प्रकीर्त्तताः.—4. A om. from अर्धेन till the end of the hemistich.—N, S °र्णः.—D, N विप्रु° for च शु°, E तनकांचन.—5. All but S महिष्याः.—6. In A, S om. च, but S सखं संपत्.—8. D, N राज्ञां, A, S राज्ञः.—The number of this Chapter in C is 47, in 48, in E 18, intended for 48, in B, D, N 49, in S om.

CHAPTER L.

1. All but C उत्तमसूनः, E अधमम् for उत्तम.—All पंचविंशतिः, changed by me into the required Accusative.—E ज्ञेयः समांगुलस्थो व्रणः शुभदः—2. For श्रोत्रं one is tempted to suppose that the original had श्रोत्रं, of which श्रोत्रम् would be a modified form.—C notices a v. r. शराव, it would seem for वर्षमान.—A °लांजानां, A S लाक्षाणाम्.—3. S खड्गव्रणा.—4. E स्फुटितं, and throughout he exhibits the neuter gender.—The MSS. but S, N write दृग् for दृङ्.—S वा नेष्टः, A वा नष्टः, D also वा for च.—5. E च्छुटितं for क्षणितं.—E उदोर्णे.—A, S पि जयो.—7 and 8. E also

here has the neuter gender.—S. A, S निःपन्ना.—E तत् for सः, N °श्रोसो—D चिथेता.—9. N यस्मिन् सरः, C perhaps शर, but more likely त्तर.—E खङ्गे ऽपि.—D वेद्यो for वाच्यो.—10. A, D, E अवधार्य.—S कोशस्थ-स्यादेश्या, A कोशस्थः स्यादादेश्या.—C, D अस for अस्ति.—A, S एवं for इदं—11. E both times तु for च.—12. C, E, N नामौष्ठ.—All but A write अंशक, C once with स, another time with श—A, S संस्ये, C uncertain.—D, E चपोदशः—A, S कुजथो.—13. N कुचि.—D, N नाभिषु.—D°विभ्रा-याः, E विभ्रे च.—14. E पुनस् for व्रसस्.—15. D, N पाष्ण्याः—A, S पादत-लांगुलौखं.—A, S ष.ङ्गशतमाद्यायावत्, E षङ्गिकां यावत्, E षङ्गिश्रादिषु.—E खङ्गस्य for गर्गस्य.—17. A, S धनलाभाः—18. A, S, N लब्धिं.—S, N हानिः—19. C, E write अनिर्वाणिर, which C explains by सत्युः—S. विंशतिं यावत्, E विंशतं यावत्.—21. A, S कुंङ्कमघृत्.—A, S, N सुगंधः E संगंधिः—E मेदपंकाभिषसंघं घ, D, N गोसूत्रहृदितालपंकाभिषवगंधिः—A, S मद for मेदः, and गंधिः for गंधः—22. In E consistently the neuter gender, instead of the masculine.—S वशा.—A, S om. भय.—S वैदूथं.—24. S, N E पानेन for पापेन.—A ष्गान्धवदुस्तः, S ष्गान्धवदुग्धः—A हस्ति.—A, S हृदये, B हेंदये.—25 and 26. recur in LIV, 118 and 119.—25. A, and one Cod. of C उड, S रर, B कुंड, E गड, N only ड, om. the second syllable.—All but D, N युतः—D, N प्रलेपं.—A, S पयान्स्थितच्छ.—26. S चारे.—A, S पाथिसम्.—A, S स्थितं, D, N श्रितं.—D, E अन्यलोचैर्.—All लोच, where one would expect लौच.—E कौठम्.—In A at the end of the Chapter are the following words इति वरा° संदि° चतुःसाहस्रां.—The number of this Chapter in C is 48, in A, E 49, in B, D, N 50, in S om.

CHAPTER LI.

This Ch. is wanting in E. Utpala says that not all MSS. have it, but he explains it because the अङ्गविद्या makes part of a Saṅhitā, according to Varāha-mihira's own words in Chapter II. Utpala says : अतः केचिदंगविद्यां पठन्ति । आचार्येण प्रागेवाज्ञं वाङ्गविद्यांगवियेति । तस्मादस्मा-भिर्वाख्यायते.—1. All but S प्रष्टु.—2. D, N संस्थापितं, S संस्थान्मितं.—S साधु for खाडु.—A, S जनितानंदं.—3. A खट, S खादित.—A, N दग्ध for सुटु.—S रच.—A कुचैते, D कुलोः—B, N चर्मभिः—4. S चतुःपथं.—5. A, D सौनिकैस्, D, N श्लनिकैस्.—6. N °कृते.—8. N पादाश्च, D पादाशनाः—S पाष्ण्या दं.—A, S नास.—9. S पिंडके, D पिंडकं.—S अचि, D अचिणा, N अचिन्, C writes अचि स्यान्, but it is very doubtful whether he had this really before him.—10. N नपुंसक लो.—B, D, N रुचैः, S रच.—11.

शोकं ought to be शोकः—12. S पादयोर्यतः, A पादयोर्यतः—13. All but C दासीकृता, which in C is the explanation for दासीमया.—14. D पच for पट.—15. N श्रुति.—A, S लोभ.—S श्रकस्.—All MSS. तगरकेन.—A, S चिन्तिन्.—16. C पद for शफ.—C in his text सर्वार्थ, afterwards सर्वार्थ, but he gives no explanation, and therefore the r. is not quite certain, N सर्वाद्य.—N चतुष्पद, C चतुःशफ.—A, S विनाशमिह.—A, S कौर्त्तनेर्.—17. A, S मधूकं.—D जंबु.—A, S वदर.—All but C, S जातफलैः—A, S om. कनक.—20. D श्रु० for सु०.—All ०त्राट्.—A, S दर्शभैर्.—21. D, N चोर.—22. A योषितः—A विपन्नतौ.—23. C, N द्रष्टुं for प्रष्टुं.—24. A निगदिते.—B जयार्थजा, D जयार्थ या, C, जयाध्यजा.—A, S मध्यमं.—25. A, S हृच्च.—26. N च, and D व for अथ.—D दृष्ट्वैव.—A एव for एवं.—S, N चोरम्.—27. C, D, N बाह्यगं, A बाह्य.—D, N अथो for अधः—A, S शक्यतं.—28. D, N ह्य० for य०.—N, S चोरजनं.—29. A भृक्ता संस्थितः—30. A ०जोटलं.—All यवागूः, changed by me into यवाग्वः—S आस्वादार्थयतु०.—A, S, N चोष्टौ.—32. A विसृक्ते. C once the same, another time विष्टक्ते, like B; D has विष्टक्ते, N विसक्ते.—A वक्र.—C, B, D, N कटुकेभ्यो कषाये ऽथ दिक्तेत.—33. A, C गंडाष्टः—N भक्तं for भुक्तं.—34. C, A, B, D, N जंघं च.—A वस्त्रिं यः, S वस्त्रिं च यः, N वस्त्रिं स्प०—A, S स्तगमद्विषमांसयुतं.—N भक्तं for भुक्तं—35. All, but C, N एव for एवं.—37. N भ्रातृ for भातृ.—38. D, and perhaps C स्या for स्याद्.—C उदाशः—A, S करगैश्च करे ऽत्.—39. C द्वौ for द्वौ, A द्वौ.—S स्या for सा.—C, N चतुर्ष्वं—40. A, S अथ.—All but S अंगुष्ठांतं.—S पाणिशुभ्रे.—D, N च कन्या for ऽपि कन्या.—41. C गंडं.—All जानु.—जवे ऽथ shows a grammatical blunder, but evidently the author's own; such an error is scarcely to be expected from Varâhamihira.—44. B, D, N अभिमतात्तै. clearly; A, S अभिमतास्यै.—The title of this Chapter in D is अंगविधानाध्यायः—The number in A is 50, in B, D, N 51, no number in C, because its authenticity is doubtful, nor in S.

CHAPTER LII.

The Commentary intimates that this also is met with only in some MSS.—In E it is wanting.—1. C, B, D, N नापजातानां, A, S अपजातानां, changed by me into अपजादीनां.—2. C, D, N स्थानगारातिचिन्तां, A स्थानगा अतिचिन्तां. B स्थानगादतिचिन्तां.—3. A, S घ्राणे.—A श्रौतद्रव्यमपि.—4. A स्कंधव्यट०, S स्कंधे घटनम्.—S सिद्धार्थं.—5. C, B, D, N विनाशं for विषातं.—A, S संचयं for संयमं.—6. A, S उदरजाः—D, N सुतनयं. S सुतनयां.—7. A अनंगना for यानंगना.—8. D, N पाणि for पार्थिवं.—B, D

N ° नाशमगम्यगमनम्, A, S नाशे गम्यगमनम्.—9. A अंगस्फुरणं त गंडपिटका.—A, S काम for वाम.—A, B, D, N तः प्रतीघाताः, S तसु भोविघातः—C perhaps विपरीताच्च.—10. C, D, N तिलकविभागे, the same प्रकल्प्यं.—D, and once C, मषक.—A, S, N कारो.—A, S, B, D संख्यः.—The number of this Chapter in A is 51, in B, D, N 52, in C, S no number.

CHAPTER LIII.

1. A यतं for यानं, S जातं.—C mentions a v. r. प्रीत्या.—2. E अभूद् for अभवद्.—S, N रोदसीं.—3. C, A, S अवस्थितः for अधिष्ठितः.—5. A चतुःषष्टिः, S चतुर्षष्टिः.—D, E, N विस्तारः.—A समन्विताद्दैर्घ्यं.—S दैर्घ्यं.—6. E अष्टांशं.—C, B, D, E युतं, N युत for युता.—7. A, B, D, N, E अपिर्वर्जिता.—A, S दैर्घ्यं for दैर्घ्यं.—E सपादा for तदैर्घ्यं.—9. E कोष.—All but C, A, B सामंत for युवराज, a v. r. mentioned also by C.—10. C, E च for तु.—C, E, N युतं, B, D युत.—C, D, N दैवज्ञभिषक्पुरोहितानां च, B the same without च, E दैवज्ञपुरोहिताद्यानां.—11. This is the 12th vs. in A, S.—C perhaps विस्तार for विस्ताराद्.—12. (is vs. 11 in A, S).—A, S °वर्ण्यं.—All but C, E द्वात्रिंशः.—14. E कोष.—E भवकं A भवनां.—15. C पारश्व.—E समानसंयोगे.—16. A, S, B, D, पञ्चात्रयिणाम्.—17. A, S हते for हते.—C पंचदशाद्भुते, A, B, N पंचदशोद्भुते, S पंचत्रिंशोद्भुते, D पंचत्रिंशोद्भुते, E पंचत्रिंशद्भुते.—18. C, B, D, N हस्ता for हस्त.—E गुणास्त्रियस् for त्रितयस्त्रियस्.—19. E षयाः for समाः, C notices the v. r. शयाः—C notices a v. r. युतिक्रमाद् for अयक्रमाद्.—E तृतीय for त्रितयं.—20. A, S त्रिभागः.—21. A सायश्चयं, N सायश्चयं.—A, S च for तु.—E खलिकमिति.—22. E only once भूमौ, D ज्ञेयः for the second भूमौ.—23. E भवेद्.—All but A, S न विकल्पः.—24. A समसति for ससप्रति, E संमंततो.—E उह्रायांगुलि.—25. E द्विगुण.—D, N त्रिगुणम्.—26. A om. उच्छ्राय.—17. A द्वाराह्रायांगुल्यः सप्तगुणाद्.—N नवगुणते.—A अघो for अघे.—28. All but E write अक्ष, अस्त्रि.—B, D, N, E द्वात्रिंशद्भिर्मं.—29. B, D, N, E च सेत्तरोष्ठं, E only °रौष्ठं.—30. E भवेत् for भार.—S असं for आसां.—32. E प्रदक्षिणावर्तः.—33. D, E (अ)न्यगतः—S वर्द्धमानो.—A नु for न.—34. D, E both times अन्य for अंत.—D, E छत, and A विवृत्त for विवृत.—All खलिकं, A, S च शुभं, the others शुभदं. I have changed it into खलिके शुभदं; the r. of A, S, however, seems to be corrupted from न शुभं.—35. D, E अंत्य for अंत.—E शुभानि for शस्तानि.—37. A, S हिरण्यलाभं, E हिरण्यभामं.—A चन्यं, B, S धान्यं for धन्यं.—S विमुक्तं.—38. S चुल्हो.—A सुतज्ञं स०.—D, N, S वैरिकरं.—39. C यमखर्यं; so too in vs. 40, probably only a copyist's blunder.—40. E च for तु.—S चुल्हो.—41. S चुल्हां.—

42. S ०रावता for ०रायता.—All but C, N लेखाः for रेखाः.—E द्वाविंशद्.
 —43. C notices a v. r. शिव for शिखि.—S भृतो, E भृतो.—E अंतरीक्षं.—
 A, S ईशान्याद्याः.—C notices a v. r. अनल for अनिल.—44. C, S, N वितथा.
 —C notices a v. r. गृहचत.—D वपाः for वृगाः.—S वृषपुस्तुराः.—45.
 C, N शेषा for शेषो.—46. All but C, N कोष्ठ for कोष्ठक.—C writes
 एकांतरिताः, A, S एकांतराः.—47. D पृथिवी, C पृथिवी.—48. D, N, E दति
 without च.—A, S रद्रयानिले, D, N, E रद्रस्वनिले.—51. A, B, D दिग्
 and अवाग्.—A, S आपवत्स्यं, corrupted, perhaps, from आपवत्सा स्य.—
 52. S उरस्थल, E उरस्थल.—All but C, N अंश.—53. A श्वेस्थाने ह्यत्र च
 वामापार्श्वे जठरस्थिता, S like the others, but जठर for जठरे, like A.—
 S, E गृहचत, D गृहचत.—C, B, D, N जानुच, E जानुक, A, S जानू च,
 by me च has been omitted.—A परिचटहोताः.—54. C, N पार्श्वे for पार्श्व.
 —N जयाख्या.—S पिढभिरंघ्रो, A पिढभिरंघ्रो. E च पितरो इष्ट्रौ.—55. D,
 E, N चतुष्प.—56. अपदा for अर्धपदा, E अपरा.—E has वाह्या before
 ये.—57. This and part of the following om. in C, there being a gap
 in the copies of it.—S विद्यान्.—58. A, S विभांडककीलक.—59. C, B, D,
 E, N गृहभर्तुर, A गृहपतिनार्तु.—A, B, D, E, N यत्र च for यत्र वा.—60.
 The verses in brackets are wanting in all MSS., except A. S.—
 A, S अस्थिमये.—61. A, S निर्दिशेत्, changed by me into विनिर्दिशेत्.—
 62. S निरुणद्धि.—66. S गृहान्नागतम्.—67. E देवाः.—E वाक्पे धा०.—D, N
 ०र्धभाग्यहानिः.—69. E एव for एवं, further प्रतिष्ठितं वाक्पे.—S वेदाः for देवाः
 —S तु for च.—71. A, S, E चतुःपद्ये.—A येषां for तेषां.—72. S नरता for
 धनता.—A, S वल्लभता.—S क्रोधः परतं त्वत् क्रौर्यं.—73. A, S अल्पयुतत्वं.—
 C, B, S प्रेथं.—E भच, C भच and भच्च, the others भच्च.—E सुतन्न for
 छतन्न.—74. In S om. the second hemistich.—75. In S om. the first
 hemistich.—B, D, N बंधुवधो.—A सुतार्थवलसंपत्.—S for the second half
 धनलाभः पुत्रप्राप्त वैर०.—A, S सुतेनाप्यथ दायाः.—B, N क्षिपो, C क्षिपां.—
 D, S, E नैस्वं, C, A, B नैस्वं.—76. N अक्ष for अक्ष.—77. A विद्वद्धारं.—A
 कोण for पंक.—A खावणि.—78. E देवगृहविद्धे.—A, N ब्रह्मणे.—79. N
 उन्मोदः.—A, S, B, D उद्धृष्टे.—अथ om. in all except C, but च before
 कुल.—80. C writes अद्यात्तं and अद्यत्तं, explained by मध्यदिपुलं सुरजाकारं,
 A अद्यात्तं, S, B, D, N अद्यात्तं, in E one hemistich is omitted.—81. D, N
 बाह्यावनते, S both times वितते.—82. C रूपधं, A रूपधां, S रूपध्यां, B, D
 रूपध्यां.—83. C writes विदारनाम, his expl. is wanting, E विदारो.—84.
 D, N नगर for भवन.—85. A प्रदक्षिणेनैव, S प्रदक्षिणे च.—87. D, E ततो
 स्तरे.—D, N बकुलाशोकशिरोधारिष्टप्रिथंगुपुद्गागान्.—88. E उपासतानां.—
 A शश्वत.—89. C, A, S चतुःपद्ये.—90. A, S कूर्मधारे.—91. A, S प्रदक्षिणे
 चैवं.—93. A शुभं.—S न न्यनं.—C पलान्याढकं, A पलान्यपां चाढकं, S

पलानि पंचाढकं, D पलान्यपां वालिक, B पलान्यपां चाधिकं, E पलान्यपामढकं, N पलान्यपचतु०.—96. A om. भवति.—D, N यस्यां.—A, S समा.—97. N श्व for शर.—98. A, S ह्रष्णं for ह्रष्टं.—99. E भचैर्—D, N, E गंधैः for धूपैः.—100. All but N चोह.—101. D, N, E अथवा for च शुभं, C in the text चापि, but this as results from the explanation must be an error of the copyist.—102. A, S काष्ठोत्खिनेन, E काष्ठोत्खिनेन च, D, N काष्ठोत्खिनं चाग्निभयं, C काष्ठोत्खिता.—103. E वक्रपादेन, D, N पादात्खिता, A, S पदा.—A विरूपा.—C, E, D, N भर्तुर् for कर्तुर्.—104. C, D, E प्रदक्षिण.—D, N निष्ठोवनं.—A, D, E वाशुभं, in C uncertain whether च or वा.—N प्रोक्तं for कथितं.—105. A, S प्रविशति, D, N प्रविशत्, C प्रविशंस्थं.—A, S स्पपतिगृ०.—A, S संश्रितः—106. A च रैति, D, E रैति.—E रवं.—E निर्देशः—107. N अनुवासंति.—108. A, S शब्दे for रावा.—A, S र्शिशब्दं, twice.—109. A, S च for वा.—110. N वा for च.—A, S गृहपति.—111. S रुग्ने, A रुग्ने (intended for रुग्णे) for भग्ने—A करात् हा, S गृह्याद्.—112. C notices a v. r. उत्तरपूर्वं कोणे.—All but E प्रथमं.—A, S च before रुंभ.—114. A, S तत्तस्मिन्नेव शुभाशुभं विनिर्दिष्टं, D, N तत्तस्मिन्नेव विनिर्दिष्टं, E like A, S, only निर्दिष्टं.—115. C सुकृतचयः—C, D, N, E सुतवधस्तु.—E नश्यति for न संति.—E दिग्घटे.—117. All but A, S विटहे for विटहो.—119. C प्राच्यादिकस्ये, A, B, D प्राच्यादिकस्ये, N the same, only स्य for स्ये.—C, B, D, A नैखं.—D, N, E विटहो.—120. A संशुष्ट.—D, N श्शानोत्यान्.—121. C, A, S पूजां, B, D, N, E पूजान्, changed by me into पूजं.—B, D, N, E ट्छान्.—122. S ह्येयो.—C, B, D, S, N गृहोपधिकं.—A, S ति for तु.—123. D, N मांजिष्ठाभे.—E सूषिका.—124. C, N संविभेद् for न खपेद्.—A, S वापि, N नावापि, for नापि.—D, E नापि for नैव.—The name of this Chapter in E is वास्तुलक्षणाध्यायः—The number of it in A, S is 52, in B, D, N 53, in C 49, the two preceding Chapters not being taken into the account.

CHAPTER LIV.

In A this Chapter is introduced by the words : उदगर्गलनामाध्याय (in C अथ दगर्गलं व्याख्यायते).—3. D, N, E नैर्हतं, C the same in the text, afterwards निर्वर्तति.—A, S, B, N पूर्वादोनां, D, E पूर्वाद्यानां.—4. D, N नास्मा, S निस्मा.—S विनिःश्रिता.—5. C seems to r. ऊर्ध्वशिरा.—All but C, N न शुभा.—7. A चिह्नपिसाचार्ह.—D वार्ह for चार्ह.—A पुरट, S पुर for पुट.—E भेद for भेदक.—8. This distich is wanting in C.—All but B उदक् हस्ते.—N पांडुरो, S पांडुरः—D, E च for (अ)थ, N om.—D, N तु for च, E om.—A जंबु.—All but S N प्राक.—N वाक्याको.—10. D

चाध for चाच.—All but E च before बड, not after it.—11. E शिराः—A सुजलाः—12. D, N पार्श्वे for दृश्य.—13. E मधुरा for धूसरा.—14. E पूर्वेण यदि वदथा वल्मीको दृश्यते करैः कथितैः पुरुष etc.—15. All but D, E सकताः—C writes मशकरोयः (sic), and his explanation is सकणिका, thus his r. probably was मशकरोथ or मशकरोधः, A मशकरोथाः, B मशकरोधः, S मशकरोटाः, D मशकरोटा, N मराथ, E राच.—17. E यदि वदरो च.—D दुण्डभि, A, S दुन्दभि. E बडताथ, C once distinctly दुन्दुभि, another time as distinctly दुण्डभि, expl. by निर्विषः सर्पः—18. A छष्टा.—19. A शिरा.—A पश्चिमा.—E भवति for वदति.—20. E मूषिको, C once the same, once मूषको.—21. E दृश्यते.—N, E दक्षिणे, D दक्षिणेन.—22. C दृश्यते ततस् for चैव दृश्यते.—A, S गंधको मत्स्यकः पयो. C गंधो मत्स्यकः पयो.—23. E श्येणाक.—N कुमदो.—25. E पश्चिमस्थां.—D, N om. दिशि.—D, N, E यदि for यदा.—D दृश्यते for भवेत्.—D, N, E समीपस्थः for हस्ते.—26. All but A, S विष्णुभरकः—A, S पुरुषे च.—D, N श्रुयति, B प्रुयति.—A om. चतौते.—27. A शकुभः, N सकुशमित, the others, but D, सकुशः सित.—N कोविदारथ.—28. A, S, D, N कुरविंदः—S तानि for एतानि.—29. A, S तत्रेत्तरे, C ततोत्तरे (sic), expl. by तस्मादुत्तरस्थां दिशि, therefore it is probably a copyist's blunder for तत उत्तरे.—30. A om. हरिता.—C, D, N हरिता दर्दुरो ज्ञ.—A सोम्या, B, N सौम्यां.—S वहा for वहा.—31. In all but C, E तु om., in S च after भवति.—33. E दृश्यते भुजंगनिलयश्चेद्.—D, N दृष्टो.—E करंजदक्षस्य.—34. C writes in the text कद्वयः पुरुषार्हे तु प्रथमकोद्भिद्यते, in his explanatory part however like in our text, D, N प्रथमा चोत्पद्यते.—35. A, S पश्चिमोत्तरे, E पश्चिमोत्तरततस्, D, N पश्चिमे ततस्.—C, D, N, E पौरुषं.—36. C सफेणं.—A, S तदा for सदा.—37. E सुस्निग्धो.—38. दक्षिणे.—40. A नालिकेरि, E नारिकेलो.—43. E उदगस्य.—45. C चेज्जलं भवति पूर्वं, E the same, but om. चेत्, D, N चेज्जलं पूर्वं.—47. C जलरहिते देशे नूपजानि दृश्यन्ति चेन्निमित्तानि, E the same, only दृश्यते, which is against the metre, A, S यदि जलरहिते देशे दृश्यन्ते नूपजानि चिह्नानि, A adds दृश्या चेन्निमित्तानि, I should have adopted the r. of C, for the Passive from दृश्यन्ति is not surprising in our author, were it not that C stands alone in his r.—A, S पुरुषेण.—48. D भाद्रि, N भाङ्गो, the others but E भार्गो.—All शुकर.—E लक्षणा, D लक्षणाणि.—N चैवं.—N नवमसिका, D नवमसि.—49. S विकट for विटप.—A, S जनेन for जलेन.—50. D तिंडुक.—A, S, D चंकोलाः—C खंडार, D डारक.—All but C पुरुषक, C परुषक, which for the sake of the metre has been changed into पुरुषक.—D अर्जुन, N अजुन for वंजल.—A, S निचुलाः for (च)तिबलाः—51. A, S एतेर्दि.—All but D, N सुस्निग्धैः—S परिदतस्.—D, N, E नराणां.—52. तस्मिन् शिरा is against the rules of

Sandhi, wherefore one may suspect that the author wrote सिरा.—E प्रतिष्ठा.—58. D, S खर्जुरी.—A, S चिपुरुषं, D, N चिपौरुषं.—60. D इथवा वारि, E om. तच्च, C perhaps यच्च for तच्च.—All but A, S युगले for युग्मे.—C, E प्रवाहेन.—61. N महौशिराः.—E नरयुगले.—62. A, and once C, करभानाम्.—A, S संख्या and याति, N also याति.—63. D, E विज्ञेयाः.—64. All but A, S तत् for अतः.—D, N, E पुरुषद्वये for च पुरुषे ऽधो.—S, D स्नात्तस्य.—A जले for तले.—C ऽन्ना विनिर्दश्यं for वारि निर्दश्यं.—65. A, S, B D, N insert यदि before वल्मीको.—C, N अधो for अतो.—S, E पंचभिः for पंचमैः.—66. E हस्तमात्रे षच्च.—67. C करारस्याद्दिग्दृह (sic), D, N, E the same, but ग्दृहं.—E तोयं for ज्ञेयं.—E अथ for अत्र.—70. E पि for तु.—E षु for म्यु.—71. D, N पश्चिमा for दक्षिणा.—72. A रोहोत.—73. A, S write षत् अतो.—76. B, D, N संस्थितौ for संयुतौ.—A ककुर्भविष्णो.—D, N विंशतिभिः.—77. A वल्मीके यच्च दृश्यते दूर्वा च कुशाः पा०.—D, N दूर्वाश्च.—S om. च before पांडुराः, E om. two distichs.—78. C हस्तद्वयेन.—79. C in the text अपरैः for नाना, but from his comment it appears that he r. नाना, for he explains नानाप्रकारंविजातीयैः.—80. C writes अतः, but explains as if he r. अधः.—E वदति for भवति.—81. A, S यस्मिन् शमा.—A भवेत्तदुत्तरेण.—82. वल्मीको, C the same in the text, but in his comment he has the plural.—A, S मध्यगो.—A भवेत् अतः.—A तस्मिन् शिरा.—83. D, N, E षष्टिभिः पुरुषैः for मा० ष०.—E च वालुका.—84. D, S, E रोहितक.—A, S मात्रात्.—E सप्तनिभिर्.—B, D, N, E अंभिः for अंबू.—83. A, S om. जलं, B, D, N, E सलिलमादिशेत्तेन, which exhibits a more regular construction, but just therefore looks like an emendation.—A, E जंबू.—A om. ये.—87. All जंबू, changed by me into the Nominative.—C in the text पूर्णा, afterwards मौर्वी, A, S मौर्वी.—All MSS. have च after, instead of before गरुडवेगा, but the metre requires its being transposed.—88. A शूकरिका, the others शूकरिक.—A, S, B, D व्याघ्रपदौ, C seems to r. पदयेति, N पदो चेति.—A, S पुरुषं, D, N पुरुषके.—89. S पंचभिः for सप्तभिः.—90. D परिहोषा.—91. A, S अहं वचने.—92. E प्रकृतियर्थे च स्यात्तद्दृ०, for हि वि० य० न०.—93. om. in A.—94. E अंबू for अंभिः.—E हस्रैः.—95. D, N सध्याद् for पंथ्यां.—E अभ्युत्थितः.—D, N च यत्र for यस्यां च.—96. S om. the former hemistich.—A inserts हस्रैर् between निभिः and जलं.—A om. शिरा चोदक्.—97. A, S have here vs. 123 and vs. 124; B, D, N have here vs. 98, then follows vs. 123 and vs. 124.—97. C भवेत् for भवति.—E वालुविनाशः.—D, N, E वनिताचयं.—All but C शेषालु.—99. C मुनिनोद्गार्गलं.—N दकार्गलं.—100. C writes निहृद्र.—C in his text ततस्सिरा, afterwards शिरा.—A, S पद्मजुर, B पद्मं चर, C the same, but he explains गोजुर, D, N पद्मजुर, E पद्ममेचक.—

E कुशाः for कुलाः.—A seems to write गुद्र, C गुंद्र, S गुंद्र, E गुल्म, B शरः
 D शराव, the two latter being clearly a gloss; N om. the word
 wholly.—A नलिक्वर for नलिका.—101. A नाभाः, S नाभः, D णाभाः for
 नागाः.—A शतवच.—E युक्तभासाः for नक्तमालाः.—S भिंध for चिंदु.—
 102. D दमयंतिका, S तजयंतिका.—D, N, E तचांबु for तचापि.—D, N
 चये वा, E चयेण.—103. C writes मौञ्जवैः, E मुञ्जकैः.—A, S सरसं.—104.
 ताक्षमथौ.—E ऋष्ट for मिष्ट.—105. E काश for शाक.—All but C शिशिपा
 —107. A, S वैदूर्य.—E मुक्त for मुद्र.—S च्युज.—E पीत for पाक.—C, D
 भंगे for भृंग.—E शिरा for शिला.—108. E समान for च तुल्या.—E विना
 for अचयं.—109. S अच for च.—110. A, S या चं० for यासं०.—A, S
 स्यात्प्र for स्यात्प्रः.—C in the text हिंगुलक, afterwards twice हिंगुलुक, lik
 B; A, S हिंगुलक, D, N हिंगुलक.—111. S शिवाच्य नागैश्च कूर्मैश्च.—A, S
 न तेष्वष्टथा भयमस्ति किंचित्.—112. A यथा for यदा.—A, D पलाश.—D, N
 प्रन्वात्य चैवानलं.—D शिला for सुधा.—D, N प्रविभागमेति.—115. All but
 A, S अतः.—A हतं for हत्वः.—E ततः for शर.—A, S वक्रिचिं०.—114. D
 N कुलित्या.—A वदिराणि, C once the same.—115. E निंबं.—A तिलानि
 All but D आवितः.—E चारम्.—A, S हत्वा, D, N हत्वस्तत्रापितो, E हत्वे
 वः स्थापिते.—116 and 117 = Ch. L, vs. 25 and 26.—S here ऊड, N
 ऊड, C ऊडुपिषाण.—A, N मखो, E समी.—N युत, D युतः.—A, S पश्चाच्चतस्य
 —117. A, S स्थितं for हितं, B, D, E शितं, N शतं.—All but C, E याति
 for तस्य.—114. S, E वापी for पाली.—B, D, N, E आधारेथेत्.—119. E
 कुरवक.—A च हत, C in the text चाश्रित.—D, E तोरा.—120. A कोणा
 स्थितं, C once the same, once कोरास्थितं, expl. by तले व्यवस्थितं.—C
 कवाट.—E तत् for तम्.—121. A, S अर्जुन for अंजन.—B कातक, the
 others कनक, changed by me into कतक.—122. D यदिद्वा० for यदिवा०,
 E यदिवा सलिलं चाशुभ.—All but C सुगंधि for सुसुगंधि.—123 and 124
 are repeated in A, S. Cf. vs. 97.—125. Is om. in C.—D, N ऋष्टान्.—S
 वदवद, A वदवेदव for वलदेव of B, D, N; as the Ṛshis named in Ch.
 XXII. vs. 4 are alluded to, I conjecture वेदवद.—A दृथ, S दृथा.—N
 दकार्गलं.—N मिहरेण.—At the end A, S have इति श्री० चतुःसाहस्रां
 द्वागर्गलनामाध्यायः, E उदगर्गललक्षणाध्यायः, N दकार्गली.—The number of
 the Chapter in C is 50, in E 51, in A 53, in B, D, N 54, in S om.—

CHAPTER LV.

1. A, S तस्मादतो.—2. C पुष्यितांश्च विष्टद्वीयात्, D, E पुष्यितांसांश्च
 ष्टद्वीयात्.—D, N कर्म तत्, E तत्कर्म.—4. C पणस.—A पलौवत singular;
 D परापता०, E परावता०.—C, N चापि for चैव.—5. D, N मूले.—E

मूलश्लेषे without अथवा.—C, in the text, चिरंततः, E परंतपः for प्रयत्नतः, it seems after the expl. that C r. परं ततः—6. All but C, शाखान् शिर्शिरे.—B, D, N घनागमे for हिमागमे, C notices that r.—E घोषागमे for वर्षागमे.—All but C यथादिक्स्थान् प्ररोपधेत्.—7. S संकरेण, the others संक्रमेण, which I have changed into संक्रामण, the r. of a similar passage in Kāçyapa.—E निरोपणं.—9. D, N घर्मतां.—D वा for च, N वर्षाराचा.—10. A जंबु.—11. C पणस.—C, N तिभिराघातकश्चैव.—A, S इमे for स्मृतः.—12. C writes विशति for विशतिर्.—D, N हस्तान्, E हस्तं.—B, D N अंतरं for अवरं, and C the same in his text, but after his expl. it seems that he r. अपरं, like E.—13 and 14 in inverted order in D, N.—13. E संस्पृशति.—A, S, C सम्यगिच्छति, E सम्यगहति.—14. A रसचुटिः, S रसकुटिः, N and once C रसश्रुतिः.—16. A अत्र, C, D हत, N हत.—17. D, E आठक, N आठक.—18. A, S पुष्याभिष्टब्धे.—19 D विरचितं.—A, S कृष्णसार for क्रौडमार्ग.—20. All but A, S मांस for मत्स्य.—All गूकर.—E परिकर्मत.—21. In all, but C, follow the vss. which in C and our text are vs. 27 and 28, so that vs. 21—26 in C = vs. 23—28 in the others.—All but C, N तितिडो ह्यं.—A, S अप for अपि.—C, S, B, E वक्ररौ.—E मूल for चूर्णे.—E लोहिता for सेचिता.—22. A, S, E आस्कौत, N आस्कौट for आस्कौत; were it not that आस्कौत is wanting in the dictionaries, I should prefer आस्कौत, as it has a derivation.—E कासिकानां.—A, S, and C in the text फलाग्निनी.—23. C अग्नि, A हते.—C, A, S वापि for चापि.—A सुसौते, S सतोते.—N ताली, the others but S ताला, C expl. it by तालो हस्तशब्दः, quietly substituting the mascul. gender for the feminine.—A, D, E मांस for मास.—E विषयं.—24. E प्रदिग्धं.—C तं, D, N च for तत्.—26. A सिंचितं for सिक्तं.—A, S शुभा.—S आतनोति for आटणोति.—27. E अंकोटसंपूर्णं.—A, D संभूतं, N अंकोत्तकं भूतं.—28. C मिश्रहृदि.—S जन्महत्.—A ०तां शाखां, D, N भारानमहाखं, E the same, only भारन०.—29. A, S निकुली, C निष्फलो.—D अंकोत्तक.—A, S, and once C विजुल, D विष्कञ्जल.—S हायायाः सम.—All सप्तहलैव, changed by me into लैव, taking सप्तहत् for an Avyayibhāva-compound, instead of सप्तहलः—30. S, N निःक्षिप्य—D, N, E करकजल०.—D हृदायुक्तान्युपान्यथोऽङ्गा, N like D, but उपलिप्तान्यथो, E हृदाक्तान्युपानि, A, S, like C but युक्तानि for न्युपानि.—31. All but A, S यवणं.—C तथाश्चिनं, D, N तथाश्चिनं च सविचं. E शस्त्रानि for उक्तानि.—E तानि for भानि, C notices a v. r. तानि प्रशंसितानि.—In A, S there follow three ślokas and a half, containing in other words the substance of vs. 29 and 30. अंकोत्तकस्य सुपक्षस्य फलान्यादाय बुद्धिमान्। पिहिलेन (A पिहलेन) रसेनैषां केवलेन प्रयत्नतः॥ २२ ॥ श्लेषातकवोजानि निष्कुली (A निःकुली) ह्येव भावयेत्। भावितान् सप्तहलस्य

शेषयित्वा पुनः पुनः ॥ ३२ ॥ महिष्याः शकता दृष्टा कर्तव्या तानि निक्षिपेत्
सिक्तानि करकाशोभिः (S करभांडाङ्गि) रेकेनाक्रा न संशयः ॥ ३४ ॥ उत्प्लानि
सुगंधीनि (A सुगंधानि) भवंतीति न संशयः ॥—The number of the Chapter
in C is 51, in A, 54, in B, D, N 55, in S om.

CHAPTER LVI.

2. D विभूषता—4. A, S, N सरस्तु.—C, A, S कन्धार.—C वीथो. E
वीथि.—D, E सफरो.—7. A द्रुमोत्तसाः, E द्रुमोत्तानाः—C in the text
अत्युत्तम, afterwards अत्युच्च, E अभ्युच्चित.—8. A नद, N नदि.—E वसंते
for रसंते.—D पुरेषु न्यायवत् च.—10. C in the text चतुःपष्ट, but after as
the others.—C तु for च.—All but A, S तस्मिन् for तत्र.—11. All but
A, S तस्य for यस्य.—A, S हनीयांशः—C मृता for भवेत्.—12. E प्रशस्यते
for समंततः—13. E विलीर्णः श्लाघा°.—14. A, S श्लाघाश्चतु.—15. All but
A, S विह्वगत्री°.—S श्रीष्टवैः—S, N प्रथमैः.—D, N चापि श्लाभयेत्.—16. D,
N, E हनीयांशश्च.—17. C, B मंदिर.—A, S, and once C, कैलाश.—A
निमान.—A दशः for ह्रंद.—D, N, E गरडा.—18. D दृषा.—20. A, S, N
षडक्षि, B, D षडक्षिर, E षडश्रो.—B, D भूमिर for भौमि.—21. All but C
कैलाशो.—22. All but C द्वाविंशत्.—S, D, N E षोडश्रांशयुतः—23. C
समान् for शयान्.—E तु for च.—A, S तस्याः—24. E अंशैः for अंशैः—C
तु for च.—All but C विंशतिभिः—25. D, N, E समच्छिन्ते for समंततो, C
notices a v. r. षोडश्रद्व्यस्तु? विस्वारो मन्वात्.—E मूल.—E वडभो.—27.
A, S द्वारैश्चतुर्भिर.—28. A युतश्च चतुरः, S युताश्च चतुरस्ताः—30. E एतद्
for एकं.—D, E पालो—31. C hesitates whether to r. संस्पृशत्प्रतिमया or
प्रति मया, E has the same.—The number of the Chapter in C, E is
52, in A, S 54, in B, D, N 56.

CHAPTER LVII.

1. D, N च कपित्थं.—C, N श्लाल्याः—D बीजं च, N बीजानि त्रि.—C, A,
E सक्तः; C °कानां.—All but S, E वंधन for धन्वन°.—D, N वक्ता.—3. All
but C, E गुग्गुल.—A कुंदरक, C, S कुंदरक, D, N कुंदरक, E कुंदरूप.—5.
D कुंदरु.—A, S गुग्गुल.—D धूप.—D, N कपिह.—C नागफलनिंब, E
नागफलमिश्र, C notices the r. of the others.—A मांजिष्ठाः, S मांजिष्ठा.—6.
All but C रस only once.—A चानल for चामल.—A, S संशोध्यः for कार्येषु.
—7. C चैव, E तु for च.—C वज्रतलो.—N सिंसक.—A कंसस्थ, D, E
कांस्थस्य.—S रौतिकाभागाः—D मयर्गदितो.—The title in C is वज्रलेपलक्षणं
—The number of the Ch. in C is 53, in A 56, in B, D, N 57, in
S, E om.

CHAPTER LVIII.

The order of this Chapter and the following is inverted in A, S.—

1. All but C, E आलांतरगते.—E, N, and once C, विद्यात्.—2. A वानाघ. .D, N, E, S लिचा.—A, S, E चैव for चेत.—C, S संख्या for माचा, N माच, E माच.—4. D मुनिना नग्नजिता.—S च for तु, A om., E ०नाचतु०.—S दैर्घ्य.—5. A, S घोवा चतुरंगुला.—All द्वे द्वे ऽङ्गुले, changed by me into द्वे अंगुले.—D, N त for तु, S तद्, E च, C om.—A, S प्रद्यतं, E विद्यतं, D N विततं.—6. C अष्टांगुलविस्तरा ललाटं, D, N, E अष्टांगुलं ललाटं विस्तरा —C, E द्वांगुलौ.—S परौ.—E गंडो for the second शंखो.—A, S तद्, N त for तु.—C, S द्वांगुलो.—7. D पंचमो, N पंचमो, A, S पंचमेन.—E टप्तेन for सूत्रेण.—D कर्णे, E कर्णो.—E कुमारं.—A, N om. यन in नयन, C नेच for नयन.—8. S वशिष्ठः—C उत्तरौष्ठ.—9. S गोंसा, C once गेंडो, once गोडा.—All but E अंगुलमध्यं.—A मध्यांत, S मध्यांतत, D, E मध्यांतं, N मध्यांतं, C uncertain, he writes मध्यान्मयात्रं, wholly corrupt.—A, S यात्रं, N अतं, D, E अ्यांतं, the original had, of course, व्याचं.—10. E तुल्या.—S तुल्यौ च नासा सपुटापतो.—D, N तु for च.—A, S उच्छ्रायं.—11. E कोषो.—N पंचमांशो.—12. A, S ध्रुवोर्द्धां.—D, N, E अर्द्धांगुला.—All ध्रू for धूर्.—A दैर्घ्यांगुलि.—13. A, S नेचांतरे for नेचांत.—E अंगुलेन भितं.—14. E परिणाचे, D, N परिणाचं.—E अच for तु.—A, S अटथ्या.—15. A दैर्घ्य.—C, D, N प्रोक्तो.—C परिणाचे.—16. C नाभी च.—D, N नाभिमध्यां.—17. S पित्त्ये for पिच्छे.—18. D द्वादशदैर्घ्यां.—A, S अंगुलर्द्धां.—19. All but A, S श्लेषांगुल्यः—E उच्छेदां, A, S उच्छेधांगु०.—A, S उक्ताः—20. E प्रोक्त for कथित.—D कियद् for किंचिद्.—21. D, N, E विस्तरात्, the others विस्तरात्, changed by me into विस्तरः—D, N मध्ये च.—B, D, E विपुलाः—D त्रिगुणाः, A त्रिगुणितो, C, S त्रिगुणिता.—22. All but C, E अष्टकं for अष्टकं.—E च for तु.—D, N विपुलाच.—ऊरू om. in E.—E द्विगुणा.—D, N तु for च.—23. E नाभी.—24. C writes द्विगुणता for द्विद्यता.—C स्तनयोर्तरं षोडश.—All but A, S अंगुलके.—25. A, S अष्टावष्टावशो द्वादश बाहू प्रवाहू च, E विपुलावष्टावशो द्वादश बाहू तथा प्रतिबाहू, C अष्टावशो द्वादश बाहू कार्या तथा प्रवाहू च, B, D, N the same as C, but without कार्या.—26. E बाहूकार.—All परिणाचे, changed by me into परिणाचे—A, S हस्तन.—27. All but C, E कनिष्ठिका.—28. All but A अंगुल्यः—D त्रिपथिका ज्ञेयाः, N the same but om. चि, for त्रिभिस्त्रिभिः कार्याः—E पावंः for कार्याः—29. D, E वेश.—D, N, E प्रमाणयुक्ता.—30. A वैरोचनः—E विशत्या for विशं.—A, S हान्य, E हीनाः—31. A भगवान्.—32. प्रवसन for निवसन.—All but C, N अंश for अंस.—33. D, N, E सर for शर.—34. All but, N om. च after अथ, but from the comment in C it appears that he r. अथ तु.—

D, N इति for इच्छति.—B, D, N दक्षिणपाणौ चैवं.—C, E त्वेवं, A, S ष्येवं. changed by me into ह्येवं.—C शंखं चक्रं च, D शंखचक्रं च, N शंखचक्रं च.—35. C तु for च.—D शंखकरः—E भूतिकामेन.—36. All but A, S तनुः for वपुः—37. D, N एकानंदा, A, S एकारम्या for एकानंशः.—E चोद्वहती.—38, as well as 39, are om. in B, D, N.—E कार्यं, A, S कुर्याच्च, C in the text कार्या, but afterwards कुर्याच्च, it seems.—E om. अर्थिपु.—A अक्षर-सूत्रं, S अष्टसूत्रं.—39. C वामेऽष्टभु०.—E om. अष्टभुजायाः—A, C कर्मंडलुं. S कर्मंडलुमंबजं, E कर्मंडलु, then om. some words.—C वापसं—A, S शस्त्रं for शस्त्रं.—C सूत्रा च.—41. E कर्मंडलुधर.—42. S शक्र for शक्र.—All but C write तिर्यक्. 4 3. A, S दृषो.—च after अक्षि om. in all but A, S.—All but A, S अपि च for अपि.—C वामेऽर्द्धे.—C सुतार्द्धे, A सुतार्धे.—44. C writes सुनीव, but he must have meant सुनीच, for he explains by अत्यल्प; he mentions besides a v. r. केचित्सुनीलकेशश्चेति पठति । सुनीता अतिनियमिताः etc., सुनील appears therefore to be a mere blunder of the copyist ; but at the same time सुनील is the r. of A, S, B, N, E.—केशरश्च.—A पाशासन.—All but A, S भवति for भवेत्.—45. S लंबि, A तंबि for लंब.—D, N प्रसन्नमूर्तिः—D, N कार्यो हि देवोर्धन्, B देवोर्धन् 46.—E वेशं.—D, N गूढौ पादौ च जानुनी यावत्, E गूढा पादावक्षो यावत्.—47. C बाह्यभ्यां for पाणिभ्यां.—E हारो दृषाङ्, S हारः प्रियाङ्, A हारः (sic.) तुरगं, B, D, N हारसुरगं, C in one Cod. in the text हारो वियंगं or विपांगं, afterwards it is written विधोगं, and another time वियङ्गं, the word being explained by चारसनम्, in another Cod. of C वियंगघृतः, the latter word being explained by युक्त, as if घृत or घृत could mean वेष्टित.—Not aware that there is any word like वियंग, in the sense of girdle, I have taken वियङ्ग.—48. D, N द्युतिनिभः—A कंच.—D, N (अ)र्कश्च.—49. All but D, N वा for या.—50. A ज्ञात, C ज्ञात, E ज्ञाम, D, N ज्ञांत.—All but A, S कृशांगार्यां, without च.—51. E वामेविनता, C originally perhaps वामेऽवनता.—52. E अष्टजुमूर्द्धदृष्टिः—S दृष्ट्यां.—53. C दीर्घेण.—E ०णासूत्रं तं one Cod. of C the same, A ०ण सूत्रं तस्, B, D, N ०ण सूत्रितं, S ०ण सूत्रतस्, another Cod. of C like our text.—A त्रिविधा.—B, D, N, S अक्षं and अक्षि.—A, S मध्ये ष्टाक्षि कला सुष्टममतः—54. B, D, N, S अक्ष.—S मध्ये.—A, S om. तु, E च for तु.—A अक्षं, B, D, N, E गर्भे for अक्षे.—A समाः—55. A, S अक्षं च.—B, D, N भवति.—D, N देशविनाशाय.—56. D खदेवनाम, B, N खदेशनाम.—57. E दृक्षन्मौलिः—58. om. in all but A, S.—A om. दल.—The number of this Chapter in C is 54, in N 56, in A, B, D 58, in E, S no number.

CHAPTER LIX.

This Chapter as mentioned at the beginning of the preceding Chapter, precedes in A, S the प्रतिमालक्षण.—1. N, E वनप्रवेशः, D वनसंनिवेशः.—3. A, S वक्रोनिःपोडिता.—E प्रुष्ट for लुष्टः.—4. S स्निग्धाः स्युः for शुभदाः स्युः, A स्निग्धाः स्युः शुभदाः स्युः.—5. C, D, S समो.—E चंद्रकैवल्यो.—A, S शुभदा.—6. E वैश्वस्य.—A सिंशिशिपक for सिंधुक, S शिशिपाः, B, D, N शिशिपाः, E सिंधुक.—S सर्जुर, A सर्जुर for सर्ज.—C, E साल्वाच.—8. A, S उक्लपिका, E उक्लपिक, D फललोलपिका, N फलेलोलूपक.—All but A, S मद्यैः—E मद्यैः for मद्यैः—A, S गंधिधूपैश्च.—All but A, S पूजां राचा.—10. D, N प्रति० for संप्र०.—11. A, S चाम्यंतु.—12. C, E दिग्धेन for लिप्तेन, D, N युक्तोः.—All MSS. कुटारकेन.—C, E विहन्यात्.—13. C, D, N रग् for चुद्, E रक्चुद्गयं.—A दाक्षो.—E वाजिगजक्षयं च.—14. A वनप्रवेशे.—E ये for च.—S तु for च्च.—The title of this Chapter in A, S is वनप्रवेशः, in D, N वनप्रवेशर्न.—The number of the Chapter in A is 57, in B, D, N 59, in C, S, E no number, but it would be 55 in C.

CHAPTER LX.

1. C, E याम्यायां for सौम्यायां, but C notices also our r.—E अधिवास.—E पथात् for बुधः प्राग्वा.—E पक्षप.—2. E खजश्च.—C नैर्खल्योः.—3. All but C वाद्ययां.—A, S चापि for तु, D, N, E om.—A पूर्वोत्तर.—C, E कार्याः for कोणे.—4. E धन for बल.—5. C, N प्रजाष्टद्धि.—B, D, N तथा for अथवा.—6. A, S both times उपहित for उपहत.—A, S नाशयति for घातयति.—E च क्षयाय, S चामयान्.—7. All but E मंडलमध्ये, C in his text मंडल, but in his comment अधिवासनमंडप.—9. C perhaps उद्धत for उद्धृत.—S सरस्सुच, D, N सरःशुचि.—10. A सुगंधैः, C, D, N सुसुगंधैः—D, N वाद्य for वेद.—11. C writes प्राग्दक्षिणा, E प्रदक्षिणा.—C, B, D, N वक्तव्या for ज्ञव्या, but C mentions also the latter r.—12. A, S तल्लिगैः for तन्त्रैः—C, E, N ध्वजास्थाने, B, D ध्वजस्थाने.—13. C ०पस्यः सुडसुडशब्दः स्फुलिंगहन, D at first the same, then शब्दे स्फुलिंगस्फुलिंगहन, N ०पस्यः सुडशब्दः कुलिंगहन, E सुडसुडशब्दहन.—All but D, N चाशुभं.—14. E वक्तो.—A, S प्रपूजितां.—E आक्षीर्षायां for खाक्षीर्षायां.—15. B, D, N सुदत्त.—A, S जागरिकैः, C जागरणैः—S, D एवाधिवास्य, E एव समधिवास्य.—16. D गंध for वस्त्र, N, E धूप.—A, S प्राग्दक्षिणेन.—17. All but C अभ्यश्च for संपूज्य.—S विनिःक्षिपेत्क्षिपिकाश्चम्.—18. D, N, E सभ्यान्.—19. S ब्रह्मणाः for ब्रह्मणः—A, S शक्यान्.—S स्वधिधिनोक्तस्वस्य.—A कार्याः—A, S क्रियाः—20. D, N (च)नुकूले for स्थिरांशे.—D, N केंद्रस्यैः—20 and 21 om.

.in E.—21. S वासु for वायु.—D, N विकुजे दिने सुराणां कुर्युः प्राग् प्रतिष्ठानं.
—A, S insert after this distich the following gloka: सद्यैवक्रियाद्वाहीना
प्रतिष्ठा न शुभप्रदा । देशस्य द्यपतेःकर्तुः संपूर्णा च शुभप्रदा ॥—22. S समाप्तमिदं.
—E लोकशस्त्रानुमतं.—D, N हितकाम्यथा.—The title of this Chapter in
A, S is प्रतिष्ठा.—The number in A, S is 59, in B, D, N 60, in C 56.

CHAPTER LXI.

2. All but E रक्ष.—All but A, S अक्षाः for अक्ष्यः—A, S and once C
मूषिक.—D करटकक्ष०.—3. D, N तुंड for मुड.—D, N दृष्टः for पृष्टः—A
ऋखा, E रूखाः.—4. All but C, E श्याम for श्याव —C in his text अत्यन्नतैर-
तिदृहद्भिर्वा, but in his comment he explains as if he had our r., A
अतितनुभिर्दृहद्भिर्वा, S the same, but om. अति, B, D अतितनुदृहद्भिर्वा, E
अतितनुभिरतिसदृद्भिर्वा.—5. D स्थलानिदीर्घदृषणे दृषभे ऽप्येवं, in N several
distichs are omitted.—A शिरोचितक्रोडः, S शिरान्वितक्रोडः—S (in A
a gap from स्थल till the end of the first hemistich of vs. 6) स्थलशिरो-
न्वितगंड.—B, D तत for चित.—S त्रिस्थूलं मेघने यस्य.—6. C, E, S एव for
दृष्टः—E कृष्णौष्ठ.—B, D वसन for असन, C in his text सुसने, afterwards
प्रसने, explained by the equally corrupt स्कंधंसयुक्तः—10. C, D, N
तासौष्ठ, E दृष्टा.—E स्फिचस्.—B पुष्ट for स्पष्ट, N पृष्ट.—11. E शुद्ध for
स्रद्ध.—12. A स्फिग् for भूस्युग्.—D, N सुगमाः—13. After वामे C stops
and goes on with the beginning of the following Chapter.—A, S भाग
for पार्श्व.—E दृषा for अनडुहा.—A चैडक, S, E चैक.—14. A वक्ष्येनः, D
वर्षाणः, E पक्षाणः—D, N च for अपि, E ते.—S भारवहाः—16. A वक्ष्ण,
D, N चरण, B om.—17. सितवर्णः om. in E.—S, E पिंगल, B, N ताक्ष for
पिंग—A, S दृषभ for प्रोक्त.—18. The first hemistich om. in E.—D, N
विषाणो for वक्षणे.—B, D, N ककुत्वांस.—19. A, S शुभफलद् for शसफल.
—E मित्रफल for मित्रफल.—The number of this Chapter in A is 60, in
B, D, N 61, in C it would have been 57, in S om.

CHAPTER LXII.

1. All but A, S तासौष्ठ.—E आस्य for अय.—A चालंबौ, S विलंबौ.—
D, N स्युः for स्यात्—E पृष्ट.—2. A, S पक्ष्वा, E पष्वा.—A, S मलिकाची,
E सलीका.—E कर्षी.—S राष्ट्रे.—The number of this Chapter in A is 61,
in B, D, N 62, in C 58, in S, E om.

CHAPTER LXIII.

In E there are three Chapters between the preceding (अखलचरणं) and this (कुर्कुटलचरणं), viz. अखलचरणं or Ch. LXVI. गजलचरणं or Ch. LXVII. and कूर्मलचरणं or Ch. LXIV.—1. A, S तु अज.—A अंगुलिता०.—E वस्तुः for सितः—A, S राज्य, E राज.—2. D, N वडभिषापि, E वडभिषैव for वडभिर्धैव.—S ग्रस्तो ऽतो यो ऽन्यः, A om. अतो, D, N ग्रस्तो यो ऽसो ऽन्यः—3. C कुर्कुटो, D पक्षिणी.—A, S बच्चिरेक्षणानना.—A, S बच्चिरं for सुच्चिरं, C the same in his text, but not in his comment.—The title of this Chapter in E is एकवाकुलचरणं, C writes कुर्कुटलचरणं.—The number of it in C is 59, in A, S 62, in B, D, N 63.

CHAPTER LXIV.

See remarks at the beginning of foregoing Chapter.—1. E स्फटिकसदृशवक्रो.—D, N स for च.—E स किल for सकल.—2. E श्वावतनुर्यो.—C, A, S शिरो.—3. S, E वैदूर्य.—E गूडयित्रया०.—S चानुवंश.—The number of this Chapter in C is 60, in A 63, in B, D, N 64, in S, E om.

CHAPTER LXV.

1. D, N ये for ते.—2. A, S, B, D, N अच, E दृष्टा for अथ.—E इति for अपि, C, D, N अति.—3. A स्नानद्वगले ऽवलंबते, S स्नानच गले ऽवलंबते, B, D स्नान इव गले ऽवलंबति यश्चागानां, E स्नानचनुगले मयश्चागानां.—A, S शुभहृद्.—E धन्यतरा.—C inserts at the end वस्ताः—4. A, S अर्होसिता.—5. C, E वांभो.—A, S विगाहते.—E सितवर्णा.—A टिकिका, B द्विकिका, D, N टिकिका, C छतिका or अ छतिका, E om.—6. A शिरो.—E तिलपुष्य.—A, S अंतवर्णं for अंतचरण.—7. A, S गलकेन for पद्मेन, D, E पादेन.—A, S सशब्दे.—A, S वा for च स.—8. All but C अच for अथ.—A, S सरोरह.—9. A कंडूक for कुट्टक, E कटक.—A कुट्टिक for कुट्टिल.—10. N विह्वल.—A, S ये वा.—The number of this Chapter in C is 61, in A 64, in B, D, N 65, in S, E om.

CHAPTER LXVI.

1. C, D कषाष्ठ, E कंठोष्ठ.—2. A अचपात.—E जानुषु.—C mentions a v. r. अक्षुने for गुदे, and expl. it by गलसन्धिः—E (अ)थवा for तथा.—A ससर्वं for सब.—C, B, D चरणे तथा, A, S चरणेषु वा.—3. S प्रयान, E प्राच, the others प्रपान.—A, and C in his text गस for गल.—E कंड for कर्ण.—

S, and once C शक्यि.—4. C, B, D, N प्रमाण, A, S प्रपाण; C expl. as if he r. प्रपाण; it is probably a miswritten प्रपाण.—B उपरपार्श्वे for उपरंभ्र.—5. D, N, E अंत for अंत्य.—D निचतुःपंचकः स्यात्.—A परिगणिता, the others परिगणिताः, changed by me into परिगणिताः.—All but C कालिकापीत.—S काक for काच.—The number of this Chapter in C is 62, in A 65, in B, D, N 66, in S, E om.

CHAPTER LXVII.

1. E दशन for जडन.—A, S वचोपक.—A, S वलय.—D सव for सव्.—A, S फेचके च for पेचकेन.—N दृष्ट्.—3. S मेद्र for मेद्रास्.—D, N, E अंभि.—E तेऽपि for चेति.—4. D, E माणं for मानं.—S दृष्ट्वाव्.—5. All but C in his text मदस्य for मदस्य.—6. All but N, S ताक्षैष्ठ.—7. D, N, E कूर्मोन्नतैर्.—D, N लेखा.—E सुगंध.—A मधु for मद.—8. S पुष्कलाः.—A, दंष्ट्रिणः, S prima manu दंष्ट्रणः, sec. manu दंष्ट्रिणः.—9. A दस्य, N दश्या for दस्य.—10. C, A शंडान्.—A, S इति for अति.—The title of this Chapter in C, B, D, N is दक्षिणचरणं.—The number of it in C is 63, in A 66, in B, D, N 67, in S, E om.

CHAPTER LXVIII.

1. A वर्णः.—E सत्व for स्नेह.—D, N सत्वमथो ह्यनूकं, E om. some lines, C notices a v. r. प्रकृतयस्य ततो ह्यनूकं, which is wrong, he says, because the Accusative, not the Nominative is required. The v. r. is certainly wrong, but it may be a corruption of a r. प्रकृतिस्त्वस्तमतो ह्यनूकं which would nearly coincide with D, N; in O सत्वततोल्पमूनं.—N सृजं.—D, N, O विलोक्य.—A, S सामुद्रवद्.—All but D, N अनागतं वा.—2. C mentions a v. r. रुचिरपार्श्वनखौ.—All but A, S च निगूढं for सुनिगूढं.—E मनुजेच्छराणां.—3. All but N सूर्योकार.—A दारिद्र.—S मागीव for मागीय.—4. C, E प्रतिमाभिरुचमिष—5. D, N कूपिके.—D, N, E रोमणी for ज्ञेये, O रोमे.—C, D, E निख.—A केशा वैश्वेवं.—6. A, S स्त्रीवर्जिताद्यापि.—7. O ऋदुतरो ऋत्युः प्र०.—8. E कोष, A कोश.—9. C, A write स्त्रीवंचल.—A, S उद्धेः.—A, S दृषण्य श०.—10. A, S सुशब्दमन्त्रा.—11. A, S चतुर्भिर्धाराभिः.—A, S अक्षित for वलित.—C om. च.—All but A, S धनविहीनाः.—12. A, S अलिता.—A, S, O दुःखप्रदान सुखदात्री, D, N, E रूपप्रधानसुतदात्री, a. r. noticed also by C.—13. D निम्नमथैः—C in his text बहूपवभाजो, but in his comment clearly बहूपशु०.—14. C, E शीर्षा.—15. S मत्स्यस्यगंधे.—S मांसस्यगंधे.—16. A, S चारगंधे, N, O चारसुगंधे.—17. C सुमांसल.—S आभ्रतिर्ध्वैर्दक्षिण, O आधिपुतोर्ध्वैर्दक्षिण, N स्याद्भ्रतोर्ध्वैर्दक्षिण.—A, S नराधिपो

भवति.—18. E परिहीनः—19. D, N समकुच्चिर्, C समकच्चा.—D, N भोगाद्यो.—C, E संत्यक्त for परिहीनः.—20. A, S उन्नतकुच्याः, C, E, O उन्नत-
कच्चा.—C, E, O कठिन for कुटिल.—A विमकुच्याः, S विषमाः, O विषमकुच्याः
C, E विषमकच्चाः—A, S वक्राग्रनाद्यैव.—D, N चैवं.—21. E चित्तिपाः for
सुखिनः—C अल्पा.—C, A अदृशा.—22. C, A, O नैस्त्रं.—A, S, E प्रदक्षिणा-
वर्ता.—23. E नाभौ.—24. C, A, D विद्यान्.—27. A, S अन्वदत्, C अन्वदत,
which he explains by अन्वदत and अन्वर्धप्रेक्षक, E अन्वर्ध.—A, S चूचका,
E चिवुका O भूमजो.—A, S चूचकैः, E चिवुकैः, O भूचकैः—28. S प्रथुतरं
वेपनं, A प्रथुतरमवेपनं, E प्रथुविपुलं.—29. E, and C, erroneously, in the
text, ते निर्धनाः, S ते ह्रस्वाः—30. A, S om. विषमो.—31. D विपट for
चिपिट.—D, N, E, O मृग for दृष.—32. S पृष्ट for दृष्ट.—33. D, N अस्त्रेद.
—A, S अर्थविहीनानां.—34. S अंश.—A विपुलै च भुक्तिर्भौ, C O लावत्युक्तिः,
S विपुलो चायुष्किः.—D, E शौर्धेचित्तवतां, N शौ ह्रस्वे (sic).—35. All but
A, S आजान्दिलिभिर्नो.—All but A, S अधनानां.—36. D, N, E सुवलिताश्च,
A अवलंविताश्च.—E तु for च before सूक्ष्म.—E रत for निरत.—38. दृष्टैः
om. in D, N, in E दृष्टैः—N सुस्त्रिग्यसंधिभिर्.—A, S श्लिष्ट for श्लथ, O शून्य.
—39. O प्रोन्नत for प्रोन्नत.—40. A, S, O om. च.—O पानितलेर्.—A, S
om. तु, O च for तु.—41. D चिपट.—B, D, N, E परतर्कक, S परंतक.—
C, B, D चमू for चभू.—42. C, D, N, O मूलजैश्च, E इहुलमूलयैः—N
चैवं.—43. S ह्रस्वा for निःस्वा.—44. A सत्य for सच, E शस्त्र.—45. E वज्राका-
रैर्धनिनां विद्यावतश्च.—C च for तु.—E निभैः—N धेते for दृपतेः—46. A,
S भू for निधि, O अवनि.—O हेमनिभाश्च गवाद्याः.—E गोमानः for चाद्याः—
47. S, E कुंभ for कुंत.—A चमनाथं.—A, S उडूखल.—48. A, S उपगत for
उपेत.—50. D, N रेखा.—D, N गता सती.—C, O गताः—A बद्धरक्षिणो.—
52. A, S समाः सुगुभाः—53. C, E, O सूक्ष्मा for सूक्ष्मा.—C भोगिनो, E
भोगिनी.—C, D, N, E, O तालु.—54. A संदत्तम्, E सुदत्तम्.—O सूक्ष्मं for
सूक्ष्मं.—E om. समं च.—E दृपानां.—All दुर्भगानां.—56. All but C,
चतुरथं.—C, E वक्रं.—57. E संदत्तं for संनतं, C notices a v. r. हृद्द समन्नं
(r. समन्नतं).—E घोराः, O घोराः—58. A, S चिपिट for चर्पट.—E छपणा
ह्रस्व.—C, B, D, O चमू for चभू, E च दृपतयः—59. A, S लोमश.—C च
for तु, om. in S, E.—E om. धन.—D, N, E भोगिनो for भागिनो.—A, S
पि after भागिनो.—62. C in his text दक्षिण्विनत, but afterwards like the
others.—C writes प्रदक्ष्ण, but this appears to be a copyist's blunder
for प्रभक्ष्ण, B प्रक्ष्ण, D, N प्रदक्षिण, A, S प्रभक्षक.—A विपुटा, S विपुला,
N मुष्टा.—All but C, E सुभायानां.—63. D, N, E, O ह्रादि.—N सानुनासं.
—O प्रयुक्तं, E प्रखलं.—C in his text संदत्त, afterwards संदत्त, O संचित.—
C चैवं.—65. O घोराः for चौराः—A, S केकरनेचाः क्रूराः—C, A, S विलोचना
for दृश, D, N लोचना, O दृशा.—C, A, N असूपतयः, E च सूयपतयः—67.

A शम्भ for श्याव, S श्याव, D, N, E श्याम.—68. A, S अति for अभि.—S दारिद्र्य for दरिद्रः.—69. E दीर्घाखंडाभिर्.—70. C, E धनिनो for धन्या.—E सुख for सुत.—A, S स्युः संकट for विषम.—72. A, S रत for निरत.—E अत्युन्नत.—C, D, E, O चमूपाः—O असंघत, the others, but A, S संघत for संकट.—73. C, D, E द् for प्रद.—74. D, E संमोलित, N संनिमोलित, the others सुनिमोलित, changed by me into सनिमोलित.—C तु for च.—A, S दृष्टस्य, the others दुष्टस्य, changed by me into हृष्टस्य.—76. A, S भवति चाप्यरेखेण.—A कर्ण for केर.—All but N, E ° भिल्लेखाभिर्.—A, S वर्षाणि for वर्षायः.—77. A, S एकाग्रभिरवस्थिताभिर्.—E, O तु for च.—78. A, S विंशतिको, O विंशतिश्चैव, E विंशतिकं चैव, D विंशतिमितं, in C the text om. by the copyist, but as all events विंशतिकः in the mascul. gender.—D, N, E, O अतोऽन्यरे for चांतरे.—79. A, S धन for गव, O यव, E कुल.—D, N करोटसदृशां.—80. A खन for ध्वान, S खान.—A, S धनैः परित्यक्तः, C perhaps °ज्ञाः—E महा for बड.—81. C अकुंचित for आकुंचित.—82. D, N कपिलस्य °.—E स्थलाः—85. All but A, S, E नामी.—All but A, S प्रशस्तं for प्रदित्.—86. O कचौ.—D, N चत्वार्यथ.—E लिंगद्वे.—87. C, A अधरोत्तर.—E सुखावहा स्युः—E संधि for पर्व.—A, S दुःखभाजां.—88. A, S नासिकं, the rest नासिका.—O एव for खच.—D, N अति for इति.—The words इति चेन्न are taken from the commentary.—89. A, S लक्ष्मिणा.—90. E, O केशाश्लया, the others केशा श्लया.—A, S महती for चमची.—O पुष्टि for तुष्टि.—A, S वाहन्य °.—S प्रद्विः, the others, except C, प्रद्विं, which r. is mentioned also by C.—91. A, D अभ्युदयं.—92. D, N दृष्टा for दृष्ट्या, C writes अष्टचा, which must be a copyist's blunder.—E च for इति.—A, S षांशिताय च.—93. S वंधं, D, N, E, O शोक.—A, S नारां.—S गसन for गसन.—E श्रेयसे.—94. All द्वाया.—C, B, D, N अंजनाम, E अजनाय.—95. All but A दृषम, in C however thus only in the text.—S श्रुताः for भूपाः—E भोग for सौख्य.—98. A, S लचा, D, N लभिर्.—D मिचपुत्र for पुत्रवित्त.—99. D बंधन for विद्या.—100. A, S, B, N, E, O संहत for संघात, D संघत.—A इति तनवः—च om. in all but A.—A दुस्त्रिष्टसंधिकाः, S the same only ° का, B दुस्त्रिष्टस्य संधिनः, D, N, O दुस्त्रिष्टस्य संधयः, C दुस्त्रिष्टाः दुसंधयः—C, S, E भाजा for भजा.—All ज्ञेयाः—102. Codex E goes not beyond युतिमान् the other part is lost.—103. A वल्लं, S वल्लव.—D गौ.—107. C वर्षपंचविंशत्या.—108. O पिशाचतिर्थकं, C mentions a v. r. पिशाचतिर्थचं.—All but A, S भवति तेषाम.—109. D, N, O संभोगो भुवि दुस्त्रिरथ.—C प्रियाभिभाषी.—C, B, D रसभाजन, but C notices also the other r., S बडभाजन.—110. A, S चित्रं प्रकोपस्य.—A, S स याति for प्रयाति.—111. D, N, O शब्दगतौ, a r. noticed also by C, but he himself, as well as S, writes शब्दगते.—A, B, D शृषिर, S सुचिर.—D, N, O

रतोऽथ.—113. S समुच्चलांगः—115. O सिंह for हंस, a r. noticed also by C.—O प्रयातं for च यातं, it is not clear whether some MSS. mean यातं or यानं.—A झुत for द्रुत, S has only झुतग, om. the rest.—116. C पानं च ढटपरिं.—O भयेन रचा.—117. This stanza om. in C.—B, D, N हि for च.—The number of this Chapter in C is 64, in A 67, in B, D, N 68, in S om.

CHAPTER LXIX.

In A, S follows खिलचणं (Ch. LXX.) and then this Chapter.—2. S भाद्रो.—B, D, N भवति शुद्धेण for दैत्यपूज्येन.—4. A, S सत्ववर्ष—A रूपाद्याः, S रूपाद्याः, N, O रूपाद्यं—A ते for तेः—D संकीर्ण.—5. A, S येषां for एषां.—6. A, S रिपुघ्न.—All but A, S भेदाः—8. D, N, O सत्यार्जवं.—A भक्तः, S भक्तः—A, S कुल for क्रतु.—9. D क्रोधरतो.—S, O सप्तसहस्रभेदेः, which r. is mentioned, but disapproved of by C.—10. A, S नागनामा, C mentions a v. r. नागनामो, a very absurd one.—C अवण for युति, D, N अवणविवर-योऽख्यं, O अवणविवरधोरुं.—O रक्त for दोष.—All but C, N, O अधरोष्ठं.—11. In A, O, S is the following stanza : स्निग्धतनुर्बहुशुक्रसमेतः कुञ्चिकेशरो बहुरुखधोषित् दृषद्वयगामो करिरथगो वा पादतलेष्वथ चिह्नं ॥ In S the former half is wanting, and the place for it left in blank.—O सुत for सुख.—C only in his text भद्र, the others मद्र, except O, who has सुभद्र.—S कच for कक्ष, N कत्व.—D पारिजात्र, S पारिजात.—A, S निलयान्, a r. mentioned also by C ; O निलये.—12. D, N, O मुञ्चति for त्यज्यति.—A, S तीर्थे प्राणान्.—13. A, S रुद्ध for नद्ध.—14. D, N क्षमापरो.—D, N धर्मरतो.—B, D, N, O गुणज्ञो.—15. C writes पादो यस्य योगी, probably a copyist's blunder for पादो योगी, A, S पादो भोगी, D, N, O पादस्यागो.—S संघत—16. All but A, S गंधिता.—S छद्म for दृष्य.—A, S नाम for नाम.—A गुप्तगुह्यता, S गुह्यगूढता, like C in his comment ; in the text C has our r., being that of B, D, N, O.—17. All but C, A write चर्षि.—19. All but A, N सौर्येण.—20. O पिग्नेक्षणः—A, S शोघ्रणो.—O अभिरत for निरत, D, N निपुण.—C, A, S सेनानी.—A चित्तरक्त.—B, D वीरमतिर for साढाहिता, N वीरप्रोतिर.—S शक्तः, O सदा.—21. D अस्थि for अक्ष, N om.—24. A आरक्तं.—A नष्टं for नसं, S रसं.—A, S युगलैः—S कुलांग for क्रलंग.—O प्रचरणा, N सचरणो.—25. D द्विगुणामष्टशती, N the same, but तीं, C, O द्विगुणामष्टशतैः—C, A मितिः (explained by मानं), S originally मितः, which has been changed into मितः, B, D, N मितः—26. A खष, O सुख.—C, O स्वरं.—C, A, S, O सेन.—O सौराष्ट्र for गांधार.—All but C यमुनांतराणि.—27. A, S रक्तः श्यामः—S बाघदी, C व्याहदीं.—The words of the second

hemistisch are in A, S arranged thus : 3, 4, 5, चारः सामी, 2, 1 ; both have वरा for यूरो ; in D, N 2, 1, 5, 3, 4 ; both have चार.—A, S, and perhaps C वा for च.—28. A, S, N चतुरखनासा.—29. A, S, खड्गं.—C, B स्यात्तु सहस्रमानः—30. All but C in the text, and O उज्जयिनीं.—C, B जलेन for अनलेन.—31. C, N कुलो ऽथवा.—D मांडलीको, O मांडलिको.—A, O सावी, S, N सावी for सामी.—S संज्ञान्.—32. C, B, D चारुमं, N चारुमं, O चोनो.—A, S राज्ञां ह्येष, N राज्ञामेष, D, O राजा ह्येष.—A. S, N राजा for दाता.—33. C in the text सुसंधिः, in the comment सुसंधिः, like A, S ; he mentions also a v. r. सुसंधः ; it is not clear what he had before him ; B, D, N, O have सुसलः—O शुक्रोत्कटः स्यात्.—34. All but C, A (च)भिः.—A, S पाशः—A परस्रधा.—35. D, N, O नामा.—A, S यथ for यः स.—C seems to have (च)लि for चि.—B, D काशेन्नतः—36. O प्रिय for जित.—A ह्येता for कुलो, and S च्छेयो.—37. C मंडलकलक्षणमतो व०, D, N, O the same, but मांडलिक.—All but O वेताल.—38. All but A, S परष for रुच.—All but A, S दान for योग.—39. A भावो, D सावी, S, N, O साची.—There follows in all the MSS., except A, S, O a 40th stanza, the same as vs. 117 of the preceding Chapter ; here, however, निरीक्ष्य for अवलोक्ष्य, and B, D सर्वजगत्सु.—The title of this Ch. in C is पंचमहापुत्रपानुचरलक्षणं, in A, S, N पंचपुत्रपलं.—The number in C is 65, in A, B, D 69, om. in S, N.

CHAPTER LXX.

In N Ch. LXVIII. is repeated here, but from another hand In A, S this Ch. precedes the foregoing.—2. A, S, N अक्षेदिनो.—3. A, S ललाटशुद्धु, N ललाटगुह.—A, S, N गंभीरनाभिरु.—D, O च शशा.—5. D, O त्रिवलिनाथं.—C, A अरोमस.—C, D, O रोमप्रवर्जितम्.—6. D उपमाधरो.—D सुखार्थशांतिदाः—7. S डडनीला.—9. N चारु for युक्त.—D, O शुभकराः—10. S भंगाराश्रि.—D, N, O श्रोवसु for श्रोहच.—A, S स्थितैर् for अपिवा, C, B, D अथवा.—B, D, O नरपतेर्यान्नि स्त्रियो राज्ञतां, N स्वपतयो यांति स्त्रियो राज्ञतां.—C writes राज्ञां पदं, probably a copyist's blunder.—11. B, D अथवा for अति न.—A, S सुखसुत, O सुखरत, N पति for सुत.—12. All but C write भंगुली.—D, O ऊर्द्धा.—B, D (अ)थ यस्याः, O च यस्याः—13. A, S प्रमाणहीना, in C the text is omitted by inadvertence, but he must have r. like N, our r., or like D, O प्रमाणसूनाथ.—14. D बृहंत्यः—A, S सुतन्व्यः—C, N अहिममथा, and C mentions also a v. r. रतिहिममूला (अविहिममूला ?)—16. S, O तदनंतरं.—B, D, N, O सृष्टते ऽज्ञायाः, C, A सृष्टति.—D प्रदद्या for अतिपापा.—17. A रोमसे.—18. C, A, S चयं.—A

दृष्टुलया, N दृष्टुन्नया.—19. A, S पिंगले केकरे वा.—A श्राव, N श्राव, S साध for श्राव.—A, S कूपो.—C, A, N बंधुकीर्ण.—C, A, N write खसुर, D, S, O खसुर.—A, S, N स्फिजो.—21. D कंको, C probably the same.—A ग्राहक for ग्राहक.—23. N रुचैश्च केशैः—D भवति for वसति.—24. A प्रदिष्टं.—A, S द्वितीये.—C तु for च.—A, S जानुवक्त्रे.—25. All but A, S, N अथ for अतः—S अंश.—A जन्मो.—D, O कंधरं.—The title of this Ch. in C is कन्यालक्षणं.—The number in C is 66, in A 68, in B, D 70, om. in S, N.

CHAPTER LXXI.

In A, S follows चासरलक्षणं (Ch. 72), then हवलक्षणं (Ch. 73), then वस्त्रदलक्षणं (Ch. 71).—1. In C the 1st stanza is what in the other MSS. and in our text is vs. 6; his 7th stanza is our vs. 14.—A, S निशाचरांताम्, B, D निशाचराश्च.—2. A, S कर्दमगोमय.—S चित्रे for चित्रे.—S प्रदिग्धे.—S, N स्फटिते.—A नचे for नवे, D, N नवे चाल्पतरं.—A, S भुंक्ते—All but C, D चाधिकं.—3. C, A अस्य for अपि.—A भागष्टदिः—B तारणाद्यां, D, and N *prima manu* तारणाद्यां.—B, D छतो राक्षसभागगापि.—D ह्यचिरेण.—6. A, S अर्थे for अथ.—7. C मूषिक.—A त्वसुभलं for व्यसुलं, S सुभलं, D वसुलं.—D अन्ये for अथ—A युतः—8. D विलुद्यते.—9. D धर्मं for कर्म.—A आनले.—All but C, D द्विदेवते.—10. C तदपमे for पुरंदरे.—A, S ह्यतिरु.—11. N, and once C सष्ट for सष्ट.—C, D, N अद्रमपि.—C, D, N वैश्वदेवते, A वैश्वदेवते.—12. D रत्नयुतं, C the same, but probably erroneously, for he explains as if he r. युतिं.—13. In all but A, S omitted.—14. Contains substantially the same as vs. 13; therefore either this or the foregoing stanza is an interpolation. Judging by the style, I think the latter to be taken from elsewhere.—C सन्धाने.—A, S have three stanzas more, viz. जीर्घते तु दिवसे सहस्रगोः शीतगोः सततमार्द्रमन्मसा। शोककारि कुजवासरे ऽम्बरं बोधनस्य दिवसे धनप्रदम् ॥ १५ ॥ ज्ञानलब्धिकरमङ्गिरोदिने भागवस्य दिवसे नवाम्बरम्। यच्चति प्रियासमागमं मुक्तः सूर्धजस्य मल्लिनं दिने भवेत् ॥ १ ॥ पाणिपङ्कमविधौ तु योषितां प्रीतिदत्तमथवा महीभुजा। ब्राह्मणस्य वचसा ऽशुभे ऽपि भे नूतनाम्बरविधारणं शुभम् ॥ १० ॥ The title in S is वस्त्रदलक्षणतद्वचवयोगफलानि, A the same, but नत्त्वयोग्यायोगफलानि.—The number in C is 67, in A, S 72, in B, D 71.

CHAPTER LXXII.

See remarks at the beginning of the preceding Chapter.—1. B, D चापीनगंगाजललोहितश्च कन्या ला०.—2. D बह्वभारयुक्तिः सुमात्यास्थिनबंधनलं.—S शौली.—3. D समो ऽथ कार्यः, one Coc. of C in the text समश्च कार्यः,

but it appears from the comment that he r. like the others.—C in the text रत्नेषु सर्वेषु, in two Codd., but in the comment like the others.—4. S व्यापीच, N व्यापीत, B अपीच.—D तादा for तन्नो.—5. A, S द्विकविवर्द्धिभिः—The title in A, S is चामरादिदंडलक्षणं.—The number in C is 68, in A, S 70, in B, D 72.

CHAPTER LXXIII.

1. A, S डुकूलेन.—2. C explains आविलं by समंततो युक्तं, one would expect मास्त्रावलि for मास्त्राविलं, but all the MSS. agree in the r.—2. D, N तु for च, C, S om.—All क्तार्थं changed by me into क्तार्थ.—6. C तु for च, om. in B, D, N; in A the last word of vs. 5, and the whole of vs. 6, except विप्राणां omitted.—S च वि० for तु वि०, B, D, N om.—The number of this Ch. in C is 69, in A, S 71, in B, D 73.

CHAPTER LXXIV.

1. One Cod. of C both times सारं in the text, and सारः in the comment, like another Cod. One Cod. of C वेश्मानि for सद्गनि.—N वरखो.—D, N सारं for सारः—2. All but C, N वनितासु for वनिता न.—A, S चंगनाभिसंगम्.—3. A, S चित्रं for तंत्रं.—C, D आशंकतां.—5. A, S, N कथयति दोषान्.—6. D यथातथा वै for गुणाधिकाले.—A, S मनुनापि च.—7. C, D ददौ, N शौचं ददावासां गंधर्वासु गिरं शुभां.—A, S निःक.—8. All but D, N च सर्वतः—9. C, D मासे मासे.—A, S यासां.—11. All but C लिधो for तथेर.—C कुतः शुभं, N सुखं कुतः—12. D अपेक्षंते, the others, but N, write अवेक्षंते.—15. D, N चोराणाम्.—D तिष्ठ तिष्ठति भाषतां.—16. B, D स्तं तमवगूह्य.—A, S चव्यवाचं for सप्तजिह्वं.—17. One Cod. of C स्तंप्रति, another सां प्रति, the expl. shows that सां प्रति is meant; C mentions besides a v. r. संप्रति, the r. of A, S, B, D; in N तं प्रति: it has been changed by me into स्तं प्रति.—S अनलादीपित.—18. D पीडन.—20. D, N जगत्समघं.—The number of this Ch. in C is 70, in A 73, in B, D 74, in S, N om.

CHAPTER LXXV.

1. S जातं.—D कामयति.—A, S यस्य.—2. S, and once C भक्ता.—B, D and one Cod. of C चास्यां, N तस्यां.—A, S नोऽन्यताम्.—3. A, S अतिक्रम.—S, D एव for एष.—D यस्य स चाद्यं for तत्र गतोऽयमात्मा.—After vs. 3 A, S have: यथा मधुकरिं ध्यायन्नोल्लसन्नयो भवेत्। तद्द्वानाच तथा मारीगर्भं

स्यात् नरापमः ॥ A गर्भस्यात्. S गर्भस्यांत.—6. D संसाधयतीति भावो.—7 S, and perhaps A ह्रत्वा for गत्वा.—8. D परोक्षं.—D सततो for असता. —9. D जनस्य for नरस्य.—10. D सर्वं जगद् for स केवलं.—D, N हतुं for हंतुं.—
The number of this Ch. in C is 71, in A 74, in B, D 75, in S, N om.

CHAPTER LXXVI.

2. N स्त्रियः for प्रिया.—B, D वल्लकी शुभरवा.—3. N चूर्ण.—N गदाश्वितो. A, S साशान्तिको.—4. C, D त्रितं.—D कपिकह, N कपिक.—A, S पा for वा. A, D, N पण्नास for पङ्गास, S पण्नाष.—N मावेद्य.—D पानं, the others पानात् or पानान्.—5. and 6 are transposed in D.—N शुष्कितं च.—C once त्रित, once शृत, D हृत, N घृत.—6 C perhaps तु for च.—D पथः स्वशक्त्या.—D निसंबत.—7. S वाक्कांड.—D त्रित, C once त्रित, once शृत.—N संशोधितान्.—S, B, D ते पुनः for तासु ते.—9. S, N आच्यन.—A, S, N पक्वा, C in the text पक्वा, but afterwards पक्त्वा.—B and one Cod. of C ककलिका.—S अतिष्टद्वा, N अतिष्टटा, D om.—10. D स for (अ)स्य.—12. All but C टकशुक.—After vs. 12 A, S, N have इति कांडपिकं, and after it insert the following stanzas, the text of which is so corrupt that many passages remain obscure : विकाराशयति लोचने स्पृशति पाणिना कुञ्चिते विदुरमवलोकयत्यतिसमीपसंस्थं पुनः । बहिर्रजति सातपे स्मरति नैव (-) पुमान् जराप्रमुखसंस्थितः समवलोकयन् पुनकम् ॥ बालस्यैव मम कचित्कचिदिमे याताः मितत्वं कचाः कामं वातहरं च तैलासति वा तोच्छन्मभावो ह्ययम् । ज्येष्ठो ममै मम था युवा श्रमि म योगः कृतः सर्पिषा इत्येवं प्रलपत्यवाप्य शिरसः केशग्रहं मानवः ॥ दृष्ट्वाऽतिष्टष्टैः सह याति सख्यं प्रतिव्रताख्यानकथां करोति । पत्न्याः पुरो वक्तव्यमिधारकस्य व्रतस्य चार्वाङ्गं करोमि योग्यम् ॥ न मम सदृशः कश्चित्साधुर्नरपु महापुमान् न च तव समा साधो लोकरत्नया विजिता ऽनघे । रतिरविरता धर्मैरेवं पशुत्वमतेो ऽधिकं प्रलपति पुमान् प्रायेणैवं जरंस्तरुणोपुः ॥ कापं यात्यनिमित्ततः प्रकुपितां चापि चतं मानिनाम् । अन्यस्त्रोप्रणथो भवानिति वचः प्रोक्त्वा वदत्यभिर्मातं । पर्वथाश्वशिरोरुगद्य मनसस्तापो ऽथ निद्रा मम । प्रायेणैव पुमान् जरां गमयति प्राप्याङ्गनां कर्कशात् ॥ The v. r. are: N कुञ्चितं.—N स्मरति नैववर्तितः.—N यत्पुनकान् S यत्पुणकम्.—A पारा, S यासा for याताः.—A, S वातं for कामं.—A, S इति चा.—S भोच्छन्म.—N ह्ययम्.—N सर्पपत्येवं.—N दृष्ट्वा ऽपिष्टं, A, S दृष्ट्वाऽपिष्टं.—A, S पत्यावरो वक्त्रांशखां करोति व्रतस्य दास्यं करकोपि योग्यं.—From प्रायेणैव till भवानिति om. in A, S.—After this the title इति कांडपिकं repeated.—The number of this Ch. in C is 72, in A 75, in B, D 76, in S, N om.

CHAPTER LXXVII.

2. C, A, N लोचैः.—N पक्त्वा.—All but A, S सार्धम्.—B, D and one Cod. of C पिष्टा.—A, S, N हृत् for हृत्क.—One Cod. of C शुक्ताम्बु, A, S

शुक्लान् ल, N शुक्लान्.—N कोशे.—All but A, S चार्द्रपत्रैः—3. S वक्तुः for पत्रैः—4. A, S ज्ञानमुपैति for ज्ञानसुगंध.—One Cod. of C लोहासुगंध, another लोहासुगंध (?).—D हृदयेषु धूपैः कुसुमैश्च गंधैः.—C, B, D निषेच्य.—After vs. 4 A, S, N insert the following stanzas : जंबूलकपुष्पवेगाविषमधुकलतालाङ्गलोलोचनीलोपाटालकपुष्परासाकुवलयकुसुमाद्यांस्थकासीसमृद्धैः । निगुण्डांबोजपुष्पखरस (N पुष्पांबरसर) तिलाचीवनचःभिरामाक्रांत्याद्वाग्ध्यपुष्पाकृतमर (N पुष्पाचरक) मदनाकाकिनांबोजसूले ॥ ४ ॥ मार्जिष्ठाकण्टकारीकपिजप (or जय) सुमनाधूसरमध्यजाताश्रीपर्णीवर्धसाद्वादितयसहचर (N रा) नेफलशर (N सध, A om.), पुष्यैः । कृष्णवाराहबीजैरालिरससहितैः किंशुकभिजपत्रः कृष्णालैः (N पंक्तैः for पत्रैः etc.) सिन्दुवारैरिति सम (A om.) धृतैः कायवद्भिः सकल्कैः ॥ ६ ॥ तैलं पक्वाचतार्ज (N पक्वाकंज, S कायचतार्ज) दुतभाजशनकैरायसे शुद्धपात्रे स्थाप्यं चैतत्प्रयत्नात्सन्नतवस्ये भाजने वा समाचं (A, S सपात्रं) । पश्चात्कुला विशुद्धिं शुभदिनसमये नस्यमेतद्विदध्यात् (N प्रदद्यात्) केशानुद्गत्य शुक्लान् बद्धदिनमथवा रोमकूपेषु देयम् ॥ ७ ॥ अथाचान्नं सतैलं शिखिगलसदृशैः (A, S मल for गल) शुद्धमार्षैर्विमिश्रं क्षिप्यं माषोत्कटं वामहृदयहृशरान् केवलाङ्गित्यकालं । येषां हृमेन्दुतारासितचमरसिता सद्यतिर्भूजानां तेषामभ्यङ्गयोगादलिकलमनिभा जायते केशपंक्तिः ॥ ८ ॥ ये चाभ्ये शुक्लप्रय्यातकरविरलखलरूचायकेशोत्प्लुष्टाः केशपाशैः सरभसमदयं क्रौडया कामनीभिः । तेषां नीलाञ्जनलिद्विपकलभकुलध्वान्पुञ्जप्रभाणामाविकीर्णो ऽवलम्बो भवति हि विपुलस्रज्जवालः (N वालो) कचानाम् ॥ ९ ॥ यस्माद्भोऽजाविजातं सितमथ तुरगं राजहंसं शुभं वा यथान्यद्वस्तु किञ्चित्स्वितमथ मनजाश्चिबिषो वज्रिदम्भाः । कृत्वा तेनाशु कृष्यान् भुवि विगतभयाश्चारयन्तीह चौराकृष्णाद्भोचारकाण्यं (A, S गैरोचनाण्यं) तदिदमिह जनैः कथ्यते वर्णतैलम् ॥ १० ॥ N has one stanza more : त्रिफलातिलास्त्रिकटका सर्पिर्भङ्गातकं सिता चौरं सप्रसमः कामचर्तुर्धैः स्त्रोसहायेन नाशयति सर्वविलां (विलां?) पालितं मेधामावहति शुक्रदृढं च दशकाशुकासुकाशुके - - कुष्ठं हन्यान्मासप्रयोगेण ॥ इति केशकृष्णाकरणं ॥—5. (in A, S 11). All but one Cod. of C स्पृक्षा.—S वलिका.—S केशर.—6. A, N मार्जिष्ठया.—S ब्यान्नमुखेन.—A, N and C in the text चूर्णं.—All but C, B चंपकगंध.—7. A, D, N तुरष्क.—A, S सध्याभो.—A, S रंक, B, D एन for एव.—A, S प्रधूमान्वितः—A, S कुसुवरः, D कुसुम्बरः, N कुसुम्बरः—8. S सत्पुष्पा.—A कंदुरक, one Cod. of C कंदुरक, S कुंदुरक.—A, N तुरष्क.—A, S, N धूपो.—9. All but D गुग्गुलु.—N वालुक.—All शर्करा.—A, S बालकमार्षो.—10. and 11 transposed in A, S.—10. A, S नव, C वन, and once in one Cod. घन, he gives no explanation, saying only वनं (thus neuter) प्रसिद्धं. I think that त्वक् is meant; cf. vs. 13 and 29.—N पादाभार्गावार्धतैर्भवन्ति.—A. S सनारसाः—11. All but C, N गुग्गुलो, only one Cod. of C in his text गुग्गुलु.—12. A, S, N संयुतसूर्णः—C पटवासः, but he mentions and explains also the other r.—N प्रवरो, A, S

प्रचुरो.—13. A, S नव, C, B, N वन, where C again only says प्रसिद्धं—
All but S, D स्पृका.—A तगरनख, S तरनख.—A चौर, S चाव.—A, S
परिवर्तने, D पारवर्धिते, N परिकल्पिते.—15. A, S, N तदूनो.—20. A, S
बोडशकैद्रव्यगणेशं.—A, S सुक्तानि for महितानि.—22. A, S रक्षाविनोते—N
विनाय.—23. D केशाः, the others, C however only in the text, केशाः—
24. A, S कुंदुरकरां.—25. D मिश्रित.—D द्रव्ये.—A, S, N यवाद्यादश.—26.
N, A तुरष्क.—A, S धूपा.—27. D बह्वय.—28. C सर्वधूपाशे or •पाश for
धूपयोगाशे; ते has been changed by me into तेः—29. A, S लोभ.—A, S
लता for मत, N नख.—All वन, except one Cod. of C in the text घन
(sic), explained by परिपेक्षवं, perhaps here also घन is meant.—All कोष्ठाः
and पुटा, but C only in the text.—30. A, S अत्र for तु.—C, D हिंगुल.—
All but C, D धूपाः and केशर.—31. A, S गंधोदकपु.—32. A, S, N किंचित्.
—33. A, S कपूराः.—A, S युग for यम.—34. D सुगंधतां.—N संभवतः—
A, S भवानि.—35. D सुगंधतां.—36. A, S विर्गाधि.—37. A, S, D वर for
दित.—A, N कंकोरु.—A, S सुद for मद.—The number of this Ch. in C
is 73, in A 76, in B, D 77, in S, N om.

CHAPTER LXXVIII.

2. D रतायै, N अतायै.—3. D वामा for भावा.—5. C विश्वाद्.—6.
A, S प्रथमाभियोगे.—7. All but one Cod. of C दुःपं.—D तापिता, N
तापणं.—N परधं तु.—9. A, S भिक्षुकिका.—10. A, S चेतार.—11. A, S
रानो.—A, S र्दक्षिका (singular).—12. C, N write अयपरमे.—All but
N अभिनवं, but C explains as if he had our r.—14. N मद for मल.—A
काये, S, N कायैर्.—C, B, D निःसंगसंबंधकथां न कुर्यात्; the r. of C is
extremely doubtful, as the expl. of मलदिग्धकाया निःसंगं etc. is left
out.—15. S सुप्त सुप्तया, A सुप्ते न सप्यात्, C, B, D सुप्ते न सप्ता, C, however,
according to his explanation must have r. सुप्तेःसुप्तया, N has सुप्ते प्रसप्ता.—
A विबुध्यात्, S विदुध्यात्, the original may have had विबुध्यात्—After vs.
15 A, S insert: क्वाप्सितं करणवेदिनमपराधं सत्याभिधाधिनिमिष्ठुरमिष्ठुगंधं ।
सोऽगुच्छरश्चणपरं सुरतानुकूलं अन्तःकरेष्वाप नरं प्रमदः स्मरन्ति ॥ S r. अल्पदापसु,
and सुरतानुरूपं.—16. A, S अक्षया.—17. D स्वप्रसप्ता.—C, D रक्तपाता.—
C once प्रवाहिनो, once प्रवाहिणो; he mentions a v. r. प्रदाहिनी.—N
महाखना, D महाअसना.—B, D कपिलान्विता.—18. C, B, D यस्याः प्रचलन्ति,
N यस्याश्च भवति.—S खिखिनि, A खिखिनी, one Cod. of C in the text
खिखिनी, N खिक्रिचिनी, B, D नेचवतो, it is explained by C as meaning
अवक्तभाषा.—19. C, D स्यात् for यत्.—20. A, S संयोगाद्.—21. C, B, D
निधेयं.—C, B, D स्त्रोमिः without च.—N स्त्रायोत चतुर्थेदिने.—22. पृथ may

be read also पुष्य.—C, B, D याः प्रोक्ताः.—D ताभिर्विमि०.—N स्थायीत चात्र :
—A, S तु तत्र.—After vs. 22 N inserts one, and A, S three stanzas
या (A य, N स) लक्षणान् रक्तपुटाङ्कुरांश्च सरेणुकं साम्बरकं च रोधम् (N रोधी
वन्धा पिबेत् क्षीरघृतावसिक्तं पुत्रं प्रसूयात् स्वपितुः समानम् (N स्वपितृतुल्यरूपं) ॥
वाराहो शतवैर्था च तथा ऋषभजावको । अनन्तां सहदेवीं (A वां) च काथितां
पयसा सह ॥ निशासु प्रमदा पीला भर्तारमुपसञ्चरेत् । मेधाविनं प्रजायेत पुत्रमाप
ङ्गलोचनम् ॥.—23. A, S भवंत्यशुग्नाः.—A सरूप —S विकृष्टपर्वाः.—24. A, S
सध्यापननं—26. All but D विकृतानि.—B, D चितथे.—C, B, D om. तत्र.—
The title of this Ch. in A, S is रक्ताविरक्तादिलक्षणं, in N पुरुषयोग. in
C, B, D पुंस्त्रीसमागमो, but at the beginning of the Chapter it is called
by C स्त्रीसमायोगाध्यायः—The number of this Ch. in C is 74, in A, S 77,
in B, D 78, in N om.

CHAPTER LXXIX.

2. B अशन.—A, S काम्यार्थजन.—C शको.—N शिशिपा, B शीकचना,
A, S शिशिपाय.—3. C प्रयातित.—4. C, D, N ये च for वा ये.—5. All but
C सेविनां.—A, S विनाशः स्यात्—A, S om. भय.—C, B, D अनर्था अनेक.—
7. D सांगम्य.—9. A, S त्रिषट्हीना.—10. A, S, N आचामन्तंशः—11. D
श्रीपर्थाः—B अंशकलतो.—12. A, S शिशिपया.—S, D बडविध.—A, S
सर्वाङ्कुरः—13. B, D पादपर्थङ्गः श्रियमायुर्दीर्घं युतं शुभं वित्तं, in C, N the
same, but पद्मं, S यः पद्मपं, A, S सुतं for यतं—14. B, D अथास्य च, an
attempt to avoid the less common Active form.—15. न before सिन्दुकी
om. in A, S.—S शिशिपया, one Cod. of C perhaps शिशपाय 16. A
सात्.—D प्रथक्तं च, N प्रथकोन.—17. D प्राणात्रिचंति.—All but C चाग्रकत.—
17. C, in the text only, रोगान् for दोषान्.—18. A आस for अम्ब, S
आसन, D आघ, N अश्व.—D उदुंबर for स्पन्दन.—A, S स्पन्दनाश्च शुभपदाः
—A, S फलतरूपां सर्वेषां.—21. All शोच, but see Ch. 94, vs. 2.—
22. One Cod. of C द्वेदेषु.—N प्रणष्ट.—C, N (आश्च, A (अश्च), S (अश्च), D
(अश्चि, changed by me into स्व.—S धन, A धरण for निधि.—24. N, and
one Cod. of C रिपुवशिलं, A, S रिपुवडलं.—25. D, and one Cod. of C
विपच्छुते.—26. N शुष्क for शुक्त.—A, S अशुभशुभा ये द्वेदाः—27. D इर्था, N
ईर्था.—D दिशये.—28. D, and one Cod. of C अर्वाक.—All but C write
शिरसा.—29. N शूषिर. —B, D, and one Cod. of C यस्य for यश्च, N पादे
यश्च यन्मै कुम्भं.—30. A, S भयं कुरुते.—A, S चाधेरोधः—31. D ईर्था, N
इर्था.—32. A, and one Cod. of C निःकुट.—A, S, N कोलाख्यं.—All but
one Cod. of C शुकर.—One Cod. of C, B, D कोलक.—All but C वंशुकम्.
—33. C पृढवत्.—N शूषित.—A, S सधां,—A, B, D and one Cod. C

निःकृट्.—One Cod. of C, D निःपाव.—C, A, S नीलकिट्टं.—A कोणाख्यं, the others but one Cod. of C कोलाख्यं.—34. After this A, S insert: शिरेरु मूलं च वृक्षाणामयपादाः प्रकीर्तताः । असनारिणदण्डेषु यतो मूलं ततः शिरः ॥.—35. B, D and one Cod. of C कोलक.—All but C वंधुकम्.—36. A, one Cod. of C, N निःकृट्.—All but one Cod. C शूकरके.—D कालाख्यं.—37. D कोलक.—C, A काल, S, N कालं.—All but C वंधुक.—A, S om. न.—D, N सर्वयन्य.—The title of this Ch. in A, S, N is शय्यालक्षणं.—The number in C is 75, in A, S 78, in B, D 79, in N om.

CHAPTER LXXX.

In A, S this Ch. is preceded by दीपलक्षणं (with us Ch. 84), and दन्काष्ठलक्षणं (with us Ch. 85).—3. One Cod. of C दधीचने, N दधीचिनो.—4. S रुचिराख्याः.—S वैदूर्यं.—A, S विप्लवक.—A विप्रसक for विमलक, S om.—5. A, S मुक्ताफलप्र०.—6. A, S वेष्वाकटे, one Cod. of C वेष्वाकटे; the r. of A, S would be correct if they had वेष्वाकटे.—All but C, N काशलकं, C कोशलकं.—A, S सौराष्ट्रकं.—D साय्यारके, one Cod. of C सौरारके, another शूपारके.—7. D, and one Cod. of C सातंगं.—D वध्रपय्य.—D कालिंगं.—S, A, S षडसं.—A, S सर्वरूपसंस्थानं, N only संस्थानं.—10. All but one Cod. C write श्रातः.—D आकरसंनिभं.—11. D शिनिभं, A चाभितनिभं, S वासिनिभं; a plainer r. would be श्मितभं.—13. D पंचांशयति, N like D, but च for चेति, A, S षोडशांशय.—A, S भागलु.—15. A, S युक्तं, N युक्तं स.—C शर्करं.—All दग्धं, changed by me into दिग्धं.—One Cod. of C वल्ल for वल्ल.—A, S शुभदानि.—17. B, D च किंचिद्, and also C in his text, but in the comment न.—N श्राणोनिभं दितकरं.—18. C, B, D भयविष.—B, D अधि for अरि.—C, B, D शुभमृषभोग, but he mentions also the r. शुभमुरुभोग, which has been corrupted in A, S to शुभगुरुभोग, in N to शुभसुरभोग.—The title of this Ch. in C is वज्रमणिलक्षणं, in N वज्रलक्षणं.—The number in C is 76, in B, D 80, in A, S, N om.

CHAPTER LXXXI.

1. All but one Cod. of C शूकर.—All but one Cod. of C सौराष्ट्रकं.—2. D, N पारसवाः.—S पांडवाटक —A, S हेमक.—N आगरा.—All but A, S तु for चि.—3. S वडशः स्थानक्षि०.—A स्थान for स्थानाः.—4. N पारलेकिक.—5. A, S om. अति before सदा.—D पारसवाः, N पारशसवाः.—C seems to r. वृचद्दिसंस्थानम्.—6. A, S विषट, the syllable before वि is reckoned short.—7. D शशांकरशिनिभं.—8. B, and one Cod. C गुडका, another Cod. of C गुडका, A, S कलिका.—S प्रभं च.—D अग्निदैवत्यं.—9. N एत for

धृत.—10. All but D विंशति च०.—10. च in A before शतानि, it is om. in S, D, N.—11. All पंचविंशच्छतं.—D, N कृष्यान्ना भवति मूल्यं.—S रुष्यम् for रूपम्, N सप्ततिरूपा इतं मूल्यं.—14. D विंशता सचितं.—15. A, S सप्ततिमूल्यं.—C, A, S again मूल्यं, D मूल्याच्च—N पंचकरहिता for पंचोना वा.—B, D पंचाष्टकं मूल्यात्.—16. All but N अशीत्या for अशीत्यास्.—C विंशच्छतस्य, equally correct, but not so clear as our r.—A, S स for सा.—17. A पिकापिचार्थाद्वारवकसिक्थं. S the same but पिष्का, D पिकापिचार्थारवकः सिद्धा, B the same but रिवकः, N कार्पापिचार्थारवकः सिद्धास्, one Cod. of C in the text पिकापिचार्चारकपिका, afterwards पिका, पिचा, अर्चा, अङ्गा, रयक, पिष्का, another in the text पिष्कापिष्कावारवसिक्त्या, afterwards पिष्का, पिष्का अर्थ, अर्था, रव, सित्या; a third like D.—A निगडा०.—18. A, S पारिचयः.—19. A, S त्रिंशानं.—22. N हिता for धृता.—S राज्ञा.—23. A, S शशकान्त.—D मत्स्यात्.—24. B साप्तमाद्, A सप्तमाद्, S समा.—B, D खलु for किल.—27. A भृतं.—28. A, S वेणुसंभृतं.—29. A अनर्थः om. न.—30. All but C शोक.—D, and C हृष्टिणि.—33. A, S द्विविंशद्भिर्गु०.—34 N मुक्ता.—35. All but A, S and C in the text, गुलकैर्वा.—A, S मथ्यांतं तद्.—D, N विज्ञेयस्या०—S चाटुकारम्, N चाडुकार, one Cod. of C चाटुकारम्, another चाटुकार इति; the mascul. gender seems preferable.—36. D मणिनाविमुक्ता, one Cod. of C मणिविप्रमुक्ता.—The title of this Ch. in C, N is मुक्ताफललक्षणं; in D रत्नपरीक्षा—The number in C is 77, in the others om.

CHAPTER LXXXII.

1. One Cod. of C कुरुविंदु, D, N कुरविंद.—2. D, N कुरविंद.—D भवाश्च धवला.—3. S खिग्धप्र०.—N प्रभानुपीत.—A अंतःप्रभा.—5. A, S om. मणि.—N मूर्ध्नि.—6. A, S श्वन्विनाशयति.—7. All विंशतिस०.—9. A, S, D सद्दश०.—All write चय for क्रय, but the explan. in C shows that he r. क्रय.—10. One Cod. of C वर्षे.—11. A वर्षैवङ्गलं.—A, S मूल्यगुणं.— One Cod. of C विंशतभागं, another Cod. and N, विंशभागं, S विंशतिभागं.—The title of this Ch. in C, B, D is पद्मरागलक्षणं, in S पद्मरागमूल्यं.—The number in C is 78, in B, D 82.

CHAPTER LXXXIII.

1. A, S पद्म for कुसुम.—C, B, D विहित for विष्टतं.—The title in A, S is सरकतमणिपरीक्षा, the other सरकतलक्षणं. At the end A, S have रत्नपरीक्षाध्याये ऽशीतितमः—The number in C is 79, in B, D 83.

CHAPTER LXXXIV.

This Ch. precedes in A, S our 80th Ch.—2. D वैदूर्ये.—S वचिरां, C, B, D, N सुचिरं.—After vs. 2 A, S, N add: आतप्रकांचनकणाम्बुवहा-
वदातो यस्यानलो ज्वलति वेदिगतो वृषस्य । तस्यां नवांबुवलयामभरणं नयन्ती
वीथानुजालावशता (A दा) हतराजशब्दाः ॥.—The number of this Ch. in
C is 80, in A 79, in B, D 84.

CHAPTER LXXXV.

1. N अपि for अति.—A अथो वक्षथ, N वचति.—All but C कानि कानि
for कामिकानि.—2. B लचानि, D लचा च.—3. C सुगुणाः, the others but
A, S सुगुणाः for ककुभे.—4. A, S शिरीषेषु.—S समभौष्मितीर्थान्, A समभौत्रि-
तीर्थान्.—N जात्या.—5. C (in one Cod.) in the text लब्धिः, but afterwards
दृढिः, A, S सिद्धिः.—6. All but A, S नापे, A, S निवे नापे.—All अन्नमेव,
changed by me into इदमेव.—B, D, N उपहन्ति.—7. C साल.—8. C
writes once अष्ट, once सर्व for वाङ्, but he expl. वार्षिक, N चाष्टं. A, S
प्राङ्मुखसंस्थिता वा ऋत्विगणं तत्र वितस्त्रिमासं । अथाद्.—All but A, S शुची.—
9. S संस्थितं च. A the same adding यत्.—A, S अग्रभमते.—D विनिर्णयन्तं.
—All but C, D, N मिष्टम्.—The number in C is 81, in A 72, no number
in the others.

CHAPTER LXXXVI.

1. C, B, D हक्रशुक.—N कापिष्ठल. A, S कापिंजल, B, D कापिहल.—
One Cod. of C ०भ्य ऋषभः प्राञ्च, A, S प्राञ्च ऋषयो.—2. C in the text आद्रव्य-
वर्द्धनः, but afterwards in one Cod. श्रोवर्द्धमानकः—C, B आवर्तकः, D
आवर्तकः—N राजः, one Cod. C, and A, S राजजः—3. N मत्तं सप्रर्षीणां च,
in one Cod. of C परमर्षीणां मत्तं च, in other Codd. of C like N.—D
शास्त्रं for यच्च.—One Cod. of C तथा for च यत्.—A, S, N स्त्रिभिः for
भूरिभिः—4. C, N मिह्वरः—6. A, S उत्तेन.—7. S एषा.—S लभ्यते.—A, S
उद्दे शस्त्रा०, N उद्देशः—8. S, N अंग.—A, S प्रशक्त.—11. D दैवतं.—All
साम्यं, changed by me into साम्यं.—12. N प्राप्येवद्.—D एषसूरीयम्.—N प्राप्य
for फलं.—A तथाधिकं.—All अंगार, changed by me into अंगारि.—N
दिप्त.—13. A, S फलं for शुभं.—14. D, N बुधः for पुनः—17. D, N मांगल्य.
—18. A, S चैवं, D ज्ञेया for चैवां.—19. A, S च for स्युः—N विनिर्जिताः—
20. One Cod. of C only परिव्यस, the other Codd. परिव्यस, like B, D, S ;
A has सन्निषोच, N पटल्यस. Cf. vs. 44.—N विष्कराः, the others write
विकाराः—22. D, N लोमास, one Cod. of C लोमाश, another like D, N ;
A, S, B लोमाश; although the original form is undoubtedly लोपाश,

I did not venture any change, none of the MSS. exhibiting the latter form.—23. N श्लिष्यक for श्ल्यक.—25. C, D अर्दिताम्.—A, S, N चक्षक०.—26. All but N, and one Cod. of C निःफल.—A, S, N शशाः—27. All but C शूकर.—28. All but N and one Cod. of C निःफल.—N (अ)पि for वि.—29. N ऐन्द्रानिल.—A ०चा.—A, S जोवी.—All but C युक्तः—N प्रदक्षिणाः—30. D श्लिष्यिक्त.—32. A, S ततःपरं.—33. C, B, D द्वात्रिंशद्वं भेदाः स्युः—34. N दिशः—35. N दिग्नेन, meant perhaps दिग्नेन.—36. All but D श्रांतहृ०.—B, D तुष्ट for हृष्ट.—A, S पूजिताः—33. A कुङ्कु, the others but N कुङ्कु, without Visarga—C, D, N गंधिकाः—38. C, D द्विकाराः, N द्विकाराः—39. S, N निखनाः—40. A, S घामो.—A, N षड्, both times.—C, D गंधार ऋ०.—S षडभाय.—41. one Cod. of C कोल, another कोल for क्रोड—43. All अपराकृतः—After vs. 43, A, S have : नम्रकालूकशूकर्या दक्षिणा निर्गम पूजिता । वामाः सिद्धविडालाखुददुर्व्याघ्रसारसाः ।—44. N द्विकाराः, C, B, D द्विकारः—One Cod. of C परिता, others पिरिलो, B पिललो, D पिरिलो, N पिरिलो, A चिरिलो, S पियलो.—46. N खंडो, one Cod. of C शण्डो—47. B, D बत्यामनाद्.—48. D कुकुटाः, S कुकुराः—49. C शर्वरोपधिसेभागे.—A साधिषु, B, D, and one Cod. of C in the text सर्वेषु.—N योजितः—50. All but A, S दु for च.—51. B, D संज्ञको.—53. B चैष्टै, N चैष्टाभिराभितः—55. All but C, N पद्याद् for पुनः—B, D, N विपर्ययात्.—56. B, D यातुः प्राहरणे—A, S, B, D एव च—57. B, D च for तद्, one Cod. of C in the text वर्षान्तो ऽपि.—61. A, S अप्रभिद्धं—62. D, and one Cod. of C निर्हार, A, S नोहार, N निराहारविहारणो—A, S, N वामो (but A in the margin कोशन्), C, B, D ब्रुवन् for स्वम्.—A, S, N व्रजन्.—63. B, D ध्वनि for खर.—64. N चरन् for खवम्.—दृषाणां च ऋत्व०.—65. C, and *prima manu* N सृषिक.—66. C, B, A वा, S वै for चा०.—67. A, S अतिग for अंतिग.—D अपार्यापि०, N आश्यास्यपि०, A अमरुह्यापि०, S अतिचपि०.—A, S अत्राशैर्.—A, S मोक्षतः—68. S क्रूरोप-ह्रापदुष्टैश्च.—S दृषदृत्तकौ, A दृषदृत्तकौ, C दृत्तकः in the text, in the comment is found दृदकेन (= श्रावकेण), but this seems to have been a v. r. mentioned by him, N विज्ञैः—69. A, S दृक्षतः—70. All but one Cod. of C वासितः—D क्षिधा, A, S क्षिधः—71. A, S श्रांतप०.—A, S विरुते.—72. D स्वपरतो.—73. A, S अत्र for अय.—D पाद् for नर.—74. A, S संयुतिः—76. A, S पट्टचर्मपट्टरेखाः—D तानि for तेषु—77. C, B, D तु for च, N स्युः—79. A, S प्रदीप्ता for प्रदीप्ता.—D तासु for ताश्च.—80. A, S पृष्ठा तु, one Cod. C पृष्ठासु.—A, S कामिनोनां.—All but A, S मघाय.—N दृष for कुल.—All have संश्रयाश्च, changed by me into संश्रयासु.—D श्राकुने for सर्वश्राकुने.—The title in C is मिश्रकं नामाघ्यायः—The number in A, S is 1, in B, D 86, in C, N om.

CHAPTER LXXXVII.

1. A वाविरुवन्, N वासन्.—N संदत्, S संस्यत्.—All but A, S शङ्कनः—3. A, S द्विजः.—A संदर्शयत्०.—5. A, S कोणश्च.—A चतुर्थे.—6. A, S वारण, N वारणशैवाः—7. N संवर्ष for कैवर्ष.—N तित्तिरावाग्निः—9. C, N ढतीयेऽंशे.—10. A, S क्रमशो ऽतः.—A, S संगः—12. A, S दंडि, N डिंभ for डिंडि.—25. A, S परेण, N परं for परे.—A, S चित्रवस्त्र. N चित्रवस्त्रु.—16. A बंधुव्या.—17. A वन for धन.—18. N वास्तुवत्सरे प्रोक्तं, C, B, D वास्तुवत्सनेम्युक्तं.—19. A, S चरित for चरे, N चंतरे.—20. All but S, N कौलकः.—22. S दुग्धा for उखा, D कुलित्य.—26. A, S, N ईशाने.—28. A, S, N वायव्य for व्या.—N नैर्कृत्योर्.—A, S च्चनयोः for उभयोः—31. D, N आग्नेय्यां.—33. S, N नारायतः.—A, S सगंधानां, N सगंधानां, B, D च डुंबानां, one Cod. of C also seems to mean डुंब for डुंभ.—34. D नियंथ.—35. All but A and one Cod. of C थाव.—A अपरार्द्ध—A धर्मकृतं.—A, S विनश्यात.—36. All but one Cod. of C write अरण.—A, S, N च for च्च.—38. All but C ख for (अ)श्च.—39. A शस्त्रपातावु०, S शस्त्रघाता उ०.—N inserts तस्य before च च्च०, S च ख, B दस्य, A रेव.—40. A, N ईशान.—41. All स्त्रियो.—One Cod. of C कालिकानां, but that is a copyist's blunder, for it is expl. by गंधशांजिन. B, D काशकानां (sic), S कैशिकानां, A काकानां.—43. A, S चौर for चाच, C once भोच; he expl. it by धूर्त, taking perhaps धूर्त in the sense of दच.—C, D वधः—44. A, N विशूचकाः—45. A, S भवति च for च तत्र.—The number of this Ch. in A, N is 2, in C 83, in B, D 87, in S om.

CHAPTER LXXXVIII.

1. A, S, N त्रयः wrongly, C, D, N त्रये, allowable.—N फेटाः, A केटा, S फेटा.—D कर्कुट.—A, S चटकाः प्रोक्ता.—2. All लोमासिका, cf. Ch. 86, 22.—A, S, N ह्यिकाख्या.—3. All but C आविधाष्य.—All but C, S शूकरः.—4. D कबक, S कवक.—S उलूकचेष्टायाः, A उलूकचेष्टाः याः—A, S पिंगलका पिचिकाहिका.—5. All but A, S पोतकी, om. क.—6. All but one Cod. of C श्रोतस्.—D भेद्यः क०, N भेद्योक०.—N कलिकारिका.—C विरुवन्ति, afterwards वासते.—A, S व्यंग्ल.—7. N ओकंडीकः (sic), one Cod. of C बांडीकः, B भंडीकः, A, S ओकंडीकः.—D दचिणे, S दचिणतः.—N हिकारो, A हिकारो, D हिकारको.—8. All but C, S गर्भोक्कुटस्य.—9. A, S धन्विन, C, B, D वन्धन.—A, S, N कोल for क्रोड.—All but C शूकरो.—D चटिकश्च.—D शूकरिकः, the others but C शूकरिका.—10. A, S, N विद्वद्भाः—11. A तित्तिरिरीति, S तित्तिरीति.—A किलिकिलीति.—12. N जातिविशेषेण.—A, S, N कालो स्य.—14. A, S चिचिचि, C चिचिचिदि. D विचिचि, D धिचिचि, N चिचिचि.—C, B, D चंचेति.—C सप्रियलाभाय, N

the same, only सु for स्व.—One Cod. of C चिचिगिति, another चिकचिकिति, B धिकधिगिति, N चिकिकीति, A, S चिकिकिति.—15. C गङ्गुः, B, D गुङ्गुः, A, S गुग्गुल.—16. A, S किक्किसि, C किक्किसि, N किक्किसि, B, D किक्किलि.—A, S केवलः—N न च for न तु.—17. A इष्टये, S इष्टये.—One Cod. of C शुकतः, another सुकतः, D वुकतः.—18. D, and apparently C प्रोन्नतः—N धार्त्वी सागरांतां करोति.—21. A, S किलिकिलि, N किलिकिलि, D किलिकिलि.—C, D निचिर.—C क्रोशन, the others वामन्.—N ग्रस for ह०.—22. A, S शुभप्रदं—N उशति तज्जाः—A, S यानि for यातुः—A, S चुम्बु, one Cod. of C चुम्बु, another म्बु D म्बु, N गुम्बु.—25. A, S स उक्तः for तदा स्यात्.—26. S टिटिटि, A टिटिटि.—S, D फेट.—All but one Cod. C वामिते.—A विकाश for विशेष, S विनाश.—27. D श्रीकंड.—S च for तु, D प्र.—A, S कककोति.—A, S चिचि चोति.—All but one Cod. of C and N निःफल.—28. All but C दुर्बलैरपि.—S चिरिचिलि, A विरिचिलि, D विरिचिलि.—29. A, S चिकिचिकि, D चिकिकि, N चिकिकि.—All but one Cod. of C वामितम्.—N, D and one Cod. of C एष for एव.—All but A, N क्रक्रेति.—All but C वतं for द्रुतं.—A, N चेल, D अथ, one Cod. of C like D, another श्रेकचे, a third चेषे, N चेषे, my reading is conjectural. A, S विद्युतं, D विद्युति, N विद्युति.—31. C in the text फेटक, one Cod. of it afterwards फिटिक, N कंटक.—B, D सिरिचिलि.—32. All but C, B, D स्यातुर् for स्यात्तुम्.—33. C अकार.—C, N उकार.—35. C once चिचिका, another time चिचिका.—36. A, S ऊङ्गुगु, C text, B, D ऊङ्गुगु, C afterwards ऊङ्गुगु, N ऊङ्गुगु.—One Cod. of C, text, and the others, but A, S वासति for क्रोशति.—One Cod. of C किलिषा, another किलिवति, D किलिसः, B किलिसः, N किलि.—All परिवर्तित. changed by me into प्रतिरौति—A न चिरेण, S आचरेण.—39. C दसि, A, S दति.—A, S क्रुशुक्रुशु.—41. A, S तपर्वमेवम्. C तमर्थसिद्धिम्.—43. A, S आष्टक्याय, B, D, and it seems one Cod. of C आष्टक्याय.—B, D तदितः, and C the same in the text, but afterwards गमितः, like A, S; I have changed it into वेदितः—44. N प्रनोदयामि, A, S प्रणोदयामि.—45. D चिरिचिलि.—A, S अयाकुललं हिदिकार.—All but one Cod. of C कुर्वाति.—A, S च for वा.—46. C, N पि हितार्थ (expl. अभोष्टार्थः), B, D (अ)भिमतार्थः, A, S अनोन्यत्.—D, N वरमध्यहोत्रं.—47. N भागैः—The title in C, N is विरताध्यायः, in B, D मङ्गुनविरताध्यायः—The number in C is 84, in B, D 88, in A, S, N om.

CHAPTER LXXXIX.

1. (a). C, N शदसं.—A वानदेश, S चावदेश for वा प्रदेशं.—A, S भवेचार्द्रके.—D, N मष्ट for सिष्ट.—(b). B, D, and perhaps C शशावन्वसूय,

N ग्मशानानि वा श्वावसूच्य, the r. of the text is irregular, but any change is against the metre.—D वावसूचयन - S, D दुष्टता.—(c). A, S वास्था for च स्था—C संगृह्य for संग्रह्य.—A, S साग्निजातेन.—D अपिघाते.—All but A, S भुवा ऽग्नागमा.—N वापदं (i. e. व्यापदं).—(d). D शृङ्खलामिधुविशोर्ण, N *prima manu* शृङ्खलानिमिदूरं शोर्ण.—D स्त्रागृह्य.—The MSS. °श्चकर्णाव and °श्चकर्णाव्.—A, S om. विरोधि.—A, S तदा for तथा.—2. D, N देशाधिपस्युस्.—3. All but one Cod. of C, and S अपराङ्गे.—4. N दिग्मुख्या. D दिग्मुखा वा.—5. All but one Cod. of C, and S शिवदिग्.—A, S, N शिवादग्मुख्यः.—All but A, S पाताः.—6. C, B, D रुजं च.—7. B, D प्रत्यावृत्ते, one Cod. of C in the text प्रत्याहृत्ते, but in the comment C r. like B, D; A, S have प्रत्याहृत्ते, N प्रहृत्ते.—8. S, N बद्धिमुखं—C °मुखो वक्त्रि च.—9. S खातक.—B, D धान्यर्थाद्भस्.—One Cod. of C अद्य for अपि.—11. One Cod. of C perhaps जिघ्रन् जानु.—All but B, N सार्धि for साकं, C however has the former only in the text.—A, S अथोपयोगः.—12. A, S पादौ जिघ्रज्जानु वित्तागमाथ, B, D यातुः पादौ जिघ्रते चेदयावां. D जिघ्रते चेत् for चेद्विजिघ्रत्.—13. A, S भक्ष्यं.—A, S, D विद्यात्.—14. One Cod. C खंतेति, the other खंतेति, changed by me into पंखेति.—A, S, N ये वार्मति.—A, S कष्टैरिव—B, D हन्यमानाः, C वध्यमानाः.—15. A हृक्कणी, S हर्कणी. D, N and one Cod. C हृह for सिष्ट.—N न for (अ)पि.—16. B, D रवंति.—A तत् for ते, S त.—17. A, S हृहोपरि.—B, D वासति for क्रोशति.—N वायुर्त्.—S शस्य, D सम्यविनाशकः स्यात्, B seems to have the same.—20. A व्यासनं.—The title of this Ch. in A, S is अरुतं, in B, D अचष्टा.—The number in B, D is 89, in A 1 of the Sarva-cākuma, no number in the others.

CHAPTER XC.

1. S, D टाटाः, N भयाथ.—A, S कथिताथ दोषाः.—2. N, and one Cod. of C कर्क, another Cod. of C कंक, B, D क्रक.—3. A, S, N शिवाः, and farther the Plural.—A धूपिता.—The 3th vs. in the MSS. is a repetition of 86, 34; it is left out in our text.—4. A, S, N शुभा for अशुभा.—5. C टटति, D टालादति.—B, D स्ततिदा शिवा, C notices a v. r. स्त, but so he r. himself, स्तति seems to be meant.—7. A, S वारुणानुं, C वारुणानुं, N वारुणाभिः.—N चैव.—11. All but A, S वाजिभिः.—12. A, S अमे for च सा, N सदा—D, N स्त.—D वेदनी.—One Cod. C writes िहृहृ for फिफे.—B, D °हितः—खरः.—13. A शान्तावधवं, S शान्तावधवं.—N वर्णपरगो.—All but C वासमाना.—All but B, D टटति.—B, D धधे.—A, S तस्यास्तु.—S ह्वन्तत्.—14. N, D वामेत्.—S प्राधि.—N च for वा.—The number of this Ch. in B, D is 90, in the others om.

CHAPTER XCI.

1. C here and in the sequel **खगल**.—N **भर्षतः** for **रुवंतः**.—All but A, S **सृगविरुतं**, although C at the beginning of the Ch. calls it **सृगचेष्टितं**.—The number in C is 87, in B, D 91, om. in the others.

CHAPTER XCII.

1. A, S **रोगं**.—B, D **दुःखं** for **पत्युर्**.—S **भित्तिसु०**.—S, D **तत्कराणं** **रु०**.—2. D, and perhaps C **अकारणं**.—D, N **वार्सति चेद्**.—N **सरमा०**, B, D **सरघा०** for **सरमा०**.—3. C notices a v. r **आग्युते** for **आगच्छत्ये**.—C, A, S **भंभरवेण**.—N **भवति** for **गवां गाः**.—A, S **रामप्र०**.—The title in A, S is **गोमहिष्यादिचेष्टितं**, N **गोवतं**.—The number in C is 88.

CHAPTER XCIII.

1. A, S **आसनात्परस्थं**.—A, S **अतःपरं**.—A **दहर**.—3. A, S **पराभवाय**.—5. C, N **विरोधनां**, D **विरोधतां**.—B, D **सादो दुर्मनसां**.—7. S **हेषितं**, noticed also by C.—N **सौख्यकं**.—9. C once **मच्च**, once **मच्च्य**, the others but N **मच्च्य**.—A, S **आभनन्दनः**.—N **नन्दनो**.—10. All but C **पत्युः** for **भर्तुः**.—11. A, S **खन** for **खर**.—N **पांशुं**.—12. A, S, N **पादं**.—B, D **उद्धृत्य**.—13. C, N **हेषितं**, D **हेषिता**, A **हेषिते**.—15. A, S **स्थान** for **ज्ञान**.—The title in C, B, D, N is **अन्वेगितं**.—The number in C is 89, in B, D 93.

CHAPTER XCIV.

From vs. 1—7 = Ch. 80, 20—26.—1. N **प्राञ्च**.—A, S **कन** for **न**.—S **गिरिकरिणां**.—2. N om. **हेदे**,—A, S om. **दृष्टेषु**, B, D **हेदेषु दृष्टेषु**.—3. C, D, N **प्रणष्ट**.—4. All MSS. here for **ख**, cf. Ch. 88. 23.—A, S **धन** for **निधि**.—A, S **तु** for **च**.—5. All but A, S **वशिलम**.—6. D **कृते**, S **श्रुते**.—A, S **श्यामे**.—7. A, S **सुखावहे**.—8. The two last *pādas* transposed in A, S.—9. A **हितेभयाद्**, S **हितैभयाद्**, D **हितेभयं**.—10. C, D **वदेत्** for **भवेत्**.—11. All but A, S **सृष्ट** for **दृष्ट**.—N **पादपे;थाप०**, D **पादपेत्याप०**.—A, S, N **विमद्वनेन**.—12. All but C **अष्टकश्लेष**.—13. A, S **उन्नम्य**.—A, S **सोकरं**.—C, D **तन्माले**.—D, and it seems also C **वेष्टेद्**.—The title in A, S is **हस्त्रिचेष्टितं**, in B, D **गजेगितं**.—The number in C is 90, in B, D 94.

CHAPTER XCV.

3. All but C **प्राक्शा०**.—D **मध्ये**, N **मध्यात्**.—4. One Cod. of C **सूषिक**. All but A, S **च** for **तु**.—5. S **डमर** for **चौर**.—7. All but C, N **गौरक**

for चौरक.—10. A, S अयाकुलं—A, S भवेत्.—11. N परितोषम्.—12. All but C जन्मान्यथांगनायाः—15. C, B, D पीतद्रव्यैः, N ०द्यैः—16. A, S om. पुलिन.—D अन्यता.—18. B, D विटपं.—A, S रत्नं कृष्णं द्रव्यं.—19. All but A, S चौर.—20. A, S अवलोक्य खवन्.—N खवन्, the others, but C, ब्रूयाद् for खयाद्—B, D अवाप्तिः for आप्तिश्च.—21. A, S अनलोपजी०. D अनलजी०.—D ०विनां.—D कुलित्या.—One Cod. of C गांधर्वकैर्—23. A, S तुरंगम.—25. A, S सिद्धिदो.—26. N वासयेद्.—27. D, N वासति for विख्यान्.—28. C, B, D विखवन्, the others वासन्.—29. B वाशते, D वासते for विख्याद्, N वासेदाम्.—A, S, N द्रतमार्गं, B, D अघतो द्रतं याति यातुर् for पुरो etc.—30. All but A, S र्ततजकारो—B अघं for पुरो. D भवेद्.—31. A, S यथा for यदा.—32. D, N वासति and वासन्.—33. S फलापन्नसु०.—C, D संस्थित for सुस्थित.—34. All but D, N and one Cod. of C निःपन्न.—C धन्यच्छ्रय.—D भांगल्य.—35. B, D, N वासति, B वाशति.—36. All but A, S (अ)स्मू for (अ)स्थि.—37. A, S कंठकमित्रेः सौम्यः—38. The two hemistichs are transposed in B, D; they om. ध्वाञ्च, and insert भवेद् before धन.—39. C, A, B (अ)तिविखवन्—C, A, B विखवन्.—40. C, A, D निस्सार.—41. C, B, D पक्षौ धुन्वन्०.—B, D सृजर्मज्जर्धनति.—42. A, and perhaps C ०पूर्वाधिकारगु०, N ०पूर्वाध्वगु०.—43. C विखवतार.—44. C, B, D शिरापगत, A, S शीर्षापगते, N शीर्षा कुः, changed by me into शिरापगत.—C, A घटापचदन, D घटापचनने.—45. D, N अन्यत स्थानं.—46. S काक. A कंक for ध्वाञ्च.—47. A, S द्विपे for द्विके, D द्विजे.—One Cod. of C क्षेमश्च.—One Cod. of C खरोटोपगते, another खरोट्टगते.—A, S च for तु—48. B, D, N वासति for विखवति.—49. A, S यत्तथा.—A अभिधेयं.—50. All but N, and one Cod. of C write निःफलं.—D, N ज्ञेयं for प्रोक्तं, S वक्तुं.—51. A कुकुर, S कुरकुर, C, D, N कुरकुरश्च.—All but N केकव विखते.—A, S ककवा.—B, D याथिनासाङ्गः, and all but N प्राङ्गः or आङ्गः—52. A, S खरकुकुविखते, D खरखरेति, N खरचच, one Cod. of C once खररु, once खरत्तच, another Cod. of C खरर्थश्च, my reading is a conjecture.—A, S, N कगाखेति, B, D खगाखेति.—A, S प्रतिपधकामाखलखल, N ०धिकमाखलला श्राया, B, D ०धिकमाखयला, C one Cod. ०धिकमाखयल, in another ०धिकमाखल.—53. All विघातः, changed by me to विघातं.—One Cod. of C कगाखेति, another and N काकि टीति.—B, D प्रीतिश्च दम्पतीनां, and C notices a v. r. प्रीत्याश्च दम्पतो—All but A, S बंध एव.—D अपि for इति—54. D करकोविखते, N करकोतिखते.—N गन्नवासाय.—C वदिति.—A, S सार्द्धम्.—55. A, S फलदाहि, N फलदायि.—C, D टय इति, the others ट इति, changed by me to टड इति.—One Cod. of C प्रहराः—56. C once टाकुटामिति, once like the others.—C once गृह, D कुह, S गृह.—C कडकटे.—One Cod. of C, and B, D चिटिकिकेकेकेति, another

Cod. of C चिावण्टिविकेकेति, S चिचिकेकेमेति, A चिचिचिकेकेमेति.—57. C, B, D काका for काके.—A, S धन्याश्चवन्याप०, N धन्याश्चवचोप०, B वन्याः श्ववदोप०.—59. A, S तर्ह.—60. C विद्यात्.—N समये च.—A, S तदा for तथा.—D, N लुत् न च शुभं.—61. C, B, N दुष्टस्य for इष्टस्य.—62. N शकुन, C once thus, once शुकुनि.—All but N and one Cod. of C write निःफल.—C in the text षड्वा, like N, but in his comment षट्च (expl. by एकादश).—D अचिन्तमना for षट्पतिरशुभे.—The title in N is वाचसलक्षणं.—The number in A is सर्वशकुने सप्तमः, in B, D 95.

CHAPTER XCVI.

1. D कुतज्ञः—2. N स्थिरमंस्थितं.—A, S ०घातख०.—A, S संगमाण्यं.—3. D, N विद्यात्.—4. D चलानि.—5. A रक्षेषु for जलपु, S वक्षेषु, D गतेषु.—6. All but one Cod. of C, and D, N write निःपव.—7. B, D वैर्कते.—A स्थिता खवन्, S स्थिरो ख्वंथेत्.—8. A, S लग्नेषु चन्दार्.—D भृगुजांश.—N थाय्य लेथा वि०, C notices a v. r. योन्याऽनुयायाद्दिशि संप्रदिष्टः—A, S पि for वि.—9. A, S यंदक.—10. N (अ)मिवाभन, C विरैति, the others (अ)मिवासं, changed by me to विवासं—11. B, D विपञ्चापि.—12. A, S, N एवं for एव.—13. N विलग्नै.—C, D, N व्रणोऽस्य.—After vs. 13 A, S insert two stanzas from the Brhaji-jātaka, which are quoted in the Comm., and D inserts two stanzas from Yavanevara, also quoted in the Comm.—14. N चरमट्टोदयांशके.—D द्विसूर्तिके.—After vs. 16 S inserts a stanza from Brh. Jāt., introducing it by पाठांतरं; A omits some lines till vs. 60. the following Chapter.—The title in B is उत्तरलघुसंप्रयोगः, S (and at the beginning of the Ch.) लघुप्रशंसा, N इति शकुनं.—The number is given only in B, D viz. 96.

CHAPTER XCVII.

1. From vs. 1—6 in A in the margin.—C writes चक्रोक्तः—All but N दर्शनास्त्रपाको.—2. S, D लघु.—5. A, S हरिद्रं for दुर्दण्डं.—N, S श्रोता.—C, N तु for the last च.—6. S, N कुशुल.—7. C, D, N विचंगविरुत्तं.—9. A, S आक्रुष्टफलं पचाद्.—All but A, S मपि०.—A भंगश्च भवति S भंगश्च भवति, C, D भंगेन भ०, B ०केनाहिमाशकश्च.—14. A नवकेकाष्टदशकैकपट्टिक०, N the same but ०दशैकप०, one Cod. of C writes नवकेकाष्टदशैकपट्टिक०, another नवकेकाष्टदशकैकपट्टिवस्त्रिक०, B नवकेकाष्टदशैकपट्टिक०, D नकेकाष्टदशैकपट्टिक०, my r. is in accordance with the Comm. in C.—C, B, D संख्यानि.—C अक्षेपाः—15. A, चथोऽङ्गाष्टौ, S चथोऽङ्गाष्टौ.—A, S त्रिषट्कैकैकाः, D षट्कैकैकैः, N त्रिषट्कैकैकाः; all

but A, S om. च before त्रि ; C विषटकैक०, changed by me to चषडक०.—
17. A, S गोमहोप्र०.—The title in D is उन्वानाध्यायः—The number in C
is 93, in B, D 97.

CHAPTER XCVIII.

1. N यम for वसु.—2. C notices a v. r. शर for शत.—After vs. 3 N
has इति तारकापाकाध्यायः—In A, S follow 13 vs., taken from the 7th
Chapter of Varāha-Mihira's Yātrā ; at the end A, S have इति नचत्रकौटभं,
the same title as in the Yātrā. There A, S close the Chapter, so that
vs. 4 of the others and of our text, is with them vs. 1 of a following
Chapter.—5. A, S इन्द्र for शक्र.—D (अ)हिर्बुधः—7. A, S, B, D अभिचार
for अभिघात.—A वैताल.—8. D, N पूर्वा.—A, S उद्वेद, N उद (sic).—
A, S, N om. बंध.—9. All but C अश्विन for आश्विन.—A, S, D शिल्पोपधि.—
A, S अभिजिदण्य for प्रदिष्टानि, C remarks कंचिदभिजित चाणवेच्छंति, but
from this it does not follow that he knew a r., in which अभिजित् was
found—10. All but A, S वर्गे च्छ०.—11 and 12 are transposed in A, S.
—12. All but A, S च for वा.—D, N यदि शस्ततारा for शुभ०.—13. C
गमनान्मुख—A, S, N निराशनानां.—C निशा शनिकुजाकतिथौ, D निशा
कुजदिने ऽथ तिथौ, N कुजाकतिथौ, C notices a v. r., apparently च नवमे
ऽङ्क न चापि षष्ठ्यां.—After 13 N has : चौरे तु मासं चपथेदिनेशः शनैश्चरः सप्त
कुजस्तथाष्टौ । आचार्यशुक्रेन्दुबुधाः क्रमेण एकादशैकादश सप्त पंच ॥—14. All
but C, D संमतेन.—C, D सूतके वा.—A संमतेन वदस्य मात्ते क्रतुदीक्षणासु ।
विवाहकाले सतसूतके च—D कार्ये for शस्त्रे.—15. is om. in C.—A, N
श्रवण, D श्रवणः—D हितानि for शुभानि—16. D, N सावित्र्य.—All but D
तिथ्य.—D मेखलाद्याः, the others but C सखलाद्यान्.—17. is wanting in
C, D, N at this place, and occurs as vs. 8 of Ch. 99.—A, S पापैस्त्रिपष्टा-
यगतैश्चिलग्रे for पापैर्विचोने शुभराशिलग्रे.—A, S, D, N अमरेज्य
त्रिदशंज्य.—The title of this Ch. in A, S, N is नचत्रकर्मगुणाः, in C
नचत्रगुणाः कर्माध्यायः—The number in C is 94, in B 98, in D 98 (in
figures) and 99 (in words).

CHAPTER XCIX.

A, S अथ तिथिकरणगुणाः—N begins with : शिवभुजगमित्रमित्रपितृवसुत-
लांश्रविरंचिपंकप्रभवाः । इन्द्राग्नीन्द्रनिशाचरवरुणार्थमयोनेयर्थाङ्ग ॥ तद्राजाहि-
र्बुधा पूषा दक्षांतर्काग्निघातारः । इन्द्रादिगुरुहरिरविलघुरानलाचाचा चणा
रात्रौ ॥ मुहूर्त्तसंख्या ॥ Then vs. 1.—2. D, N ०मावास्याया.—A, S ज्ञेयाः for
संज्ञाः—D, N सदृशा—क्रिया—कार्या.—C, S पूर्णाश्च.—3. C नचत्रैस्त०.—After

vs. 3 a Chapter is at an end in C, B, D, N, the title of which in C is: इति तिथिकर्मगुणाध्यायः पंचनवतितमः, in B, D, N इति तिथिगुणाः, the number in B, D is 99.—vs. 4 is in all but A, S vs. 1 of Ch. 100. 4. All but D, N वव and वाल०.—D बालब—All but N कौलव.—5. A, N शकुनि च०.—S चतुःप०.—D पदो नागः—A, S, D अपिच for इति च.—6. All but N ववे.—All but N वाल०.—D बालब.—D भिवकर०.—7. D, N वणिजे—A, S परिघात.—8. om. in S, and originally in A, where it is written in the margin—D, N औषधानि.—A द्विजपतीन्—N याज्यानि for राज्यानि.—A सैभाग्य.—A शुभकर्मद्विकरणं मांग०.—N शुद्धि for सिद्धि.—After vs. 8 follows in C, D, N vs. 17. of Ch. 98.—The Chapter closes only in A, S as in our text.

CHAPTER C.

Vs. 1. All but C तौलिषष्ठ.—A, S द्वित्रिगेः—2. D रचित for रहित.—One Cod. of C, A, D चारानु०.—Uncertain whether चार्क or वार्क.—D, N रचिते for विरचे.—The title in C is करणगुणविवाहपटलं, in N तिथिकरणगुणविवाहपटलं, in D करणाध्यायः—The number in C is 96, in D 100.

CHAPTER CI.

This Ch. is also to be found in the Brhaj-Jātaka, as Ch. 16.—N inserts some stanzas at the end of which इति प्रह्वेषः—1. A सत्यरतः one Cod. of C सत्यरोगदक्षः, another, and D, N सत्यरोगदक्षः, S सत् र दक्षः, our r. is from the Brh. J.—2. All but C स्थिरः—3. A, S चतुरस्रपले.—D र्वितानि हीचः छतन्नपा०, all र्विचः with Visarga, which is left out by me; Brh. J. has र्वितः छतन्नो र्विचः पा०.—5. Brh. J. has सद्यतः—All शठः—7. All but one Cod. of C, and N फाल्गु०, S फाल्गुणाः—8. C लपालु for कपालु, but he notices the latter as v. r. but in the Brh. J. Utpala r. कपालु, noticing लपालु as v. r.—9. C ईर्ष्या (probably a mis-written ईर्ष्या), the others ईर्ष्या, our text follows Brh. J.—All but C अर्थ for वचन.—10. A, S, D सुखितो for सुखी न.—11. N घोरो for वीरो, C notices a v. r. मानो, the r. of Brh. J.—All but C विश्व.—12. All but C श्रवणे.—A, S, D, and one Cod. of C in the text, अतिमान् afterwards C अतवान्, like Brh. J., N सुतवान्—All दाताशः—C, N शूरो, A, S, B, D सुरत. changed by me into शूर.—13. C इतभिषासु.—S, D भाद्र०.—A, S मधु for पटु.—14. A शुभदा भवति for सुभगः शूरः, S सुभगे भवति.—A, S शुचिशा०.—A र्थमान्.—The title in A, S is जन्मनचक्रजातकाध्यायः, D नचक्रजातकाध्यायः, N नचक्रजातकगुणाः—The number in C is 97, in D 101.

CHAPTER CII.

2. A, S, D सृगशिरोऽर्द्धे.—C सियुनः—D om. पादश्च पुन, having only वंसुभपुष्पा, A, S पादः पुनर्वसुभवः पुष्पा. C in his text पादः पुनर्वसुसतिष्ठा, afterwards पुनर्वसुसुतः, expl. by पुनर्वसेः, whence it appears that he r. पुनर्वसुतसिष्ठा. N पादः पुनर्वसुतः पुष्पा, changed by me into पादश्च पुनर्वसेः सतिष्ठा.—A, S सु for च.—3. C text फासुगं, S फासुगणी.—All but C, N पादसु०.—D चित्राद्यार्द्धे, N चित्रार्द्धे.—4. S स्नातो.—C text विश्राखयोः—6. S, D भाद्र०.—All but C रेवतो मानः—7. A, S पिल.—D धनुर् for हय.—The title in A, S राख्यथायः, in N राख्यः.—The number in A, S is 102, in C 98.

CHAPTER CIII.

2. N, and once C दारिद्र.—C once विन्नेश्वराम्.—3. C व्यक्तां, expl. कीर्तियुक्तां.—All but C, D हर्षे for सत्युं.—4. One Cod. of C, D, N write श्वर्त.—All but one Cod. of C सपत्नम्.—5. C विनाशं for प्रसृतिं.—6. C च सुरेषु, A, N ससुरेषु, S सशुरेषु, D has अनुगां च भर्तुः—A, S रक्त for भक्त.—N कुधात् for चद्धां.—7. A, S ०नाश्वर्याधि०.—8. All but C, D तथैव भौसः for तथैव राहुः, and सुभगां च राहुः for सरजां भद्रोजः, सरजां changed by me into सरजं.—C notices a v. r. सुभगां भर्तवज्जभां, I cannot make out whether he means सुभगां for सरजां and भर्तवज्जभां for पतिवज्जभां, or not.—9. C, D धर्मास्थिता.—C, D, N चटनां, expl. धमणशीलां, A, S चधनां.—10. C, S नभस्यल.—11. C सधनां for धनिनीं.—13. N या च —A, S विद्वत्तधनत-तोरोग्यसौ०—S न हि तिथि.—A, S रजय.—D has seven stanzas more : कुलिकं क्रांतिसाम्यं च मूर्त्ता पष्ठाष्टमःशशी । पंच दोषान् परित्यज्य ततो गोधूलिकं शुभं ॥ १४ ॥, and six more in the same strain.—The title in N is विवाहपटलः.—The number in C is 98, in A, S, D 103.

CHAPTER CIV.

2. C व्यावहार्यतस्तरफ०, व्यावहारो expl. by व्यवहारशीलः, A, S व्यवहार्य-स्तस्तरफ०, N व्यवहार्यः सदस्तरफ०, D व्यवहार्यस्तस्तरफ०, our r. is conjectural.—3. D तथापि नृणां for (अ)थवा नैवं, N (अ)थ वागेवं.—4. All but C, N सौम्यः षट्त्वि०.—5. D शोक for कोष्ठ.—All but C द्वितीयो.—All but C, D मनसि for दिशति.—D बंधनं for वंचनां, the others but C वंचना.—All but C हतयो.—All but C चतुर्थो.—6. A रोगसंघारिजनिता, S रोगसंहारिजनिता, N रोगाशोकोधजाताः—All but C षष्ठा.—A रिपुं, S, D रिपून् शो०, N रोगशो०.—C बह्नाभौ, D बक्क्राशौ.—A, S सुवदने.—7. All but A विजचेष्टा.—C जयस्थानं.—4. D अन्नचुर०.—All but D द्वितीयो.—C, D विजय for

निचय.—9. All but A, S, and perhaps C पंचमो and षष्ठो.—S चित्ते for चित्तं—D शुभं for सुखं.—D सप्रगो, N सप्रमो.—All but C, D भवति for फलिनि.—10. D राज्ञा for चाज्ञा.—S चरिताद्.—D अंत्ये.—C, it seems, च for चि.—11. D ह्यश्च for ह्यं च.—D वित्त, N पोडा for पित्त.—C, D चौररोगे.—12. S सकोशात्.—A, S प्रदीप्तम्.—A, S तथा for किल.—13. D जनिताश्च.—A, S अपि प्रकरोति, D अभिकरोति.—S वाशुभं.—14. A, S च पंचमे.—A, S भवेच्चिरं.—15. A, S विवर्जिता ऽसौ स०.—D ईदृशे.—16. All but C क्रमैः.—17. A, S सपुष्पि०.—18. All but C, S संतप्यते.—A, S वित्ते for प्रिये.—19. D स्वागता.—20. A, S भयांकित.—21. D त्रियं for स्त्रियं.—22. N सप्रमो.—S ज्ञ.—N शुभ for सुत. —A वित्तवञ्ज, S om. वित्त.—N लाभो, like one Cod. of C; another Cod. of C, and D लाभान्.—A, S वैवर्ण्यं for नैपुण्यं.—D मतेः.—23. A तद्गृहदोषयकृथास्तरणं च, S तद्गृहदो ऽथ कृथास्तरणं च, N तद्गृहदोषकुलाशस्तरणं च, D तद्गृहदोषयकृथास्तरणं च, C, although writing in the text in one Cod. तद्गृहदोषकथास्तरणं च, must clearly have intended तद्गृहदोऽथ कथास्तरणं च, as written in another Cod., he notices as v. r. the r. of S, our r.; he explains : यद्गृहं वेग्न तद्ददाति अथशब्दसार्थं । कथां रेतद्ददाति । आस्तरणं शय्याष्टं च ददाति । केचित् कृथास्तरणमितीच्छन्ति । कृथा ऊर्णकम्बलसूत्रदेहास्तरणं । दोषकथनमेतत् ॥ In the dictionaries the name of the metre is given as दोषक, whether this be right, or Utpala's दोषक, I have no means to decide; but the explanation, and especially the words अथशब्दसार्थं, leave no doubt that Utpala called the metre दोषक; if the v. r. I have preferred, be correct, the author called the metre दोष.—24. One Cod. of C सुतसुख.—All but C वर्ग for बाह्य.—S मिष्ट, the others but C नष्ट for मृष्ट.—A, S न सहति परिने, D नहि घटयति भोक्तुं.—D भोग for योग.—25. All but C, D मुनि for अरि.—A कान्ता तस्याङ्गार्थं स्मरविलसितं.—26. One Cod. of C, S, D (अ)नेकेः—D संविदेन, S स विदेन्.—All but C, D मयूरैः.—27. N सुतसुख तुरगकरि.—28. A, S सारस०, for शाबवि०, N सारचि०.—S चिह्नितं for चिचितं.—29. A, N बाह्य.—C राशिसमेतो, but noticing also our r.—30. A, S कामार्थसिद्धिं.—N जावे.—S, D लाभः.—31. A, S कर्म for कल्य.—33. All but C, D सूपालसंततिः.—34. A, S भूमि for भूति.—D मित्र for वञ्ज.—A, S अयं.—D वक्षोपमितां.—35. D जन for धन, and so one Cod. of C in the text, but erroneously, for he expl. विमानां.—36. C, A (अ)ष्टमे, N (अ)ष्टमो.—37. A (अ)पमान.—A, S चन for वदन्.—38. N स्थिरसुतांवरामसः, D स्थिरसुताचनारामसः, A स्थिरसुतांवरामसः, S स्थिरसुतांवरामसः.—39. D बंधुवधः—A, S, N उपेत्यसुहृद्द्वयुतो.—40. A, S ० वश.—S सुखायव०.—N अंबुनि व०, A अंबित व०.—A om. पव.—41. A, S अपरसं.—A, S शास्त्रि for प्रशास्त्रि.—N धीर for वीर, C expl. distinctly शूराणां, the dictionary has धीरलक्षित.—A

सलिलैः, S सलीलैः for ललितैः—42. Whether प्रपात or प्रयात, is not discernible, C however expl. by गमनं.—43. All but N °ज्ञीनः—All but C, D विनिश्चित.—All but one Cod. of C, and N पट्टैष्ठं.—44. D वैश्वदेव.—45. All but N परिह्वामिष.—A, S, N सैः for तेच्छं.—One Cod. of C once लाभांश्चा०, once लाभाश्चा०, another and N लाभश्चा०, A, S लाभान०, changed by me into लाभा च०.—D चंत्ये.—46. S, D, and one Cod. of C in the text अवेद्य. —A भौत्यकुंडमेव, N कं कुटके व, D, and one Cod. of C कं कुडवे वा, another Cod. of C the same, but गडवे; I have changed वा into च.—C apparently विह्वजन्नपि.—All but C, D वितानं.—47. A divides this stanza in two.—C सैरः—All but C, D तिलकवकुलैर्गुरः—A, S, N उवा यदि.—48. A, S समयो०.—All but D, and perhaps C दृष्टि for दृष्टि.—49. N अनुगीत्येत्.—50. N अनुगीतिमा०, D उपगीतिमा०, A उपगीतेमा०, one Cod. of C in the text उपगीतमा०.—D सम्यक्प्रयोगे for सस्यं प्रयोगे, A, S, N समं प्रयोगे.—51. A, S, D, N षष्ठा.—A, S जयति for नयति, N न यदि.—52. S निरीक्षितो ष्यम०.—A, S बल्लिनि for बलिना.—A, S नकुटकं.—53. A, S नीचे ऽरिभक्षे चारि०, C, D नीचे ऽरिभेक्षे ऽरि०, N नीचे ऽरिभे स्वरि०.—S यामिन्याः, C, D, N कामिन्याः—A, S निरीक्षितं.—54. A समच०.—A, S सुतः सदतः समुपयाति, N सुतस्त्वमुपयाति.—D स्कंधक.—A गाथायोः, S गायार्था, N यथार्थाः, D गाथा.—55. A, S न च यथा, N तद्वत्तथा, D तु न तथा.—59. A, S प्रारब्धसमुपस्थि०.—All बुधैः, changed by me into (अ)बुधैः—D निघ्नंति.—A, S तदैव.—D तद् for तान्.—60. N अपेक्ष्य.—One Cod. of C, text, हंसस्य, afterwards हंसकस्य, another हंसकस्य, A, S हंसं सकलस्य—61. (a). All but C चर्मोर्णिका०.—A, S आयुधायाट०.—C notices for पण्णादि a v. r. वन्यादि.—C याय्यग्नि, D शष्पाग्र.—All but A, S कर्माणि for कार्थाणि.—61. (b). A, S भूषणशंख०.—A, S अंबुजज्ञेत्. C मातुल्य for सातंग, D मानुष्य.—61. (c). अग्नि om. in C, D, N.—A, S °र्जितस्य, N °र्जितश्चा, one Cod. of C °र्जितसः, another °र्जितस्य—A भिषट्शा०, S भिषक् शा०.—All, but one Cod. of C write क्षुपाट्ठित्त, but C expl. रात्रिवर्तनं.—C writes कोशेश, but expl. as if he r. कोशेश्य, for the first part is expl. as गंज, the second as ईशलं and नायकता; he notices also our r., D, N कोशेशसाधानि.—61. (d). N om. सही.—S, N, and one Cod. of C गंधानि.—S विज्ञानि.—D om. वाद, N has वाग्.—C, D, N पुण्य for पण्य.—All but C वा for च before हंसं—C, A करारि for करारि.—S वा कारयेत्, A only कारयेत्.—62. All but C औषध०.—D, N गुरु for सुर.—All but D write पुरस्मित.—All but C, D धर्म for धर्म.—N प्रेत्यभवन for व्रतहवन.—A, S च वर्ष०, C च तथा वर्ष०, N तथा वर्ष०.—All but C, D दडवत्.—63. A, S दृष्य, D, and one Cod. of C (but only in the text and by an error of the scribe) पष्य.—N दृष्या.—63. D °जानि चाचरेत् for

•जानि च.—D, N पासिकान्.—N हस्त्युपेच.—A, S अपां करणं, N उपांशुकरणं.—64. C, N मिहरो.—N (अ)च for (अ)तः.—The title in A, S is गोचरफलं.—The number in C is 100, in D 104.—Some Codd. of C close with this Chapter.

CHAPTER CV.

A, opens the Ch. with : अथ रूपसचद्वादशीनामानुकीर्तनं नामाध्यायः, S अथ नचत्रपुरषव्रतरूपद्वादशीनामानुकीर्तननामाध्यायः, C अथ रूपसचं व्याख्यायते.—1. A फाल्गुं.—All ंगुणी.—C, B द्वितयं for युग्मं.—2. S, D भाद्र०.—3. A, B धनिष्ठां.—All विशाखा, which ought to be विशाखाः, or विशाखां or विशाखे.—All but C करौ स्तुतौ.—All write अक्षेपा.—5. N, and once C आर्द्राः.—A, S समुपोषो for कर्तव्यो.—B भूतिस् for रूपं.—6. B सप्तम्यां for द्वादश्यां, C om. हि.—C, S write धिष्णं.—7. A, S च for वा, C doubtful.—8. A, S दत्त्वा for दद्यात्.—B, D सुवर्णवस्त्ररजतं, A, S भूरिरजतं.—A न्यासर्चं, S मासर्चं for अंगर्चं.—C, S धिष्णस्य.—9. This vs. and vs. 13 have interchanged places in A, S. In A a second hand has written in the margin the same stanzas (vs. 9—vs. 13) in the same order as in the other MSS. and our text.—11. A *prima manu*, S नेत्र, N वणं for पत्र.—S, N भारनमित.—12. A *prima manu*, S खंभ for कांड.—S भोरः, A, B भोर, C, D भोरु.—A, D, and C text ककुंदरा.—C मनुष्यश्च.—After vs. 13 B has इति रूपश्चं (sic), N इति वाराहोसंचितायां नचत्रपुरषः.—In the only Cod. of C at my disposal, which goes beyond Ch. CIV. there is a *gr.* till vs. 6 of the next Ch.—14. B, D सूदनाष्वालि.—D, N चेत for चैः.—15. A, S, B तस्माद्गुणेशश्च.—16. N प्रकीर्तयेत्.—After this vs. B, D, N add some stanzas numbered in D 17, 18, 19, in B 33, 34, 35, viz. धूपस्रग्दीपाद्यैर्भूपः संपूजयेद् द्विजानग्नेः । संपूर्णदक्षिणाभिः सुमनोभिः (? B सुमनाभिः, D सुनाभिभिः, N खनामभिः) प्रीणयेत् क्रमशः ॥ प्रतिमासमश्वमेधा रूपस्रग्दीपाद्यैर्भूपः संपूजयेत् । उक्त्यमग्निष्टोमो गवामयनं पुरुषमेधश्च ॥ सैत्रामणिस्तोऽन्यः सपंचयज्ञः सहेमगोल्लवः (N सहेमलांगूलः) सर्वसुखान्यप्यंते नित्यस्मरणाच्च तन्नाम्नः ॥ N has three stanzas more.—The title in B is पुरुषे रूपसचव्रताध्यायः, in D नचत्रपुरषे रूपसचव्रताध्यायः, in N अविष्णोर्द्वादश नामानि.—The number is 105 in D.

CHAPTER CVI.

Vs. 1 is vs. 4 in A, S.—A एव for अथ.—3. B गुणान्.—D, N विपरीतं.—B, D सः प्रकृतिः सा.—4. A, S उपयति.—5. This and the following vs. are transposed in A, S, and occur also at the end of Brh. Jât.—B

प्रचुरता.—D लेखाद्.—B कुह्नतकल्पम्.—6. A, S मुनि om.—After vs. 6 A, S have: अन्यानि शास्त्राणि विवादभावं सांष्टिकं तेषु फलं न किञ्चित्। साचात्फलं ज्योतिषमेवमेव राक्षार्थेदभ्यागमनेन सत्यं ॥ In N follows the 5th Ch. of Varaha-mihira's Yātrā.—In C the colophon is इति भट्टोत्पलविरचितनाथं संहिताविद्यवापुसंहाराध्यायः । वाराहो टीका संपूर्णा.—There follows however a शास्त्रानुक्रमणो.

ANUKRAMANĪ.

2. D चागस्ति.—C, D ०भक्तिष०.—C ०दास्य.—3. B नचचप्रहाणां च for प्रहाणां च, D नचत्रेषु प्रहाणां च.—All but C शृंगारकस्थितानां.—D सगभ०.—A धारणं, S, N धारणं च, C लक्षणं च.—4. A, S, N धान्य before धारण.—B वातधूलि for आषाढ.—B, D योगस्य, the others योगः—All लता.—C, A दाहाः.—6. A, S असिलक्षणंगपटकवासु, B अंगवियापिटकलक्षणं चिह्नं च सगृहज्ञानं, D as in our text, but adding at the end of the śloka अंगविया वातचक्रं पिटकानां लक्षणं चैव.—7. D उदकार्ग०.—A, S प्रतिष्ठानम्.—D गवाश्वदंतिमनुजानां for पुरुषचिह्नं च, C, B द्वियेभपुरुषचिह्नं च, C om. कूर्मलक्षणं.—After vs. S B at an end.—9. After परोक्षा a gap in D until भौक्तिक in vs. 10.—10. D, N अथ for दंत.—D सर्वशक्रुनं.—11. N वामित for विरुतमथ.—D अच्येष्टितं वा शिवामगजं for अथ etc.—D गव for मृग—N मृगस्य लक्षणमथ गोमाह्वयादेः विरुतं गवां मृगाश्वकरिणां वायस)वियोजनं च ततः for चरितं etc.—12. A, S कैटभ for पाको, D पाकचर्गणो.—N om. तिथिकरण.—A, S धिष्णगुणाः, N चरुध्यगुणाः, D जन्मचर्गणराश्या विवाहविधिः, in C a gap, the r. of our text is conjectural.—The second hemistich in A, S is गोचरमथ प्रहाणामुचनरो द्वादशोक्त्यः, D गो० अ० प० कथिता नचत्रपुरुषस्य, N प्रहगोचरो ऽतः पुरुषो नारायणकथनं, तथा is a conjecture of mine for ०मथ.—After vs. 12 A, S repeat the substance of it in another form: पाको ऽथचर्गणस्तिथिकरणगुणाः संरचजन्मगुणाः । गोचरः प्रथमप्रहाणां कथिता नचत्रपुरुषस्य.—13. N श्लोकसहस्रखलारः प्रतिनिबद्धा०.—A, S, N ऊनानि for ऊन.—A, S after vs. 13 ग्रंथसंख्या २१०० ॥.—A, S, D, N add अत्रैवांतर्भूतंपरिशेषं निगदितं च यात्रायां । ब्रह्मस्यर्धं जातकमुक्तं करणं च बद्धधेति (D, N बद्धचोद्यं).—Then in A, S इति ग्रंथानुक्रमणो नामाध्यायः सप्तोत्तरशततमः—After it is added in A, S a division of India into *mandālas*, similar to that in Ch. XXXII. it is left out here.—D adds विश्राणः शरदिन्दुकोटिधवलां दृष्टामिवोच्चैर्मिति (?) छलाच्चः फणिमंडलेष्विव पदं रत्नावलीभानुष । यः सम्राट्महादधेः कुमतजग्राहात् समाहृतवान् ज्योतिर्गो रुचिरां वराहसिंह-रत्नज्ञा हरिः पातु वः ॥ N adds vs. 9 of the last chapter of Brh. Jāt. आदित्यदास० etc.—For the colophon of the MSS. see Preface.

PREFACE.



THE name of Varáha-mihira must be familiar to every Sanskrit scholar from the writings of Colebrooke, Davis, Sir William Jones, Weber, Lassen, and, not least, from the writings of Albírúní, brought to public notice by Reinaud. But, however well known the name of the Hindu astronomer and astrologer may be, his works are disproportionally less generally known, because with one exception they existed only in Manuscripts and were consequently accessible to comparatively few. It is with the desire of extending that knowledge that I have undertaken the editing of the most celebrated of Varáha-mihira's works, the *Bṛhat-Saṅhitá*.

Varáha-mihira, or, as the name is also written, Varáha-mihara, was a native of Avanti and the son and pupil of Ádityadása, likewise an astronomer.* The statement of Utpala that he was a Magadha Brahman† must most likely be understood in this sense, that his family derived its origin from

* We have for this his own testimony in the *Bṛhaj-játaka*, Ch. 26, 5 :

आदित्यदासतनयस्तद्वाग्बोधः

कापित्यके सविद्वलम्बवरप्रसादः ।

आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्

घोरां वराहमिहिरो वचिरां चकार ॥

“ Varáha-mihira, a native of Avanti, the son of Ádityadása and instructed by him, having obtained the gracious favour of the sun, at Kápitthaka, composed this elegant work on Horoscopy, after making himself duly acquainted with the doctrines of the ancient sages.” It may be also that Kápitthaka is the place where he received his education ; it is the name of a village, according to Bhatta Utpala, the excellent commentator of Varáha-mihira's works.

† Cf. Colebrooke, *Algebra*, p. XI.V. foot-note.

Magadha; up to the present day it is a common practice in India, for Brahmans to be distinguished by the name of the country whence they themselves or their forefathers have come; so that, in Benares for instance, there are Kányakubja Brahmans, Mahratta Brahmans, Dráviḍa Brahmaus, &c., many of whom have never seen the country of their forefathers. As Utpala repeats his statement, I think it improbable that the words Magadha Brahman are an error of the MSS. for Maga Brahman, the name given to the sun-worshippers, although this would not unnaturally suggest itself at first sight.

No information is to be found in the works of our author which have come to us, about the year of his birth, nor could we expect to find it but in his astronomical treatise *Pancasiddhántiká*, which unhappily seems to be lost beyond hope of recovery. There is every reason to believe that we should find the author's date in that treatise, because it is the all but universal practice of the *scientific* Hindu astronomers to give their own date. In one way or another the Hindu astronomers at Ujjayani must have had means to know the date of Varáhamihira, for in a list furnished by them to Dr. Hunter and published by Colebrooke,* the date assigned to him is the year 427 of the S'áka-era, corresponding to 505 A. D.

It is not added to what period of his life this date refers. The trustworthiness of the Ujjayani list is not only exemplified by the fact that others of its dates admit of verification, but also in a striking manner by the information we get from Albírúní. This Arabian astronomer gives precisely the same date† as Dr. Hunter's list eight centuries afterwards, from which it is evident that the records of the Hindu astronomers have remained unchanged during the lapse of more centuries than there had elapsed from Varáhamihira till Albírúní. The latter adds, what is not stated distinctly in the Ujjayani list, that 505 A. D. refers to the author's *Pancasiddhántiká*. This state-

* Algebra, p. XXXIII.

* Reinaud, Mémoire sur l' Inde, p. 336.

ment would, on ground of analogy, seem to be corroborated by Dr. Hunter's list, for two other dates at least, those of Bhaṭṭa-Utpala and Bháskara-ácárya admit of being verified, and as they refer to some works of these authors, not to the year of their birth, it is but natural to suppose that the same holds good in reference to Varáha-mihira. There are, however, two facts that make the date assigned to the Pancasiddhántiká, not indeed incredible, but improbable. The first is the date of Varáha-mihira's death, as recently ascertained by Dr. Bhau Daji, viz. 587 A. D. The second difficulty is the fact that Varáha-mihira quotes Áryabhata in a work which cannot have been any other but the Pancasiddhántiká.* Now, as Áryabhata was born 476 A. D., it is unlikely that 29 years after, in 505 A. D., a work of his would have become so celebrated as to induce Varáha-mihira to quote it as an authority. It is of course not impossible, but not probable, while on the other hand the error of Albírúni in taking 505 A. D. for the date of the Pancasiddhántiká, while it really was the date of the author's birth, may be readily explained. The inferences from astronomical data, although proving indisputably that Varáha-mihira cannot have lived many years before 500 A. D., are not numerous enough, nor precise enough to determine the date with more precision, it being impossible to eliminate from one or two data the errors of observation, and sometimes necessary to make suppositions in order to arrive at any conclusion at all. For a discussion of these data I refer the reader to Colebrooke's Algebra.†

* More about this in the sequel.

† The trustworthiness of the *scientific* Hindu astronomers may now-a-days be considered to be above suspicion. Not so in the days of Colebrooke and Bentley, and we are largely indebted to the former for his indefatigable researches in the history of Hindu astronomy. The worth of Bentley's results in determining the age of Varáha-mihira is perspicuous from the fact that he places this author in the 16th century of our era, that is, 500 years after Albírúni. The main argument of Bentley, wholly worthless in itself, may serve as a curious specimen of his method. Colebrooke having tried to

Although not able, as yet, to fix the date of Varáha-mihira's birth with precision, we know with certainty that the most flourishing period of his life falls in the first half of the 6th century of our era. This point, important in itself, has the additional value that it serves to determine the age of other Hindu celebrities whom tradition represents as his contemporaries. The trustworthiness of the tradition will form matter for discussion afterwards ; let us assume at the outset that the tradition is right, then it will follow that his contemporaries were Vikramáditya, the poets and literati at the court of this king, especially Kálidása and Amara-sinha, and it may be added from another source, the author of the Pancatantra. We shall begin with Vikramáditya, and since there are more princes than one who bore that name, or title, we shall have to enquire, which of them may have a claim to be considered the contemporary of Varáha-mihira.

It is generally assumed that the first Vikramáditya known in the history of India, was a king reigning in the century before the Christian era, and that he was the founder of the Indian era, generally denoted by *Samvat*. The objections that may be raised against this opinion are so many and formidable, that no critical man can adopt the fact without submitting the

deduce some data from the time of the heliacal rising of Canopus, as stated in Ch. 12, vs. 14, of the Bṛhat-Saṁhitá, is literally abused by Bentley, because he, Colebrooke, holds the heliacal rising to imply the star being visible. Bentley argues that the Sanskrit word for heliacal rising always means cosmical rising and never implies the star being visible, that Colebrooke therefore had wilfully misrepresented the passage of the Bṛhat-Saṁhitá. Now be it assumed for a moment that Bentley was right in his opinion about the meaning of the Sanskrit word for heliacal rising, although he is wholly wrong, even then the passage, mistranslated and misrepresented by Colebrooke according to him, is in itself sufficient to give him the lie. The word namely, translated rightly by Colebrooke with heliacal rising, is fortuitously *sandarcanam*. Thus then Bentley heaps abuse upon a man who takes the unwarrantable liberty of taking for granted that " being visible " means " being visible."

varying testimonies of Hindu authors to a severe scrutiny. This has been done by Prof. Lassen, more fully, so far as I know, than by any other. But notwithstanding the care bestowed by that distinguished scholar on the subject, his conclusions seem to me utterly inadmissible ; it is therefore my duty to state the reasons why I cannot adopt the received opinion.

Lassen, well aware that weighty testimonies place Vikramá-ditya, the conqueror of the S'akas or Scythians, *after* not *before*, our era, and that the same testimonies make him the founder of the S'aka era, not of the *Samvat*, examines more than once their worth. In a foot-note to p. 50, of Vol. II. of his "Indische Alterthumskunde," he says :

"The astronomer Varáha-mihira calls this era the time of the kings of the S'akas ; see Colebrooke's Misc. Ess. II. p. 475." The commentator explains : "The time when the S'aka kings were conquered by Vikramá-ditya." A later astronomer, Brahmagupta makes, in reference to this epoch, use of the expression "the end of the S'aka kings," which passage is explained by a commentator of Bháskara, a still more modern astronomer, in this way : "The end of the life or of the reign of Vikramá-ditya, the destroyer of the Mlecha tribe, called S'aka." The commentator of Varáha-mihira, *consequently*, as Colebrooke remarks, considers the era used by him to be that of Vikramá-ditya, which every where else (*sic.*) is called *Samvat*. Brahmagupta reckons from S'alivahana's era, so that the commentator here also wrongly brings forward Vikramá-ditya. I cite this because it shows that in after times they confounded the two kings and their history. Of the two astronomers the former lived in the beginning of the 6th century, the latter in the beginning of the 7th. The name of the S'aka era clearly explains its origin, and in this sense the expression of Varáha-mihira will have to be taken."

So far Lassen. The objections to the foregoing are many and obvious ; leaving out less important points, my first remark refers to Colebrooke's startling conclusion, that Utpala

(for he is the commentator in view) uses the *Samvat era because* he, Utpala, considers Vikramáditya S'akári to be contemporaneous with the beginning of the S'áka era. What kind of weight has to be attached to such a conclusion, will be clear from an example nearer home. Let us suppose that some European considers, however erroneously, that the beginning of the Emperor Augustus' reign and the beginning of the Christian era are contemporaneous facts; would then the only possible conclusion be this, that the man thinks that he lives in the year of grace 1896, instead of 1865? It is imaginable, certainly, that one might make such a mistake, imaginable, although it would be an abuse of language to call it possible. But let it be possible, it is not the only possibility; the man may have forgotten the precise date of Augustus' reign, a much more probable contingency. Thirdly, it is again, imaginable, that the man places the two not contemporaneous facts, wrongly supposed contemporaneous by him, in a time which is wrong for both, say at the time of Pericles. The first and third conclusions are, to use a mild term, so extremely improbable that only the second is left. Let us apply it to the case of Utpala; and we shall find that the only, not preposterous, conclusion is, that Utpala places Vikramáditya 78 A. D., not 57 B. C. What is *a priori* the only admissible conclusion, becomes *a posteriori* quite certain, because happily Utpala gives us his own date, and in so doing affords us the means of ascertaining what he means by the S'áka era. At the end of his commentary on Varáha-mihira's Bṛhaj-játaka we read :

चैत्रमासस्य पञ्चम्यां सितायां गुरुवासरे ॥

वसुधायामिते शाके कृतेयं विवृतिर्मया ॥

“ This commentary was finished by me on the 5th day of the light half of Caitra, on a Thursday, in the year 888 S'áka.” Now the specified date falls on a Thursday and could only do so, if the S'áka era is taken as the era which *Anglice*, not in Sanskrit, is called S'áliváhana era.*

* Not trusting myself only in calculating back the given date, I had it

I have assumed throughout, for argument's sake, that Utpala was wrong in making Vikramáditya the founder of the S'áka era because I had to show that, whether rightly or wrongly, he placed Vikramáditya 78 A. D., not 57 B. C. Whether he is right in doing so is a question apart which we shall discuss afterwards; first we have to revert to Lassen's remarks concerning Brahmagupta. This astronomer, says Lassen, reckons from the S'áliváhana era; that is true, but apt to mislead; he reckons from the S'áka era, which Europeans persist in calling S'áliváhana era. Moreover not only does Brahmagupta reckon from the S'áka era, but all other astronomers do so. The only inference from the facts, that Brahmagupta reckons from 78 A. D. and that the same Brahmagupta places in that year the end of the S'áka kings, is that his testimony agrees with that of Utpala, barring that he does not give the name of their conqueror. The stricture upon the commentator, who erroneously brings forward Vikramáditya, is begging the question; it ought precisely to be shown that Vikramáditya did *not* live at that time. Arguments of a different kind are required, before the authority of the Hindu astronomers is shaken.

As harmless as this attack upon them, is the attack upon Kalhana-Pañḍita, the historian of Kashmere. Let us see what charges are brought against him.

Lassen,* after premising that Kalhana-Pañḍita sees the real conqueror of the S'akas, not in Pratápáditya, who is said to have reigned 167—135 B. C., but in the king, who placed Mátrgupta from 118—123 A. D. on the throne of Kashmere, tries to controvert this statement, firstly by referring to the arguments we have disposed of, and secondly by the following remarks:

“The first objection to his (Kalhana's) assertion is its being in conflict with the perfectly certain (*sic.*) chronology after the also calculated by the well known mathematician and astronomer Bápu-Deva S'ástrí, one of the ornaments of India.

* Indische Alterthumskunde, Vol. II. p. 399, sq.

favour, and the chronology of the Ceylonese Buddhists has been preferred to it. The Ceylonese annals ought to bear an unusual stamp of trustworthiness, since they are extolled at the expense, not only of the Northern Buddhistical writings, but also of the Brahmanical records, which, although silent on Buddha's date, agree in other respects with the Northern Buddhists' works. So, for example, neither the Brahmins, nor the Northern Buddhists, know anything about a Káláçoka, who is said by the Ceylonese to have lived one hundred years after the Nirvána, and under whom a second convocation was held, a convocation the Northern Buddhists know nothing about. Again, the lists of Indian Kings, said to have reigned before Buddha, coincide pretty well in the writings of Brahmanic and of Northern Buddhistic origin, but vary greatly with the succession, as given in the Mahávanso. Let us see whether the Mahávanso really deserves so much credit as has been given to it. We read on p. 42 (Turnour's translation): "In the seventeenth year of the reign of this king (Açoka), this all-perfect minister of religion (Tisso Moggaliputto), aged seventy-two years, conducted in the utmost perfection this great convocation on religion." This convocation, the first, according to the Mahávanso (the second according to the Northern Buddhists), took place in the seventeenth year of Açoka's reign, *i. e.* $263 - 17 = 246$ B. C. Now the same Mahávanso tells us (p. 28), that the theros who held the second convocation ordered Siggavo to initiate Tisso Moggaliputto, who as yet had to be born. As this second convocation is said to have been held 100 years after Buddha's death, or in the tenth year of king Káláçoka (*ib.* p. 15, 19), and as Buddha's death is said to have occurred 543 B. C., it follows that Siggavo received the order 443 B. C., at which time he must have been at least twenty years old; he was eighteen when he was converted to Buddhism by Sonako (*ib.* p. 30); so he cannot have been born later than $443 + 20 = 463$ B. C. This same Siggavo initiates Tisso Moggaliputto when the latter was 20

years of age (p. 31). Tisso, being 72 years in 246 B. C., was born 319 B. C., and was twenty years of age 298 B. C. Consequently Siggavo, being born 463 B. C., initiates Tisso 299 B. C., when he himself was a man of 165 years. Professor Max Müller has shown in his own lucid way* “that 477 B. C. is far more likely” the conventional date of Buddha’s death than 443 B. C. But even if we take this date, we shall find that Siggavo must have been flourishing at the age of 98 years! This is by no means the only example in the Mahāvanso to show that its authority is not a whit higher than that of the Brahmans and Northern Buddhists, and it seems to me that Max Müller has convincingly shown, how hypothetical or conventional the date of the Nirvāna is. I must confess, however, that in my opinion the Chinese chronology is some degrees more probable; at least the relative positions are right in Hiouen-Tsang, viz. that Kanishka reigned about 300 years after Açoka, for 263 B. C. + 300 leads to 37 A. D., and it is proved that Kanishka’s reign must have extended till after 33 A. D. at least; secondly, Buddha’s death is placed 1000 years before about 635, which again gives for the Nirvāna about 363 B. C. I see no reason, why Hiouen-Tsang should be correct for 900 years, and err at 1000. But even if Hiouen-Tsang might be supposed to err in the date he assigns to Buddha, he is demonstratively right in the relative dates assigned by him to Açoka and Kanishka, and as the nearer we come to his own times the greater the probability is for his being correct, it is allowed to assert that his testimony about Vikramāditya, combined with the testimony of the astronomers and of Kalhana-Pandita greatly enhances the value of the Hindu authorities.

One might reasonably have expected, that some sources would have been quoted, so reliable as to put at naught the combined authority of Utpala, Kalhana-Pandita, Brahmagupta, Albírúni and Hiouen-Tsang. Far, however, from this being

* History of ancient Sanskrit Literature, p. 263-263, and p. 299.

the case, not any source, good, bad or indifferent, has been adduced to support the extraordinary, howbeit common, theory, that Vikramáditya S'akári lived 57 B. C. The nearest approach to quoting sources in order to support the theory, is, so far as I know at least, to be found in the grotesque speculations of Wilford. It is but fair to say, however, that Wilford is the only one who really might have adduced *one* source, for he certainly used it. The work in question is more than once mentioned and parts of it made subject of discussion by others; I mean the astrological book Jyotirvidá-bharana. The author of this production places, indeed, Vikramáditya S'akári at 57 B. C., but I shall show that he is an impostor, and a very clumsy one, so that his word cannot carry much weight. To those who know the work, such a task may seem not requisite, but as the spuriousness of the Jyotirvidá-bharana has been inferred from other grounds, a new discussion on its merits will not be deemed wholly superfluous.

The author professes to be no less a person than the renowned Kálidása. It would be a tedious task to enumerate all the reasons, why the work *must* be an impudent fabrication, although every line affords examples "*nauseam usque*;" more over one passage decides all. The passage is given at full length by Fitz-Edward Hall* whose remarks may be compared. There the Pseudo-Kálidása tells us, that he lived at the court of Vikramáditya, the king of Málava, who slew 5555555555 S'akas; † that amongst others, at the same court, lived Varáha-mihira. Further it is said that the Jyotirvidá-bharana is written in the

* Wilson's translation of the Vishnupurána, ed. by F. E. Hall, preface p. viii. footnote. The readings agree exactly with those of a manuscript before me.

† At another passage the number of S'akas whom a king is required to kill before he can claim the title of S'aka-destroyer, and has the right to found an era, is given as 5500000000, at least in figures, but in words *sapancakotyahjadala (pramáh)*, which is 5050000000; manifestly the figures represent the poetaster's meaning, and the words are at fault.

year 3068 of the Kali-yuga, or 33 B. C. This is enough ; a man, living 33 B. C., calls himself the contemporary of Varáha-mihira, who lived more than 500 years afterwards. As if to assist us in the discovery of his forgery, the Pseudo-Kálidása does not only say, Varáha-mihira, but he adds also the epithet *lhyáta* "the celebrated," so that how many other Varáha-mihira's there may have been, he at all events means the author of the Bṛhat-Saṁhitá. I fully agree with F. E. Hall, when he says : " There is every reason for believing the Jyotirvidábharaṇa to be not only pseudonymous, but of recent composition." He does not state his reasons ; amongst the many reasons I have for concurring in his opinion, are : 1° the absurdity of the language ;* 2° he calls the S'aka-prince king of Rúma, for which the Sanskrit equivalent, at least in form, would be Romaka ; I subjoin the stanzas where the word occurs :

यो ऋमदेशाधिपतिं शकेश्वरं
जित्वा गृहीत्वैज्यनिनीं महाह्वये ।
अनीय संभ्राम्य मुमोच तं त्वहे
श्रीविक्रमार्कः समसह्यविक्रमः ॥
तस्मिन् सदा विक्रममेदिनीशे
विराजमाने समवतिकायाम्
सर्वप्रजामंगलसौख्यसंपद्
बभूव सर्वत्र च वेदकर्म ॥†

The story told here of the S'aka-king of Rúma reminds one strongly of what befel the Turkish emperor of Rúm when defeated and captured by Timur. But to say that the fabrication is composed after that event, would give no adequate

* The poetaster is very partial to the word *sam*, which he uses as an adverb, foisting it in wherever he has to fill up a gap in the metre. Did he suppose, that because *sam* in composition is paraphrased with *samyak*, it could stand alone in that sense?

† The word *babhūva* to denote a present action is very amusing.

idea of its real date ; the impression the reading of it makes upon me is, that it may have been written a hundred years ago, it can not be much more modern, for Wilford knew the work.

The Jyotirvidábharaṇa then is the only work, as yet brought to public knowledge, which contains the information that Vikramáditya S'akári lived before our era and was the founder of the *samvat*. If there exist other works giving the same information, they ought to be brought forward, the sooner the better.

The information we derive from the other sources, cited above, may be stated briefly to be this : as early as the time of Kallaṇa-Pañḍita and Albírúní, (the eleventh century) some held the opinion that there had been a king Vikramáditya before the Christian era, the historian of Kashmere identifying him with Pratápáditya, the Arab on the other hand calling him a king of Málava ; both assert that Vikramáditya, the conqueror of the S'akas lived 78 A. D. So had Utpala done nearly a century before, 966 A. D. Three centuries before, about 640 A. D., Brahmagupta, one of the greatest of Hindu astronomers, places the defeat of the S'akas 78 A. D., and Hiou Thsang places Vikramáditya, a mighty conqueror whose sway extended even over foreign countries, in the first half of the second century of our era. It must be admitted that the authorities of all these men is not sufficient to render the epoch of Vikramáditya's reign and his chief achievements, historically certain, for not one of them is a contemporary witness. At the same time it will be granted that they may have seen, and part of them very likely had seen, original documents, of whatever description these may have been. To declare their testimony to be of less value than that of a liar, like the Pseudo-Kálidása, is an undertaking nobody is likely to attempt. I will not deny that there may have been some king before our era, called Vikramáditya, but the authenticity of the story is many degrees lower than the authenticity of the stories about

Romulus ; the latter are at least genuine myths, the former does not deserve even that name. Whatever doubts may linger about the date of Vikramáditya, the conqueror of the S'akas and the founder of the S'aka era, it is certain that *he* cannot have been the contemporary of Varáha-mihira, nor, if tradition speaks truth, of Kálidása and Amara-Sinha. Who was it then ?

In the S'atrunjaya Mábátmya* a king Vikramáditya is said to have ascended the throne in the year 466 of the S'aka or 544 A. D. As we have seen before, Varáha-mihira's life must have extended over that time. On the other hand Kálidása's patron is not called Vikramáditya, but Bhoja by Ballála-Miçra, the author or compiler of the Bhojaprabandha. Now Bhoja is held to have ascended the throne 483 A. D. or, with a discrepancy of 84 years, 567 A. D.† Wilford states that a tradition in the Dekkan ascribes to Bhoja a reign of fifty years and some months, whereas in the Bhojaprabandha it is 55 years, 7 months and three days.

पंचाशत्त्वं वर्षाणि सप्तमासान् दिनत्रयम् ।
भोजराजेन भोक्तव्यः समौडो दक्षिणापथः ॥§

If we assume the date 483 A. D. for Bhoja's ascending the throne to be correct, he must have reigned, according to this stanza, till 538 A. D. This tallies well enough with what we know about Varáha-mihira. The question now is, whether Bhoja be really the same with Vikramáditya. Notwithstanding the discrepancy between the different records and the silence of Ballála-Miçra about Bhoja bearing the title of Vikramáditya, such an hypothesis is far from inadmissible. It might be supposed too, that Kálidása and Varáha-mihira found two

* Not having the S'atrunjaya-Mábátmya at hand, I must rely upon the statements of Wilford, As. Res. IX, p. 156.

† Prinsep's Useful Tables, ed. Thomas, p. 250, and As. Res. I. c.

‡ The residence of Bhoja is said to be P'hára.

patrons first in Bhoja, afterwards in Vikramáditya. With the materials as yet at our disposal, nothing conclusive is to be said in either way. The problem which remains to be solved may be stated thus: can it be gathered from various sources in Sanskrit literature whether Bhoja and Vikramáditya are only two names for one and the same person? If so, which of the three dates 483 A. D., or 544 A. D., or 567 A. D. is to be preferred? As my endeavours to find this out have failed, I hope that others may be more successful.

Throughout the foregoing I have assumed that it was the great Kálidása, who found a patron in Bhoja, or as he is also called, S'rí-Sáhasánka. This has been denied or doubted, on the ground that the morals of Kálidása, as drawn in the Bhojaprabandha are inconsistent with the purity and tenderness of the feelings in his works. But it has been remarked by Weber* that contrasts between theory and practice are not uncommon in every clime and at all times. One might even go farther, and contend that the character of Kálidása, save one single blemish, is represented as amiable and generous. At all events Ballála-Mis'ra intends to draw the portrait of the great Kálidása, and that is the only point of importance for our purpose, not whether the portrait looks "respectable" or not, nor whether it is faithful or the reverse. As to the general trustworthiness of the Bhojaprabandha, I cannot look down on it so contemptuously as others do. The style is so unequal, that it looks more like a patchwork than like the composition of one man. The framework in prose, and perhaps part of the metrical passages are from the hand of Ballála-Mis'ra himself, but there are stanzas scattered over the whole of the work that would do credit to the best of Indian poets. The motley character of these stanzas enhances, in my opinion, the value of the work, because it scarcely can be explained, but on the supposition that Ballála-Mis'ra strung together sundry authentic verses of the wits at Bhoja's court, whether they had come down to him

* See Preface to his translation of the *Malavikágnimitram*.

by tradition or in works, now unknown. The work is moreover, for an Indian production, so remarkably free of extravagance, that on internal grounds few charges can be brought against it. I am far from asserting that no objections may be raised against it; I must myself point out that it appears strange that the author never mentions Varāha-mihira or Amara-Sinha; but on the other hand Sanskrit literature is so poor in historical works, that one ought not to despise any bit of information which is not manifestly wrong.

The Bhojaprabandha is silent about the well known so-called *nine gems*, of whom Kālidāsa was one; we have to look elsewhere for the authority from which our knowledge of the *nine gems* is derived.

The tradition, if this be the word, about the *nine gems* has recently been assailed by F. E. Hall.* He points out that the stanza :

धन्वन्तरिः क्षपणको ऽमरसिंहशङ्ख-
 वेतालभट्टघटकपर्णकालिदासाः ।
 ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
 रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

makes part of the Jyotirvidābharana; he argues that such a book has no authority, and adds that, barring this single passage, nobody has seen the "authorities" spoken of, but never seen by Prof. Wilson. This statement of Hall's, if it were true in every respect and did not need some qualification, would render the so-called tradition next to worthless. But Hall has overlooked an important fact, to be mentioned afterwards, so that his assertion is only partially true. True it is that the stanza in which the names of the *nine gems* individually occur has, as yet, only been found in the Pseudo-Kālidāsa. Happily this forger had too little skill to conceal that the stanza, as it stands in the Jyotirvidābharana, is singularly out of

* Preface to his edition of Wilson's translation of the Vishnupurāna. p. viii. note.

place, and I wonder that any one who reads the passage is not startled by the intrusion of the stanza. Out of the *nine gems* six are given in the verses immediately before; this might be explained. One may give the names of all the poets, and afterwards repeat the name of a picked number out of them, adding that, amongst all, such and such are the chief ones. But then all the names of the rank and file would be given, and nobody would in the list of the whole leave out some of the first rank, at the same time that others of the first rank are duly registered. One sees how the Pseudo-Kálidása is struggling to bring in the stanza, and he succeeds at last, but only by violence. The reason why he takes so much pains to intrude the stanza is, I should say, this: wishing to give to his forgery the semblance of antiquity, and knowing or supposing, that the stanza was current in the mouth of the pandits, but not found in writings, he practised the trick of inserting it in the bulk of his work. Such a trick would not be a stroke of genius, but it was sufficient for the purpose of imposing upon those for whom he intended it.* One thing is certain, the stanza is in the mouth of every pandit, and was so half a century ago. Now if we consider that pandits very seldom read books on astrology, much less derive their knowledge of topics wholly unconnected with astrology from astrological books, if we farther bear in mind that the Jyotirvidábharaṇa is of recent composition, it is next to impossible to account for the popularity of the memorial verse. And apart from this, the notice we have of the existence of the *nine gems* at the court of Vikramáditya is not derived from oral tradition or the Jyotirvidábharaṇa, as Hall supposed. In the inscription of Buddha Gayá, a translation of which is given by Wilkins, (As. Res. Vol. I. p. 286) we find the following: "Vikramáditya was certainly a king renowned in the world." So in his

* The Pseudo-Kálidása has even found a commentator, unless the commentary be fabricated by himself, which would be another trick quite worthy of the first.

part were nine learned men, celebrated under the epithet of the *Nava-ratnāni* or nine jewels; one of whom was Amara-Deva, who was the king's counsellor, a man of great learning, and the greatest favourite of his prince." The inscription is from Samvat 1015 or 948 A. D. So the antiquity of the tradition is fully vindicated, and at the same time additional strength is given to the assertion that the stanza is intruded into the Jyotirvidābharana.

It is at the same Buddha Gayá that General Cunningham has found a corroboration of the tradition that Amara-Sinha was contemporary, or at all events nearly contemporary, with Varáha-mihira. The learned archæologist shows* that the Buddhist temple at Gayá, the remains of which he has surveyed, is the same as the one seen by Hiouen-Tsang between 629—642 A. D.; he shows farther that the temple did not yet exist at the time of Fa-Hian's visit between 399 and 414 A. D. As the temple, according to the inscription before mentioned, was erected by Amara-Deva, one of the nine gems at the court of Vikramáditya, he concludes that Amara-Deva is the same with Amara-Sinha, the author of the Amara-Kosha, and that the same Amara-Sinha must have lived between 400 and 600 A. D.; taking the mean, we get 500 A. D., which again coincides with what we should expect in regard to Varáha-mihira.

It remains to make some remarks about the date of the Pancatantra. Colebrooke argues from Varáha-mihira being quoted in that work, † that he must have been anterior to or contemporary with the celebrated Shah Nushirvan, in whose reign, 531—579 A. D., the translation of the Pancatantra into Pehlevi was made. Bentley makes the objection that Colebrooke's argument does not hold good, unless the name of Varáha-mihira be proved to occur also in the Pehlevi translation, or

* Archæological Survey Report (Journ. As. Soc. B. Vol. XXXII), p. vii. sqq.

† Pancatantra, (ed. Kosegarten,) p. 50.

the specious ground that the passage in the Pancatantra, as it stands now, might be an interpolation. Bentley's objection seems to me utterly nugatory, and, well analysed, amounts to this, that the interpolation of passages is a physical possibility, which is true enough, but of no use in argument. It is not enough to say that a passage may be an interpolation; any passage in any book, which is in disagreeable conflict with one's crotchets, may then be called an interpolation. One has to give at least plausible arguments that there is something suspicious about it. Bentley has failed to do so, and wisely, for the passage in the Pancatantra has nothing suspicious about it. If one wishes to be sceptical, one had better doubt the whole story about the translation into Pehlevi by the command of Shah Nushirvân. It is many degrees less improbable that a poet, like Firdúsf, invents or modifies a story than that an appropriate, almost necessary, passage is to be held spurious.* In short, I think Colebrooke was perfectly right in placing the composition of the Pancatantra in the first half of the 6th century.

The results of the foregoing disquisitions may be summed up as follows: the first half of the 6th century, say 500—550 A. D., is in reality the most illustrious period of Sanskrit literature; at that time the *nine gems* flourished under the patronage of an art-loving prince, and contemporaneous with them, probably in the Dekkan, lived the author of the Pancatantra. The prince is either Bhoja, or Vikramáditya, or both names have to be considered as denoting the same person.—And now we have to return to our author and his works.

The whole of the astronomical and astrological science of the Hindus, as fixed at the time of Varáha-mihira, and indeed long

* The same Bentley could be childishly credulous, when it suited his purpose. So he gravely asserts that the Egyptians ascribed the origin of their astronomical science to Abraham, but that Abraham is nothing else but an involuntary or more likely a wilful corruption of Brahma!

before him, was divided into three branches.* So we know from Bṛh. Sanh. Ch. I. vs. 9 :

ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं
तत्कार्त्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः सङ्कीर्त्यते संहिता ।
स्कन्धे ऽस्मिन् गणितेन या यद्गतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ
होराण्यो ऽङ्गविनिश्चयश्च कथितः स्कन्धस्तृतीया ऽपरः ॥

“The Jyotiḥśāstra, treating of several subjects, is contained in three branches. The treatment of the whole is called by sages Sanhitá. In the Jyotiḥśāstra in one branch are to be found the movements of the heavenly bodies, as determined by calculation (*gāṇita*) ; this is called Tantra. The second branch is horoscopy or the casting of the horoscope.† Different from both is the third branch.”

Here then the whole of the Jyotiḥśāstra or astronomical and astrological science bears the name of Sanhitá, the first branch Gaṇita or Tantra, the second Horá, the third is left unnamed. Elsewhere the name for the last is S'ákhá ; so, e. g., in a distich of Garga :

गणितं जातकं शाखां यो वेत्ति द्विजपुङ्गवः ।
त्रिस्कन्धज्ञो विनिर्दिष्टः संहितापारगश्च सः ॥

“The excellent Brahman who knows the Gaṇita, the Játaka (nativity) and the S'ákhá, is called learned in the three branches, and has completed the study of a Sanhitá.”

The same term is used by Varáha-mihira at the end of his Bṛhaj-Játaka :

* Cf. Colebrooke's account, derived from the same sources, in his Algebra, p. XLV. sqq.

† *Angaviniṣṭhaya* means literally “the determination of the first astrological mansion or horoscope.” *Anga*, as all other words for body, e. g. *tanu*, *mūrti*, etc., denotes the first mansion or sign just rising ; another name for it is *lagna*, which strictly speaking is the initial point of the first mansion, but in a wider acceptance is a term for the whole, the sign being considered as a whole. The same applies to the Græc. ἄρσάκος.

विवाहकालः करणं ग्रहाणां
 प्रोक्तं पृथक् तद्विपुला च शाखा ॥
 खन्यैस्त्रिभिर्व्यातिघसङ्ग्रहो ऽयं
 मया कृतो देवविदां हिताय ॥

“The time for marriages and the Karana of the planets have been propounded by me separately, as well as the extensive S’ákhá. I have composed this Jyotisha-sangraha (encyclopedia of astronomical and astrological science) in three branches for the benefit of astrologers.”

It is at variance with the definition of Sanhitá, as given above, when in Ch. II. of the Brh. Sanhitá, p. 3, it is made one of the requisites of a well-trained astronomer-astrologer, that he ought to be conversant with the texts and to understand the meaning of the Grahaganita (astronomy properly so called), of the Horá and of the Sanhitá “ग्रहगणितसंहिताहोराग्रन्यार्थवेत्ता.” Here Sanhitá does not comprehend the whole of the science, but is only one of the three parts, and it is synonymous with *phalagrantha*,” or the knowledge of celestial and earthly omina and portents. This indeed is the common acceptation of the term Sanhitá up to the present day. The subjects of Sanhitá are detailed Brh. Sanhitá p. 6, and are the same as are met with in the work itself and in other Sanhitás. And Varáha-mihira was not the first to take the word in this limited sense; Garga had said already :*

यस्तु रुम्यग्विवजानाति होरागणितसंहिताः ।
 अभ्यर्थः स नरेन्द्रेण स्त्रीकर्तव्यो जयैषिणा ॥

“But one who knows properly the Horá, Ganita and Sanhitá, him ought the king to honour and to secure his service, if he wishes to be victorious.”

Thus we see that Sanhitá sometimes includes a complete course of the science, and sometimes denotes only one of its three branches. In the first acceptation it is synonymous with

* Quoted Brh. Sanh. Ch. II. vs. 21.

the more appropriate term Jyotisha-sangraha, although etymologically the one is as proper as the other. In the second acceptation it is synonymous with Phalagrantha and S'ákhá.* I think we may account for the ambiguity in this way. The whole knowledge of celestial phenomena, of measuring time, of omina and portents, of augury, in short, natural astrology went under the name of Sanhitá, before each of the three branches attained its full development. When in course of time the Hindus, through the Greeks, became acquainted with two separate branches of the knowledge of the stars, (the one really scientific, the others quasi-scientific), they must have felt some difficulty in incorporating the mathematical astronomy and the so-called judicial astrology into their Sanhitá. In keeping distinct the divisions, among which the second and third are different from each other not so much in matter as in method, they continued to feel, it is not unnatural to suppose, too well the etymological meaning of Sanhitá not to apply it occasionally to the whole course of the Jyotiḥśástra or Jyotisha-sangraha.†

Varáha-mihira distinguished himself in all the three branches of the Jyotiḥśástra. Before writing the Brhat-Sanhitá he had composed a work on pure astronomy, and one on horoscopy, as we learn from Brh. Sanh. Ch. I. vs. 10.‡

* The origin of the term S'ákhá is not clear to me. Does it imply that it is the crowning part of the whole science, the two other divisions being compared to the root and the stem? This does not tally with the fact that each of the three divisions is called a *skandha* or stem. Or is it called S'ákhá, because it comprehends so many apparently slightly connected subjects? But then the plural might be expected.

† Concerning the three divisions of a Jyotiḥśástra one may compare a passage in the Jñána Bháskara, as published by Weber in his Catalogue of the Berlin Skr. MSS. 287.

‡ In the passage from the Brh. Ját. cited above, he says that he wrote the third part or S'ákhá, so that at first sight, it would appear that he wrote the passage after having *finished* the Brh. Sanhitá, not before it. But, sup-

His first and astronomical work is always designated by himself as his *Karaṇa* or *Karaṇa grahāṇām*, and we know only from Bhaṭṭa Utpala, Albírúni, and others, that its title was Pancasiddhāntiká, a name derived from its being founded upon the five Siddhāntas. Albírúni in speaking of *Karaṇas*, as a kind of astronomical work, defines them as works forming a sequel to the Siddhāntas, or as Reinaud seems to interpret the Arabic word *tábi*, being subservient to the Siddhāntas.* That, however, is not the common acceptation of the term; a *Karaṇa* differs from a *Siddhānta*, in this respect, that in the latter the calculations refer to the beginning of the Yuga, in the former to the S'áka era. As to the word itself, it means simply, "calculation," as is proved by the juxtaposition of *grahāṇām*, one might say "mathematical operation."—About the contents of the *Karaṇa Pancasiddhāntiká* Albírúni (Mém. sur l'Inde, p. 332) expresses himself thus: "Varáha-mihira has composed astronomical tables, in a small volume, to which he has given the title of Pancasiddhāntiká. One would be led to suppose that these tables contained the substance of the five forementioned works (*the 5 Siddhāntas*), and that they are substitutes for those; but that is by no means the case." Now, the manner in which Varáha-mihira speaks of his treatise,† and the numerous quotations from it, given by Utpala, leave not the slightest doubt about the nature of the work, and show that it was, like other *Karaṇas*, a book with a regular text, in his favourite Áryá metre.‡ The tables Albírúni mentions may

posing even that the passage stands at its right place, which is far from certain, it is readily explained by the supposition that he edited the Horá and the Saṅhitá, as a whole, at the same time, or that he wrote after completing the whole at the end of each part, or volume, those notices which, in a certain manner, correspond to our prefaces.

* Reinaud, Mémoire sur l'Inde, p. 335.

† See Brh. Sanh. I. 10; V. 18; XVII. 1; XXIV. 5.

‡ Cf. Colebrooke, Algebra, p. XLVII. and note. In passing, it may be remarked that the Árya metre seems to have been in general favour in the days

have formed an appendix to the work, but were certainly not the whole work. There is nothing in this to surprise us. Highly valuable as Albírúní's information about Indian astronomy is, so far as actual knowledge of texts is concerned we know now a great deal more of them than he did; there were only a few books he had read himself, because, as he says himself, he could not get them; in most cases his knowledge is derived from the Hindu astronomers of his own days. The wonder is, that he, a hated Musulman, *did* get so much reliable information, greatly to the credit of his zeal and sagacity.—The contents of a *Karāṇa*, essentially the same as those of a *Siddhānta*, are given *Bṛh. Sanh.* p. 4.—Of the date of the *Pancasiddhāntikā*, according to Albírúní 505 A. D., we have had occasion to speak before.

After having completed his astronomical treatise, *Varāhamihira* composed works on the second branch of a *Jyotiḥśāstra*. This part, called by him in a loose way *Horá* and *Casting of the horoscope*, contains three subdivisions, the first on nativity, named *Jātaka* or *Janma*; the second on prognostics for journeys, and especially for the march of princes in war, under the title of *Yátrá* or *Yátrika*; the third contains horoscopy for weddings, as its name *Viváháh* “nuptials” or *Viváhapaṭala** shows. Here again *Horá* is sometimes synonymous with *Jātaka*, whereas at other times it is the general name for all kinds of horoscopy. The works of our author on horoscopy are in a double form.

of our author; *Kālidása* uses it more frequently than any other dramatist, so far as I know; *Āryabhaṭa* handled the metro with great felicity. The *Anuśṭub* on the contrary appears to have been used much more sparingly. If this generalization seems too sweeping and the facts not fully established, it may be excused as a guess; it can do no harm to draw the attention to a peculiarity in some authors whom there is every reason to believe to have been contemporaneous.

* I cannot say with certainty what the word *paṭala* means in this combination; I think “section,” viz. on weddings. Another name is *Viváhakāla*, “the time (lucky or ill-fated) for weddings.”

Besides the Bṛhaj-Jātaka, the Bṛhad-Yátrá and the Bṛhad-Viváha-ṭāla, there is, in an abridged form, a Laghu or Svalpa-Jātaka, a Svalpa-Yátrá and a Svalpa-Viváha-ṭāla. The works written before the Bṛhat-Saṅhitá (see Bṛh. Saṅh. Ch. I. vs. 10) are the larger ones, as may be inferred from the word *vistaratah* "copiously," and Utpala says the same, whether he inferred it, as we ourselves can do, or knew it otherwise.

The Bṛhaj-Jātaka is among all the productions of our author the most generally known and studied in India. There exist three editions of it, I understand; I have seen two, one printed at Benares, the other at Bombay, and both accompanied with the excellent commentary of Utpala. Another commentary on the Bṛh. Ját., more succinct than Utpala's, is known to me only from MSS. It is the work of a certain Mahadhara; the text belonging to it is very good.* The abridged book on nativity, the Laghu or Svalpa-Jātaka, also possesses a commentary by Utpala, and is, although not so common as its larger namesake, not rarely met with. It was translated by Albírúní into Arabic. I am not aware that there exists an edition, with the exception of the two first chapters, which have been edited and accompanied with a translation by Weber.†

The Yátrá or Yátrika existed also in a double form, as we know from Utpala. I possess a MS. of it, with Utpala's commentary, but it seems to be incomplete, as it contains only seven chapters, out of double that number. Curiously enough all the MSS. I have seen end after the 7th chapter, and there is no trace of a break. It is uncertain whether it be the Svalpa or the Bṛhad-Yátrá, as no indication of it is to be found; the title of the work is Yoga-Yátrá. About the Viváha-ṭāla I can give no information at all.

* Albírúní (see *Mém. sur l' Inde*, p. 336) knows a commentary by Bala-bhadra; that work never came to my notice.

† *Indische Studien*, vol. II. 277 sqq.

The last part of the Jyotiḥśāstra, the Sanhitā, is delivered by the author in the work just published by me. It is commonly called Vārāhī Sanhitā, but it being desirable to distinguish it from the Samāsa-Sanhitā or succinct Sanhitā of the author, the first title is preferable. The Samāsa-Sanhitā has not been recovered as yet, and is known to me only from the quotations of Bhaṭṭa Utpala.

The Bṛhat-Sanhitā is now-a-days little studied, if at all, in Northern India, however popular it may have been in former times. This is but natural; it teaches so many things of exceptional use and it is so pre-eminently a manual for court astrologers, that village astrologers are wise in their generation to confine themselves to their horoscopes for marriages. Now that the palmy days of petty princes are gone, a study of such works as the Bṛhat-Sanhitā would not pay. For us it is exactly the richness in details to which Hindus, as a rule, are entirely indifferent, which constitutes the chief attraction of the work; for the same reasons it was so highly valued by Al-Bīrūnī. Although an astrological book, it contains important astronomical data, and its value for geography, architecture, sculpture, etc. is unequalled by any Sanskrit work as yet published. Nor is it of slight importance as regards mere Sanskrit philology.

The merits of Varāha-mihira as an astronomer cannot be adequately inferred from the present publication; we ought to possess the whole of his treatise before we could do him justice. In the Bṛhat-Sanhitā he is in the awkward position of a man who has to reconcile the exigencies of science and the decrees, deemed infallible, of the Rshis.* The result of such an attempt is not satisfactory. Thus much is to be gathered from his writings, especially from the fragments of the Pancasiddhāntikā, that he belongs to the class of Āryabhaṭa, Brahmagupta, Bhāskara. It has been supposed that he was the first to fix the Hindu sphere at the beginning of Aṣvini, but this does not

* For some curious examples see Bṛh. Saṁh. V. 1—17; IX. 6, sq.

appear from his works, so far as they have come to us. From the manner in which he expresses himself in a passage Brh. Sanh. Ch. III. vs. 1 sq. connected with the ancient and actual position of the colures, one is even tempted to infer that he had no theory whatever as to the cause of the fact; he knows that the position of the colures was different in former times, but he alleges no other ground for explaining the fact, but the one "because it was declared to be so in ancient books." For aught we know, the observation which put the nakshatra Aṣvini at the head of the series, may have been made some generations before 500 A. D. If we knew the relative position of the star in the lunar mansion at the time of Varāhamihira, a somewhat more precise result might be arrived at, but that is not the case.

As an author he has deservedly been held high by his countrymen. His style, although here and there obscure, and not always graceful, is pithy, never childish, bearing throughout the stamp of individuality, something not very common among Hindu authors, allowance being made for brilliant exceptions. His language shows decided affinity with Suṣṛuta; compared with that of Kālidāsa and Amara-Sinhu it looks archaical, only however in the use of some grammatical forms and the choice of words. This peculiarity must, I think, be ascribed to his conscious or unconscious imitation of more ancient writings. Another peculiarity, a merely accidental one, is the great number of Greek terms in his works; in no other author have so many of these been found together; but we should find the same number in many other works, had they been preserved.*

* Their number is 36, viz. *Kriya, Tāvuri, Jituma, Leya, Páthena* (*Páthona* is a corrupt reading, the best MSS. have *Páthena*, which is evidently the original one, for it corresponds to *παρθενος*), *Dyika* or *Jáka*, *Kaurpya*, *Tauxika*, *Akokeru*, *Hrdroga*, *It tham*, *Heli*, *Himna*, *Ára*, *Jyan*, *Kona*, *Asphujit*, *horá*, *kendra*, *dresh kána* or *drekknána*, *liptá*, *anaphá*, *sunaphá*, *durudhara*, *kemadruma*, *veçi*, *ápoklima*, *pavaphara*, *hibuka*, *jámitra*, *meshúrana*, *dyanam*, *dyutam*, *rihpha*. Weber, who gives this list (*Indische*

I forbear here to enter into a description of the contents of the *Bṛhat-Saṁhitā*, because it can be done much more conveniently in the translation which is in preparation. Besides, the text itself is now accessible to all; as a substitute I shall give as many particulars as I have been able to collect about the authorities whom *Varāha-mihira* mentions in his works. The information is chiefly taken from *Utpala's* commentaries which, with one exception, are not accessible to every body.

Taking only the *Bṛhat-Saṁhitā* we find mentioned *Parāçara*, *Garga* (*Vṛddha-Garga*), *Kāçyapa*, *Nārada*, the *Paitāmaha-Siddhānta*, the *Saura-Siddhānta*, the *Pauliça-Siddhānta*, the *Vasishṭha-Siddhānta*, the *Romaka-Siddhānta*, *Vishṇugupta*, *Asita-Devala* or *Asita* and *Devala*, *Rṣhiputra*, *S'ukra* or *Uçanas* or *Bhṛgu*, *Maya*, *Bṛhaspati*, *S'akra*, *Garutmat*, the seven *Rṣhis* (the Great Bear,) *Bādarāyaṇa*, *Nagnajit*, *Sārasvata*, a work called *Sāvitra*, another named *Shashtyabda*, *Manu*, *Viçvakarman*, *Vajra* (or *Vātsa*, *Vātsya*), *S'ri-Dravyavardhana* (or *S'ri-Vardhamānaka*), *Kapishṭhala*, *Bhāradvāja*, and incidentally *Kapila* and *Kaṇabhuj*. To these may be added those which are quoted in other works of our author, namely *Satya* or *Bhadatta*, *Maṇittha*, *Devasvāmin*, *Siddhasena*, the Greek authors, *Jīvaçarman*, *Lāṭa-ācārya*, *Sinha-ācārya* and *Āryabhaṭa*.

Many of the *Rṣhis* upon whose authority the doctrines of astronomy and astrology are held to be founded are pure myths.*

Literaturgeschichte, p. 227) adds *kulira* and *trikoṇa*, but these seem to be genuine Sanskrit words. On the other hand ought to be added *harija* = *δριζωρ*. In the *Sūrya-siddhānta*, V. vs. 1, this word means "longitudinal parallax," but *Varāha-mihira* and *Utpala* never use it in that sense. That it means horizon is clear, e. g. from *Bh. Jāt. 5, 17* : *यद्द्राग्निर्व्रजति हरिजम्* "in the manner in which a sign comes to the horizon," i. e. "rises," where the comment : *उदयलेखं परित्यजति*, and further on : *यत्राकाशं भूम्या सहसक्तं समन्ताद् दृश्यते तद्हरिजं*.

* By myth here is meant the personification of any natural phenomenon, or of any moral, historical, social fact; in many cases it is the embodiment of a rude philosophical theory in a poetical shape. Take the example of a modern myth, the existence of "Company Bahadoor." One, unacquainted with the

In the case of some, as Súrya, S'akra, Garuṁmat, Bṛhaspati, Vasishṭha, S'akra, Pitámaha, the Great Bear, it is so evident that few would deny it. But there is no difference of character between the sun, &c., and Garga, Paráçara, Káçyapa, Vajra, &c. If to the generality of Hindus Garga, Paráçara, Nárada are persons, instead of personifications, it is because Súrya, Indra and Pitámaha are persons in the same manner. They have the merit of being at least consistent. That there were historical persons bearing patronymics derived from Vasishṭha, Garga, Bharadvája and *tutti quanti*, proves as little for the historical existence of those Ṛshis, as the undoubtedly historical existence of the Heracidae proves Hercules to have been a person, instead of the sun in his yearly course. Paráçara, Garga and Vajra are, so far as I am able to see, nothing else but synonyms of Bṛhaspati. Whatever opinion one may en-

history of the English East India Company, on hearing the brilliant achievements of Company Bahadour from the time of his birth till his death, during a life of about 250 years, would smile in unbelief at the absurdity of the story. Yet there is nothing absurd, nay more, the story is strictly true, provided one substitute a personification for a person. The whole of religious and not-religious mythology (for myths are by no means exclusively religious) would be perfectly true, if we had the key to them. But this is not the case as yet. The key to mythology in general has been found long ago, but not to every myth, because they were exposed to the modifications and corruptions by more or less rationalizing influences. A curious example of a palpably corrupted myth, struck me in Cardwell's excellent Dravidian Grammar, p. 80, where it is stated that Agastya (Canopus) is believed by the majority of orthodox Hindus to be still alive, *although invisible to ordinary eyes.*" The first part is a true myth, Canopus does exist, but the second part of the myth is adulterated, it ought to be: "although not always visible," i. e. during the time of its helical setting Agastya is invisible.

There are many who are in the habit of calling the natural explanation of myths an attempt on the part of *destructive* criticism. To those it seems perfectly natural that generations after generations of individuals and nations have quietly sat down to frame fables which would be most stupid, preposterous and immoral, unless their meaning is unriddled by *destructive* criticism. Happily criticism, whether right or wrong, has the merit of holding the more charitable view.

ertain about their mythical or historical character, it is necessary to keep in view that the books which profess to derive their authority from those Rshis are composed sundry thousands of years after the supposed age of the sages. For shortness sake one may say Garga instead of the book bearing his name, where no ambiguity can be the result.

To begin with Parāçara, he is a prominent figure in some Purānas. Some information about him is gathered in Wilson's translation of the Vishnu-purāna (ed. F. E. Hall, p. 8.) In the Mahā-Bhārata (I. Ch. 176) his name is S'aktiputra;* Varāha-Mihira in the Bṛh. Jāt. VII. 1. calls him S'aktipūrva. Both names convey the same meaning, S'aktiputra being "the son of strength," the latter "originating in, or resulting from strength." Weber† remarks that Parāçara is considered to be the most ancient of Hindu astronomers, and that the second in order of time is Garga. Upon what this notice is based, I do not know, but he is certainly not generally so represented. All those mythical astronomers derive their knowledge immediately from Pitāmaha or Bṛhaspati, and it is far from the intention of the epic poems, I dare say, to distinguish the Rshis in time. Where poets ascribe to their Rshis or other personifications a life of many thousand years, they think or care little about chronology. This much is certain, if one wishes to classify Parāçara, Garga, the sun, &c., according to the time at which they are fancied to have lived, one must acknowledge Pitāmaha as the first astronomer, he being the fountain head of the science. That the name of Parāçara has become in Sanskrit literature prominent above other Rshi astronomers is due to his being a proclaimer of Purānas. The frequency of his name in the writings of scholars who have occupied themselves with Hindu astronomy is due to Utpala. The latter in commenting upon the passage Bṛh. Sanh. III. 1, where Varāha-

* F. E. Hall, (l. c.) remarks that S'akti is "hardly the name of a male." As if a male were intended! S'akti is the heavenly power of Indra-Agni.

† Indische Liter. p. 225.

mihira compares the ancient and actual position of the solstices, quotes some lines from Parāçara ; he might have quoted many others, especially the Veda calendar, but one was sufficient. Varāha-mihira himself had, of course, not only Parāçara in view, for he says "*pūrvvaçāstreshu*," in ancient works. The work that professes to contain Parāçara's teachings, is generally called Parāçara-tantra. It was certainly held in high esteem, and Varāha-mihira borrows largely from him, although far less than from Garga, who is the great authority.* I have not been so fortunate as to see the Parāçara-tantra, nor have I heard from anybody else that he knew it. To judge from very numerous quotations, the greater part, at least a large part, of it is written in prose, a striking peculiarity amongst the works of its class. A pretty large part is in Anuṣṭub, and it contains also Āryās. Interesting for the geography of India is an entire chapter which Varāha-mihira, only changing the form, but leaving the matter almost intact, has given in the 14th Ch. of the Brh.-Sanhitā ; therefore we have to consider that chapter as really representing the geography of the Parāçara-tantra or perhaps yet more ancient works, and not as the actual map of India in Varāha-mihira's time. As the Yavanas or Greeks† are placed by Parāçara in Western India

* Garga is quoted in the Brh. Sanh. fifteen times against Parāçara five times ; in the Brh. Jāt. the latter is named twice, the former not at all. Utpala on Brh. J. VII. 9, says that he never had seen a Parāçara-Horā, and only knew from actual inspection a Parāçariyā Sanhitā, (*i. e.* the Parāçara-tantra), but that he was told the work of Parāçara existed in three branches (*skandhas*). I have seen a Parāçara-Horā ; it is one of the innumerable astrological fabrications.

† That the Yavanas originally denoted the Greeks and only the Greeks will appear from the sequel. To assert that Yavanas (in ancient times) may denote any kind of people under the sun is so wonderful an assertion that one ought to have some reasons given why the Hindus should give the name of Ionians to nations who were no Ionians nor had anything in common with Ionians. It is not so strange that after the conquests of the Islam, Mohammedans were called Yavanas. The Yavanas were the foremost, the most dreaded of the Mlechas, so that Yavana and Mlecha became synony-

in S. W. direction from Madhyadeśa, we are able to draw a certain limit, but an ill-defined one. From the occurrence of the Āryá-metre, I suspect that it is of later origin than the Gárgí-Saṅhitá, to which we shall now turn our attention.

I can give details about the Gárgí-Saṅhitá, as I happen to have at my disposal a part of this extremely rare work. The copy is only a fragment, the first 41 leaves being lost and the manuscript not going beyond leaf 91, where it abruptly ends. It contains nearly half the number of the chapters contained in the Bṛhat-Saṅhitá, under the same or synonymous titles, as *grahayudham*, *grahaṣṛṅgáṭakam*, *pushpalatáh*, *indrādhrājocchráṅg*, *naralaxanam*, *strílalaxanam*, *gajalaxanam*, *kírmalaxanam*, *mayúracitrakam*, *ulkáalaxanam*, *sandhyáalaxanam*, etc. The title of the work, as given at the end of each chapter, is generally इति वृद्धगार्गीये or वृद्धगार्गीयायां ज्योतिषसंहितायाम्, sometimes इति गार्गीये ज्योतिषे, and at leaf 78, a, वृद्धगार्गी (sic) तन्त्रे मांत्रसंमृत्तं समाप्ता चयं गार्गी संहिता; then follows a Mayúracitrakam (a different chapter of the same name having preceded already) in several sub-divisions with a particular number, but without a particular name for each sub-division; the title of the book to which this second Mayúracitrakam belongs, as given at the end of each sub-division, is इति वृद्धगार्गीये ज्योतिःशास्त्रे. These particulars are necessary for the following reason: Varáha-mihira mentions Garga several times, and inserts even whole ślokas in his own work; Utpala's quotations amount to more than two hundred ślokas; now those quotations recur in my copy of the Gárgí Saṅhitá, not all, of course, for the copy is only a fragment, but as some eighty ślokas have been verified, it suffices to show, that wherever Varáha-mihira and his commentator say simply

mous. When the Mohammedans trod in the steps of the Greeks, they became the chief Mlechas, consequently Yavanas. Yavana, however, never denotes an Arab as such, neither formerly nor now-a-days; it is never a name for a nation. The only nation called Yavanas, were the Greeks.

Garga, they mean this work. We have seen that the full title exhibits the epithet *Vṛddha*, and in the work itself, as well as in the verses quoted by Utpala, he is as often called *Vṛddha Garga*, as simply *Garga*, e. g.

आसीनं हिमवत्पार्श्वं वृद्धगर्गं महामुनिम् ।

क्रौटुकिः परिपप्रच्छ विनयात् संश्रितव्रतम् ॥

and without the epithet :

विनयादुपसंगम्य गर्गं क्रौटुकिरब्रवीत् ।

Thus it is manifest that by *Garga* and *Vṛddha-Garga* the same mythical person is meant; but the case is different in regard to the works which are quoted under the name of *Garga* and *Vṛddha Garga*, respectively. This does not appear from the *Bṛhat-Saṅhitā*, where *Vṛddha-Garga* occurs twice* and no verses are quoted, but from quotations in Utpala's commentary. More than once the opinion of *Vṛddha-Garga* is set against that of *Garga*; e. g. when at the beginning of Chap. XXXI. of *Bṛh. Saṅh.* the dissentient views of the Sages about the cause of earthquakes are noticed, the commentator cites some verses of *Vṛddha-Garga*, who represents earthquakes as caused by the gods to show their satisfaction or dissatisfaction with the conduct of the mortals; *Garga* on the contrary sees the cause of earthquakes in the heaving sighs of the tired elephants of the four quarters. This is not the only passage. Sometimes *Garga* and *Vṛddha-Garga*—i. e. the works quoted under these names—are both cited as authorities for some opinion in which both agree. Here we have two facts: *Garga* and *Vṛddha-Garga*, considered as persons, are one and the same, but where Utpala quotes *Vṛddha-Garga* he has another work than the *Gārgī-Saṅhitā* in view. How to explain it? Considering that after the words “*iti Vṛddha-Gārgī-tantra, &c.*” there follows a *Mayūracitrakam* of a *Vṛddha-Gārgīyam Jyotiḥśāstram*,” and that at least one śloka, adduced by Utpala

* *Bṛh-Saṅh.* XIII. 2, XLVIII. 2.

from Vṛddha-Garga really occurs there, I guess that Vṛddha-Garga (*i. e.* the book) either formed a kind of *pariṣiṣṭa* or appendix to Garga, or that both works did not differ more from each other than different redactions of old Sanskrit books occasionally do. It must be remarked that many quotations from Vṛddha-Garga in Utpala do not recur in the Mayúracitrakam appended to the Gárgí-Sanhitá.

My codex is not only mutilated, but also extremely incorrect and carelessly copied; the omission of words and whole passages is of but too frequent occurrence. The verses of Garga found in the commentary to the Veda-calendar and published by Prof. Max Müller in the preface to the 4th Vol. of the Rgveda, are not to be found in my fragment, and could not indeed have made part of it, because their place would be in the earlier part, precisely that which is lost; there is, however, reason to believe that they are taken from the Gárgí-Sanhitá.*

For ascertaining the approximate date of the Gárgí-Sanhitá we have in the first place the well known verse :†

स्त्रिच्छा द्वि यवनास्तेषु सम्यक् कास्त्रिमिदं स्थितम् ।
ऋषिवत्ते ऽपि पूज्यन्ते किम्पुनर्देवविद् द्विजः ॥

“The Greeks are Mlecchas, but amongst them this science is duly established; therefore even they (although Mlecchas) are honoured as Rshis; how much more then an astrologer who is a Brahman.”

Still more valuable is a whole chapter in the Gárgí-Sanhitá containing some historical accounts, more explicit in regard to

* The objection that may be raised, is that the verses in the commentary to the Jyautisha are not of astrological character; the objection would be unanswerable if Sanhitá in this case has to be taken in its limited sense.

† It is a mistake of Colebrooke to ascribe these lines to Varáha-mihira; I should not have remarked this, were it not that the mistake has been repeated again and again, long after Weber had given the correct statement.

the Greeks than any other Sanskrit book I know of. The chapter bears the title of "Yuga-paráram." and exhibits in the fashion of other Purāṇas a quasi-anticipated history of the Four Ages or Yugas. The three first Ages are disposed of very briefly, and only of the Kali-yuga a somewhat detailed account is set forth, the whole in prophetic style. I shall pass over the three first Ages, only noticing that it records the great war at the close of the Dvápāra Age and the reign of Yudhishthira the righteous, and that it mentions a host of names familiar from the Mahābhārata.* After speaking of Párixit Janamejaya, his quarrel with the Brahmans and his death, it goes on in the following verses :

ततः कलियुगे राजा शिशुनागात्मजो बली ।
 उदधीर्नाम धर्मात्मा पृथिव्यां प्रथितो गुणैः ॥
 गङ्गातीरे स राजर्षिर्दक्षिणे समानाना चरो (?) ;
 स्थापयेन्नगरं रम्यं पुष्पारामजनाकुलम् ॥
 ते ऽथ पुष्पपुरे रम्ये नगरे पाटलीसुते ।
 पञ्च वर्षसहस्राणि स्थास्यन्ते नात्र संशयः ॥
 वर्षाणां च शतपञ्च पञ्चसंवत्सरांस्तथा ।
 मासपञ्चमहोरारत्रं मूहूर्तान् पञ्च एव च ॥
 तस्मिन् पुष्पपुरे रम्ये जनश्रजा (?) राज (?) शताकुले ,
 ऋतुत्ता— कर्मसुतः शालिश्रूको भविष्यति ॥
 स राजा कर्मसुतो— दुष्टात्मा प्रियविग्रहः ।
 स्वराष्ट्रमर्दते घोरं धर्मवादी अधार्मिकः ॥
 स ज्येष्ठभ्रातरं साधुं केतिति (?) हत्वा वि (?) प्रथितं गुणैः
 स्थापयिष्यति मोहात्मा विजयं नाम धार्मिकम् ॥

This translated, so far as the wretched state of the text allows it, is : " After that, in the Kali-yuga there will be a king righteous and renowned in the world for his virtues, the powerful son of S'icunāga, Udadhí by name. That Royal Sage

* It is curious that no mention is made of Ráma, the son of Daçaratha. The story of Paraçu-Ráma (here simply called Ráma) destroying twenty-one times the Kshatriyas at the end of the Tretá-Yuga, is shortly narrated.

will build on the right bank of the Ganges a lovely city, full of flower-gardens and inhabitants. They (the S'aicunágas) will then remain in the lovely city of flowers, at Pátalíputra, 5505 years, 5 months, five days and five muhúrtas, undoubtedly." The following is, unhappily, wholly corrupt. This much is clear that "there will be S'álicúka, the son (?) of (?), a wicked, quarrelsome king. Unrighteous, although theorizing on righteousness, he cruelly oppresses his country." The former half of the next śloka is again sadly mutilated; it may mean that S'álicúka murders his eldest brother; the second half says that "he will establish his virtuous brother Vijaya" as governor or successor. The name, but nothing more of S'álicúka is known from other sources, where he is the fourth in succession from Açoka. That the same is meant here, seems to be countenanced by the next ślokas:

ततः साकेतमाक्रम्य पञ्चालान् मथुरां तथा ।
यवना दुष्टविक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम् ॥
ततः पुष्पपुरे प्राप्ते कर्दमे (?) प्रथिते हिते (?) ।
अकुला विषयाः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः ॥

"Then the viciously valiant Greeks, after reducing Sáketa, Pancála-country and Mathurá, will reach (or take) Kusumadhvaja (Palibothra); Pushpapura (Palibothra) being reached (or taken) all provinces will be in disorder, undoubtedly."

So then we see, in a Sanskrit work, the confirmation of the records of the Greek historians, that the Bactrian Kings led their victorious armies far into the heart of Hindustan. If the account of Garga is true, the extent of the Greek conquests is considerably greater than Greek historians tell us. For they made themselves at least masters of Sáketa, and this can scarcely be any other city but Ayodhyá, agreeably to general opinion, indeed, but doubted now and then.* Another Hindu

* In the Brh. Sanh. Ch. XIV. Sáketa is most certainly Ayodhyá or rather the kingdom.

witness for Sáketa being, at least, besieged by the Greeks, is Patanjali in a passage, which Prof. Th. Goldstücker has made known, and most ingeniously applied to fix the date of the Mahábháshya.* The words *kardame*, &c., look as if they contain the name of the Greek King, and it is most tantalizing that they are so badly preserved.

The next following is a complaint against the heretics (*páshandás*,) described as चीरावक्कलसंवीता जटावक्कलधारिणः । भिक्षुका वषला लोके भविष्यन्ति, from which it is clear that the Buddhist monks are intended. After some more complaints in the same style, it proceeds :

मध्यदेशे न स्थास्यन्ति यवना युद्धदुर्मदाः ॥
 तेषामन्योन्यसंभावा (?) भविष्यन्ति न संशयः ।
 आत्मचक्रोत्थितं घोरं युद्धं परमदारुणम् ॥
 ततो युगवशात्तेषां यवनानां परिहये ।
 संकेते (?) सप्त राजानो भविष्यन्ति महाबलाः ॥

“The fiercely fighting Greeks will not stay in Madhyadeśa; there will be a cruel, dreadful war in their own kingdom, caused (?) between themselves. Then, in the course of the Yuga, at the end of the Greek reign, seven mighty kings will be in alliance (? or have we to read *Sáketa*,” in *Sáketa*?)

After some wars, it is said that the Agnivaiçya-kings will fall in battle.

शकानां च ततो राजा ह्यर्थलुब्धो महाबलः ।
 दुष्टभावश्च पापश्च विनाशे समुपस्थिते ।

* See his “Páñini,” p. 230. The Mádhyamikas, who are said by Patanjali to have been besieged by the Greeks, are a people of Madhyadeśa, and can have nothing to do with the homonymous Buddhist sectarians. They are enumerated as a people in Madhyadeśa in Bṛh. Sanh. Ch. XIV. 2. In the Mahábhárata we find the Madhyamakeyas (preferable v. r. Mádhyama-keyas) see M. Bh. II. Ch. 32, vs. 8. Here they are placed N. W. from Indraprastha, and must have been the neighbours of the Trigartas. The Buddhistic sect, called Mádhyamikas, may have derived their name from the country.

कलिंगा शतराजार्थं (?) विनाशं वै गमिष्यति ।
 कोचद्रकंडैः (?) शबलेर्विलुपन्तो गमिष्यति ।
 कनिष्ठास्तु हताः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः ।
 विनष्टे शकराजे च शून्या पृथ्वी भविष्यति ।

I shall not attempt to translate these verses, from which it appears that for a time after the Greeks, a rapacious Śāka or Scythian king was most powerful. In the sequel, the only facts distinguishable in the hopelessly corrupt MS. are the reigns of a king Ābhrāta or Āmrāta Lohitāksha, of Gopāla, of Pushyaka, of Savila (?) all extending only over a few years. Agnimitra is mentioned as the king of a country Bhadrāpāka; he will have a beautiful daughter, who will be the cause of a quarrel between him and the Brahmans. Then farther, an Agniveçya will be king and reign for 20 years over a prosperous country. After him bad times return, and the Śākas repeat their depredations. At last the Yugapurāṇam winds up with a description of the end of the world, much in the fashion of the Vishṇupurāṇa, Ch. XXIV.

The information we get from the Gārgī-Saṅhitā about the Greeks is summarily, that a short time, perhaps immediately, after Śāliçūka, the Greeks made themselves master of a part of Madhyadeça. As the Greek historians ascribe the greatest conquests to Demetrius and Menander, Demetrius reigning according to Lassen 205—165 B. C. or thereabout, and as Śāliçūka is in the middle between Açoka's death, 226 B. C., and Bṛhadratha's death 178 B. C., it would not appear far from the truth to place the conquest of the Greeks about 195 B. C. The Gārgī-Saṅhitā however goes farther; the Scythian king, who comes after, but not immediately after, the withdrawal of the Greeks, may be placed approximately 130 B. C., the aggregate of the reigns of the kings mentioned subsequently brings us down to the 1st century before our era. The only Greek word in the Saṅhitā before me is Horá; the development of astrology among the Greeks falling between

300 and 200 B. C., this gives no additional datum for the age of the Sanhitá. Not having found any allusion in it to the signs of the Zodiac, I should be inclined to place the work before the Rámáyana* and contemporary, or nearly so, with the Mahábhárata; the approximate date I assign to it is 50 B. C. It is certainly not older, and scarcely much more modern. I see no reason why the Yugapuránam should not go as far as other Puránas in its prophetic history. We may therefore adopt as the date of the book the period where the prophetic breath comes suddenly to an end. The principal Puránas go considerably farther. At the time of the composition of the Gárgí-Sanhitá Pátaliputra must have been the imperial city of Hindustán.

Another Sanhitá, the Náradí-Sanhitá or rather professing to be so, exists in many MSS. In the Catalogue of the Sanskrit MSS. of the Berlin Library (257,) Weber has given the opening lines of the work. Those lines would suffice to raise serious doubts whether the Náradí-Sanhitá, now passing as such in India, be the same with the book meant by Varáhamihira, who mentions Nárada twice (Bṛh.-Sanh. Ch. XI. 5; Ch. XXIV. 2.) Amongst the 18 authorities whose names occur in the opening lines of the so-called Náradí-Sanhitá we find a Yavana, a Paulastya and a Romaça. All three names are blunders; there is not one Yavana only, but there are many, the word is never used in the singular in any other work of some value. Farther Paulastya is in sundry MSS. a quasi corrected form for Pauliça-(Siddhánta); the work before us improves upon it by confounding Pulिça with his adjective Pauliça, and making from an adjective a man.

* It must in all fairness be added that all the MSS. of the Rámáyana do not exhibit the chapter where the names of the signs of the Zodiac occur. By the way, it may be noticed that Java and the country, called Chryse by the Greeks, now-a-days Malacca (?) are mentioned in the Rámáyana, IV. 40, 30 (ed. Bombay). Goresio's text has Jaladvípa, a stupid would-be correction of some MSS. for Javadvîpa. Such would-be corrections are very common; e. g. Bharukaccha, the Sanskrit form of Barygaza, now Bharoach, is generally corrupted to Marukaccha.

Romaka is again corrected into Romaça. It was to be expected beforehand that the quotations from Nárada would not be found in the book in question; they *do* not recur in it. In short the Náradí-Sanhitá current now-a-days, is a cento of older Sanhitás, not genuine, and worthless into the bargain.

Asita-Devala, (or, as Utpala seems to mean, Asita and Devala,) is one of the most celebrated of R̥shi astronomers, celebrated even among Buddhists. Hiouen Tshang knows him under the name of *O-si-ti*, as the astrologer who cast the horoscope for the nativity of Buddha; he was not aware that no horoscopy was known in India at the time of S'ákyamuni. The work ascribed to Asita-Devala has never come to my notice; from quotations I know that Asita-Devala, or at all events Devala, was acquainted with the signs of the Zodiac, from which it is to be inferred that he (I mean his work) was posterior to Garga.

Rshiputra seems to have been one of the chief authorities in astrological science. He is never called by any other name. From the manner in which the word is used in the Rámáyana, I suspect that R̥shyaçr̥nga is the mythical person intended.

A high authority is also Kác̥yapa, as the name is written throughout in the best MSS., whilst others now and then exhibit Kaçyapa. As Kaçyapa is the twilight,* especially the

* That Kaçyapa is twilight appears from the word itself and from his myth. *Kaçyapa* or *Kacchapa* stands for *Kaxapa*, from the same root which has formed *xapá* in Sanskrit; it is bodily the Greek *κεκρωψ* and allied to Latin *crepusculum*. From Kaçyapa, as the morning twilight, it is said that the lights rise; see Taittir. Arany. I. 8. The morning twilight precedes the sun; the evening twilight comes after the sun, therefore Kaçyapa is also called the son of Marici, the ray of the parting sun. Precisely so Cecrops is as well the father of Pandion, the All-bright or All-shining, (from *πav* and *dí, didí*; cf. Aphrodite) as the son of Pandion. The wife of Kaçyapa is Aditi (from *a* not and "*diti*"), the wife of Cecrops Aglaura (from *a* "not" and a word identical with Lat. *gloria*, allied to Skr. *glau*.) Aditi, seemingly the reverse of Diti, is in nature and mythology scarcely

morning twilight, it seems not proper to make him a proponent of the science of sun and stars which he precedes; in modern fabrications the form Kaçyapa is a favourite one, perhaps to compensate for their making Pauliça and Paulastya out of Pulica! A Kaçyapa (*sic.*) known to Balabhadra, (Ind. Studien, II. 247,) cannot be the Kácýapa of Varáha-mihira and Utpala. The quotations given by the latter are numerous, and show that the work was of the same kind with the Gárgi-Sanhitá. In the commentary on Bṛh. Sanh. Ch. XVI. a whole chapter is quoted. One circumstance deserves mentioning, that where Varáha-mihira enumerates the Romans amongst those who stand under the influence of the Moon (Bṛh. Sanh. Ch. XVI. 6.) the corresponding passage of Kácýapa passes them in silence.

Another mythical authority in astronomy and astrology is Manu. Although Manu is the personification of mankind, especially in its social relations, and therefore with the Hindus bears pre-eminently the character of a Lawgiver, and with the Greeks exclusively so, yet as the ideal man he must be acquainted with all things that the human mind has discovered.

distinguishable from her, because the light gradually fades into darkness, and the reverse. All words therefore denoting light, occasionally denote want of light, if not actually privation of light; *Ushas* is dawn, *ushá* is "night;" *ushásau* "day and night;" so *aktu*; so the German "schimmer" means "darkness of twilight" in Dutch; so *xap* "night," (although not always "night" in the Vedas) goes over into *crepusculum*. Aditi as deficiency of light differs little, if at all, from Diti, considered as the beginning of gleam; yet the balance turns to making Aditi especially the beginning of light, the morning gleam, or even night, therefore she is the mother of the sun in all his forms; Diti "daylight" precedes the stars; the former is the mother of the Adityas, the latter of the Daityas, the brightest amongst the latter being Uçanas or Venus, or in mythological phrase he is the wisest, (the brightest fellow) of the Daityas, he is their Master. Many other traits common to Cecrops and Kaçyapa cannot be pointed out here. The Hindu commentators were not unaware of *Kaçyapa* meaning "grey, darkish," for although the word is explained by "*çyávadanta*" it is evident that this is only the application of the signification to a special case and that the broad meaning is *çyáva*.

He is enumerated as one of the eighteen Sanhitá proclaimers in many works of otherwise questionable value, but giving in their enumeration certainly a faithful account of the existing most esteemed works. Manu is represented as an authority in astrology even in so old a book as the Gárgí-Sanhitá, but that does not mean that there existed a regular book emanating from his transcendentai wisdom. Varáha-mihira, though mentioning Manu several times, once only refers to the Mánava-Dharmaśástra, viz. Brh. Sanh. Ch. LXXIV. 6, sqq. and it is curious that only a part of the lines quoted by him recur in Manu, as we know him now. Another passage of the Brh. Sanh. Ch. LIV. 99, shows that there was a work derived from Manu, or rather a part of such a work, treating of the Dagárgalam or exploration of the fitness of the soil for digging wells. As the Dagárgalam constitutes regularly one of the chapters of a Sanhitá, it is not hazardous to assume that Manu's Dagárgalam made part of a Mánava-Sanhitá. Of the existence of such a work at the present day I know nothing; probably it has shared the fate of so many works of the recovery of which there are but faint hopes.

A new era in Hindu astronomy is marked by the composition of the Siddhántas. Three out of the five standard works of that name existing previously to Varáha-mihira, are ascribed to mythical authors, and there is little doubt that in their character also, they would show the traces of a period of transition from myth to science properly so called. This assertion, however, cannot be proved from the materials we have at our command.

The Paitámaha-Siddhánta seems to have been entirely superseded by the revised edition of it by the celebrated Brahma-gupta. Even Utpala, so well-read in old astronomical and astrological literature, quotes only from the Sphuṭa Brahma or Bráhma-Siddhánta,* although he does not add the word *Sphuṭa*, as if it were a matter of course. If at the time of

* This has been remarked already by Colebrooke, Algebra, p. XXX.

Utpala the Paitámaha-Siddhánta had fallen into oblivion, it is not strange that Albírúni had no knowledge of it ; see Reinaud's Mémoire, p. 332.

The Saúra, or Súrya-Siddhánta is mentioned by Varáha-mihira, Brh. Sanh. p. 4, and Ch. XVII. vs. 1. As in the latter passage we are informed* that the treatise Pancasiddhántiká followed the doctrine of the Súrya-Siddhánta in respect to the *grahayuddham*, an astrological name for conjunction, we may conclude that the Súrya-Siddhánta contained some matter which would find a place more appropriately in an astrological work. It was at least not wholly free of astrological influence, in so far that in some respects it did not disregard the terminology of the Sanhitás. The Súrya-Siddhánta, current in the days of Albírúni, is ascribed by him to Láta, and as the Arab expresses the received opinion of the native astronomers, unless where he intimates his dissent, there is every reason to believe that Láta was really, if not the original author, at least the author of the recast, as it was current in the first half of the eleventh century. Láta being anterior to Varáha-mihira, as we shall see hereafter, it may be that Varáha-mihira means by Súrya-Siddhánta Láta's work, but for aught we know it may as well have been a still older *edition*, to which a not very adequate but sufficiently clear expression. Bhaṭṭa Utpala mentions† the Súrya-Siddhánta comparatively very seldom, only six ślokas are quoted, which I subjoin in the foot-note,† because not one of them recurs in the Súrya-Sid-

* q. v. Instead of *Súrya-siddhántát*, a v. r. has *Súrya-siddhánte* ; in the latter *Siddhánte* has to be taken in the same construction and sense, as if it were *mate* "opinion, doctrine : " *siddhánta* is in fact nothing else but proved, well-established opinion. It may be also that the author had divided his treatise into chapters, each of which treated of the five Siddhántas severally, instead of giving an eclectic view of his own, based upon the study of the groundworks.

† They are :

तेजसां गोलकः सूर्यो ग्रहर्षाणाम्बुगोलकाः ।
प्रभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिबिदोपिताः ॥

dhánta in its present shape. Five of the six verses must, to all appearance, have belonged to the same chapter, and the substance of two, at least, is found in the present Súrya-Siddhánta in rather different words, so that it is impossible to admit their being perchance various readings or interpolations. The conclusion we have to draw from the preceding is, however, by no means that arrived at by Bentley. He places indeed, the Súrya-Siddhánta in the 11th century of our era, but we have to take his words in the meaning he attached to them, and the only meaning which is consistent with the other conclusions he thought himself justified in drawing from the discoveries he boasts of. According to Bentley's view, no Súrya-Siddhánta whatever existed before the 11th century, a view controverted by Whitney* by many arguments, any one of which by itself would be sufficient to upset Bentley's theory. Whitney has shown, moreover, that even the fact of the Súrya-Siddhánta in its present shape dating from the 11th century admits of serious doubt. Strictly speaking we do not know at all at what time the last recast of the work was made, and whether the undoubted alterations of the text have been made gradually, or whether the work went through a limited number of improved and modernized editions. That our Súrya-Siddhánta, however it may have been modified (and Utpala's quotations go far to prove that the modifications

महतस्यापधःस्यस्य नित्यं भासयते रविः ।
 अर्धं शशाङ्कविम्बस्य न द्वितीयं कथञ्चन ॥
 विप्रकर्षं यथा याति ह्यधस्ताच्चन्द्रमा रवेः ।
 तथा तस्य च भृशमंशं भासयते रविः ॥
 भूक्षायां शशिकचाया रवौ भार्धान्तरस्थिते (MSS. भावा० भागा०) ।
 यदा विश्वविचित्रचन्द्रः स्यात्तद्गृहस्तदा ॥
 इन्दुनाच्छादितं सूर्यमधो विचित्रगामिना ।
 न पश्यन्ति यदा लोके तदा स्याद्वास्करघटः ॥

The nearest approach in the present Súrya-siddhánta to these lines, is IV. 6 to the fifth, and IV. 9 to the sixth; but the distance is great.

* Súrya-Siddhánta, transl. p. 21, sqq.

exceed all moderation according to European ideas,) nevertheless resembles in its features and structure the original Saura, or Súrya-Siddhánta, seems to me very probable. A little higher up, I hinted that the old Súrya-Siddhánta was not emancipated from astrology; we might *a priori* expect as much, because it must have been one of the first works of the scientific period of Hindu astronomy. In some other Siddhántas we find some few names reminding us of the Sanhitá period, in others all traces of astrology are lost. Now, what do we find in our present Súrya-Siddhánta? A much larger portion of astrological or half-astrological matter than in any other Siddhánta, in such as I know at least; see its Ch. VII., 18-24, the *grahayuddham*, the very same term we found above; see also Ch. XI. Further, while in some Siddhántas the *navagrahas* are scarcely more than mentioned, in Áryabhaṭa's work not even so much, the present Súrya-Siddhánta treats of them comparatively copiously. Add to this the circumstance that all the Siddhántas since Áryabhaṭa are in the Áryá, but the work in question is in Anuṣṭubh,* the same metre in which Utpala's quotations are composed, and it will be difficult to avoid the conclusion that the Súrya-Siddhánta in its present edition is a lineal and legitimate descendant of the work mentioned by Varáha-mihira as one of his authorities.

The Vasishṭha or Vásishṭha-Siddhánta was known to Albírúni only as the work of Vishṇucandra, but his statement is evidently not so exact as Brahmagupta's, who ascribes only the revision to Vishṇucandra†. As the latter borrowed from Áryabhaṭa, (see Colebrooke l. c.) and this astronomer was contemporary with Varáha-mihira, the Vásishṭha-siddhánta mentioned in the Bṛhat-Sanhitá must have been the older one. The metre of the work, cited as such by Utpala, is in Anuṣṭubh. There exists a certain Vasishṭha-siddhánta, a very short

* Only the decidedly old Siddhántas, like the Vásishṭha and Romaka-siddhántas, and the *original* Pauliṇa-siddhánta, are in Anuṣṭubh.

† Mém. sur l'Inde, p. 332, and Colebrooke's Algebra, p. XLIV. & XLVII

work, in 94 ślokas, proclaimed by Vasistha, the son of Brahma, to Māṇḍavya. It unequivocally lays claim to being the old genuine Vasishṭha-siddhānta, and is as unequivocally a forgery. Both facts are clear from the 80th śloka, containing the stereotype prophecy :

इत्थं माण्डव्य संक्षेपादुक्तं शास्त्रं मयात्तमम् ।

विस्तृतिर्विष्णुचन्द्राद्यैर्भविष्यति युगे युगे ॥

The framers of the work knew at least that Vishṇucandra was one of the revisers of the Vasishṭha-siddhānta. Whether Utpala's quotations are from Vishṇucandra, or from the older edition, is uncertain, but this much is sure that they are not to be found in this would-be Vasishṭha-siddhānta.

The Romaka-siddhānta is ascribed, both by Brahmagupta and Albirūni, to S'ri-sheṇa. Except the quotations given by Utpala, which again are in Anushṭubh, and therefore bespeak a certain antiquity, I am not able to give any further detail about it. Whether it is still in existence is extremely doubtful; it must have been scarce, if, indeed, not wholly lost, long ago, for there exists a spurious Romaka-siddhānta, and it is hardly to be supposed that the experiment of fabricating one would have been deemed safe, if the old genuine work had been known to be extant. A MS. making the pretension of being *the* (or at least *a*) Romaka-siddhānta, belongs to the I. O. Library in London. It is a purely astrological, not astronomical work, written in a mongrel Sanskrit which defies all description and does not deserve any. Amongst other curious things, curious in their way, it contains a horoscope of Jesus! As it speaks of the kingdom of Baber and mentions, prophetically of course, as it befits an astrologer, the overthrow of the kingdom of Sindh, which was conquered by Akbar in 1572, A. D., it dates from 1600 A. D. or later. The author cannot have been a Hindu, because any Hindu, when learning Sanskrit, is taught in such a way that he may write a very incorrect Sanskrit occasionally, but never the hybrid

language of the pseudo Romaka-siddhānta. From a certain expression, not to dwell longer upon this theme, I guess that the scribbler was a Parsee ; he calls namely Kerman Śrī-Karmāṇa ; now, it is hard to conceive, how it could enter one's head to call Kerman the "blessed," unless one be a Parsee ; he must moreover have been an inhabitant of the former kingdom of Sindh.

The Pauliṇa-siddhānta, although not procurable now-a-days, is much better known than the foregoing, being largely quoted by several astronomers and their commentators. It stood manifestly in high favour as late as the days of Albīrūnī, and was, barring the Sphuṭa Brahma-siddhānta, the only siddhānta he could procure for himself (Reinand, p. 334.) The name of its author Pulīṇa* points clearly to a foreigner, a Greek or Roman ; Albīrūnī calls him Paules the Greek and gives the name of the Greek's birth-place in a form which seems corrupt. His testimony is, of course, the testimony of the Hindu astronomers at his time, and there is not the slightest reason to doubt its accuracy. Weber has made the suggestion that Pulīṇa the Greek may be identical with Paulus Alexandrinus, the author of an astrological work of the title of Eisagoge. In this Eisagoge, so he argues, (Ind. Stud. II. 260) there is a passage which agrees "almost literally" with one found in a modern Hindu book on Nativity, the Hāyana-ratna, by a certain Balabhadra, not to be confounded with his much more ancient namesake. Weber's surmise is scarcely admissible ; for the passage alluded to will be found in all works on Nativity almost literally the same, because it is a simple enumeration of the mansions and their lords ; two lists, if their

* In a MS. of the Comm. on Bṛhat-Saṅhitā it has been corrected by some *lepidum caput* into Pulastya ; such quasi-corrections are very common, Romaka becomes Romāṇa, or Somaka, and Sphujidhvaja, as Utpala calls Yavaneṣvara, is "translated," in the manner of Bottom, into Ś'ucidhvaja. I confess that I cannot see what Sphujidhvaja represents. Is it Aphrodisius ?

contents are the same, cannot differ in form, nor can they be said to bear greater resemblance to each other than to other lists containing the same. Besides, there is no indication that Balabhadra has taken this passage from Pulīṣa, which must be established before any conclusion can be drawn. The strongest argument, however, against the supposition is the fact that the Paulīṣa-siddhānta is no work on Nativity, but an astronomical work, in which the original of the passage in Balabhadra could not find place. It may be that, besides the Paulīṣa-siddhānta, there existed another work of Pulīṣa's on Nativity, but nobody has met with any notice of it, and unless Paulus Alexandrinus has written, besides his *Eisagoge*, a book on astronomy, which again is unknown, we have no right whatever to infer that he and Pulīṣa are one and the same, for identity of name is too slender a ground, especially when the name happens to be a common one. On the other hand, that Pulīṣa was a Greek, I do not doubt for a moment, notwithstanding that the Paulīṣa-siddhānta, judging from quotations, and rather numerous ones, is so thoroughly Hinduised that few or no traces of its Greek origin are left. It may be deemed a trace of foreign origin that Pulīṣa calls "solar" (*saura*) time, what otherwise is always called "civil" (*sāvana*) time, or as Utpala puts and exemplifies it, "what with us is 'civil time' is with Pulīṣa-ācārya 'solar time,' a solar day being with him the interval from midnight till midnight, or from sunrise till sunrise." We should meet, perhaps, with a few more traces of Greek influence, if we had the whole work before us, but nobody who is acquainted with the Hindu mind would ever expect a translation. The history of the Sūrya-siddhānta is only one of the examples, how works, more or less held to be inspired, were remodelled and altered to such an extent that the original well-nigh vanished; and why should foreign works be treated otherwise? And in no branch of Sanskrit literature have changes been made so freely as in astronomical works. Not from unworthy motives; on the con-

trary, the Hindu astronomers were the only class of learned men in their country who had an idea of science being progressive, not stationary or retrogressive. Therefore they thought themselves not only allowed, but called upon, to modify what by observation or otherwise could be proved to be erroneous.

To return to the Pauliṣa-Siddhánta, it must have existed, like some of the other Siddhántas, in two editions. All the quotations from it are again in Āryá, which to my mind renders it probable that it was not long, say at the utmost 100 years, prior to Āryabhata and Varáha-mihira. Now it is interesting that Utpala quotes a Múla-Puliṣa-Siddhánta, an "original Puliṣa-Siddhánta," and that this time the verse is in Anush-tubh. It is only one verse,* but quite enough to prove that even this "original" work had been adapted to the exigencies of Hindu science, for it gives the number of revolutions of the fixed stars during the Four Ages. Here too we must leave it undecided whether Albírúní had the Múla-Puliṣa-Siddhánta in view, or the recast.

It would be extremely rash to deduce from these scanty details concerning the five first standard works of Hindu astronomical science any inference as to the probable period of their first composition. As an hypothesis, however, serves to direct the attention to a more definite sphere of investigation, we may roughly date the beginning of the Siddhánta period at 250 A. D., about half way between Garga and Varáha-mihira.

Among the remaining authorities mentioned in the Bṛhat-Sanhitá there are no more astronomers. Ārya-Vishṇugupta is considered to be the author or publisher of a book on Nativity. He is also called Cánakya, so that the fiery minister of Candra-

* It is as follows :

खखःष्टमुनिरामाश्विनेवाष्टशररात्रयः ।
मानां चतुर्दशैते परिवर्ताः प्रकीर्त्तताः ॥

The number is 1582237800, which diminished by the number of the revolutions of the sun during the same period (4320000) gives 1577917800, being the number of the civil days.

gupta is meant. That Vishnugupta cannot in reality have been the author is sufficiently evident, because the method of horoscopy is thoroughly Greek, and not older than 300 B. C. At the same time, one ought not to call it a forgery without further proof; its style is not that of a bungler.

Bádaráyana is likewise the professed author or teacher of a Játaka, and often quoted by Utpala in his commentary on the Bṛhaj-Játaka. The work is in Áryá and exhibits many Greek words, amongst which are *ápoklima* and *panaphara*.

Nagnajit composed a work on architecture, sculpture, painting and kindred arts; Viçvakarman inspired a book on architecture; so, it seems, also Maya.—S'ri-Dravyavardhana,* a prince of Avanti, evidently an historical person, was celebrated as an author on augury or çákuna.—About the rest I have nothing to offer.

In the Bṛhaj-Játaka, we find, besides some of those named above, Satya "the truthful," another name of whom, according to Utpala is Bhadatta "given by the stars," the latter formed after the analogy of Devadatta, Yajnadatta, etc. Both appellations look as if they were fictitious. His work, although prior to Varáha-mihira's, seems not to have been much older; the metre is Áryá; it seems moreover to have been a genuine Indian production (if any book on Nativity may be called so), for his opinions now and then are contrasted with those of the Greeks. Concerning Jívaçarman, Siddhasena, Devasvámin, I have found nothing worth mentioning. The writings of the Greeks, "the ancient Greeks," as Utpala qualifies them, in contradistinction to Yavaneçvara Sphujidhva, were so rare already in the days of the forementioned commentator, that he had never seen them. It may be questioned whether books in Sanskrit are meant, and not in Greek. Utpala knew from other sources that the "ancient Greeks" did not reckon from the S'áka era, naturally enough, and thinks that Yavaneçvara was the first to use the S'áka. The latter statement seems

* A doubtful v. r. has S'ri-Vard amánaka.

very problematical, for it would follow that Yavaneçvara preceded Varáha-mihira, of which there is no indication whatever. In the first place, the work of Yavaneçvara, which is extant, bears no internal evidence of being more ancient, quite the reverse. Secondly, if he was prior in time, it is hardly to be explained why an author held so high amongst Hindu astrologers, is never noticed, nor alluded to by Varáha-mihira.

A curious name is Mañittha, whom Weber suspects to be Manetho, the author of the Apotelesmata. I thought for a moment of Manilius, but, after all, Weber's conjecture is decidedly more plausible. Mañittha, *i. e.* the book, being of foreign origin, would seem to be countenanced by the fact that in one of his opinions he agrees with the "ancient Greeks," and disagrees with Satya and Varáha-mihira. If I had been able to get the Apotelesmata, I should have compared the quotations from Mañittha. It will be always worth while doing so, although it is not to be expected that the marked and special coincidences will be numerous or conclusive. In the same manner as a few traditions sufficed to enable Hindu astrologers to father the children of their own brains on their holy sages, so, I strongly suspect, they also did with the more renowned of the Greek astrologers. The notion of the productions of a man's mind being his property, a notion carried to such a ridiculous extent in Europe, was unknown to them. Unhappily, the opposite extreme they fell into, *i. e.* much more pernicious. In Mañittha, as quoted by Utpala, there is an extremely absurd passage, where the author ascribes antiquity to himself! "*iti brúmas' cirantanáh ;*" that shows the spirit.*

The three astronomers Láta-ácárya, Sinha-ácárya and Árya-bhaṭa are mentioned by Varáha-mihira in a passage for the preservation of which we are indebted to Utpala. Although

* Balabhadra, the younger, in the Háyana-ratna, quotes a Mañittha who uses Arabic words (see Ind. Stud. II. 251 and 275.) Weber was too cautious, when he only hesitatingly pronounced such a book to be a fabrication.

the work from which it is taken is not specified, there can be no doubt, that it is from the treatise Pancasiddhántika, and for an obvious reason. The passage speaks for itself in so far as it shows that it is taken from a *ganita* or astronomical work, and whatever works our author may have written which nobody ever heard of, thus much is certain that Utpala knows only one astronomical work, and that the Pancasiddhántika. A part of the passage, published by me *in extenso* at another place,* may stand here :

द्युग्णाद्दिनवाराभिर्युगणो ऽपि हि देशकालसम्बद्धः ।
 लाटाचार्यणोक्तं यवनपुरे ऽर्धास्तगे सूर्ये ॥
 रव्युदये लङ्कायां सिंहाचार्येण दिनगणो ऽभिहितः ।
 यवनानां निशि दशभिर्मुहूर्तैश्च तद्गृहणात् ॥
 लङ्कार्धरात्रसमये दिनप्रवृत्तिं जगाद चार्यभटः ।
 भूयः स एव चार्कोदयात्प्रवृत्त्याह लङ्कायाम् ॥

“The day of the week is to be determined from the sum of days ; now the sum of days stands in connexion with situation and day-time. Láṭa-ácárya says that the days are to be reckoned from sunset in the city of the Yavanas. Sinha-ácárya states the sum of days (to begin) from sunrise at Lanká, and, if we adopt this, they must begin, in the country of the Yavanas, at the time that ten *muhúrtas* of the night are past. Áryabhaṭa has stated that the days begin at midnight at Lanká, but elsewhere he says that the days commence from sunrise at Lanká.”†

A little further on Varáha-mihira actually quotes a stanza which is taken either from Láṭa-ácárya or from Sinha-ácárya, viz.

मध्याह्नं भद्राश्वस्तमयं कुरुषु केतुमाशायाम् ।
 कुरुते ऽर्धरात्रमुद्यन् भारतवर्षे युगपदकः ॥

“The sun, while rising in India, at the same moment causes midday in the region of the Bhadráçyas, sunset in that of

* Journal R. A. Soc. of Great Britain and Ireland, for the year 1863.

† This must be one of the instances of inconsistency for which Áryabhaṭa is criticised by Brahma-gupta.

the Kurus, midnight in Ketumálá.” The next following verse is intended to be a quotation from Áryabhaṭa and really makes part of one of Áryabhaṭa’s works, so that the foregoing necessarily must be a quotation, and not Varáha-mihira’s own words, but how far he has changed the form, and, as observed before, whether it be from Láṭa or Sinha, is uncertain. Albírúní who, as we know, ascribes to Láṭa the Súrya-siddhánta, informs us that Láṭa held the view expressed in the verse adduced (Reinaud, p. 341); but that proves nothing, for the same view is held by all astronomers; and in the words only could there be any difference.

It may be observed *en passant*, that, in the opinion of Varáha-mihira, the meridian of Yavana-pura is considered to have a longitude west from the meridian of Lanká, of 60 degrees; for ten *muhúrtas* in the night are said to correspond to sunrise, *i. e.* six o’clock in the morning, at Lanká,* and, as the night is reckoned from six o’clock in the evening, ten *muhúrtas* later gives two o’clock after midnight. Rome was supposed to be 90 degrees west from the meridian of Lanká, so that the longitude of Yavana-pura is $\frac{2}{3}$ of that of Rome, and this, however erroneously the absolute longitude is given, suits approximately the situation of Alexandria, which accordingly may be understood by Yavana-pura.†

Sinha-ácárya may, or may not, be the same as Durga-sinha, mentioned by Colebrooke (Alg. XLIV). I have never lighted upon any other passage where the name occurs.

Far more renowned than Láṭa and Sinha is Áryabhaṭa,

* Albírúní is at much pains to prove that Lanká is not Ceylon. That shows that he had a correct idea about the latitude of Ceylon, but if he had known that even Ptolemy commits the same error in supposing the equator to cut Ceylon, he would not have wondered at the Hindu astronomers committing, or perhaps repeating, the wrong estimation.

† So far as the longitude is concerned, Constantinople would answer as well as Alexandria, but I am not aware that any astronomer drew his first meridian over Constantinople, and without that it would not be taken as the point of departure.

usually, but erroneously, called *Āryabhaṭṭa*. The manuscripts in which the name occurs prove nothing; they will in one line write *Āryabhaṭa* and *Āryabhaṭṭa*, and would, if we had no other means of arriving at the truth, balance each other. Happily the word occurs in verses, and the metre decides the question at once. The Arabic form *Arjabhar* would, if necessary, have been sufficient to show that the MSS. giving *Āryabhaṭa* are right, and wrong in the opposite case, for a single *t* may become in the mouth of the people *r* or something like it, but never *ḥ*. *Albīrūnī* writes the name with *t*, instead of with *r*, as other Arabs used to do, because being conversant with Sanskrit he gives not the popular or *Prākṛit* pronunciation, but the approximately more correct one with *t*, in the same way as he writes the name of *Lāṭa* with *t*. It may seem unnecessary to dwell upon a seeming trifle, but error, be it ever so small, ought not to be sanctioned.

Colebrooke was aware that *Varāha-mihira* must have been acquainted with *Āryabhaṭa's* writings, from which he concluded that the latter astronomer was prior to the former (see Alg. XLIV), admitting that at the latest he must have lived at the commencement of the 6th century. Colebrooke did not know that *Varāha-mihira* actually mentions *Āryabhaṭa's* name, still less that he quotes one verse in full from his works, neither had the great scholar been able to acquire MSS. of *Āryabhaṭa's* works. Such MSS. are indeed, it would seem, very rare, and in *Hindustān* proper unheard of; nevertheless they exist, and had it not been for a wrong title two of the works of *Āryabhaṭa* would have been recognized as such long ago. The title of a certain MS. in the Berlin Library* bears: *Āryabhaṭa-Siddhānta vyākhyāne Bhaṭapradīpe Daṣaḡitibhāshyam.*" Weber misled, as any other would be, by the title, took the whole for a *Daṣaḡiti-bhāshyam* or commentary on the *Daṣaḡiti*. Whitney in the *Journ. Amer. Or. Soc.* 6th Vol., p. 560, sqq. proved that the doctrines in it contained

* Weber's Catalogue, p. 232.

all the peculiar features by which Āryabhaṭa was distinguished, as we know from the many notices about these doctrines to be found in astronomical writings. I have made known* that the quotations in Utpala's commentary on the *Bṛhat Sanhitā* occurred in it, and was rather puzzled that Utpala simply treats those quotations as if they were the productions of Āryabhaṭa himself, notwithstanding the work from which they were taken is called a commentary. Neither Professor Whitney nor myself took the simple course of saying that the so-called *Daṣagīti-bhāshyam* was no *bhāshyam* at all; seeing we did not see. At last I succeeded in obtaining the *Daṣagīti* and the *Āryabhaṭīyam* or *Siddhānta†* and learnt that, bearing various readings, it is identical with the MS. of the Berlin Library, so oddly called *Daṣagīti-bhāshyam*. The Berlin MS. has only one stanza more,—the concluding stanza,—translated by Whitney thus: “*Bhūta-vishṇu* hath thus comprehensively explained—having learned it by the favour of his teacher—the *Daṣagīti* text-book (*Daṣagīti-sūtram*), of very obscure meaning, formerly promulgated by *Bhaṭṭa*.” This stanza combined with the title of the Berlin MS. leads me to surmise that its copyist was ordered to copy only the text of Āryabhaṭa from another MS. containing text and commentary, and that he has blundered in the title and added the concluding stanza, because he thought it to make part of the text, it being in verse, while the commentary was in prose. The *Daṣagīti*, and no doubt the *Siddhānta*, were known also to Whish, as he gives the text and translation of the first stanzas of the *Daṣagīti*. One of his statements that the *Āryabhaṭīyam* is a treatise on arithmetic and mathematics, and not on astronomy, is wrong, however. *Āryabhaṭīyam* is very surely a name of the *Siddhānta*, although it may be that all the works of the author are designated under that name.

* Journ. R. A. S. of Great Br. and Irel. for the year 1863.

† I must here acknowledge my gratitude to my friend Dr. G. Bühler in Bombay to whose kindness and unremitting zeal I am indebted for these MSS. of Āryabhaṭa and for another MS., about which in the sequel.

Áryabhaṭa's Siddhānta gives us the author's date and his native city. We read at the opening of the work :

ब्रह्मकु[ज]शशिवुधभृगुरविकुजगुरुकोणभगणाग्रमस्कृत्य ।
आर्यभटस्त्रिंशद् गदति* कुसुमपुरे ऽभ्यर्च्य तज्ज्ञानम् ॥

“ After prostration to Brahma, the Earth, the Moon, Mercury, Venus, the Sun, Jupiter, Saturn, and the Ecliptic (or the stars), with reverence for the knowledge of Truth, Áryabhaṭa, at Kusumapura, teaches, (viz. the following).”

Áryabhaṭa gives his own date, vs. 12 of the 2nd chapter :

षष्ठ्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः ।
अधिका विंशतिरब्दास्तदिह मम (१. ममा) जन्मनोऽतीताः ॥

“ When three of the four ages were past, and 60 times 60 years, then 23 years *from my birth were past*,” i. e. 3600—3101—23=476 A. D.—This date was not unknown to me before, but I hesitated between Bhūta-Vishṇu and Áryabhaṭa. Quite independently of me Dr. Bhau Daji found out this very date, so that to him belongs the honour of having first made known the year of the birth of one of the greatest among Hindu astronomers.

The fact that Áryabhaṭa was born 476 A. D. makes it a little doubtful whether Albírúni is right in assigning the year 505 A. D. as the date of the Pancasiddhāntiká. The verse actually quoted in the treatise of Varáha-mihira is the following :

उदये यो लङ्कायां सो ऽस्तमयः सवितुरेव सिद्धपुरे ।
मथारो यमकोक्षां रोमकविषये ऽर्धरात्रः स्यात् ॥

“ At the time of the sun's rising at Lanká, he is setting in the city of the Blessed (*insulae fortunatae*) ; it is midday in Yamakoṭi and midnight in the land of the Romans.”† It is vs. 13 of Ch. 3 in the Siddhānta.

* There is one short syllable wanting here, most probably we have to read निगदति. In the former half the ज is evidently to be rejected.

† This very stanza I have met with in Sáyaṇa's commentary on the R̥gveda. I have forgotten exactly where.

The *Daçagíti* contains twelve stanzas, but we have to deduct the invocation and the colophon, so that the remainder corresponds to the name "Ten stanzas." It is a common, if not universal practice, not to take into account the invocation, nor the colophon, although in our MSS. such verses are numbered as if they formed part of the body of the work. To give one out of many instances, the *Sánkhyā-Kárikā* is said in the colophon to contain seventy stanzas, but with the addition of matter unconnected with the *Kárikā*, as such, the number of the stanzas is seventy-two.*

The *Āryabhaṭa-Siddhānta* or *Āryabhaṭīyam* is a very concise book, for the whole is complete in 111 stanzas in *Āryā* metre. If we deduct from this number the opening and closing stanzas, and also the invocation, placed at the beginning of the 2nd chapter and identical with that of the *Daçagíti*, we get 108. This number coincides so exactly with one of the two significations in which the numeral *ashṭaçaṭam* may be taken, that there can be no hesitation in pronouncing *Āryāshṭaçaṭam* "the hundred and eight stanzas" to be identical with the *Āryabhaṭa-Siddhānta*. Colebrooke never having seen a MS. of it, rendered *Āryāshṭaçaṭam* by "eight-hundred couplets" (Alg. XXXII.) and certainly *ashṭaçaṭam* may mean 800, but does not necessarily do so. That in this case it has to be taken in the other sense, is now decided by the testimony of the MS. itself.

* Wilson finds it difficult to explain why the *Sánkhyā-Kárikā* should be said to contain seventy, instead of sixty-nine verses. The reason is obvious enough; vs. 71 and 72 have nothing whatever to do with *Sánkhyā* philosophy; it is wholly fortuitous and indifferent to that philosophy that a certain *Içvara-Kṛshṇa* composed a poem in 70 verses, but the authority for the *Sánkhyā* doctrine is to be sure something connected with that doctrine. This explanation is properly speaking superfluous, for it matters not at all whether *Içvara-Kṛshṇa* is right or wrong in deeming vs. 70 essentially different from vs. 71 and 72, he *does* so. I wish only to point out that in doing so he is logical, and that the difficulty is of Wilson's own making; so it could not be expected any commentator would deem it necessary to explain what needs no explanation.

The *Āryāśhṭaṅga* contains all the leading features of a system the difference of which from the commonly received opinions was known to us from the accounts given of it by many of the Hindu astronomers. *Āryabhaṭa*'s curious system of arithmetical notation is taught in the *Daṅgīti*, his theory of the earth revolving on its axis in the *Siddhānta*, and now that we know his date, we know at the same time that a Hindu astronomer had the boldness, as Whitney puts it, to withhold his assent from the commonly received theory. Another remarkable feature of the book is that the lunar mansions or *nakṣatras* are not taken notice of. The only word which reminds us of their existence is *Āṅvayuja*, not referring to the *nakṣatra*, but taken as the name of the first year in the revolution of Jupiter, whence further it may be deduced that *Aṅvinī* was the first in the order of the lunar mansions at the time the work was composed.

As yet only the two forenamed works of *Āryabhaṭa* have been recovered, but we may reasonably hope that others will turn up in time. *Albīrūnī* (*Mém. sur l'Inde*, p. 371) quotes a whole passage from *Āryabhaṭa* "le Cousoumapourien," which must have made part of a book different from the *Daṅgīti* and the *Āryāśhṭaṅga*, it not being found in those two. It has been surmised by Fitz Edward Hall that there must have been two astronomers of the name of *Āryabhaṭa*, a surmise which want of materials only prevented him from raising to a certainty. By my possessing a copy of an *Āryabhaṭakṛta-Mahāsiddhānta* or *Āryabhaṭākhyo Mahāsiddhānta*, I am in a position positively to prove the correctness of Hall's shrewd guess. The *Mahāsiddhānta* is an astronomical work in 18 Chapters, and more than 600 verses in *Āryā* and *Upagīti* in irregular succession. The verses are altogether lame and pithless. The author distinctly states that he has written his work mainly on the principles of the "old" *Āryabhaṭa*, and the truth of his assertion is born out, partly at least, by his employing the great *Āryabhaṭa*'s peculiar system of arithmetical notation. He informs us further that he had introduced corrections of his

own ; the necessity of applying such corrections to the old Āryabhaṭa's works being one of the reasons that he, the younger, wrote his book. Another reason, so he adds, was the scarcity of those works. Let us hear himself.

एषं परोपहतये खोक्तोक्तं खेचरानयनम् ।

किञ्चित्पूर्वागमसमसममुक्तं* विप्राः पठन्त्विदं नान्ये ॥

“ Thus I have given for the benefit of others, the calculation of the planets on my own authority, it being a little different (?) from ancient authorities. Brahmans, no others, should study it.”

वृद्धार्यभट्टप्रोक्तं सिद्धान्ताद्यं महाकालात् ।

पाठैर्गतमुच्छेदं विशोधितं तन्मयोक्तया ॥

“ The Siddhānta and other works of the old Āryabhaṭa are in the long course of time worn out by the study of them ; they (*i. e. Siddhāntūlyam*) have been modified by me on my own authority.”

The author certainly calls himself Āryabhaṭa, but it is so extremely unlikely that two astronomers, one being the professed imitator of the other, should bear the same name, that it is far more natural to think Āryabhaṭa to be only the younger astronomer's *nom de plume*. It is by no means to be inferred that by assuming the name of the celebrated astronomer he intended any fraud ; since the adoption of a pseudonym in writing is in India a mark of respect and an intimation that the former bearer of the adopted name is set up as a model. That Āryabhaṭa the younger did not attempt to impose upon others is perfectly clear from the account given about himself. I fear that it would be very difficult to show that he was as clever as he was candid. The whole book is a poor performance. The contents have been known long ago, for it is the work that Bentley pronounced to be the real Āryabhaṭa-Siddhānta, the other works being only fabrications. As Bentley

* There is something wrong in *samasama* ; I cannot make a verse out of it, for *āgamāsamam uktam* will not do.

knew no Sanskrit, it is but charitable to try to believe that he had not seen or heard of the passage communicated above. Davis also knew the book, but he must have had a corrupt MS., for he calls it *Ārsha-Siddhānta*. So much about the Mahā-*Āryabhata-Siddhānta*, containing the lucubrations of some astronomer, who wished to imitate *Āryabhata* of Kusumapura, and followed him at a great distance, both of time and merit.

We owe the knowledge of nearly all the particulars about the predecessors of *Varāha-mihira* to *Bhaṭṭa Utpala*. This astronomer who, as we have had occasion to notice, flourished in the middle of the 10th century of our era, seems to have earned his great reputation* less by his original compositions than by his commentaries on *Varāha-mihira*. An original work of his is the *Bhaṭṭotpala-Horācāstra*, a very short treatise in 75 stanzas; a MS. of which is in possession of the Berlin Library, (see *Weber's Catalogue* 863). Not having this *Horācāstra* at hand, I cannot affirm whether it be identical with a work sometimes quoted by *Utpala* as his own, and called *Khaṇḍa-khādaka*; very likely it is the same book under another title. A greater reputation has been earned by him in his capacity of commentator. It is not known if he has written a commentary on all the works of *Varāha-mihira*, but as many of these as have been brought to light are provided with one. Those I have seen myself are the *Sanhitāvivṛti* or *Sanhitāvṛtti*, the *Bṛhaj-Jātaka-vivṛti*, that on the *Laghu-Jātaka*, and that on the *Yogayātrā*. Besides these, there is extant and frequently met with, a commentary on the *Shaṭpancācīkā*, a work by *Prthuyāca*, the son of *Varāha-mihira*.

The merits of *Bhaṭṭa Utpala* as a commentator are held

* *Colebrooke* (*Alg.* p. XLVI.) mingles his praise with a little censure, saying that the commentator, "in several places of his commentary names himself *Utpala*, quibbling with simulated modesty on his appellation, for the word signifies stone." The taunt is undeserved and rests upon some misconceptions: 1° *Utpala* means no quibble; 2° *Utpala* is to be taken as a proper noun, not as an appellative; 3° even if it were an appellative, it would not mean *stone*, but *nymphæa*; *Colebrooke* confounds it with *upala*; 4° there is no trace of simulation; 5° there is no trace of modesty.

high, and, methinks, deservedly so. To an unusual knowledge of the astronomical and astrological writings before his time, he adds the acquaintance with some authors in other branches of learning, like Caraka; with a stupendous memory, he combines judgment. Where he knows his deficiency, he tells us so with a candour rarely met with amongst persons of his class. So he admits, for instance, that he is only superficially acquainted with the technicalities of perfumery (*gandhayukti*). With a profound reverence for his author, whom he considers to be an incarnation of the sun, he earnestly endeavours to explain and to elucidate the text, without taking it as a mere pretext for pouring forth his own wisdom. When a passage is ambiguous, he has recourse to the sound method of comparing the words of Varāha-mihira with those passages of more ancient authors whom he thinks him to have immediately imitated. This method has the additional value that thereby precious fragments of authors now utterly forgotten, and perhaps never to be recovered, have been preserved. The commentary on the *Bṛhat-Saṅhitā* would be well worthy of being separately edited; unhappily, it is rather bulky, containing the substance of somewhat more than twenty-thousand ślokas; and a still greater barrier to such an undertaking is offered by the horrible state of all the Codices. In a certain sense, the merely explanatory part will find a substitute in the translation of the text, which is in preparation, and the more valuable portion of the additional matter may be inserted.

The MSS. made use of in preparing this edition of the *Bṛhat-Saṅhitā* are:

A, a MS. in the Library of Berlin, No. 849 (Chambers 484), text.

B, do. No. 851 (Chambers 291), text.

C denotes the text followed by Utpala, and embodied in his commentary; different MSS. of this work have been consulted, so that C does not mark a particular Codex. In most cases the reading of Utpala can be ascertained with tolerable certainty, because the text, as adduced by him, and the follow-

ing explanations verify each other. The difference between the different MSS. consists generally in clerical errors. The principal Codex of C, regularly collated with the MSS. containing only the text, is a MS. of the Benares College Library, written *Samvat* 1839 (A. D. 1782). A direct or indirect copy, but at all events a copy, is Codex 854 (Chambers 819) in the Berlin Library, written *Samvat* 1844 (A. D. 1787). Another copy again is a Codex of Fort William, dated *Samvat* 1878 (A. D. 1821). The Codices of the I. O. in London have been compared only partially. A Codex from Kashmere, which a Kashmere Brahman had the kindness to send for my use, came too late to be compared throughout; its deviations, so far as the text is concerned, are noticed from Chapter LXXVIII. Amongst all the Codices of C, the Benares Codex, and consequently also those of Fort William and Berlin, are the most corrupt, and at the same time the best, because they are least adulterated by half-competent hands, and their errors are only due to the scribes.

For particulars about A, B, C (Berlin Codd.) see Weber's Catalogue.

D, a MS. in the I. O. Library No. 2294, text; date *Samvat* 1870 (A. D. 1818).

E, do., No. 812, text; incomplete; in Bengali character.

G, do., used only occasionally.

O, do., No. 2219, contains only the three chapters, Purusha-laxanam, Panca-Mahapurusha-laxanam, Strilaxanam.

N, a MS. of the Benares College Library, text; date *Samvat* 1691 (A. D. 1634).

S, a MS. of the As. Soc. Bengal, No. 626, text; date *Samvat* 1857 (A. D. 1800).

Out of these MSS. A and S agree closely with each other, from Chapter XXXI.; so do B and D, from Ch. XXVII. N agrees with B, D, from about the middle of Ch. XLVIII till nearly the end of Ch. LXIX, but this part is written by a different hand and on different paper from the rest. E is the most modernized and adulterated, and stands perhaps al

although it shows many striking coincidences with S in that part of S where S does not coincide with A. B and D, and partly N, show manifest traces of being influenced by the commentary; A and S show, it would seem, a total independence of C, and may be considered as constituting a class apart, which can scarcely be said of B, D, N, E. The differences of C and A, S are here and there so remarkable that one might think them to exhibit different redactions, perhaps different editions issued by the author. As a general remark, applying to all the MSS. it may be said that all of them are worse than indifferent.

It is no mock modesty that prompts me to say that, having such materials at my disposal, I look upon this first edition of the Bṛhat-Saṅhitā as an essay of an edition, rather than an edition which would require but few occasional corrections from future editors. The bad condition of the MSS. is so bewildering, the great number of the subjects treated of is so distracting, the class of works to which the Saṅhitā belongs, is so little explored, that, it is hoped, a large allowance will be made for the difficulties I had to cope with. After all, Varāha-mihira's work is so interesting that the shortcomings of the editor cannot rob it of its value.

I cannot conclude without offering my sincere thanks to Prof. E. B. Cowell who was not only instrumental in furthering the publishing of the work, but, with his well-known kindness, furnished me with MSS. from Calcutta.

Nor must I omit to say that I owe the first hint of editing Varāha-mihira to my honoured friend Prof. A. Weber. If the Bṛhat-Saṅhitā proves a useful addition to the store of Sanskrit literature, Sanskrit scholars will, therefore, have to thank him in the first place. Had it not been for his suggestion, it would, perhaps, never have been undertaken, and but for his steadfast encouragement, it would certainly never have been brought to a close.

Benares, 23rd March, 1865.

अनुक्रमसिका ।

अध्यायनाम ।	अध्यायाङ्कः ।	पन्नाङ्कः ।
उपनयनाध्यायः	१	१
सांवत्सरसूत्रं	२	३
आदित्यचारः	३	८
चन्द्रचारः	४	१०
राजचारः	५	२३
भौमचारः	६	४१
बुधचारः	७	४३
बृहस्पतिचारः	८	४७
शुक्रचारः	९	५०
शनिचरचारः	१०	६५
केतुचारः	११	६८
अगस्त्यचारः	१२	८०
सप्तर्षिचारः	१३	८५
शूर्मविभागः	१४	८७
नक्षत्रव्यूहः	१५	८३
ग्रहभक्तयः	१६	८८
ग्रहयुद्धं	१७	१०७
अग्निग्रहसमागमः	१८	११२
ग्रहवर्षपत्रं	१९	११४
ग्रहशुद्धिकाटकां	२०	११८
गर्भलक्षणं	२१	१२०
धारवा	२२	१२७
प्रवर्षणं	२३	१२८
दोहिवीयोगः	२४	१३०
स्नातियोगः	२५	१३७
आषाढीयोगः	२६	१३८

अमृतमखिला ।

अध्यायनाम ।	अध्यायाङ्कः ।	पत्राङ्कः ।
वातचक्रं	२७	१४१
सद्योदृष्टिकक्षयं	२८	१४२
कुसुमकताध्यायः	२९	१४३
सन्ध्यालक्ष्यं	३०	१४९
दिग्दाहलक्ष्यं	३१	१५५
भूमिकम्पलक्ष्यं	३२	२५६
उष्णालक्ष्यं	३३	१६२
परिवेषलक्ष्यं	३४	१६७
इन्द्रायुधलक्ष्यं	३५	१७२
गन्धर्वनगरलक्ष्यं	३६	१७३
प्रतिस्वर्यलक्ष्यं	३७	१७४
रजालक्ष्यं	३८	१७५
निर्घातलक्ष्यं	३९	१७७
सस्यजातकं	४०	१७८
त्रयनिश्चयः	४१	१८०
अर्घवाख्यं	४२	१८३
इन्द्रध्वजसम्पत्	४३	१८६
गोराजनविधिः	४४	१९८
खड्गदर्शनं	४५	२०३
उत्पातलक्ष्यं	४६	२०६
मयूरचित्रकं	४७	२२३
पुष्यखानं	४८	२२८
पट्टलक्ष्यं	४९	२४१
खड्गलक्ष्यं	५०	२४३
अङ्गविद्या	५१	२४८
पिठलक्ष्यं	५२	२५५
वाक्त्रविद्या	५३	२५७

अनुक्रमविषया ।

अध्यायनाम ।	अध्यायाङ्कः ।	पृष्ठाङ्कः ।
दशार्गकं	५४	३४०
दृष्ट्याद्युर्वेदः	५५	३०२
प्रासादलक्ष्यं	५६	३०६
वस्त्रलोपः	५७	३१०
प्रतिमालक्ष्यं	५८	३१२
वनसम्भवेशः	५९	३२३
प्रतिष्ठापनं	६०	३२५
गोलक्ष्यं	६१	३२९
श्वलक्ष्यं	६२	३३३
कुक्कुटलक्ष्यं	६३	३३४
कूर्मलक्ष्यं	६४	३३४
ह्यगलक्ष्यं	६५	३३५
कान्धलक्ष्यं	६६	३३७
गजलक्ष्यं	६७	३३८
पुरुषलक्ष्यं	६८	३४०
पञ्चमहापुरुषलक्ष्यं	६९	३४३
स्त्रीलक्ष्यं	७०	३४०
वस्त्रच्छेदलक्ष्यं	७१	३७४
यामरलक्ष्यं	७२	३७७
कृत्तलक्ष्यं	७३	३७८
स्त्रीप्रशंसा	७४	३७९
सौभाग्यकरयं	७५	३८२
कान्दर्पिकां	७६	३८४
गन्धयुक्तिः	७७	३८६
पुंस्त्रीसमायोगः	७८	३९३
शय्यासनलक्ष्यं	७९	३९८
वस्त्रपरीक्षा	८०	४०६

अध्यायनाम ।	अध्यायाङ्कः ।	पन्नाङ्कः ।
मुक्तामयदीक्षा	८१	४०६
यन्त्रदीक्षा	८२	४१६
मरुतदीक्षा	८३	४१८
दीपकदीक्षा	८४	४२८
इन्द्रदीक्षा	८५	४२८
मिथुनाध्यायः	८६	४२०
धनुसध्यायः	८७	४२८
शुक्रध्यायः	८८	४३६
शुभ्रध्यायः	८९	४४१
शुक्रध्यायः	९०	४४६
शुक्रध्यायः	९१	४५१
शुक्रध्यायः	९२	४५२
शुक्रध्यायः	९३	४५३
शुक्रध्यायः	९४	४५५
शुक्रध्यायः	९५	४५८
शुक्रध्यायः	९६	४६६
शुक्रध्यायः	९७	४७२
शुक्रध्यायः	९८	४७६
शुक्रध्यायः	९९	४७६
शुक्रध्यायः	१००	४८१
शुक्रध्यायः	१०१	४८२
शुक्रध्यायः	१०२	४८४
शुक्रध्यायः	१०३	४८५
शुक्रध्यायः	१०४	४८८
शुक्रध्यायः	१०५	५०१
शुक्रध्यायः	१०६	५०४
शुक्रध्यायः	१०७	५०५

श्रीगणेशाय नमः ।

जयति जगतः प्रसूति-
विश्वात्मा सहजभूषणं नभसः ।
द्रुतकनकसदृशदशशत-
मयूखमालार्चितः सविता ॥ १ ॥
प्रथममुनिकथितमवितथ-
मवलोक्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थम् ।
नातिलघुविपुलरचना-
भिरुद्यतः स्पष्टमभिधातुम् ॥ २ ॥
मुनिविरचितमिदमिति यच्-
चिरन्तनं साधु न मनुजग्रथितम् ।
तुल्ये ऽर्थे ऽक्षरभेदा-
दमन्त्रके का विशेषोक्तिः ॥ ३ ॥
क्षितितनयदिवसवारो
न शुभकृदिति यदि पितामहप्रोक्ते ।
कुजदिनमनिष्टमिति वा
कोऽत्र विशेषो नृदिव्यकृते ॥ ४ ॥

आब्रह्मादिविनिःसृत-
 मालोक्य ग्रन्थविस्तरं क्रमशः ।
 क्रियमाणकमेवैतत्
 समासतोऽतो ममोत्साहः ॥ ५ ॥
 आसीत्तमः किलेदं
 तत्रापां तैजसे ऽभवद्वैमे ।
 स्वर्भूशकले ब्रह्मा
 विश्वछदण्डे ऽर्कशशिनयनः ॥ ६ ॥
 कपिलः प्रधानमाह
 द्रव्यादीन् कणभुगस्य विश्वस्य ।
 कालं कारणमेके
 स्वभावमपरे जगुः कर्म ॥ ७ ॥
 तदलमतिविस्तरेण
 प्रसङ्गवादार्थनिर्णयो ऽतिमहान् ।
 ज्योतिःशास्त्राङ्गानां
 वक्तव्यो निर्णयो ऽत्र मया ॥ ८ ॥

ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्
 तत्कार्त्वीपनयस्य नाम मुनिभिः सङ्कीर्त्यते संहिता ।
 स्कन्धेऽस्मिन् गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ
 हेरान्योऽङ्गविनिश्चयश्च कथितः स्कन्धस्तृतीयोऽपरः ॥ ९ ॥

वक्रानुवक्रास्तमयोदयाद्या-
 स्ताराग्रहाणां करणे मयोक्ताः ।

होरागतं विस्तरतश्च जन्म
 यात्राविवाहैः सह पूर्वमुक्तम् ॥ १० ॥
 प्रश्नप्रतिप्रश्नकथाप्रसङ्गान्
 स्वल्पोपयोगान् ग्रहसम्भवांश्च ।
 संत्यज्य फल्गूनि च सारभूतं
 भूतार्थमर्थैः सकलैः प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामुपनय-
 नाध्यायः प्रथमः ॥ * ॥

अथातः सांवत्सरसूत्रं व्याख्यास्यामः ।

तत्र सांवत्सरो ऽभिजातः प्रियदर्शनेो विनीतवेषः
 सत्यवागनसूयकः समः सुसंहतोपचिर्तगात्रसन्धि-
 रविकलश्चारुकरचरणनखनयनचिबुकदशनश्रवणल-
 लाटभ्रूत्तमाङ्गो वपुष्मान् गम्भीरोदात्तघोषः । प्रायः
 शरीराकारानुवर्तिनेो हि गुणाश्च दोषाश्च भवन्ति ॥

तत्र गुणाः । शुचिर्दक्षः प्रगल्भो वाग्मी प्रतिभान-
 वान् देशकालवित्सात्त्विको न पर्षद्भीरुः सहाध्यायि-
 भिरनभिभवनीयः कुशलोऽव्यसनी शान्तिपौष्टिका-
 भिचारस्नानविद्याभिज्ञो विबुधार्चनव्रतोपवासनिरतः
 स्वतन्त्राश्चर्योत्यादितज्ञानप्रभावः पृष्टाभिधाय्यन्यत्र
 दैवात्ययाद्ब्रह्मगणितसंहिताहोराग्रन्यार्थवेत्ता ॥

तच्च ग्रहगणिते पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहेषु
 पञ्चस्वतेषु सिद्धान्तेषु युगवर्षायनर्तुमासपक्षाहोरात्र-
 याममुहूर्तनाडीविनाडीप्राणचुटिचुब्यवयवाद्यस्य का-
 लस्य क्षेत्रस्य च वेत्ता । चतुर्णां च मासानां सौर-
 सावननाक्षत्रचान्द्राणामधिमासकावमसम्भवस्य च
 कारणाभिज्ञः । षष्ठ्यब्दयुगवर्षमासदिनहोराधिपती-
 नां प्रतिपत्तिविच्छेदवित् । सौरादीनाञ्च मानानां स-
 दृशासदृशयोग्यायोग्यत्वप्रतिपादनपटुः । सिद्धान्तभेदे
 ऽप्ययननिवृत्तौ प्रत्यक्षं सममण्डलरेखासम्प्रयोगाभ्यु-
 दितांशकानाञ्च छायाजलयन्त्रहृग्गणितसाम्येन प्रति-
 पादनकुशलः । सूर्यादीनाञ्च ग्रहाणां शीघ्रमन्दयाम्यो-
 त्तरनीचेच्चगतिकारणाभिज्ञः । सूर्यचन्द्रमसोश्च ग्रहणे
 ग्रहणादिभोक्षकालदिक्प्रमाणस्थितिविमर्दवर्णदेश-
 नामनागतग्रहसमागमयुद्धानामादेष्टा । प्रत्येकग्रह-
 भ्रमणयोजनकक्षाप्रमाणप्रतिविषययोजनपरिच्छेदकु-
 शलो भ्रूभ्रमणभ्रमणसंस्थानाद्यक्षावलम्बकाहर्ष्यासच-
 रदलकालराश्युदयच्छायानाडीकरणप्रभृतिषु क्षेत्रका-
 लकरणेषुभिज्ञो नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिजनितवाक्-
 सारो निकषसन्तापाभिनिवेशैर्विशुद्धस्य कनकस्येवा-
 धिकतरममलीकृतस्य शास्त्रस्य वक्ता तन्त्रज्ञो भवति ॥
 उक्तञ्च ।

न प्रतिबद्धं गमयति
 वक्ति न च प्रश्नमेकमपि पृष्टः ।
 निगदति न च शिष्येभ्यः
 स कथं शास्त्रार्थविज्ञेयः ॥ १ ॥
 ग्रन्थो ऽन्यथान्यथार्थः
 करणं यच्चान्यथा करोत्यबुधः ।
 स पितामहमुपगम्य
 स्तौति नरो वैशिकेनार्याम् ॥ २ ॥
 तन्त्रे सुपरिज्ञाते
 लग्ने छायाम्बुयन्त्रसंविदिते ।
 होरार्थे च सुरूढे
 नादेष्टुर्भारती वन्ध्या ॥ ३ ॥

उक्तञ्चार्यविष्णुगुप्तेन ।

अप्यर्णवस्य पुरुषः प्रतरन् कदाचि-
 दासादयेदनिलवेगवशेन पारम् ।
 न त्वस्य कालपुरुषास्थमहार्णवस्य
 गच्छेत् कदाचिदन्टर्षिर्मनसापि पारम् ॥ ४ ॥

होराशास्त्रेऽपि राशिहोराद्रेक्काणनवांशकद्वादश-
 भागत्रिंशद्भागबलाबलपरिग्रहो ग्रहाणां दिक्स्थान-
 कालचेष्टाभिरनेकप्रकारबलनिर्धारणं प्रकृतिधातुद्रव्य-
 जातिचेष्टादिपरिग्रहो निषेकजन्मकालविस्मापनप्रत्य-
 यादेशसद्योमरणायुर्दायदशान्तर्दशाष्टकवर्गराजयोग-

चन्द्रयोगद्विग्रहादियोगानां नाभसादीनाञ्च योगानां
 फलान्याश्रयभाववलोकननिर्याणगत्यनूकानि तात्का-
 लिकप्रश्नशुभाशुभनिमित्तानि विवाहादीनाञ्च कर्म-
 णां करणम् । यात्रायाञ्च तिथिदिवसकरणनक्षत्रमु-
 हूर्तविलग्नयोगदेहस्पन्दनस्वप्नविजयस्नानग्रहयज्ञगण-
 यागाग्निलिङ्गहस्त्यश्वेङ्गितसेनाप्रवादचेष्टादिग्रहपाङ्गु-
 ण्योपायमङ्गलामङ्गलशकुनसैन्यनिवेशभूमयोऽग्निवर्णा-
 मन्त्रिचरदूताटविकानां यथाकालं प्रयोगाः परदुर्गल-
 म्भोपायाश्चेत्युक्तं चाचार्यैः ।

जगति प्रसारितमिवा-

लिखितमिव मतौ निपिक्तमिव हृदये ।

शास्त्रं यस्य सभगणं

नादेशा निःफलास्तस्य ॥ ५ ॥

संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति । यत्रैते सं-
 हितापदार्थाः । दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च
 तेषां प्रकृतिविकृतिप्रमाणवर्णकिरणद्युतिसंस्थानास्त-
 मनोदयमार्गमार्गान्तरवक्रानुवक्रर्षग्रहसमागमचारा-
 दिभिः फलानि नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्तिचारः
 सप्तर्षिचारो ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रहशृङ्गाटकग्रह-
 युद्धग्रहसमागमग्रहवर्षफलगर्भलक्षणरोहिणीस्वात्या-
 षाढीयोगाः सद्योवर्षकुसुमलतापरिधिपरिवेषपरिघ-
 पवनोल्कादिग्दाहक्षितिचलनसन्धारागगन्धर्वनगरर-

जोनिर्घातार्धकाण्डसस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्या-
 ङ्गविद्यावायसविद्यान्तरचक्रमृगचक्राश्वचक्रवातचक्रप्रा-
 सादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदगार्ग-
 लनीराजनखञ्जनोत्पातशान्तिमयूरचित्रकघृतकम्बल-
 खङ्गपट्टककवाकुक्कर्मगोऽजाश्वभपुरुषस्त्रीलक्षणान्यन्तः-
 पुरचिन्तापिटकलक्षणोपानच्छेदवस्त्रच्छेदचामरदण्ड-
 शय्यासनलक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्तकाष्ठाद्या-
 श्रितानि शुभाशुभानि निमित्तानि सामान्यानि च जग-
 तः प्रतिपुरुषं पार्थिवे च प्रतिक्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन
 दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि । न चैकाकिना शक्यन्तेऽह-
 निर्णयमवधारयितुं निमित्तानि । तस्मात् सुभृतेनैव दै-
 वज्ञेनान्ये तद्विदश्चत्वारो भर्तव्याः । तत्रैकेनैन्द्री चा-
 ग्रेयी च दिग्वलोकयितव्या । याम्या नैर्ऋती चान्ये-
 नैवं वारुणी वायव्या चोत्तरा चैशानी चेति । यस्मादु-
 ल्कापातादीनि निमित्तानि शीघ्रमुपगच्छन्तीति । तेषां
 चाकारवर्णस्त्रेहप्रमाणादिग्रहर्क्षाभिघातादिभिः फला-
 नि भवन्ति । उक्तञ्च गर्गेण महर्षिणा ।

कृत्स्नाङ्गोपाङ्गकुशलं हेरागणितनैष्ठिकम् ।

यो न पूजयते राजा स नाशमुपगच्छति ॥ ७ ॥

वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निःपरिग्रहाः ।

अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम् ॥ ८ ॥

अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभः ।

तथासांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि ॥ ९ ॥
 मुहूर्तं तिथिनक्षत्रमृतवश्यायने तथा ।
 सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात् सांवत्सरो यदि ॥ १० ॥
 तस्माद्राज्ञाभिगन्तव्यो विद्वान् सांवत्सरो ऽग्रणीः ।
 जयं यशः श्रियं भोगान् श्रेयश्च समभीषता ॥ ११ ॥
 नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता ।
 चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते ॥ १२ ॥
 न सांवत्सरपाठी च नरकेषूपपद्यते ।
 ब्रह्मलोकप्रतिष्ठाञ्च लभते दैवचिन्तकः ॥ १३ ॥
 ग्रन्थतश्चार्थतश्चैतत्कृत्स्नं जानाति यो द्विजः ।
 अग्रभुक् स भवेच्छाङ्गे पूजितः पङ्क्तिपावनः ॥ १४ ॥
 म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम् ।
 ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्देवविद्भिजः ॥ १५ ॥
 कुहकावेशपिहितैः कर्णापश्रुतिहेतुभिः ।
 कृतादेशो न सर्वत्र प्रष्टव्यो न स दैववित् ॥ १६ ॥
 अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते ।
 स पङ्क्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः ॥ १७ ॥
 नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपहासं करोति यः ।
 स व्रजत्यन्धतामिस्रं सार्धमृश्वविडम्बिना ॥ १८ ॥
 नगरद्वारलोष्टस्य यद्वत् स्यादुपयाचितम् ।
 आदेशस्तद्वदज्ञानां यः सत्यः स विभाव्यते ॥ १९ ॥
 सम्पत्त्या योजितादेशस्तद्विच्छिन्नकथाप्रियः ।

मत्तः शास्त्रैकदेशेन त्याज्यस्तादृग्महीक्षिता ॥ २० ॥
 यस्तु सम्यग्विजानाति हेरागणितसंहिताः ।
 अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा ॥ २१ ॥
 न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां वा चतुर्गुणम् ।
 करोति देशकालज्ञो यदेको दैवचिन्तकः ॥ २२ ॥

दुःस्वप्नदुर्विचिन्तित-

दुःप्रेक्षितदुःकृतानि कर्माणि ।

क्षिप्रं प्रयान्ति नाशं

शशिनः श्रुत्वा भसंवादम् ॥ २३ ॥

न तथेच्छति भूपतेः पिता

जननी वा स्वजनो ऽथवा सुहृत् ।

स्वयशो ऽभिविष्टद्वये यथा

हितमाप्तः सबलस्य दैववित् ॥ २४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सांव-
 त्सरसूत्रं द्वितीयोऽध्यायः ॥ * ॥

आश्लेषार्धादक्षिण-

मुत्तरमयनं धनिष्ठाद्यम् ।

नूनं कदाचिदासीद्

येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु ॥ १ ॥

साम्प्रतमयनं सवितुः
 कर्कटकाद्य मृगादितश्चान्यत् ।
 उक्ताभावो विकृतिः
 प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः ॥ २ ॥
 दूरस्थचिह्नवेधा-
 दुदये ऽस्तमये ऽपि वा सहस्रांशोः ।
 छायाप्रवेशनिर्गम-
 चिह्नैर्वा मण्डले महति ॥ ३ ॥
 अप्राप्य मकरमर्का
 विनिवृत्तो हन्ति सापरां याम्याम् ।
 कर्कटकमसम्प्राप्तो
 विनिवृत्तश्चात्तरां सैन्द्रीम् ॥ ४ ॥
 उत्तरमयनमतीत्य
 व्यावृत्तः क्षेमसस्य वृद्धिकरः ।
 प्रकृतिस्थश्चाप्येवं
 विकृतगतिर्भयकदुष्णांशुः ॥ ५ ॥
 सतमस्कं पर्व विना
 त्वष्टा नामार्कमण्डलं कुरुते ।
 स निहन्ति सप्त भूपान्
 जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः ॥ ६ ॥
 तामसकीलकसञ्ज्ञा
 राहुसुताः केतवस्त्रयस्त्रिंशत् ।

वर्णस्थानाकारै-
 स्तान्दृष्टार्के फलं ब्रूयात् ॥ ७ ॥
 ते चार्कमण्डलगताः
 पापफलाश्चन्द्रमण्डले सौम्याः ।
 ध्वाङ्गकवन्धप्रहरण-
 रूपाः पापाः शशाङ्के ऽपि ॥ ८ ॥
 तेषामुदये रूपा-
 एयम्भः कलुषं रजोवृतं व्योम ।
 नगतरुशिखरविमर्दी
 सशर्करो मारुतश्चण्डः ॥ ९ ॥
 चतुर्विपरीतास्तरवो
 दीप्ता मृगपक्षिणो दिशां दाहः ।
 निर्घातंमहीकम्पा-
 दयो भवन्त्यत्र चात्पाताः ॥ १० ॥
 न पृथक् फलानि तेषां
 शिखिकीलकराहुर्दर्शनानि यदि ।
 तदुदयकारणमेषां
 केत्वादीनां फलं ब्रूयात् ॥ ११ ॥
 यस्मिन् यस्मिन् देशे
 दर्शनमायान्ति सूर्यबिम्बस्थाः ।
 तस्मिंस्तस्मिन् व्यसनं
 महीपतीनां परिज्ञेयम् ॥ १२ ॥

क्षुत्प्रम्बानशरीरा
 मुनयो ऽप्युत्सृष्टधर्मसच्चरिताः ।
 निर्मांसबालहस्ताः
 कञ्छ्रेणायान्ति परदेशान् ॥ १३ ॥
 तस्करविलुप्तवित्ताः
 प्रदीर्घनिःश्वासमुकुलिताक्षिपुटाः ।
 सन्तः सन्नशरीराः
 शोकोद्भववाष्पदृष्टदृशः ॥ १४ ॥
 क्षामा जुगुप्समानाः
 स्वन्वपतिपरचक्रपीडिता मनुजाः ।
 स्वन्वपतिचरितं कर्म च
 पराकृतं प्रब्रुवन्त्यन्ये ॥ १५ ॥
 गर्भेष्वपि निष्पन्ना
 वारिमुचो न प्रभूतवारिमुचः ।
 सरितो यान्ति तनुत्वं
 क्वचित् क्वचिज्जायते सस्यम् ॥ १६ ॥
 दण्डे नरेन्द्रमृत्यु-
 र्थाधिभयं स्यात् कवन्धसंस्थाने ।
 ध्वाङ्गे च तस्करभयं
 दुर्भिक्षं कीलके ऽर्कस्थे ॥ १७ ॥
 राजोपकरणरूपै-
 श्छ्वचध्वजचामरादिभिर्विद्वः ।

राजान्यत्वकृदकः
 स्फुलिङ्गधूमादिभिर्जनहा ॥ १८ ॥
 एको दुर्भिक्षकरो
 द्याद्याः स्युर्नरपतेर्विनाशाय ।
 सितरक्तपीतकृष्णै-
 स्तैर्विड्ढोऽर्कोऽनुवर्णघ्नः ॥ १९ ॥
 दृश्यन्ते च यतस्ते
 रविबिम्बस्योत्थिता महोत्पाताः ।
 आगच्छति लोकानां
 तेनैव भयं प्रदेशेन ॥ २० ॥
 ऊर्ध्वकरो दिवसकर-
 स्ताम्रः सेनापतिं विनाशयति ।
 पीतो नरेन्द्रपुत्रं
 श्वेतस्तु पुरोहितं हन्ति ॥ २१ ॥
 चित्रोऽथवापि धूम्रो
 रविरश्लिर्थाकुलां करोति महीम् ।
 तस्करशस्त्रनिपातै-
 र्यदि सलिलं नाशु पातयति ॥ २२ ॥
 ताम्रः कपिलो वार्कः
 शिशिरे हरिकुङ्कुमच्छविश्च मधौ ।
 आपाण्डुकनकवर्णा
 ग्रीष्मे वर्षासु शुक्लश्च ॥ २३ ॥

शरदि कमलोदराभो
 हेमन्ते रुधिरसन्निभः शस्तः ।
 प्रावृट्काले स्निग्धः
 सर्वर्तुनिभोऽपि शुभदायी ॥ २४ ॥
 रूक्षः श्वेतो विप्रान्
 रक्ताभः क्षत्रियान्विनाशयति ।
 पीतो वैश्यान् कृष्ण-
 स्ततोऽपरान् शुभकरः स्निग्धः ॥ २५ ॥
 ग्रीष्मे रक्तो भयक-
 द्वर्षास्वसितः करोत्यनावृष्टिम् ।
 हेमन्ते पीतोऽर्कः
 करोत्यचिरेण रोगभयम् ॥ २६ ॥
 सुरचापपाटिततनु-
 र्त्पतिविरोधप्रदः सहस्रांशुः ।
 प्रावृट्काले सद्यः
 करोति विमलद्युतिर्दृष्टिम् ॥ २७ ॥
 वर्षाकाले वृष्टिं
 करोति सद्यः शिरीषपुष्पाभः ।
 शिखिपत्रनिभः सलिलं
 न करोति द्वादशाब्दानि ॥ २८ ॥
 श्यामेऽर्के कीटभयं
 भस्मनिभे भयमुशन्ति परचक्रात् ।

यस्यर्क्षं सच्छिद्र-
 स्तस्य विनाशः क्षितीशस्य ॥ २९ ॥
 शशरुधिरनिभे भानौ
 नभस्तलस्थे भवन्ति सङ्ग्रामाः ।
 शशिसदृशे नृपतिवधः
 क्षिप्रं चान्यो नृपो भवति ॥ ३० ॥
 क्षुन्मारकृद्द्वटनिभः
 खण्डो नृपहा विदीधितिर्भयदः ।
 तौरणरूपः पुरहा
 छचनिभो देशनाशाय ॥ ३१ ॥
 ध्वजचापनिभे युद्धानि
 भास्करे वेपने च रूक्षे च ।
 कृष्णा रेखा सवितरि
 यदि हन्ति नृपं ततः सचिवः ॥ ३२ ॥
 दिवसकरमुदयसंस्थित-
 मुल्काशनिविद्युतो यदा हन्युः ।
 नरपतिमरणं विन्द्यात्
 तदान्यराजप्रतिष्ठां च ॥ ३३ ॥
 प्रतिदिवसमहिमकिरणः
 परिवेधी सन्ध्योर्द्वयोरथवा ।
 रक्तोऽस्तमेति रक्तौ-
 दितश्च भूपं करोत्यन्यम् ॥ ३४ ॥

प्रहरणसदृशैर्जलदैः

स्थगितः सन्धाद्वयेऽपि रणकारी ।

मृगमहिषविहगखर-

करभसदृशरूपैश्च भयदायी ॥ ३५ ॥

दिनकरकराभितापा-

दृक्षमवाप्नोति सुमहतीं पीडाम् ।

भवति च पश्चाच्छुद्धं

कनकमिव हुताशपरितापात् ॥ ३६ ॥

दिवसकृतः प्रतिस्त्रयी

जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत् ।

उभयस्थः सलिलभयं

नृपमुपरि निहन्यधो जनहा ॥ ३७ ॥

रुधिरनिभो वियत्यवनिपान्तकरो नचिरात् ।

परुषरजोऽरुणीकृततनुर्यदि वा दिनकृत् ॥ ३८ ॥

असितविचित्रनीलपरुषो जनघातकरः ।

खगमृगभैरवखररुतैश्च निशाद्युमुखे ॥ ३९ ॥

अमलवपुरवक्रमण्डलः

स्फुटविपुलामलदीर्घदीधितिः ।

अविकृततनुवर्णाचिह्नभृ-

ज्जगति करोति शिवं दिवाकरः ॥ ४० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामादित्य-

चारस्तृतीयोऽध्यायः ॥ • ॥

नित्यमधःस्थस्येन्दो-
 र्भाभिर्भानोः सितं भवत्यर्धम् ।
 स्वच्छाययान्यदसितं
 कुम्भस्येवातपस्थस्य ॥ १ ॥
 सलिलमये शशिनि
 रवेर्दीधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम् ।
 क्षपयन्ति दर्पणोदर-
 निहता इव मन्दिरस्यान्तः ॥ २ ॥
 त्यजतो ऽर्कतलं शशिनः
 पश्चादवलम्बते यथा शौल्यम् ।
 दिनकरवशात्तथेन्दोः
 प्रकाशते ऽधःप्रभृत्युदयः ॥ ३ ॥
 प्रतिदिवसमेवमर्कात्
 स्थानविशेषेण शौल्यपरिवृद्धिः ।
 भवति शशिना ऽपराह्णे
 पश्चाद्भागे घटस्येव ॥ ४ ॥
 रेन्द्रस्य शीतकिरणो
 मूलाघाटाद्वयस्य वा यातः ।
 याम्येन बीजजलचर-
 काननहा वह्निभयदश्च ॥ ५ ॥
 दक्षिणपार्श्वेन गतः
 शशी विशाखानुराधयोः पापः ।

मध्येन तु प्रशस्तः
 पितृस्य विशाखयोश्चापि ॥ ६ ॥
 षडनागतानि पौष्णाद्
 द्वादश रौद्राच्च मध्ययोगीनि ।
 ज्येष्ठाद्यानि नवर्षा-
 ण्युदुपतिनातीत्य युज्यन्ते ॥ ७ ॥
 उन्नतमीपच्छृङ्गं
 नौसंस्थाने विशालता चोक्ता ।
 नाविकपीडा तस्मिन्
 भवति शिवं सर्वलोकस्य ॥ ८ ॥
 अर्धान्नते च लाङ्गुलमिति
 पीडा तदुपजीविनां तस्मिन् ।
 प्रीतिश्च निर्निमित्तं
 मनुजपतीनां सुभिक्षं च ॥ ९ ॥
 दक्षिणविषाणमर्धा-
 न्नतं यदा दुष्टलाङ्गुलाख्यं तत् ।
 पाण्ड्यनरेश्वरनिधनक-
 दुद्योगकरं बलानां च ॥ १० ॥
 समशशिनि सुभिक्षक्षेम-
 वृष्टयः प्रथमदिवससदृशाः स्युः ।
 दण्डवदुदिते पीडा
 गवां वृषश्चोमदस्रोऽच ॥ ११ ॥

कार्मुकरूपे युद्धानि
 यत्र तु ङ्या ततो जयस्तेषाम् ।
 स्थानं युगमिति याम्यो-
 त्तरायतं भूमिकम्पाय ॥ १२ ॥
 युगमेव याम्यकोव्यां
 किञ्चित्तुङ्गं स पार्श्वशायीति ।
 विनिहन्ति सार्थवाहान्
 वृष्टेश्च विनिग्रहं कुर्यात् ॥ १३ ॥
 अभ्युच्छायादेकं
 यदि शशिनो ऽवाङ्मुखं भवेच्छृङ्गम् ।
 आवर्जितमित्यसुभिक्ष-
 कारि तद्गोधनस्यापि ॥ १४ ॥
 अव्युच्छिन्ना रेखा
 समन्ततो मण्डला च कुण्डाख्यम् ।
 अस्मिन्मण्डलिकानां
 स्थानत्यागो नरपतीनाम् ॥ १५ ॥
 प्रोक्तस्थानाभावा-
 दुदगुच्चः सस्यवृद्धिवृष्टिकरः ।
 दक्षिणतुङ्गश्चन्द्रो
 दुर्भिक्षभयाय निर्दिष्टः ॥ १६ ॥
 शृङ्गेणैकेनेन्दुं
 विलीनमथवाप्यवाङ्मुखमशृङ्गम् ।

सम्पूर्णं चाभिनवं
 दृष्ट्वैको जीविताङ्गश्चेत् ॥ १७ ॥
 संस्थानविधिः कथितो
 रूपाण्यस्माद्भवन्ति चन्द्रमसः ।
 स्वल्पो दुर्भिष्टकरो
 महान् सुभिष्टावहः प्रोक्तः ॥ १८ ॥
 मध्यतनुर्वजास्थः
 क्षुद्भयदः सम्रमाय राज्ञां च ।
 चन्द्रो मृदङ्गरूपः
 क्षेमसुभिष्टावहो भवति ॥ १९ ॥
 ज्ञेयो विशालमूर्ति-
 नरपतिलक्ष्मीविष्टद्वये चन्द्रः ।
 स्थूलः सुभिष्टकारी
 प्रियधान्यकरस्तु तनुमूर्तिः ॥ २० ॥

प्रत्यन्तान् कुट्टपांश्च हन्युदुपतिः शृङ्गे कुजेनाहते
 शस्त्रक्षुद्भयकृद्यमेन शशिजेनावृष्टिदुर्भिष्टकृत् ।
 श्रेष्ठान् हन्ति नृपान्महेन्द्रगुरुणा शुक्रेण चाल्पान् नृपान्
 शुक्ले याप्यमिदं फलं ग्रहकृतं कृष्णे यथोक्तागमम् ॥२१॥
 भिन्नः सितेन मगधान्यवनान् पुलिन्दान्
नेपालभृङ्गिमरुकच्छसुराष्ट्रमद्रान् ।
पाञ्चालकैकयकुलूतकपूरुषादान्
 हन्यादुशीनरजनानपि सप्त मासान् ॥ २२ ॥

गान्धारसौवीरकसिन्धुकीरान्
 धान्यानि शैलान्द्रविडाधिपांश्च ।
 द्विजांश्च मासान्दश शीतरश्मिः
 सन्तापयेद्वाक्पतिना विभिन्नः ॥ २३ ॥

उद्युक्तान् सह वाहनैर्नरपतींस्तैर्गतकान्मालवान्
 कौलिन्दान् गणपुङ्गवानथ शिबीनायोध्यकान् पार्थिवान् ।
 हन्यात् कौरवमत्स्यशुत्तयधिपतीन् राजन्यमुस्थानपि
 प्रालेयांश्चुरसृग्ग्रहे तनुगते षण्मासमर्यादया ॥ २४ ॥

यौधेयान् सचिवान् सकौरवान्
 प्रागीशानथ चार्जुनायनान् ।
 हन्यादर्कजभिन्नमण्डलः

शीतांशुर्दशमासपीडया ॥ २५ ॥

मगधान्मथुरां च पीडयेद्
 वेणायाश्च तटं शशाङ्कजः ।

अपरत्र कृतं युगं वदेद्
 यदि भित्त्वा शशिनं विनिर्गतः ॥ २६ ॥

क्षेमरोग्यसुभिश्चविनाशी
 शीतांशुः शिखिना यदि भिन्नः ।

कुर्यादायुधजीविविनाशं
 चौराणामधिकेन च पीडाम् ॥ २७ ॥

उल्कया यदा शशी ग्रस्त एव हन्यते ।

हन्यते तदा नृपो यस्य जन्मनि स्थितः ॥ २८ ॥

भस्मनिभः परूषो ऽरुणमूर्तिः
 शीतकरः किरणैः परिहीणः ।
 श्यावतनुः स्फुटितः स्फुरणो वा
 क्षुत्समरामयचौरभयाय ॥ २९ ॥
 प्रालेयकुन्दकुमुदस्फटिकावदातो
 यत्नादिवाद्रिसुतया परिमृज्य चन्द्रः ।
 उच्चैःकृतो निशि भविष्यति मे शिवाय
 यो दृश्यते स भविता जगतः शिवाय ॥ ३० ॥
 यदि कुमुदमृणालहारगौर-
 स्तिथिनियमात् क्षयमेति वर्धते वा ।
 अविद्यतगतिमण्डलांशुयोगी
 भवति नृणां विजयाय शीतरश्मिः ॥ ३१ ॥
 शुक्ले पक्षे सम्प्रवृद्धे प्रवृद्धिं
 ब्रह्मक्षत्रं याति वृद्धिं प्रजाश्च ।
 हीने हानिस्तुल्यता तुल्यतायां
 कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन ॥ ३२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां चन्द्र-
 चारश्चतुर्थोऽध्यायः ॥ * ॥

अमृतास्वादविशेषा-
 च्छिन्नमपि शिरः किलामुरस्येदम् ।
 प्राणैरपरित्यक्तं
 ग्रहतां यातं वदन्येके ॥ १ ॥
 इन्द्रकर्मण्डलावृत्ति-
 रसितत्वात् किल न दृश्यते गगने ।
 अन्यत्र पर्वकालाद्
 वरप्रदानात् कमलयोनेः ॥ २ ॥
 मुखपुच्छविभक्ताङ्गं
 भुजङ्गमाकारमुपदिशन्त्यन्ये ।
 कथयन्त्यमूर्तमपरे
 तमोमयं सैहिकेयाख्यम् ॥ ३ ॥
 यदि मूर्ता भविचारी
 शिरो ऽथवा भवति मण्डली राहुः ।
 भगणार्धनान्तरितो
 गृह्णाति कथं नियतचारः ॥ ४ ॥
 अनियतचारः खलु चेद्
 उपलब्धिः सङ्ख्याया कथं तस्य ।
 पुच्छाननाभिधानो
 ऽन्तरेण कस्मान्न गृह्णाति ॥ ५ ॥
 अथ तु भुजगेन्द्ररूपः
 पुच्छेन मुखेन वा स गृह्णाति ।

मुखपुच्छान्तरसंस्थं
 स्थगयति कस्मान्न भगणार्धम् ॥ ६ ॥
 राहुद्वयं यदि स्याद्भस्ते
 ऽस्तमिते ऽथवोदिते चन्द्रे ।
 तत्समगतिनान्येन
 ग्रस्तः सूर्यो ऽपि दृश्येत ॥ ७ ॥
 भूच्छायां स्वग्रहणे
 भास्करमर्काग्रहे प्रविशतीन्दुः ।
 प्रग्रहणमतः पश्चा-
 न्नेन्दोर्भातोश्च पूर्वार्धात् ॥ ८ ॥
 वृक्षस्य स्वच्छाया
 यथैकपार्श्वेन भवति दीर्घा च ।
 निशि निशि तद्वद् भूमे-
 रावरणवशाद्दिनेशस्य ॥ ९ ॥
 सूर्यात् सप्तमराशौ
 यदि चोदग्दक्षिणेन नातिगतः ।
 चन्द्रः पूर्वाभिमुख-
 श्छायामौर्वीं तदाविशति ॥ १० ॥
 चन्द्रो ऽधःस्थः स्थगयति
 रविमम्बुदवत्समागतः पश्चात् ।
 प्रतिदेशमतश्चित्रं
 दृष्टिवशाद्भास्करग्रहणम् ॥ ११ ॥

आवरणं महदिन्दोः
 कुण्ठविषाणस्ततो ऽर्धसञ्चन्नः ।
 स्वल्पं रवेर्यतो ऽत-
 स्तीक्ष्णविषाणो रविर्भवति ॥ १२ ॥
 एवमुपरागकारण-
 मुक्तमिदं दिव्यदृग्भिराचार्यैः ।
 राहुरकारणमस्मि-
 न्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः ॥ १३ ॥
 यो ऽसावसुरो राहु-
 स्तस्य वरो ब्रह्मणायमाज्ञप्तः ।
 आप्यायनमुपरागे
 दत्तहुताग्नेन ते भविता ॥ १४ ॥
 तस्मिन् काले सान्निध्य-
 मस्य तेनोपचर्यते राहुः ।
 याम्योत्तरा शशिगति-
 र्गणिते ऽप्युपचर्यते तेन ॥ १५ ॥
 न कथञ्चिदपि निमित्तै-
 र्ग्रहणं विज्ञायते निमित्तानि ।
 अन्यस्मिन्नपि काले
 भवन्त्यथोत्पातरूपाणि ॥ १६ ॥
 पञ्चग्रहसंयोगान्
 न किल ग्रहणस्य सम्भवे भवति ।

तैलं च जले ऽष्टम्यां
 न विचिन्त्यमिदं विपश्चिद्धिः ॥ १७ ॥
 अवनत्यार्के ग्रासे
 दिग्ज्ञेया वलनयावनत्या च ।
 तिथ्यवसानाद्वेला
 करणे कथितानि तानि मया ॥ १८ ॥
 घण्मासोत्तरवृद्ध्या
 पर्वशाः सप्त देवताः क्रमशः ।
 ब्रह्मशशीन्द्रकुबेरा
 वरुणाम्नित्रयमाश्च विज्ञेयाः ॥ १९ ॥
 ब्राह्मे द्विजपशुवृद्धि-
 क्षेमरोग्याणि सस्यसम्पच्च ।
 तद्वत्सौम्ये तस्मिन्
 पीडा विदुषामवृष्टिश्च ॥ २० ॥
 ऐन्द्रे भूपविरोधः
 शारदसस्यक्षयो न च क्षेमम् ।
 कौबेरेऽर्थपतीना-
 मर्थविनाशः सुभिक्षं च ॥ २१ ॥
 वारुणमवनीशाशुभ-
 मन्येषां क्षेमसस्यवृद्धिकरम् ।
 आग्नेयं मित्राख्यं
 सस्यारोग्याभयाम्बुकरम् ॥ २२ ॥

याम्यं करोत्यष्टिं
 दुर्भिक्षं सङ्ख्यं च सस्यानाम् ।
 यदतः परं तदशुभं
 क्षुन्माराष्टिदं पर्व ॥ २३ ॥
 वेलाहीने पर्वणि
 गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च ।
 अतिवेले कुसुमफल-
 क्षयो भयं सस्यनाशश्च ॥ २४ ॥
 हीनातिरिक्तकाले
 फलमुक्तं पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात् ।
 स्फुटगणितविदः कालः
 कथञ्चिदपि नान्यथा भवति ॥ २५ ॥
 यद्येकस्मिन् मासे
 ग्रहणं रविसेमयोस्तदा क्षितिपाः ।
 स्वबलशोभैः सङ्ख्य-
 मायान्यतिशस्त्रकोपश्च ॥ २६ ॥
 यस्तावुदितास्तमितौ
 शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ ।
 सर्वग्रस्तौ दुर्भिक्ष-
 मरकदौ पापसन्दृष्टौ ॥ २७ ॥
 अर्धोदितोपरक्तौ
 नैहतिकान् हन्ति सूर्यज्ञांश्च ।

अग्न्युपजीविगुणाधिक-
 विप्राश्रमिणो ऽयुगाभ्युदितः ॥ २८ ॥
 कर्षकपापण्डवणिक-
 क्षत्रियबलनायकान् द्वितीये ऽंशे ।
 कारुकशूद्रम्लेच्छान्
 खट्वतीयांशे समन्त्रजनान् ॥ २९ ॥
 मध्याह्ने नरपति-
 मध्यदेशहा शोभनश्च धान्यार्घः ।
 तृणभुगमात्यान्तःपुर-
 वैश्यघ्नः पञ्चमे खांशे ॥ ३० ॥
 स्त्रीशूद्रान् षष्ठे ऽंशे
 दस्युप्रत्यन्तहास्तमयकाले ।
 यस्मिन् खांशे मोक्ष-
 स्तप्तोक्तानां शिवं भवति ॥ ३१ ॥
 द्विजन्तपतीनुदगयने
 विट्छूद्रान् दक्षिणायने हन्ति ।
 राहुरुदगादिदृष्टः
 प्रदक्षिणं हन्ति विप्रादीन् ॥ ३२ ॥
 म्लेच्छान् विदिकस्थितो
 यायिनश्च हन्याद्भुताशसक्तांश्च ।
 सलिलचरदन्तिघातो
 याम्येनोदग्गवामशुभः ॥ ३३ ॥

पूर्वेण सलिलपूर्णां
 करोति वसुधां समागतो दैत्यः ।
 पश्चात्कर्षकसेवक-
 बीजविनाशाय निर्दिष्टः ॥ ३४ ॥
 पाञ्चालकलिङ्गशूरसेनाः
 काम्बोजोद्भिरातशस्त्रवार्ताः ।
 जीवन्ति च ये हुताशयुक्त्या
 ते पीडामुपयान्ति मेषसंस्थे ॥ ३५ ॥
 गोपाः पशवोऽथ गोमिनो
 मनुजा ये च महत्त्वमागताः ।
 पीडामुपयान्ति भास्करे
 ग्रस्ते शीतकरे ऽथवा वृषे ॥ ३६ ॥
 मिथुने प्रवराङ्गना नृपा
 नृपमात्रा बलिनः कलाविदः ।
 यमुनातटजाः सर्वाङ्गिका
 मत्स्याः सुहृज्जनैः समन्विताः ॥ ३७ ॥
 आभीराञ्छबरान् सपह्लवान्
 मल्लान् मत्स्यकुरूञ्छकानपि ।
 पाञ्चालान्विकलांश्च पीडय-
 त्यन्नं चापि निहन्ति कर्कटे ॥ ३८ ॥
 सिंहे पुलिन्दगणमेकलसत्त्वयुक्तान्
 राजोपमान्नरपतीन् वनगोचरांश्च ।

षष्ठे तु सस्यकविलेखकगेयसक्तान्
 हन्त्यश्मकत्रिपुरशालियुतांश्च देशान् ॥ ३९ ॥
 तुलाधरे ऽवन्त्यपरान्त्यसाधून्
 वणिग्दशार्णान् *भरुकच्छपांश्च ।
 अलिन्यथोदुम्बरमद्रचोलान्
 द्रुमान् सयौधेयविषायुधीयान् ॥ ४० ॥
 धन्विन्यमात्यवरवाजिविदेहमल्लान्
 पाञ्चालवैद्यवणिजो विषमायुधज्ञान् ।
 हन्यान् मृगे तु अयमन्त्रिकुलानि नीचान्
 मन्त्रौषधीषु कुशलान् स्थविरायुधीयान् ॥ ४१ ॥
 कुम्भोऽन्तर्गिरिजान् सपश्चिमजनान् भारोद्धहांस्तस्करान्
 आभीरान्दरदार्यसिंहपुरकान् हन्यात्तथा बर्बरान् ।
 मीने सागरकूलसागरजलद्रव्याणि मान्यान् जनान्
 प्राज्ञान्वार्युपजीविनश्च भफलं कूर्मोपदेशाद्देत् ॥ ४२ ॥
 सव्यापसव्यलेह-
 ग्रसननिरोधावमर्दनारोहाः ।
 आघ्रातं मध्यतम-
 स्तमोऽन्त्य इति ते दश ग्रासाः ॥ ४३ ॥
 सव्यगते तमसि जग-
 ज्जलस्रुतं भवति मुदितमभयं च ।
 अपसव्ये नरपति-
 तस्करावमर्देः प्रजानाशः ॥ ४४ ॥

* भरोह इति भाषायां यन्नगरमभिधीयते तस्यैव प्राचीननामैतत् ।
इति टिप्पणम् ।

जिह्वेव लेढि परित-
 स्तिमिरनुदो मण्डलं यदि स लेहः ।
 प्रमुदितसमस्तभूता
 प्रभूततोया च तत्र मही ॥ ४५ ॥
 ग्रसनमिति यदा त्वंशः
 पादो वा गृह्यते ऽथवाप्यर्धम् ।
 स्फ्रीतन्टपवित्तहानिः
 पीडा च स्फ्रीतदेशानाम् ॥ ४६ ॥
 पर्यन्तेषु गृहीत्वा
 मध्ये पिण्डीकृतं तमस्तिष्ठेत् ।
 स निरोधो विज्ञेयः
 प्रभोदकृत् सर्वभूतानाम् ॥ ४७ ॥
 अवमर्दनमिति निःशेष-
 मेव सञ्छाद्य यदि चिरं तिष्ठेत् ।
 हन्यात् प्रधानदेशान्
 प्रधानभूपांश्च तिमिरमयः ॥ ४८ ॥
 वृत्ते ग्रहे यदि तम-
 स्तत्क्षणमावृत्य दृश्यते भूयः ।
 आरौहणमित्यन्योऽन्य-
 मर्दनैर्भयकरं राज्ञाम् ॥ ४९ ॥
 दर्पण इवैकदेशे
 सवाप्यनिःश्वासमारुतोपहतः ।

दृश्येताघ्रातं तत्
 सुदृष्टिवृद्धावहं जगतः ॥ ५० ॥
 मध्ये तमः प्रविष्टं
 वितमस्कं मण्डलं च यदि परितः ।
 तन्मध्यदेशनाशं
 करोति कुक्ष्यामयभयं च ॥ ५१ ॥
 पर्यन्तेष्वतिबहुलं
 स्वल्पं मध्ये तमस्तमोऽन्त्याख्ये ।
 सस्यानामीतिभयं
 भयमस्मिंस्तस्कराणां च ॥ ५२ ॥
 श्वेते क्षेमसुभिक्षं
 ब्राह्मणपीडां च निर्दिशेद्राहौ ।
 अग्निभयमनलवर्णे
 पीडा च हुताशवृत्तीनाम् ॥ ५३ ॥
 हरिते रोगोत्पणता
 सस्यानामीतिभिश्च विध्वंसः ।
 कपिले शीघ्रगसत्त्व-
 म्बेच्छ्वंसो ऽथ दुर्भिक्षम् ॥ ५४ ॥
 अरुणकिरणानुरूपे
 दुर्भिक्षावृष्टयो विहगपीडा ।
 आधूम्रे क्षेमसुभिक्ष-
 मादिशेन्मन्दवृष्टिं च ॥ ५५ ॥

कापोतारुणकपिल-
 श्यावाभे क्षुद्रयं विनिर्देश्यम् ।
 कापोतः श्रुद्राणां
 व्याधिकरः कृष्णवर्णश्च ॥ ५६ ॥
 विमलकमणिपीताभे
 वैश्यध्वंसी भवेत् सुभिक्षाय ।
 सार्चिष्मत्यग्निभयं
 गैरिकरूपे तु युञ्जानि ॥ ५७ ॥
 दूर्वाकाण्डश्यामे
 हारिद्रे वापि निर्दिशेन्मरकम् ।
 अशनिभयसम्प्रदायी
 पाटलिकुसुमोपमो राहुः ॥ ५८ ॥
 पांशुविलोहितरूपः
 क्षत्रध्वंसाय भवति वृष्टेश्च ।
 बालरविकमलसुरचाप-
 रूपभृच्छस्त्रकोपाय ॥ ५९ ॥
 पश्यन् ग्रस्तं सौम्यो
 घृतमधुतैलक्षयाय राज्ञां च ।
 भौमः समरविमर्दं
 शिखिकोपं तस्करभयं च ॥ ६० ॥
 शुक्रः सस्यविमर्दं
 नानाक्लेशांश्च जनयति धरित्याम् ।

रविजः करोत्यदृष्टिं
 दुर्भिक्षं तस्करभयं च ॥ ६१ ॥
 यदशुभमवलोकनाभिरुक्तं
 ग्रहजनितं ग्रहणे प्रमोक्षणे वा ।
 सुरपतिगुरुणावलोकिते त-
 च्छममुपयाति जलैरिवाग्निरिहः ॥ ६२ ॥
 ग्रस्ते क्रमान्निमित्तैः
 पुनर्ग्रहे मासषट्कपरिदृष्ट्या ।
 पवनोष्कापातरजः-
 क्षितिकम्पतमोऽग्निनिपातैः ॥ ६३ ॥
 आवन्तिका जनपदाः
 कावेरीनर्मदातटाश्रयिणः ।
 दृप्ताश्च मनुजपतयः
 पीड्यन्ते क्षितिसुते ग्रस्ते ॥ ६४ ॥
 अन्तर्वेदीं सरयूं
 नेपालं पूर्वसागरं शोणम् ।
 स्त्रीन्द्रपयोधकुमारान्
 सह विद्वद्भिर्बुधो हन्ति ॥ ६५ ॥
 ग्रहणोपगते जीवे
 विद्वन्नृपमन्त्रिगजहयध्वंसः ।
 सिन्धुतटवासिना-
 मप्युदग्दिशं संश्रितानां च ॥ ६६ ॥

भृगुतनये राहुगते

दूसेरकाः कैकयाः सयौधेयाः ।

आर्यावर्ताः शिबयः

स्त्रीसचिवगणाश्च पीड्यन्ते ॥ ६७ ॥

सैरे मरुभवपुष्कर-

सैराघ्रा धातवो ऽर्बुदान्धजनाः ।

गोमन्तपारियात्रा-

श्रिताश्च नाशं व्रजन्त्याशु ॥ ६८ ॥

कार्तिक्यामनलोपजीविमगधान्प्राच्याधिपान्कोश्लान्

कल्माषानथ श्रूरसेनसहितान् कार्शीश्च सन्तापयेत् ।

हन्याच्चाशु कलिङ्गदेशनृपतिं सामात्यभृत्यं तमो

दृष्टं क्षत्रियतापदं जनयति क्षेमं सुभिक्षान्वितम् ॥ ६९ ॥

काश्मीरकान् कौशलकान् सपुण्ड्रान्

मृगांश्च हन्यादपरान्तकांश्च ।

ये सोमपास्तांश्च निहन्ति सौम्ये

सुवृष्टिकृत् क्षेमसुभिक्षकच ॥ ७० ॥

पौषे द्विजक्षत्रजनोपरोधः

ससैन्धवाख्याः कुरुरा विदेहाः ।

ध्वंसं व्रजन्त्यत्र च मन्दवृष्टिं

भयं च विन्द्यादसुभिक्षयुक्तम् ॥ ७१ ॥

माघे तु मातृपितृभक्तवसिष्ठगोत्रान्

स्वाध्यायधर्मनिरतान् करिणस्तुरङ्गान् ।

वङ्गाङ्गकाशिमनुजांश्च दुनोति राहु-
 र्दृष्टिं च कर्षकजनानुमतां करोति ॥ ७२ ॥
 पोडाकरं फाल्गुनमासि पर्व
 वङ्गाशमकावन्तकमेकलानाम् ।
 नृत्तज्ञसस्यप्रवराङ्गनानां
 धनुष्करश्चतपस्विनां च ॥ ७३ ॥
 चैत्रे तु चित्रकरलेखकगेयसक्तान्
 रूपोपजीविनिगमज्ञहिरण्यपण्थान् ।
 पौरुड्रौङ्गकैकयजनानथ चाशमकांश्च
 तापः स्पृशत्यमरपोऽत्र विचित्रवर्षी ॥ ७४ ॥
 वैशाखमासि ग्रहणे विनाश-
 मायान्ति कर्पासतिलाः समुद्राः ।
 इल्वाकुयैधेयशकाः कलिङ्गाः
 सोपद्रवाः किन्तु सुभिक्षमस्मिन् ॥ ७५ ॥
 ज्यैष्ठे नरेन्द्रद्विजराजपत्यः
 सस्यानि वृष्टिश्च महागणाश्च ।
 प्रध्वंसमायान्ति नराश्च सौम्याः
 साल्वैः समेताश्च निषादसङ्घाः ॥ ७६ ॥
 आषाढपर्वण्युदपानवप्र-
 नदीप्रवाहान् फलमूलवार्त्तान् ।
 गान्धारकाश्मीरपुलिन्दीनीनान्
 हतान् वदेन् मण्डलवर्षमस्मिन् ॥ ७७ ॥

काश्मीरान् सपुलिन्दचीनयवनान् हन्यात् कुरुक्षेत्रकान्
गान्धारानपि मध्यदेशसहितान् दृष्टो ग्रहः श्रावणे ।
काम्बोजैकशफांश्च शारदमपि त्यक्त्वा यथोक्तानिमान्
अन्यत्र प्रचुरान्नहृष्टमनुजैर्धात्रीं करोत्यावृताम् ॥ ७८ ॥

कलिङ्गवङ्गान् मगधान् सुराष्ट्रान्
म्बेच्छान् सुवीरान् दरदाञ्चकांश्च ।
स्त्रीणां च गर्भानसुरो निहन्ति
सुभिक्षकद्वादपदे ऽभ्युपेतः ॥ ७९ ॥

काम्बोजचीनयवनान् सह शल्यहृद्भि-
र्वाल्मीकसिन्धुतटवासिजनांश्च हन्यात्
आनर्तपौण्ड्रभिषजश्च तथा किरातान्
दृष्टो ऽसुरो ऽश्वयुजि भूरिसुभिक्षकश्च ॥ ८० ॥

हनुकुक्षिपायुभेदा
द्विर्दिः सञ्छर्दनं च जरणं च ।
मध्यान्तयोश्च विदरण-
मिति दश शशिसूर्ययोर्माक्षाः ॥ ८१ ॥

आग्नेय्यामपगमनं
दक्षिणहनुभेदसञ्ज्ञितं शशिनः ।
सस्यविमर्दो मुखरुग्
वृषपीडा स्यात् सुदृष्टिश्च ॥ ८२ ॥
पूर्वात्तरेण वामो
हनुभेदो वृषकुमारभयदायी ।

मुखरोगं शस्त्रभयं
 तस्मिन् विन्ध्यात् सुभिष्टं च ॥ ८३ ॥
 दक्षिणकुक्षिविभेदे
 दक्षिणपार्श्वेन यदि भवेन्मोक्षः ।
 पीडा नृपपुत्राणा-
 मभियोज्या दक्षिणा रिपवः ॥ ८४ ॥
 वामस्तु कुक्षिभेदे
 यद्युत्तरमार्गसंस्थितो राहुः ।
 स्त्रीणां गर्भविपत्तिः
 सस्यानि च तत्र मध्यानि ॥ ८५ ॥
 नैर्ऋतवायव्यस्थौ
 दक्षिणवामौ तु पायुभेदौ द्वौ ।
 गुह्यरुगल्या वृष्टि-
 र्वयोस्तु रात्रीक्षयो वामे ॥ ८६ ॥
 पूर्वेण प्रग्रहणं
 कृत्वा प्रागेव चापसर्पत ।
 सञ्चर्दनमिति तत्
 क्षेमसस्यहार्दिप्रदं जगतः ॥ ८७ ॥
 प्राक्प्रग्रहणं यस्मिन्
 पश्चादपसर्पणं तु तज्जरणम् ।
 क्षुब्धस्त्रभयोद्विग्नाः
 क शरणमुपयान्ति तत्र जनाः ॥ ८८ ॥

मध्ये यदि प्रकाशः
 प्रथमं तन्मध्यविदरणं नाम ।
 अन्तःकोपकरं स्यात्
 सुभिन्नदं नातिवृष्टिकरम् ॥ ८६ ॥
 पर्यन्तेषु विमलता
 बहुलं मध्ये तमोऽन्तदरणाख्ये ।
 मध्याख्यदेशनाशः
 शारदसस्यक्षयश्चास्मिन् ॥ ९० ॥
 एते सर्वे मोक्ष
 वक्तव्या भास्करेऽपि किन्त्वत्र ।
 पूर्वा दिक् शशिनि यथा
 तथा रवौ पश्चिमा कल्प्या ॥ ९१ ॥
 मुक्ते सप्ताहान्तः
 पांशुनिपातोऽन्नसङ्ख्यं कुरुते ।
 नीहारो रोगभयं
 भ्रुकम्पः प्रवरन्टपमृत्युम् ॥ ९२ ॥
 उल्का मन्त्रिविनाशं
 नानावर्णा घनाश्च भयमतुलम् ।
 स्तनितं गर्भविनाशं
 विद्युन्नृपदंघ्रिपरिपीडाम् ॥ ९३ ॥
 परिवेषो रुक्पीडां
 दिग्दाहो नृपभयं च साग्निभयं ।

रुक्षो वायुः प्रबल-
 श्रौरसमुत्थं भयं धत्ते ॥ ६४ ॥
 निर्घातः सुरचापं
 दण्डश्च क्षुद्भयं सपरचक्रम् ।
 ग्रहयुद्धं नृपयुद्धं
 केतुश्च तदेव सन्दृष्टः ॥ ६५ ॥
 अविकृतसलिलनिपाते
 सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम् ।
 यच्चाशुभं ग्रहणजं
 तत् सर्वं नाशमुपयाति ॥ ६६ ॥
 सोमग्रहे निवृत्ते
 पक्षान्ते यदि भवेद्ब्रह्मोऽर्कस्य ।
 तत्रानयः प्रजानां
 दम्पत्योर्वैरमन्योऽन्यम् ॥ ६७ ॥
 अर्कग्रहात्तु शशिनो
 ग्रहणं यदि दृश्यते ततो विप्राः ।
 नैकक्रतुफलभाजा
 भवन्ति मुदिताः प्रजाश्चैव ॥ ६८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां राहु-
 चारः पञ्चमोऽध्यायः ॥ * ॥

यद्युदयर्शाद्वक्रं
 करोति नवमाष्टसप्तमर्क्षेषु ।
 तद्वक्रमुष्णमुदये
 पीडाकरमग्निवार्त्तानाम् ॥ १ ॥
 द्वादशदशमैकादश-
 नक्षत्राद्वक्रिते कुजेऽश्रुमुखम् ।
 द्रूयति रसानुदये
 करोति रोगानवृष्टिं च ॥ २ ॥
 व्यालं त्रयोदशर्शा-
 चतुर्दशाद्वा विपच्यते ऽस्तमये ।
 दंष्ट्रिव्यालमृगेभ्यः
 करोति पीडां सुभिक्षं च ॥ ३ ॥
 रुधिराननमिति वक्रं
 पञ्चदशात् षोडशाच्च विनिवृत्ते ।
 तत्कालं मुखरोगं
 सभयं च सुभिक्षमावहति ॥ ४ ॥
 असिमुशलं सप्तदशा-
 दष्टादशतोऽपि वा तदनुवक्त्रे ।
 दस्युगणेभ्यः पीडां
 करोत्यवृष्टिं सशस्त्रभयाम् ॥ ५ ॥
 माग्यार्यमोदितो यदि
 निवर्तते वैश्वदैवते भौमः ।

प्राजापत्ये ऽस्तमित-
 स्त्रीनपि लोकान्निपीडयति ॥ ६ ॥
 श्रवणोदितस्य वक्रं
 पुष्ये मूर्धाभिषिक्तपीडाकृत् ।
 यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदित-
 स्तद्दिग्ब्यूहान् जनान् हन्ति ॥ ७ ॥
 मध्येन यदि मघानां
 गतागतं लोहितः करोति ततः ।
 पाण्ड्यो नृपो विनश्यति
 शस्त्रोद्योगाङ्गयमदृष्टिः ॥ ८ ॥
 भित्त्वा मघां विशाखां
 भिन्दन् भौमः करोति दुर्भिक्षम् ।
 मरकं करोति घोरं
 यदि भित्त्वा रोहिणीं याति ॥ ९ ॥
 दक्षिणतो रोहिण्या-
 श्रवन् मर्हीजो ऽर्धदृष्टिनिग्रहकृत् ।
 धूमायन् सशिखो वा
 विनिहन्यात् पारियात्रस्थान् ॥ १० ॥
 प्राजापत्ये श्रवणे
 मूले तिसृषूत्तरासु शाक्रे च ।
 विचरन् घननिवहाना-
 मुपघातकरः क्षमातनयः ॥ ११ ॥

चारोदयाः प्रशस्ताः
 श्रवणमघादित्यमूलहस्तेषु ।
 एकपदाश्विविशाखा-

प्राजापत्येषु च कुजस्य ॥ १२ ॥

विपुलविमलमूर्तिः किंशुकाशोकवर्णः

स्फुटरुचिरमयूखस्तप्तताम्रप्रभाभः ।

विचरति यदि मार्गं चोत्तरं मेदिनीजः

शुभकृदवनिपानां हार्दिदश्च प्रजानाम् ॥ १३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां भौम-
 चारः षष्ठोऽध्यायः ॥ * ॥

नेत्यातपरित्यक्तः

कदाचिदपि चन्द्रजे व्रजत्युदयम् ।

जलदहनपवनभयक-

डान्यार्घक्षयविवृद्धौ वा ॥ १ ॥

विचरञ्छ्रवणधनिष्ठा-

प्राजापत्येन्दुविश्वदैवानि ।

मृद्रन् हिमकरतनयः

करोत्यवृष्टिं सरोगभयाम् ॥ २ ॥

रौद्रादीनि मघान्ता-

न्युपाश्रिते चन्द्रजे प्रजापीडा ।

शस्त्रनिपातक्षुद्भय-
 रोगानादृष्टिसन्तापैः ॥ ३ ॥
 हस्तादीनि विचरन्
 षडृक्षाण्युपपीडयन् गवामशुभः ।
 स्नेहरसार्धविद्विं
 करोति चोर्वीं प्रभूतान्नाम् ॥ ४ ॥
 आर्यमणं द्वातभुजं
 भद्रपदामुत्तरां यमेशं च ।
 चन्द्रस्य सुतो निघ्नन्
 प्राणभृतां धातुसङ्ख्यकृत् ॥ ५ ॥
 आश्विनवारुणमूला-
 न्युपमृद्रन् रेवतीं च चन्द्रसुतः ।
 पण्यभिषमौजीविक-
 सलिलजतुरगोपघातकरः ॥ ६ ॥
 पूर्वाद्यृक्षचितया-
 देकमपोन्दोः सुतोऽभिमृद्रीयात् ।
 क्षुच्छस्वतस्करामय-
 भयप्रदायी चरन् जगतः ॥ ७ ॥
 प्राकृतविमिश्रसङ्घिप्त-
 तीक्ष्णयोगान्तघोरपापाख्याः ।
 सप्त पराशरतन्त्रे
 नक्षत्रैः कीर्तिता गतयः ॥ ८ ॥

प्राकृतसञ्ज्ञा वायव्य-
 याम्यपैतामहानि बहुलाश्च ।
 मिश्रा गतिः प्रदिष्टा
 शशिशिवपितृभुजगदैवानि ॥ ९ ॥
 सङ्घिन्नायां पुष्यः
 पुनर्वसुः फल्गुनीद्वयं चेति ।
 तीक्ष्णायां भद्रपदा-
 द्वयं सशक्राश्वयुक् पौष्णम् ॥ १० ॥
 योगान्तिकेति मूलं
 द्वे चाषाढे गतिः सुतस्येन्दोः ।
 घोरा श्रवणस्त्वाङ्गं
 वसुदेवं वारुणं चैव ॥ ११ ॥
 पापाख्या सावित्रं
 मैत्रं शक्राग्निदैवतं चेति ।
 उदयप्रवासदिवसैः
 स एव गतिलक्षणं प्राह ॥ १२ ॥
 चत्वारिंशत्त्रिंशद्
 द्विसमेता विंशतिर्द्विनवकं च ।
 नव मासार्धं दश चैक-
 संयुताः प्राकृताद्यानाम् ॥ १३ ॥
 प्राकृतगत्यामारोग्य-
 दृष्टिसस्यप्रवृत्तयः श्लेमम् ।

सङ्क्षिप्तमिश्रयोर्मिश्र-
 मेतदन्यासु विपरीतम् ॥ १४ ॥
 ऋज्व्यतिवक्रा वक्रा
 विकला च मतेन देवलस्यैताः ।
 पञ्चचतुर्घाकाहा
 ऋज्व्यादीनां षडभ्यस्ताः ॥ १५ ॥
 ऋज्वी हिता प्रजाना-
 मतिवक्रार्थं गतिर्विनाशयति ।
 शस्त्रभयदा च वक्रा
 विकला भयरोगसञ्जननी ॥ १६ ॥
 पौषाषाढश्रावण-
 वैशाखेऽपिन्दुजः समाघेषु ।
 दृष्टो भयाय जगतः
 शुभफलकृत् प्रेषितस्तेषु ॥ १७ ॥
 कार्तिके ऽश्वयुजि वा यदि मासे
 दृश्यते तनुभवः शिशिरांशोः ।
 शस्त्रचौरहुतभुग्गदताय-
 क्षुद्भयानि च तदा विदधाति ॥ १८ ॥
 रुद्धानि सौम्येऽस्तमिते पुराणि
 यान्युद्गते तान्युपयान्ति मोक्षम् ।
 अन्ये तु पश्चादुदिते वदन्ति
 लाभः पुराणां भवतीति तज्ज्ञाः ॥ १९ ॥

हेमकान्तिरथवा शुक्वर्णः
 सस्यकेन मणिना सदृशो वा ।
 स्निग्धमूर्तिरलघुश्च हिताय
 व्यत्यये न शुभकृच्छशिपुत्रः ॥ २० ॥

इति श्रीवराहमिहिरवृतौ वृहत्संहितायां बुधचारः
 सप्तमोऽध्यायः ॥ * ॥

नक्षत्रेण सहोदय-
 मुपगच्छति येन देवपतिमन्त्री ।
 तत्सञ्ज्ञं वक्तव्यं
 वर्षं मासक्रमेणैव ॥ १ ॥
 वर्षाणि कार्तिकादी-
 न्याग्नेयाद्भद्रयानुयोगीनि ।
 क्रमशस्त्रिभं तु पञ्चम-
 मुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम् ॥ २ ॥
 शकटानलोपजीवक-
 गोपीडा व्याधिशस्त्रकोपश्च ।
 वृद्धिस्तु रक्तपीतक-
 कुसुमानां कार्तिके वर्षे ॥ ३ ॥
 सौम्येऽब्दे ऽनावृष्टि-
 मृगाखुशलभाण्डजैश्च सस्यवधः ।

व्याधिभयं मित्रैरपि
 भूपानां जायते वैरम् ॥ ४ ॥
 शुभकृज्जगतः पौषो
 निवृत्तवैराः परस्परं क्षितिपाः ।
 द्वित्रिगुणो धान्यार्घः
 पौष्टिककर्मप्रसिद्धिश्च ॥ ५ ॥
 पितृपूजापरिवृद्धि-
 र्माघे हार्दिश्च सर्वभूतानाम् ।
 आरोग्यवृष्टिधान्या-
 र्घसम्पदे मित्रलाभश्च ॥ ६ ॥
 फाल्गुनवर्षे विन्द्यात्
 क्वचित् क्वचित् क्षेमवृद्धिसस्यानि ।
 दौर्भाग्यं प्रमदानां
 प्रबलाश्चैरा नृपाश्चोग्राः ॥ ७ ॥
 चैत्रे मन्दा वृष्टिः
 प्रियमन्नं क्षेममवनिपा मृदवः ।
 वृद्धिस्तु कोशधान्यस्य
 भवति पीडा च रूपवताम् ॥ ८ ॥
 वैशाखे धर्मपरा विगत-
 भयाः प्रमुदिताः प्रजाः सन्तपाः ।
 यज्ञक्रियाप्रवृत्ति-
 निर्णयतिः सर्वसस्यानाम् ॥ ९ ॥

ज्यैष्ठे जातिकुलधन-
 श्रेणीश्रेष्ठा नृपाः सधर्मज्ञाः ।
 पीड्यन्ते धान्यानि च
 हित्वा कङ्कुं शमीजातिम् ॥ १० ॥
 आषाढे जायन्ते
 सस्यानि क्वचिद्वृष्टिरन्यत्र ।
 योगक्षेमं मध्यं
 व्यशाश्च भवन्ति भूपालाः ॥ ११ ॥
 श्रावणवर्षे क्षेमं
 सम्यक् सस्यानि पाकमुपयान्ति ।
 क्षुद्रा ये पापण्डाः
 पीड्यन्ते ये च तद्भक्ताः ॥ १२ ॥
 भाद्रपदे वल्लीजं
 निष्पत्तिं याति पूर्वसस्यं च ।
 न भवत्यपरं सस्यं
 क्वचित् सुभिक्षं क्वचिच्च भयम् ॥ १३ ॥
 आश्वयुजेऽब्दे ऽजस्रं
 पतति जलं प्रमुदिताः प्रजाः क्षेमम् ।
 प्राणचयः प्राणभृतां
 सर्वेषामन्नबाहुल्यम् ॥ १४ ॥
 उदगारोग्यसुभिक्ष-
 क्षेमकरो वाक्पतिश्चरन् भानाम् ।

याम्ये तद्विपरीतो
 मध्येन तु मध्यफलदायी ॥ १५ ॥
 विचरन् भद्रयमिष्ट-
 स्तत्सार्धं वत्सरेण मध्यफलः ।
 सस्यानां विध्वंसी
 विचरेदधिकं यदि कदाचित् ॥ १६ ॥
 अनन्तभयमनलवर्णे
 व्याधिः पीते रणागमः श्यामे ।
 हरिते च तस्करेभ्यः
 पीडा रक्ते तु शस्त्रभयम् ॥ १७ ॥
 धूमाभे ऽनावृष्टि-
 स्त्रिदशगुरौ नृपवधो दिवा दृष्टे ।
 विपुले ऽमले सुतारे
 रात्रौ दृष्टे प्रजाः स्वस्थाः ॥ १८ ॥

रोहिण्यो ऽनलभं च वत्सरतनुर्नाभिस्त्वपादाद्यं
 सार्धं हृत्पितृदैवतं च कुसुमं शुद्धैः शुभं तैः फलम् ।
 देहे क्रूरनिपीडिते ऽग्न्यनिलजं नाभ्यां भयं क्षुत्कृतम्
 पुण्ये मूलफलक्षयोऽथ हृदये सस्यस्य नाशो ध्रुवम् ॥ १९ ॥

गतानि वर्षाणि शकेन्द्रकाला-
 द्गतानि रुद्रैर्गुणयेच्चतुर्भिः ।
 नवाष्टपञ्चाष्टयुतानि कृत्वा
 विभाजयेच्छून्यशरागरामैः* ॥ २० ॥

फलेन युक्तं शकभूपकालं
 संशोध्य षष्ठ्या विषयैर्विभज्य ।
 युगानि नारायणपूर्वकाणि
 लब्धानि शेषाः क्रमशः समाः स्युः ॥ २१ ॥
 एकैकमब्देषु नवाहतेषु
 दत्त्वा पृथग्द्वादशकं क्रमेण ।
 हत्वा चतुर्भिर्वसुदेवताद्या-
 न्युडूनि शेषांशकपूर्वमब्दम् ॥ २२ ॥
विष्णुः सुरेज्यो बलभिङ्गुताश-
स्त्वष्ट्रोत्तरप्रोष्ठपदाधिपश्च ।
 क्रमाद्युगेशः पितृविश्वसोमाः
 शक्रानलाख्याश्विभगाः प्रदिष्टाः ॥ २३ ॥
 संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरो ऽर्क
 इदादिकः शीतमयूखमाली ।
 प्रजापतिश्चाप्यनुवत्सरः स्या-
 दिद्वत्सरः शैलसुतापतिश्च ॥ २४ ॥
 दृष्टिः समाद्ये प्रमुखे द्वितीये
 प्रभृततोया कथिता तृतीये ।
 पश्चाज्जलं मुञ्चति यच्चतुर्थं
 स्वल्पोदकं पञ्चममब्दमुक्तम् ॥ २५ ॥
 चत्वारि मुख्यानि युगान्यथैषां
 विष्ण्वन्द्रजीवानलदैवतानि ।

चत्वारि मध्यानि च मध्यमानि
 चत्वारि चान्यान्यधमानि विन्द्यात् ॥ २६ ॥
 आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रपन्नो
 माघे यदा यात्युदयं सुरेज्यः ।
 षष्ठ्यब्दपूर्वः प्रभवः स नान्ना
 प्रवर्तते भूतहितस्तदाब्दः ॥ २७ ॥
 क्वचित्त्वष्टिः पवनाग्निकोपः
 सन्तीतयः श्लेष्मकृताश्च रोगाः ।
 संवत्सरे ऽस्मिन् प्रभवे प्रवृत्ते
 न दुःखमाप्नोति जनस्तथापि ॥ २८ ॥
 तस्माद्धितोयो विभवः प्रदिष्टः
 भुक्तस्तृतीयः परतः प्रमोदः ।
 प्रजापतिश्चेति यथोत्तराणि
 शस्तानि वर्षाणि फलानि चैषाम् ॥ २९ ॥
 निष्पन्नशालीक्षुयवासस्यां
 भयैर्विमुक्तामुपशान्तवैराम् ।
 संहृष्टलोकां कलिदोषमुक्तां
 क्षत्रं तदा शास्ति च भूतधात्रीम् ॥ ३० ॥
 आद्योऽङ्गिराः श्रीमुखभावसाह्वै
 युवाथ धातेति युगे द्वितीये ।
 वर्षाणि पञ्चैव यथाक्रमेण
 चीण्यत्र शस्तानि समे परे द्वे ॥ ३१ ॥

त्रिष्वङ्गिराद्येषु निकामवर्षी
 देवो निरातङ्गभयाश्च लोकाः ।
 अब्दद्वये ऽन्त्येऽपि समा सुवृष्टिः
 किन्त्वच रोगाः समरागमश्च ॥ ३२ ॥
 शाक्रे युगे पूर्वमथेश्वराख्यं
 वर्षं द्वितीयं बहुधान्यमाहुः ।
 प्रमाथिनं विक्रममप्यतोऽन्य-
 दृषं च विन्द्याङ्गुरुचारयोगात् ॥ ३३ ॥
 आद्यं द्वितीयं च शुभे तु वर्षे
 कृतानुकारं कुरुतः प्रजानाम् ।
 पापः प्रमाथी वृषविक्रमौ तु
 सुभिक्षदै रोगभयप्रदै च ॥ ३४ ॥
 श्रेष्ठं चतुर्थस्य युगस्य पूर्वं
 यच्चिचभानुं कथयन्ति वर्षम् ।
 मध्यं द्वितीयं तु सुभानुसञ्ज्ञं
 रोगप्रदं मृत्युकरं न तच्च ॥ ३५ ॥
 तारणं तदनु भूरिवारिदं
 सस्यवृद्धिमुदितं च पार्थिवम् ।
 पञ्चमं व्ययमुशन्ति शोभनं
 मन्मथप्रबलमुत्सवाकुलम् ॥ ३६ ॥
 त्वाष्ट्रे युगे सर्वजिदाद्य उक्तः
 संवत्सरोऽन्यः खलु सर्वधारी ।

तस्माद्दिरोधी विकृतः खरश्च
 शस्तो द्वितीयोऽत्र भयाय शेषाः ॥ ३७ ॥
 नन्दनो ऽथ विजयो जयस्तथा
 मन्मथो ऽस्य परतश्च दुर्मुखः ।
 कान्तमत्र युग आदितस्त्रयं
 मन्मथः समफलो ऽधमो ऽपरः ॥ ३८ ॥
 हेमलम्ब इति सप्तमे युगे
 स्याद्विलम्बि परतो विकारि च ।
 शर्वरीति तदनु स्रवः स्मृतो
 वत्सरो गुरुवशेन पञ्चमः ॥ ३९ ॥

ईतिप्रायः प्रचुरपवना वृष्टिरब्दे तु पूर्वं
 मन्दं सस्यं न बहुसलिलं वत्सरे ऽतो द्वितीये ।
 अत्युद्देगः प्रचुरसलिलः स्यात्तृतीयश्चतुर्थो
 दुर्भिक्षाय स्रव इति ततः शोभनो भूरितोयः ॥ ४० ॥

वैश्वे युगे शोभकदित्यथाद्यः
 संवत्सरो ऽतः शुभकद्वितीयः ।
 क्रोधी तृतीयः परतः क्रमेण
 विश्वावसुश्चेति पराभवश्च ॥ ४१ ॥
 पूर्वापरौ प्रीतिकरौ प्रजाना-
 मेपां तृतीयो बहुदोषदो ऽब्दः ।
 अन्धौ समौ किन्तु पराभवे ऽग्निः
 शस्त्रामयार्तिर्द्विजगोभयं च ॥ ४२ ॥

आद्यः स्रवङ्गो नवमे युगे ऽब्दः
 स्यात्कीलको ऽन्यः परतश्च सौम्यः ।
 साधारणो रोधकृदित्यथाब्दः
 शुभप्रदौ कीलकसौम्यसञ्ज्ञौ ॥ ४३ ॥
 कष्टः स्रवङ्गो बहुशः प्रजानां
 साधारणे ऽल्पं जलमीतयश्च ।
 यः पञ्चमो रोधकृदित्यथाब्द-
 श्चित्रं जलं तत्र च सस्यसम्पत् ॥ ४४ ॥
 इन्द्राग्निदैवं दशमं युगं यत्
 तत्राद्यमब्दं परिधाविसञ्ज्ञम् ।
 प्रमाद्यथानन्दमतः परं यत्
 स्याद्राक्षसं चानलसञ्ज्ञितं च ॥ ४५ ॥
 परिधाविनि मध्यदेशनाशो
 नृपहानिर्जलमल्पमग्निकोपः ।
 अलसस्तु जनः प्रमादिसञ्ज्ञे
 डमरं रक्तकपुष्पबीजनाशः ॥ ४६ ॥
 तत्परः सकललोकनन्दनो
 राक्षसः क्षयकरो ऽनलस्तथा ।
 ग्रीष्मधान्यजननो ऽत्र राक्षसो
 वह्निकोपमरकप्रदो ऽनलः ॥ ४७ ॥
 एकादशे पिङ्गलकालयुक्त-
 सिद्धार्थरौद्राः खलु दुर्मतिश्च ।

आद्ये तु वृष्टिर्महती सचौरा
 श्वासो हनूकम्पयुतश्च कासः ॥ ४८ ॥
 यत्कालयुक्तं तदनेकदोषं
 सिद्धार्थसञ्ज्ञे बहवो गुणाश्च ।
 रौद्रो ऽतिरौद्रः क्षयकृत्प्रदिष्टो
 यो दुर्मतिर्मध्यमवृष्टिकृत्सः ॥ ४९ ॥
 भाग्ये युगे दुन्दुभिसञ्ज्ञमाद्यं
 सस्यस्य वृद्धिं महतीं करोति ।

उन्नारिसञ्ज्ञं तदनु क्षयाय
 नरेश्वराणां विषमा च वृष्टिः ॥ ५० ॥
 रक्ताक्षमब्दं कथितं तृतीयं
 यस्मिन् भयं दंष्ट्रिकृतं गदाश्च ।
 क्रोधं बहुक्रोधकरं चतुर्थं
 राष्ट्रणि शून्यीकुरुते विरोधैः ॥ ५१ ॥

क्षयमिति युगस्यान्त्यस्यान्त्यं बहुक्षयकारकं
 जनयति भयं तद्विप्राणां कृषीवलवृद्धिदम् ।
 उपचयकरं विट्छूद्राणां परस्वहतां तथा
 कथितमखिलं षष्ठ्यब्दे यत्तदत्र समासतः ॥ ५२ ॥

अकलुषांशुजटिलः पृथुमूर्तिः
 कुमुदकुन्दकुसुमस्फटिकाभः ।
 ग्रहहतो न यदि सत्यथवती
 हतकिरो ऽमरगुरुर्मनुजानाम् ॥ ५३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ वृहत्संहितायां वृह-
 स्पतिचारो ऽष्टमोऽध्यायः ॥ * ॥

नागगजैरावतवृषभगो-
 जरङ्गवमृगाजदहनास्थाः ।
 अश्विन्याद्याः कैश्चित्
 त्रिभाः क्रमाद्दीथयः कथिताः ॥ १ ॥
 नागा तु पवनयाम्या-
 नलानि पैतामहात्त्रिभास्त्रिभः ।
 गोवीथ्यामश्विन्यः
 पौष्णं द्वे चापि भद्रपदे ॥ २ ॥
 जारङ्गव्यां श्रवणात्
 त्रिभं मृगास्था त्रिभं च मैचाद्यम् ।
 हस्तविशाखात्वाघ्रा-
 ण्यजेत्यषाढाद्वयं दहना ॥ ३ ॥
 तिस्रस्त्रिस्तस्तासां
 क्रमादुदङ्गध्ययाम्यमार्गस्थाः ।
 तासामप्युत्तरमध्य-
 दक्षिणावस्थितैकैका ॥ ४ ॥
 वीथीमार्गानपरे
 कथयन्ति यथा स्थिता भमार्गस्य ।
 नक्षत्राणां तारा
 याम्योत्तरमध्यमास्तद्वत् ॥ ५ ॥
 उत्तरमार्गो याम्यादि
 निगदितो मध्यमस्तु भाग्याद्यः ।

दक्षिणमार्गा ऽघाढादि
 कैश्चिदेवं कृता मार्गाः ॥ ६ ॥
 ज्योतिषमागमशास्त्रं
 विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम् ।
 स्वयमेव विकल्पयितुं
 किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये ॥ ७ ॥
 उत्तरवीथिषु शुक्रः
 सुभिक्षशिवद्वन्द्वतो ऽस्तमुदयं वा ।
 मध्यासु मध्यफलदः
 कष्टफलो दक्षिणस्थासु ॥ ८ ॥
 अत्युत्तमोत्तमोर्न
 सममध्यन्धूनमधमकष्टफलम् ।
 कष्टतमं सौम्याद्यासु
 वीथिषु यथाक्रमं ब्रूयात् ॥ ९ ॥
 भरणीपूर्वं मण्डल-
 नृक्षचतुष्कं सुभिक्षकरमाद्यम् ।
 वङ्गाङ्गमहिषवाह्लिक-
 कलिङ्गदेशेषु भयजननम् ॥ १० ॥
 अत्रोदितमारोहे-
 द्वहो ऽपरो यदि सितं ततो हन्यात् ।
 भद्राश्वश्रूरसेनक-
 यौधेयककोटिवर्षण्डपान् ॥ ११ ॥

भचतुष्टयमार्द्राद्यं
 द्वितीयममिताम्बुसस्यसम्पत्त्यै ।
 विप्राणामशुभकरं
 विशेषतः क्रूरचेष्टानाम् ॥ १२ ॥
 अन्येनाचाक्रान्ते
 म्लेच्छाटविकाश्वजीविगोमन्तान् ।
 गोनर्दनीचशूद्रान्
 वैदेहांश्चानयः स्पृशति ॥ १३ ॥
 विचरन् मघादिपञ्चक-
 मुदितः सस्यप्रणाशकच्छुक्रः ।
 शुत्तस्करभयजननो
 नीचोन्नतिसङ्करकरश्च ॥ १४ ॥
 पित्याद्ये ऽवष्टब्धो
 हन्त्यन्येनाविकाञ्छ्वरशूद्रान् ।
 पुण्ड्रापरान्त्यशूलिक-
 वनवासिद्रविडसामुद्रान् ॥ १५ ॥
 स्वात्याद्यं भचितयं
 मण्डलमेतच्चतुर्थमभयकरम् ।
 ब्रह्मक्षत्रसुभिक्षा-
 भिवृद्धये मित्रभेदाय ॥ १६ ॥
 अचाक्रान्ते मृत्युः
 किरातभर्तुः पिनष्टि चेत्साङ्गम् ।

प्रत्यन्तावन्तिपुलिन्द-
 तङ्गणाञ्छूरसेनांश्च ॥ १७ ॥
 ज्येष्ठाद्यं पञ्चस्रं
 क्षुत्तस्कररोगदं प्रवाधयते ।
 काश्मीराश्लकमत्स्यान्
 सचारुदेवीनवन्तींश्च ॥ १८ ॥
 आरौहे ऽचाभीरान्
 द्रविडाम्बष्ठचिगर्तसौराष्ट्रान् ।
 नाशयति सिन्धुसौवीरकांश्च
 काशीश्वरस्य वधः ॥ १९ ॥
 षष्ठं षण्णक्षत्रं
 शुभमेतन्मण्डलं धनिष्ठाद्यम् ।
 भूरिधनगोकुलाकुल-
 मनल्पधान्यं क्वचित् सभयम् ॥ २० ॥
 अचारौहे शूलिक-
 गान्धारावन्तयः प्रपीड्यन्ते ।
 वैदेहवधः प्रत्यन्त-
 यवनशकदासपरिवृद्धिः ॥ २१ ॥
 अपरस्यां स्वात्याद्यं
 ज्येष्ठाद्यं चापि मण्डलं शुभदम् ।
 पित्याद्यं पूर्वस्यां
 शेषाणि यथोक्तफलदानि ॥ २२ ॥

दृष्टो ऽनस्तगते ऽर्के
 भयकृत् क्षुद्रोगकृत् समस्तमहः ।
 अर्धदिवसं च सेन्दु-
 र्त्पबलपुरभेदकच्छुक्रः ॥ २३ ॥
 भिन्दन् गतो ऽनलक्ष्णं
 कूलातिक्रान्तवारिवाहाभिः ।
 अव्यक्ततुङ्गनिम्ना
 समा सरिद्धिर्भवति धात्री ॥ २४ ॥
 प्राजापत्ये शकटे
 भिन्ने कृत्वेव पातकं वसुधा ।
 केशस्थिशकलशबला
 कापालमिव व्रतं धत्ते ॥ २५ ॥
 सौम्योपगतो रससस्य-
 सङ्ख्यायोशना समुद्दिष्टः ।
 आर्द्रागतस्तु कोशल-
 कलिङ्गहा सलिलनिकरकरः ॥ २६ ॥
 अश्रमकवैदर्भाणां
 पुनर्वसुस्थे सिते महाननयः ।
 पुष्ये पुष्टा वृष्टि-
 विद्याधरगणविमर्दश्च ॥ २७ ॥
 आश्लेषासु भुजङ्गम-
 दारुणपीडावहश्चरञ्चुक्रः ।

भिन्दन् मघां महामाच-
 दोषक्षडूरिवृष्टिकरः ॥ २८ ॥
 भाग्ये शबरपुलिन्द-
 प्रध्वंसकरो ऽम्बुनिवहमोक्षाय ।
 आर्यमणे कुरुजाङ्गल-
 पाञ्चालघ्नः सलिलदायी ॥ २९ ॥
 कैरवचिचकराणां
 हस्ते पीडा जलस्य च निरोधः ।
 कूपकदण्डजपीडा
 चिचास्ये शोभना वृष्टिः ॥ ३० ॥
 स्वातौ प्रभूतवृष्टि-
 रूर्तवणिग्नाविकान् स्पृशत्यनयः ।
 रेन्द्राम्नेऽपि सुवृष्टि-
 र्वणिजां च भयं विजानीयात् ॥ ३१ ॥
 मैत्रे क्षत्रविरोधो
 ज्येष्ठायां क्षत्रमुख्यसन्तापः ।
 मौलिकभिषजां मूले
 त्रिष्वपि चैतेष्वनावृष्टिः ॥ ३२ ॥
 आप्ये सलिलजपीडा
 विश्वेभ्यो व्याधयः प्रकुप्यन्ति ।
 अरण्ये अरण्यव्याधिः
 पाषण्डिभयं धनिष्ठासु ॥ ३३ ॥

शतभिषजि श्रौण्डिकाना-
 मजैकपे द्यूतजीविनां पीडा ।
 कुरुपाञ्चालानामपि
 करोति चास्मिन् सितः सलिलम् ॥ ३४ ॥
 अहिर्बुध्ने फलमूल-
 तापकृद्यायिनां च रेवत्याम् ।
 अश्विन्यां हयपानां
 याम्ये तु किरातयवनानाम् ॥ ३५ ॥
 चतुर्दशे पञ्चदशे तथाष्टमे
 तमिस्रपक्षस्य तिथौ भृगोः सुतः ।
 यदा ब्रजेद्दर्शनमस्तमेति वा
 तदा मही वारिमयीव लक्ष्यते ॥ ३६ ॥
 गुरुर्भृगुश्चापरपूर्वकाष्ठयोः
 परस्परं सप्तमराशिगौ यदा ।
 तदा प्रजा रुग्भयशोकपीडिता
 न वारि पश्यन्ति पुरन्दरोज्ज्वलत्म् ॥ ३७ ॥
 यदा स्थिता जीवबुधारसूर्यजाः
 सितस्य सर्वे ऽग्रपथानुवर्तिनः ।
 नृनागविद्याधरसङ्गरास्तदा
 भवन्ति वाताश्च समुच्छ्रितान्तकाः ॥ ३८ ॥
 न मित्रभावे सुहृदो व्यवस्थिताः
 क्रियासु सम्यग् रता द्विजातयः ।

न चाल्पमप्यम्बु ददाति वासवो
भिनन्ति वज्रेण शिरांसि भूधृताम् ॥ ३६ ॥

शनैश्चरे म्लेच्छविडालकुञ्जराः
खरा महिष्ठो ऽसितधान्यशूकराः ।

पुलिन्दशूद्राश्च सदक्षिणापथाः
क्षयं व्रजन्यक्षिमरुद्गदोद्भवैः ॥ ४० ॥

निहन्ति शुकः क्षितिजे ऽग्रतः प्रजा
हुताशशस्त्रक्षुदृष्टितस्करैः ।

चराचरं व्यक्तमथोत्तरापथं
दिशोऽग्निविद्युद्भ्रजसा च पीडयेत् ॥ ४१ ॥

बृहस्पतौ हन्ति पुरःस्थिते सितः
सितं समस्तं द्विजगोसुरालयान् ।

दिशं च पूर्वां करकासृजो ऽम्बुदा
गले गदा भूरि भवेच्च शारदम् ॥ ४२ ॥

सौम्योऽस्तोदययोः पुरो भृगुसुतस्यावस्थितस्तोयकृद्
रोगान् पित्तजकामलां च कुरुते पुष्णाति च ग्रैष्मिकम् ।
हन्यात् प्रव्रजिताग्निहोत्रिकभिषग्रङ्गोपजीव्यान् हयान्
वैश्यान् गाः सह वाहनैर्नरपतीन् पीतानि पश्चाद्दिशम् ॥

शिखिभयमनलाभे शस्त्रकोपश्च रक्ते ॥ ४३ ॥

कनकनिकषगौरे व्याधयो दैत्यपूज्ये ।

हरितकपिलरूपे श्वासकासप्रकोपः

पतति न सलिलं खाद्गस्मरुक्षासिताभे ॥ ४४ ॥

दधिकुमुदशशाङ्ककान्तिभृत्
स्फुटविकसत्किरणो बृहत्तनुः ।
सुगतिरविकृतो जयान्वितः
कृतयुगरूपकरः सिताह्वयः ॥ ४५ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां शुक्र-
चारो नवमोऽध्यायः ॥ * ॥

श्रवणानिलहस्तार्द्रा-
भरणीभाग्यापगः सुतोऽर्कस्य ।
प्रचुरसलिलोपगृढां
करोति धात्रीं यदि स्निग्धः ॥ १ ॥
अहिवरुणपुरन्दर-
दैवतेषु सुक्षेमकृन्न चाति जलं ।
क्षुच्छस्त्रावृष्टिकरो
मूले प्रत्येकमपि वक्ष्ये ॥ २ ॥
तुरगतुरगोपचारक-
कविवैद्यामात्यहार्कजोऽश्विगतः ।
याम्ये नर्तकवादक-
गेयज्ञक्षुद्रनैकृतिकान् ॥ ३ ॥
बहुलास्थे पीड्यन्ते
सौरेऽग्न्युपजीविनश्चमूपाश्च ।

रोहिण्यां कोशलमद्र-
 काशिपाञ्चालशाकटिकाः ॥ ४ ॥
 मृगशिरसि वत्सयाजक-
 यजमानार्यजनमध्यदेशाश्च ।
 रौद्रस्थे पारतरामठ-
 तैलिकरजकचौराश्च ॥ ५ ॥
 आदित्ये पञ्चनद-
 प्रत्यन्तसुराध्रसिन्धुसैवीराः ।
 पुष्ये घाण्टिकघोषिक-
 यवनवणिक्कितवकुसुमानि ॥ ६ ॥
 सार्ये जलरुहसर्पाः
 पित्ये बाल्हीकचीनगान्धाराः ।
 शूलिकपारतवैश्याः
 कोष्ठागाराणि वणिजश्च ॥ ७ ॥
 भाग्ये रसविक्रयिणः
 पण्यस्त्रीकन्यका महाराष्ट्राः ।
 आर्यमणे नृपगुडलवण-
 भिक्षुकाम्बूनि तक्षशिला ॥ ८ ॥
 हस्ते नापितचाक्रिक-
 चौरभिषक्सूचिकद्विपग्राहाः ।
 बन्धक्यः कौशलका
 मालाकाराश्च पीड्यन्ते ॥ ९ ॥

चित्रास्थे प्रमदाजन-
 लेखकचित्रज्ञचित्रभाण्डानि ।
 स्वाती मागधचरदूत-
 सूतपोतलवनटाद्याः ॥ १० ॥
 ऐन्द्राम्नास्थे चैर्गत-
 चीनकौलूतकुङ्कुमं लाक्षा ।
 सस्यान्यथ माञ्जिष्ठं
 कौसुमं च क्षयं याति ॥ ११ ॥
 मैत्रे कुलूततङ्गण-
 खसकाश्मीराः समन्त्रिचक्रचराः ।
 उपतापं यान्ति च
 घाण्टिका विभेदश्च मित्राणाम् ॥ १२ ॥
 ज्येष्ठासु नृपपुरोहित-
 नृपसत्कृतशूरगणकुलश्रेण्यः ।
 मूले तु काशिकोशल-
 पाञ्चालफलौषधीयोधाः ॥ १३ ॥
 आप्येऽङ्गवङ्गकौशल-
 गिरिव्रजा मगधपुरण्डुमिथिलाश्च ।
 उपतापं यान्ति जना
 वसन्ति ये तामलिप्यां च ॥ १४ ॥
 विश्वेश्वरे ऽर्कपुत्र-
 श्वरन्दशार्णान्निहन्ति यवनांश्च ।

उज्जयनीं शबरान्
 पारियात्रिकान् कुन्तिभोजांश्च ॥ १५ ॥
 श्रवणे राजाधिकृता-
 न्विप्राग्र्यभिषक्पुरोहितकलिङ्गान् ।
 वसुभे मगधेशजयो
 वृद्धिश्च धनेष्वधिकृतानाम् ॥ १६ ॥
 साजे शतभिषजि भिषक्-
 कविशौण्डिकपण्यनीतिवार्त्तानाम् ।
 आहिर्बुध्ने नद्यो
 यानकराः स्त्रीहिरण्यं च ॥ १७ ॥
 रेवत्यां राजभृताः
 क्रौञ्चद्वीपाश्रिताः शरत्सस्यम् ।
 शबराश्च निपीड्यन्ते
 यवनाश्च शनैश्चरे चरति ॥ १८ ॥
 यदा विशाखासु महेन्द्रमन्त्री
 सुतश्च भानोर्दहनर्षयातः ।
 तदा प्रजानामनयो ऽतिघोरः
 पुरप्रभेदे गतयोर्भमेकम् ॥ १९ ॥
 अण्डजहा रविजे यदि चित्रः
 क्षुब्धयत्कद्यदि पीतमयूखः ।
 शस्त्रभयाय च रक्तसवर्णे
 भस्मनिभो बहुवैरकरश्च ॥ २० ॥

वैडूर्यकान्तिरमलः शुभदः प्रजानाम्
 वाणातसीकुसुमवर्णनिभश्च शस्तः ।
 पञ्चापि वर्णमुपगच्छति तत्सवर्णान् ।
 सूर्यात्मजः क्षपयतीति मुनिप्रवादः ॥ २१ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां शनैश्च-
 रचारो दशमोऽध्यायः ॥ * ॥

गार्गीयं शिखिचारं
 पाराशरमसितदेवलकृतं च ।
 अन्यांश्च बहून्दृष्ट्वा
 क्रियते ऽयमनाकुलश्चारः ॥ १ ॥
 दर्शनमस्तमयो वा
 न गणितविधिनास्य शक्यते ज्ञातुम् ।
 दिव्यान्तरिक्षभौमा-
 स्त्रिविधाः स्युः केतवो यस्मात् ॥ २ ॥
 अहुताग्ने ऽनलरूपं
 यस्मिंस्तत् केतुरूपमेवाक्तम् ।
 खद्योतपिशाचालय-
 मणिरत्नादीन् परित्यज्य ॥ ३ ॥
 ध्वजशस्त्रभवनतरु-
 तुरगकुञ्जराद्येष्वथान्तरिक्षास्ते ।

दिव्या नक्षत्रस्था
 भौमाः स्थुरतोऽन्यथा शिखिनः ॥ ४ ॥
 शतमेकाधिकमेके
 सहस्रमपरे वदन्ति केतूनाम् ।
 बहुरूपमेकमेव
 ग्राह मुनिर्नारदः केतुम् ॥ ५ ॥
 यद्येको यदि बहवः
 किमनेन फलं तु सर्वथा वाच्यम् ।
 उदयास्तमयैः स्थानैः
 स्पर्शैराधूमनैर्वर्णैः ॥ ६ ॥
 यावन्त्यहानि दृश्यो
 मासास्तावन्त एव फलपाकः ।
 मासैरब्दांश्च वदेत्
 प्रथमात्पक्षत्रयात् परतः ॥ ७ ॥
 ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः
 स्निग्धस्त्वृजुरचिरसंस्थितः शुक्लः ।
 उदितो वाप्यभिदृष्टः
 सुभिन्नसौख्यावहः केतुः ॥ ८ ॥
 उक्तविपरीतरूपो
 न शुभकरो धूमकेतुरुत्पन्नः ।
 इन्द्रायुधानुकारी
 विशेषतो द्वित्रिचूला वा ॥ ९ ॥

हारमणिहेमरूपाः
 किरणाख्याः पञ्चविंशतिः सशिखाः ।
 प्रागपरदिशोर्दृश्या
 नृपतिविरोधावहा रविजाः ॥ १० ॥
 शुकदहनबन्धुजीवक-
 लाक्षाक्षतजोपमा हुताशसुताः ।
 आग्नेय्यां दृश्यन्ते
 तावन्तस्तेऽपि शिखिभयदाः ॥ ११ ॥
 वक्रशिखा मृत्युसुता
 रूक्षा कृष्णाश्च तेऽपि तावन्तः ।
 दृश्यन्ते याम्यायां
 जनमरकावेदिनस्ते च ॥ १२ ॥
 दर्पणवृत्ताकारा
 विशिखाः किरणान्विता धरातनयाः ।
 क्षुब्धयदा द्वाविंशति-
 रैशान्यामम्बुतैलनिभाः ॥ १३ ॥
 शशिकिरणरजतहिम-
 कुमुदकुन्दकुसुमोपमाः सुताः शशिनः ।
 उत्तरतो दृश्यन्ते
 चयः सुभिष्ठावहाः शिखिनः ॥ १४ ॥
 ब्रह्मसुत एक एव
 त्रिशिखो वर्णैस्त्रिभिर्युगान्तकरः ।

अनियतदिक्सम्प्रभवा
 विज्ञेयो ब्रह्मदण्डाख्यः ॥ १५ ॥
 शतमभिहितमेकसमेत-
 मेतदेकेन विरहितान्यस्मात् ।
 कथयिष्ये केतूनां
 शतानि नव लक्ष्णैः स्पष्टैः ॥ १६ ॥
 सौम्यैशान्योरुदयं
 शुक्रसुता यान्ति चतुरशीत्याख्याः ।
 विपुलसिततारकास्ते
 स्निग्धाश्च भवन्ति तीव्रफलाः ॥ १७ ॥
 स्निग्धाः प्रभासमेता
 द्विशिखाः षष्टिः शनैश्चराङ्गरुहाः ।
 अतिकष्टफला दृश्याः
 सर्वत्रैते कनकसञ्ज्ञाः ॥ १८ ॥
 विकचा नाम गुरुसुताः
 सितैकतागाः शिखापरित्यक्ताः ।
 षष्टिः पञ्चभिरधिका
 स्निग्धा याम्याश्रिताः पापाः ॥ १९ ॥
 नातिव्यक्ताः सूक्ष्मा
 दीर्घाः शुक्ला यथेष्टदिक्प्रभवाः ।
 बुधजास्तस्करसञ्ज्ञाः
 पापफलास्त्वेकपञ्चाशत् ॥ २० ॥

द्धतजानलानुरूपा-
 स्त्रिचूलताराः कुजात्मजाः षष्टिः ।
 नाम्ना च कौङ्कुमास्ते
 सौम्याशासंस्थिताः पापाः ॥ २१ ॥
 त्रिंशत्त्र्यधिका राहो-
 स्ते तामसकीलका इति ख्याताः ।
 रविशशिगा दृश्यन्ते
 तेषां फलमर्कचरोक्तम् ॥ २२ ॥
 विंशत्याधिकमन्य-
 च्छतमग्नेर्विश्वरूपसञ्ज्ञानाम् ।
 तीव्रानलभयदानां
 ज्वालामालाकुलतनूनाम् ॥ २३ ॥
 श्यामारुणा वितारा-
 श्यामररूपा विकीर्णदीधितयः ।
 अरुणाख्या वायोः
 सप्तसप्ततिः पापदाः परुषाः ॥ २४ ॥
 तारापुञ्जनिकाशा
 गणका नाम प्रजापतेरष्टौ ।
 द्वे च शते चतुरधिके
 चतुरश्रा ब्रह्मसन्तानाः ॥ २५ ॥
 कङ्का नाम वरुणजा
 द्वात्रिंशदंशगुल्मसंस्थानाः ।

शशिवत् प्रभासमेता-
 स्तीव्रफलाः केतवः प्रोक्ताः ॥ २६ ॥
 पणवतिः कालमुताः
 कबन्धसञ्ज्ञाः कबन्धसंस्थानाः ।
 चण्डा भयप्रदाः स्यु-
 विरूपताराश्च ते शिखिनः ॥ २७ ॥
 शुक्लविपुलैकतारा
 नवविदिशां केतवः समुत्पन्नाः ।
 एवं केतुसहस्रं
 विशेषमेषामतो वक्ष्ये ॥ २८ ॥
 उदगायतो महान्
 स्निग्धमूर्तिरपरोदयी वसाकेतुः ।
 सद्यः करोति मरकं
 सुभिक्षमप्युत्तमं कुरुते ॥ २९ ॥
 तल्लक्ष्णोऽस्थिकेतुः
 स तु रूक्षः क्षुब्धयावहः प्रोक्तः ।
 स्निग्धस्तादृक् प्राच्यां
 शस्त्राख्यो डमरमरकाय ॥ ३० ॥
 दृश्योऽमावास्यायां
 कपालकेतुः सधूम्रश्मिशिखः ।
 प्राग्भसोऽर्धविचारी
 क्षुम्भरकावृष्टिरोगकरः ॥ ३१ ॥

प्राग्वश्वानरमार्गे

शूलाग्रः श्यावरूढताम्राचिः ।

नभसस्त्रिभागगामी

रौद्र इति कपालतुल्यफलः ॥ ३२ ॥

अपरस्यां चलकेतुः

शिखया याम्याग्रयाङ्गुलोच्छ्रितया ।

गच्छेद्यथा यथोदक्

तथा तथा दैर्घ्यमायाति ॥ ३३ ॥

सप्तमुनीन् संस्पृश्य

ध्रुवमभिजितमेव च प्रतिनिवृत्तः ।

नभसोऽर्धमाचमित्वा

याम्येनास्तं समुपयाति ॥ ३४ ॥

हन्यात् प्रयागकूलाद्

यावदवन्तीं च पुष्कराख्यम् ।

उदगपि च देविकामपि

भूयिष्ठं मध्यदेशाख्यम् ॥ ३५ ॥

अन्यानपि च स देशान्

क्वचित् क्वचिद्वन्ति रोगदुर्भिष्टैः ।

दश मासान् फलपाको

ऽस्य कैश्चिदष्टादश प्रोक्तः ॥ ३६ ॥

प्रागर्धरात्रदृश्यो

याम्याग्रः श्वेतकेतुरन्यथ ।

क इति युगाकृतिरपरे
 युगपत्तौ सप्तदिनदृश्यौ ॥ ३७ ॥
 स्निग्धौ सुभिन्नशिवदा-
 वयाधिकं दृश्यते कनामा यः ।
 दश वर्षाण्युपतापं
 जनयति शस्त्रप्रकोपकृतम् ॥ ३८ ॥
 श्वेत इति जटाकारो
 रूक्षः श्यावो वियच्छिभागगतः ।
 विनिवर्तते ऽपसव्यं
 त्रिभागशेषाः प्रजाः कुरुते ॥ ३९ ॥
 आधूम्रया तु शिखया
 दर्शनमायाति कृत्तिकासंस्थः ।
 ज्ञेयः स रश्मिकेतुः
 श्वेतसमानं फलं धत्ते ॥ ४० ॥
 ध्रुवकेतुरनियतगति-
 प्रमाणवर्णाकृतिर्भवति विद्वक् ।
 दिव्यान्तरिक्षभौमो
 भवत्ययं स्निग्ध इष्टफलः ॥ ४१ ॥
 सेनाङ्गेषु नृपाणां
 गृहतरुशैलेषु चापि देशानाम् ।
 गृहिणामुपस्करेषु च
 विनाशिनां दर्शनं याति ॥ ४२ ॥

कुमुद इति कुमुदकान्ति-
 वीरुण्यां प्राक्छिखो निशामेकाम् ।
 दृष्टः सुभिक्षमतुलं
 दश किल वर्षाणि स करोति ॥ ४३ ॥
 सकृदेकयामदृश्यः
 सुसूक्ष्मतारोऽपरेण मणिकेतुः ।
 ऋज्वी शिखास्य शुक्ला
 स्तनोद्गता क्षीरधारैव ॥ ४४ ॥
 उदयन्नेव सुभिक्षं
 चतुरो मासान् करोत्यसौ सार्धान् ।
 प्रादुर्भावं प्रायः
 करोति च क्षुद्रजन्तूनाम् ॥ ४५ ॥
 जलकेतुरपि च पश्चात्
 स्निग्धः शिखयापरेण चोन्नतया ।
 नव मासान् स सुभिक्षं
 करोति शान्तिं च लोकस्य ॥ ४६ ॥
 भवकेतुरेकराचं
 दृश्यः प्राक् सूक्ष्मतारकः स्निग्धः ।
 हरिलाङ्गूलोपमया
 प्रदक्षिणावर्तया शिखया ॥ ४७ ॥
 यावत् एव मुहूर्तान्
 दर्शनमायाति निर्दिशेन्मासान् ।

तावदतुलं सुभिक्षं
 रूक्षे प्राणान्तिकान् रोगान् ॥ ४८ ॥
 अपरेण पद्मकेतु-
 मृणालगौरो भवेन्निशामेकाम् ।
 सप्त करोति सुभिक्षं
 वर्षायति हर्षयुक्तानि ॥ ४९ ॥
 आवर्त इति निशार्धे
 सव्यशिखोऽरुणनिभोऽपरे स्निग्धः ।
 यावत्क्षणान् स दृश्य-
 स्तावन्मासान् सुभिक्षकरः ॥ ५० ॥
 पश्चात् सन्ध्याकाले
 संवर्तो नाम धूम्रताम्रशिखः ।
 आक्रम्य विचित्र्यंशं
 शूलाग्रावस्थितो रौद्रः ॥ ५१ ॥
 यावत् एव मुहूर्तान्
 दृश्यो वर्षाणि हन्ति तावन्ति ।
 भूपाञ्चस्त्रनिपातै-
 रुदयक्षं चापि पीडयति ॥ ५२ ॥
 ये शस्तास्तान् हित्वा
 केतुभिराधूमिते ऽथवा स्पृष्टे ।
 नक्षत्रे भवति वधो
 येषां राज्ञां प्रवश्ये तान् ॥ ५३ ॥

अश्विन्यामश्रमकपं
 भरणीषु किरातपार्थिवं हन्यात् ।
 बहुलासु कलिङ्गेशं
 रोहिण्यां शूरसेनपतिम् ॥ ५४ ॥
 त्रैशीनरमपि सौम्ये
 जलजाजीवाधिपं तथार्द्रासु ।
 आदित्येऽश्रमकनाथं
 पुष्ये मगधाधिपं हन्ति ॥ ५५ ॥
 असिकेशं भौजङ्गे
 पित्येऽङ्गं पाण्ड्यनाथमपि भाग्ये ।
 त्रैज्जयनिकमार्यम्णे
 सावित्रे दण्डकाधिपतिम् ॥ ५६ ॥
 चिचासु कुरुक्षेत्रा-
 धिपस्य मरणं समादिशेत्तज्जः ।
 काश्मीरककाम्बोजौ
 नृपती प्राभञ्जने न स्तः ॥ ५७ ॥
 इत्वाकुरलकनाथौ
 हन्येते यदि भवेद्विशाखासु ।
 मैत्रे पुण्ड्राधिपति-
 र्ज्येष्ठास्वथ सार्वभौमवधः ॥ ५८ ॥
 मूलेऽन्यमद्रकपती
 जलदेवे काशिपो मरणमेति ।

यौधेयकार्जुनायन-
 शिबिचैद्यान् वैश्वदेवे च ॥ ५८ ॥
 हन्यात् कैकयनाथं
 पाञ्चनदं सिंहलाधिपं वाङ्गम् ।
 नैमिषन्टपं किरातं
 अवरणादिषु षट्स्विमान् क्रमशः ॥ ६० ॥
 उल्काभिताडितशिखः
 शिखी शिवः शिवतरो ऽभिवृष्टो यः ।
 अशुभः स एव चोला-
 वगाणसितह्णचोनानाम् ॥ ६१ ॥
 नम्रा यतः शिखिशिखाभिस्तृता यतो वा
 ऋक्षं च यत् स्पृशति तत्कथितांश्च देशान् ।
 दिव्यप्रभावनिहतान् स यथा गरुत्मान्
 भुङ्क्ते गतो नरपतिः परभोगिभोगान् ॥ ६२ ॥
 इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां केतु-
 चार एकादशोऽध्यायः ॥ * ॥

[भानोर्वर्त्मविघातवृद्धशिखरो विन्ध्याचलः स्तम्भितो
 वातापिर्मुनिकुक्षिभित् सुररिपुर्जीर्णश्च येनासुरः ।
 पीतश्चाम्बुनिधिस्तपोऽम्बुनिधिना याम्या च दिग्भूषिता
 तस्यागस्त्यमुनेः पयोद्युतिकृतश्चारः समासादयम् ॥]

समुद्रोऽन्तः श्रैलैर्मकरनखरोत्खातशिखरैः
 कृतस्तोथाच्छित्या सपदि सुतरां येन रुचिरः ।
 पतन्मुक्तामिश्रैः प्रवरमणिरत्नाम्बुनिवहैः
 सुरान् प्रत्यादेष्टुं सितमुकुटरत्नानिव पुरा ॥ १ ॥

येन चाम्बुहरणेऽपि विद्रुमै-
 भूधरैः समणिरत्नविद्रुमैः ।
 निर्गतैस्तदुरगैश्च राजितः
 सागरो ऽधिकतरं विराजितः ॥ २ ॥

प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्वगः
 क्षिप्तरत्निकरो महोदधिः ।
 आपदां पद्गतोऽपि यापितो
 येन पीतसलिलो ऽमरश्रियम् ॥ ३ ॥

प्रचलत्तिमिशुक्तिजशङ्खचितः
 सलिले ऽपहृतेऽपि पतिः सरिताम् ।
 सतरङ्गसितोत्पलहंसभृतः
 सरसः शरदीव बिभर्ति रुचम् ॥ ४ ॥

तिमिसिताम्बुधरं मणितारकं
 स्फटिकचन्द्रमनम्बुशरद्युति ।
 फणिफणोपलरश्मिशिखिग्रहं
 कुटिलगेशवियच्च चकार यः ॥ ५ ॥

दिनकररथमार्गविच्छित्तये ऽभ्युद्यतं यच्चलच्छृङ्गम्
 उद्धान्तविद्याधरांसावसक्तप्रियाव्यग्रदत्ताङ्ग-

देहावलम्बाम्बराभ्युच्चितोद्भूयमानध्वजैः शोभि-
 करिकटमदमिश्ररक्तावलेहानुवासानुसारि-
 द्विरेफावलीनेत्तमाङ्गैः कृतान्वाणपुष्पैरिवोत्सुकान्
 धारयद्भिर्गुणैः सनाथीकृतान्तर्दरीनिर्झरम् ।
 गगनतलमिवोस्त्रिखन्तं प्रवृद्धैर्गजाकृष्टफुल्लद्रुम-
 चासविभ्रान्तमत्तद्विरेफावलीगीतमन्द्रस्वनैः
 शैलकूटैस्तरक्ष्णशार्दूलशाखामृगाध्यासितैः ।
 रहसि मदनसक्तया रेवया कान्तयेवोपगूढं
 सुराध्यासितोद्यानमम्भोऽशनानन्नमूलानिलाहार-
 विप्रान्वितं विन्ध्यमस्तम्भयद्यश्च तस्योदयः श्रूयताम् ॥ ६ ॥

उदये च मुनेरगस्त्यनाम्नः

कुसमायोगमलप्रदूषितानि ।

हृदयानि सतामिव स्वभावात्

पुनरम्बूनि भवन्ति निर्मलानि ॥ ७ ॥

पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाका-

मापुष्पाती सस्वनहंसपङ्क्तिम् ।

ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती

विभाति योषेव सरित्सहासा ॥ ८ ॥

इन्दीवरासन्नसितोत्पलान्विता

सरिद्धमत्पटपदपङ्क्तिभूषिता ।

सम्भूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा

विदग्धयोषेव विभाति सस्तरा ॥ ९ ॥

इन्दोः पयोद्विगमोपहितां विभूतिम्
 द्रष्टुं तरङ्गवलयया कुमुदं निशासु ।
 उन्मीलयत्यलिनिलीनदलं सुपद्म
 वापी विलोचनमिवासिततारकान्तम् ॥ १० ॥

नानाविचित्राम्बुजहंसकोक-
 कारण्डवापूर्णतडागहस्ता ।

रत्नैः प्रभूतैः कुसुमैः फलैश्च
 भूर्यच्छतीवार्धमगस्त्यनाम्ने ॥ ११ ॥

सलिलममरपात्रयोर्ज्झितं

यद्बनपरिवेष्टितमूर्तिभिर्भुजङ्गैः ।

फणिजनितविषाग्निसम्प्रदुष्टं

भवति शिवं तदगस्त्यदर्शनेन ॥ १२ ॥

स्मरणादपि पापमपाकुरुते

किमुत स्तुतिभिर्वरुणाङ्गरुहः ।

मुनिभिः कथितोऽस्य यथार्धविधिः

कथयामि तथैव नरेन्द्रहितम् ॥ १३ ॥

सङ्ख्याविधानात् प्रतिदेशमस्य

विज्ञाय सन्दर्शनंमादिशेज्जः ।

तच्चोज्जयन्यामगतस्य कन्यां

भागैः स्वराख्यैः स्फुटभास्करस्य ॥ १४ ॥

ईषत्प्रभिन्नेऽरुणरश्मिजालै-

र्नेशे ऽन्यकारे दिशि दक्षिणस्याम् ।

सांवत्सरावेदितदिग्विभागे
 भूपो ऽर्घमुर्व्यां प्रयतः प्रयच्छेत् ॥ १५ ॥
 कालोद्भवैः सुरभिभिः कुसुमैः फलैश्च
 रत्नैश्च सागरभवैः कनकाम्बरैश्च ।
 धेन्वा वृषेण परमान्नयुतैश्च भक्ष्यै-
 र्दध्यक्षतैः सुरभिधूपविलेपनैश्च ॥ १६ ॥
 नरपतिरिममर्घं श्रद्धधानो दधानः
 प्रविगतगर्ददोषो निजितारातिपक्षः ।
 भवति यदि च दद्यात् सप्त वर्षाणि सम्यग
 जलनिधिरसनायाः स्वामितां याति भूमेः ॥ १७ ॥

द्विजे यथालाभमुपाहृतार्घः
 प्राप्नोति वेदान् प्रमदाश्च पुत्रान्
 वैश्यश्च गां भूरिधनं च शूद्रे
 रोगक्षयं धर्मफलं च सर्वे ॥ १८ ॥
 रोगान् करोति परुषः कपिलस्त्ववृष्टिं
 धूम्रो गवामशुभकृत् स्फुरणो भयाय ।
 माञ्जिष्ठरागसदृशः क्षुधमाहवांश्च
 कुर्यादणुश्च पुररोधमगस्त्यनामा ॥ १९ ॥
 शतकुम्भसदृशः स्फटिकाभ-
 स्तर्पयन्निव महीं किरणौघैः ।
 दृश्यते यदि ततः प्रचुरान्ना
 भूर्भवत्यभयरोगजनाब्धा ॥ २० ॥

उल्काया विनिहतः शिखिना वा
 द्युद्भयं मरकमेव च धत्ते ।
 दृश्यते स किल हस्तगते ऽर्के
 रोहिणीमुपगते ऽस्तमुपैति ॥ २१ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामगस्त्य-
 चारो द्वादशोऽध्यायः ॥ * ॥

सैकावलीव राजति
 ससितोत्पलमालिनी सहासेव ।
 नाथवतीव च दिग्मैः
 कौबेरी सप्तभिर्मुनिभिः ॥ १ ॥
 ध्रुवनायकोपदेश-
 न्नरिनर्त्तीवोत्तरा अमद्भिश्च ।
 यैश्चारमहं तेषां
 कथयिष्ये वृद्धगर्गमतात् ॥ २ ॥
 आसन्मघासु मुनयः
 शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
 षड्द्विकपञ्चद्वियुतः
 शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥ ३ ॥
 एकैकस्मिन्नृक्षे
 शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम् ।

प्रागुत्तरतश्चैते
 सद्दोदयन्ते ससाध्वीकाः ॥ ४ ॥
 पूर्वे भागे भगवान्
 मरीचिरपरे स्थितो वसिष्ठो ऽस्मात् ।
 तस्याङ्गिरास्ततोऽचि-
 स्तस्यासन्नः पुलस्त्यश्च ॥ ५ ॥
 पुलहः क्रतुरिति भगवा-
 नासन्नानुक्रमेण पूर्वाद्याः ।
 तत्र वसिष्ठं मुनिवर-
 मुपाश्रितारुन्धती साध्वी ॥ ६ ॥
 उल्काशनिधूमाद्यै-
 र्हता विवर्णा विरश्मयो ह्रस्वाः ।
 हन्युः स्वं स्वं वर्गं
 विपुलाः स्निग्धाश्च तद्दृष्ट्यै ॥ ७ ॥
 गन्धर्वदेवदानव-
 मन्त्रौषधिसिद्धयक्षनागानाम् ।
 पीडाकरो मरीचि-
 र्ज्ञेयो विद्याधराणां च ॥ ८ ॥
 शक्यवनदरदपारत-
 काम्बोजांस्तापसान् वनोपेतान् ।
 हन्ति वसिष्ठो ऽभिहतो
 विष्टद्विदो रश्मिसम्पन्नः ॥ ९ ॥

अङ्गिरसो ज्ञानयुता
 धीमन्तो ब्राह्मणाश्च निर्दिष्टाः ।
 अत्रेः कान्तारभवा
 जलजान्यभोनिधिः सरितः ॥ १० ॥
 रक्षःपिशाचदानव-
 दैत्यभुजङ्गाः स्मृताः पुलस्त्यस्य ।
 पुलहस्य तु मूलफलं
 क्रतोस्तु यज्ञाः सयज्ञभृतः ॥ ११ ॥

इति श्रीवराहमिहिरद्वैतौ बृहत्संहितायां सप्त-
 षड्विंशत्योऽध्यायः ॥ * ॥

नक्षत्रत्रयवर्गै-
 राग्नेयाद्यैर्व्यवस्थितैर्नवधा ।
 भारतवर्षे मध्यात्
 प्रागादि विभाजिता देशः ॥ १ ॥
 भद्रारिभेदमाण्डव्य-
 साल्वनीपोज्जिहानसङ्घाताः ।
 मरुवत्सघोषयामुन-
 सारस्वतमत्स्यमाध्यमिकाः ॥ २ ॥
 माथुरकोपज्योतिष-
 धर्मारण्यानि शूरसेनाश्च ।

गौरग्रोवोद्देहिक-

पाण्डुगुडाश्वत्थपाञ्चालाः ॥ ३ ॥

साकेतकङ्ककुरुकालकोटि-

कुरुराश्च पारियाचनगः ।

त्रौदुम्बरकापिष्ठल-

गजाह्वयाश्चेति मध्यमिदम् ॥ ४ ॥

अथ पूर्वस्यामुञ्जन-

वृषभध्वजपद्ममाल्यवज्जिरयः ।

व्याघ्रमुखसुहृत्कर्वट-

चान्द्रपुराः शूर्पकर्णाश्च ॥ ५ ॥

खसमगधशिविरगिरि-

मिथिलसमतटोद्गाश्ववदनदन्तुरकाः ।

प्राग्ज्योतिषलौहित्य-

क्षीरोदसमुद्रपुरुषादाः ॥ ६ ॥

उदयगिरिभद्रगौडक-

पौण्ड्रात्कालकाशिमैकल्यम्बुष्ठाः ।

एकपदतामलिप्तिक-

कोशलका बर्धमानश्च ॥ ७ ॥

आग्नेय्यां दिशि कोशल-

कलिङ्गवङ्गोपवङ्गजठराङ्गाः ।

शैलिकविदर्भवत्सान्ध्र-

चेदिकाश्चोर्ध्वकश्याश्च ॥ ८ ॥

वृषनालिकेर चर्मद्वीपा
 विन्ध्यान्तवासिनस्त्रिपुरी ।
 श्मश्रुधरहेमकूट्य-
 व्यालग्रीवा महाग्रीवाः ॥ ९ ॥
 किष्किन्धकण्टकस्थल-
 निषादराघ्राणि पुरिकदाशार्णाः ।
 सह नम्रपर्णशबरै-
 राश्लेषाद्ये चिके देशाः ॥ १० ॥
 अथ दक्षिणेन लङ्का
 कालाजिनसैरिकीर्णतालिकटाः ।
 गिरिनगरमलयदर्दुर-
 महेन्द्रमालिन्यभरुकच्छाः ॥ ११ ॥
 कङ्कटटङ्कणवनवासि-
 शिबिकफणिकारकोङ्कणाभीराः ।
 आकरवेणावन्तक-
 दशपुरगोानर्दकेरलकाः ॥ १२ ॥
 कर्णाटमहाटविचिचकूट-
 नासिककोल्लगिरिचालाः ।
 क्रौञ्चद्वीपजटाधर-
 कावेर्यो रिष्यमूकश्च ॥ १३ ॥
 वैडूर्यशङ्खमुक्ता-
 चिवारिचरधर्मपट्टनद्वीपाः ।

गणराज्यदृष्टावेक्षुर-
 पिशिकशूर्पाद्रिकुसुमनगाः ॥ १४ ॥
 तुम्बवनकार्मण्येयक-
 याम्योदधितापसाश्रमा ऋषिकाः ।
 काञ्चीमरुचीपट्टन-
 चेर्यार्यकसिंहला ऋषभाः ॥ १५ ॥
 बलदेवपट्टनं दण्डका-
 वनतिमिङ्गिलाशना भद्राः ।
 कच्छो ऽथ कुञ्जरदरी
 सताम्रपर्णीति विज्ञेयाः ॥ १६ ॥
 नैर्ऋत्यां दिशि देशाः
पह्लवकाम्बोजसिन्धुसौवीराः ।
 वडवामुखारवाम्बष्ठ-
 कपिलनारीमुखानतीः ॥ १७ ॥
 फेणगिरियवनमाकर-
 कर्णप्रावेयपारशवश्रुद्राः ।
 बर्बरकिरातखण्ड-
 क्रव्याश्याभीरचञ्चूकाः ॥ १८ ॥
 हेमगिरिसिन्धुकालक-
 रैवतकसुराध्रुवाद्द्रविडाः ।
 स्वात्याद्ये भञ्जितये
 ज्ञेयश्च महार्णवो ऽत्रैव ॥ १९ ॥

अपरस्यां मणिमान्
 मेघवान् वनौघः क्षुरार्पणो ऽस्तगिरिः ।
 अपरान्तकशान्तिक-
 हैहयप्रशस्ताद्रिवोक्त्राणाः ॥ २० ॥
 पञ्चनदरमठपारत-
 तारक्षितिजृङ्गवैश्यकनकशकाः ।
 निर्मर्यादा म्बेच्छा
 ये पश्चिमदिक्स्थितास्ते च ॥ २१ ॥
 दिशि पश्चिमोत्तरस्यां
 माण्डव्यतुखारतालहलमद्राः ।
 अश्मककुलूलहड-
 स्त्रीराज्यनृसिंहवनखस्थाः ॥ २२ ॥
 वेणुमती फल्गुलुका
 गुरुहा मरुकुच्चर्मरङ्गास्थाः ।
 एकविलोचनशूलिक-
 दीर्घग्रीवास्यकेशाश्च ॥ २३ ॥
 उत्तरतः कैलासो
 हिमवान्वसुमान् गिरिर्धनुष्मांश्च ।
 क्रौञ्चो मेरुः कुरव-
 स्तथोत्तराः क्षुद्रमीनाश्च ॥ २४ ॥
 कैकयवसातियाः मुन-
 भोगप्रस्थार्जुनायनाग्नीध्राः ।

आदर्शान्तद्वीपि-
 चिगर्ततुरगाननाश्वमुखाः ॥ २५ ॥
 केशधरचिपिटनासिक-
 दासेरकवाटधानशरधानाः ।
 तक्षशिलपुष्कलावत-
 कैलावतकण्ठधानाश्च ॥ २६ ॥
 अम्बरमद्रकमालव-
 पौरवकच्छारदण्डपिङ्गलकाः ।
 माणहलह्लणकोहल-
 शीतकमाण्डव्यभूतपुराः ॥ २७ ॥
 गान्धारयशोदति-
 हेमतालराजन्यखचरगव्याश्च ।
 यौधेयदासमेयाः
 श्यामाकाः श्लेमधूर्ताश्च ॥ २८ ॥
 शेशान्यां मेरुकनष्टराज्य-
 पशुपालकीरकाश्मीराः ।
 अभिसारदरदतङ्गण-
 कुलूतसैरिन्धवनराष्ट्राः ॥ २९ ॥
 ब्रह्मपुरदार्वडामर-
 वनराज्यकिरातचीनकौण्डिन्दाः ।
 भस्मापलोलजटासुर-
 कुनठखषघोषकुचिकास्थाः ॥ ३० ॥

एकचरणानुविश्वाः
 सुवर्णभूर्धसुवनं द्विविष्टाश्च ।
 पौरवचीरनिवसन-
 चिनेचमुञ्जाद्रिगन्धर्वाः ॥ ३१ ॥
 वर्गैराम्नेयाद्यैः
 क्रूरग्रहपीडितैः क्रमेण नृपाः ।
 पाञ्चालो मागधिकः
 कालिङ्गश्च क्षयं यान्ति ॥ ३२ ॥
 आवन्तो ऽथानर्तो
 मृत्युं चायाति सिन्धुसैवीरः ।
 राजा च हारहैरो
 मद्रेशो ऽन्यश्च कौणिन्दः ॥ ३३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृहत्संहितायां कूर्मवि-
 भागे नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ * ॥

आम्रेये सितकुसुमा-
 हिताग्निमन्त्रज्ञसूत्रभाष्यज्ञाः ।
 आकरिकनापितद्विज-
 घटकारपुरोहिताब्दज्ञाः ॥ १ ॥
 रोहिण्यां सुव्रतपण्य-
 भूपधनियोगयुक्तशाकटिकाः ।

गोदृषजलचरकर्षक-
 शिलोच्चयैश्वर्यसम्पन्नाः ॥ २ ॥
 मृगशिरसि सुरभिवस्त्रा-
 ङ्कुकुसुमफलरत्नवनचरविहङ्गाः ।
 मृगसोमपीथिगान्धर्व-
 कामुका लेखहाराश्च ॥ ३ ॥
 रौद्रे वधवन्धान्त-
 परदारस्तेयशाव्यभेदरताः ।
 तुषधान्यतीक्ष्णमन्त्रा-
 भिचारवेतालकर्मज्ञाः ॥ ४ ॥
 आदित्ये सत्यौदार्य-
 शौचकुलरूपधीयशोऽर्थयुताः ।
 उत्तमधान्यं वणिजः
 सेवाभिरताः सशिल्पिजनाः ॥ ५ ॥
 पुष्ये यवगोधूमाः
 शालीक्षुवनानि मन्त्रिणा भूपाः ।
 सलिलोपजीविनः
 साधवश्च यज्ञेष्टिसक्ताश्च ॥ ६ ॥
 अहिदेवे कृत्विम-
 कन्दमूलफलकीटपन्नगविषाणि ।
 परधनहरणाभिरता-
 स्तुषधान्यं सर्वभिषजश्च ॥ ७ ॥

पित्ये धनधान्याब्धाः
 कोष्ठागाराणि पर्वताश्रयिणः ।
 पितृभक्तवणिकश्रूराः
 क्रव्यादाः स्त्रीद्विषो मनुजाः ॥ ८ ॥
 प्राक्फलुगुनीषु नट-
 युवतिसुभगगान्धर्वशिल्पिपण्यानि ।
 कर्पासलवणमाक्षिक-
 तैलानि कुमारकाश्चापि ॥ ९ ॥
 आर्यम्णे मार्दवशैच-
 विनयपाषण्डदानशास्त्ररताः ।
 शोभनधान्यमहाधन-
 धर्मानुरताः समनुजेन्द्राः ॥ १० ॥
 हस्ते तस्करकुञ्जर-
 रथिकमहामात्रशिल्पिपण्यानि ।
 तुषधान्यं श्रुतयुक्ता
 वणिजस्तेजोयुताश्चात्र ॥ ११ ॥
 त्वाष्ट्रे भ्रूषणमणि-
 रागलेखगान्धर्वगन्धयुक्तिज्ञाः ।
 गाणितपटुतन्तुवायाः
 शलाक्या राजधान्यानि ॥ १२ ॥
 स्वातौ खगमृगतुरगा
 वणिजो धान्यानि वातबहुलानि ।

अस्थिरसौहृदलघुसत्त्व-
 तापसाः पण्यकुशलाश्च ॥ १३ ॥
 इन्द्राग्निदैवते रक्त-
 पुष्पफलशाखिनः सतिलमुद्गाः ।
 कर्पासमाषचणकाः
 पुरन्दरहुताशभक्ताश्च ॥ १४ ॥
 मैत्रे शौर्यसमेता
 गणनायकसाधुगोष्ठियानरताः ।
 ये साधवश्च लोके
 सर्वं च शरत्समुत्पन्नम् ॥ १५ ॥
 पौरन्दरे ऽतिशूराः
 कुलवित्तयशोऽन्विताः परस्वहृतः ।
 विजिगीषवो नरेन्द्राः
 सेनानां चापि नेतारः ॥ १६ ॥
 मूले भेषजभिषजो
 गणमुख्याः कुसुममूलफलवार्त्ताः ।
 बीजान्यतिधनयुक्ताः
 फलमूलैर्ये च वर्तन्ते ॥ १७ ॥
 श्राप्ये मृदवो जलमार्ग-
 गामिनः सत्यशौचधनयुक्ताः ।
 सेतुकरवारिजीवक-
 फलकुसुमान्यम्बुजातानि ॥ १८ ॥

विश्वेश्वरे महामात्र-
 मल्लकरितुरगदेवताभक्ताः ।
 स्थावरयोधा भोगान्विताश्च
 ये चैजसा युक्ताः ॥ १९ ॥
 अत्रो मायापटवो
 नित्योद्युक्ताश्च कर्मसु समर्थाः ।
 उत्साहिनः सधर्मा
 भागवताः सत्यवचनाश्च ॥ २० ॥
 वसुभे मानोन्मुक्ताः
 क्लीबाश्चलसौहृदाः स्त्रियां द्विष्याः ।
 दानाभिरता बहुवित्त-
 संयुताः शमपराश्च नराः ॥ २१ ॥
 वरुणेशे पाशिकमत्स्यबन्ध-
 जलजानि जलचराजीवाः ।
 सौकरिकरजकशौण्डिक-
 शाकुनिकाश्चापि वर्गे ऽस्मिन् ॥ २२ ॥
 आजे तस्करपशुपाल-
 हिंसकीनाशनीचशठचेष्टाः ।
 धर्मव्रतैर्विरहिता
 नियुङ्गकुशलाश्च ये मनुजाः ॥ २३ ॥
 आहिर्बुध्नु विप्राः
 क्रतुदानतपोयुता महाविभवाः ।

आश्रमिणः पाषण्डा
 नरेश्वराः सारधान्यं च ॥ २४ ॥
 पौष्णे सलिलजफलकुसुम-
 लवणमणिशङ्खमौक्तिकाञ्जानि ।
 सुरभिकुसुमानि गन्धा
 वणिजो नौकर्णधाराश्च ॥ २५ ॥
 अश्विन्यामश्वहराः
 सेनापतिवैद्यसेवकास्तुरगाः ।
 तुरगारोहाश्च वणि-
 ग्रूपोपेतास्तुरगरक्षाः ॥ २६ ॥
 याम्ये ऽसृक्पिणितभुजः
 क्रूरा वधबन्धताडनासक्ताः ।
 तुषधान्यं नीचकुलो-
 द्भवा विहीनाश्च सत्त्वेन ॥ २७ ॥
 पूर्वाचयं सानलमग्रजानां
 राज्ञां तु पुष्येण सहोत्तराणि ।
 सपौष्णमैत्रं पितृदैवतं च
 प्रजापतेर्भं च कृषीवलानाम् ॥ २८ ॥
 आदित्यहस्ताभिजिदाश्विनानि
 वणिगजनानां प्रवदन्ति भानि ।
 मूलचिनेचानिलवारुणानि
 भान्युग्रजातेः प्रभविष्णुतायाम् ॥ २९ ॥

सौम्यैन्द्रचित्रावसुदैवतानि
 सेवाजनस्वाम्यमुपागतानि ।
 सर्पं विशाखा श्रवणो भरण्य-
 श्रण्डालजातेरिति निर्दिशन्ति ॥ ३० ॥
 रविरविसुतभोगमागतं
 शितिसुतभेदनवक्रदूषितम् ।
 ग्रहणगतमथोल्कया हतं
 नियतमुषाकरपीडितं च यत् ॥ ३१ ॥
 तदुपहतमिति प्रचक्षते
 प्रकृतिविपर्यययातमेव वा ।
 निगदितपरिवर्गदूषणं
 कथितविपर्ययगं समृद्धये ॥ ३२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नक्षत्र-
 व्यूहः पञ्चदशोऽध्यायः ॥ * ॥

प्राङ्गर्मदार्धशोणोद्ग-
 वङ्गसुह्याः कलिङ्गबाह्लीकाः ।
 शक्यवनमगधशबर-
 प्राग्ज्योतिषचीनकाम्बोजाः ॥ १ ॥
 मेकलकिरातविटका
 बहिरन्तःशैलजाः पुलिन्दाश्च ।

द्रविडानां प्रागर्धं
 दक्षिणकूलं च यमुनायाः ॥ २ ॥
 चम्पोदुम्बरकौशाम्बि-
 चेदिविन्ध्याटवीकलिङ्गाश्च ।
 पुण्ड्रा गोलाङ्गूल-
 श्रीपर्वतवर्धमानाश्च ॥ ३ ॥
 इक्षुमतीत्यथ तस्कर-
 पारतकान्तारगोपबीजानाम् ।
 तुपधान्यकटुकतरुकनक-
 दहनविषसमरश्रूराणाम् ॥ ४ ॥
 भेषजभिषक्चतुष्पद-
 क्षधिकरन्टपहिंस्रयायिचौराणाम् ।
 ब्यालारण्ययज्ञोयुत-
 तीक्ष्णानां भास्करः स्वामी ॥ ५ ॥
 गिरिसलिलदुर्गकोशल-
 भरुकच्छसमुद्ररोमकतुखाराः ।
 वनवासितङ्गणहल-
 स्त्रीराज्यमहारण्वदीपाः ॥ ६ ॥
 मधुररसकुसुमफलसलिल-
 लवणमणिशङ्खमैक्तिकाञ्जानाम् ।
 शालियवौषधिगोधूम-
 सोमपाक्रन्दविप्राणाम् ॥ ७ ॥

सितसुभगतुरगरतिकर-
 युवतिचमूनाथभोज्यवस्ताणाम् ।
 शृङ्गिनिशाचरकर्षक-
 यज्ञविदां चाधिपश्चन्द्रः ॥ ८ ॥
 शोणस्य नर्मदाया
 भीमरथायाश्च पश्चिमार्धस्थाः ।
 निर्विन्ध्या वेचवती
 सिप्रा गोदावरी वेणा ॥ ९ ॥
 मन्दाकिनी पयोष्णी
 महानदी सिन्धुमालतीपाराः ।
 उत्तरपाण्ड्यमहेन्द्राद्रि-
 विन्ध्यमलयोपगाश्चोलाः ॥ १० ॥
 द्रविडविदेहान्ध्राश्मक-
 भासापुरकौङ्कणाः समन्त्रिपिकाः ।
 कुन्तलकेरलदण्डक-
 कान्तिपुरम्बेच्छसङ्करजाः ॥ ११ ॥
 [नासिक्यभोगवर्धनविराट-
 विन्ध्याद्रिपार्श्वगा देशाः ।
 ये च पिबन्ति सुतोयां तापीं
 ये चापि गोमतीसलिलम् ॥ १२ ॥]
 नागरह्यपिकरपारत-
 हुताशनाजीविशस्त्रवार्त्तानाम् ।

आटविकदुर्गकर्वट-
 वधकन्दशंसावलिः।।नाम् ॥ १३ ॥
 नरपतिकुमारकुञ्जर-
 दाम्भिकडिम्भाभिघातपशुपानाम् ।
 रक्तफलकुसुमविद्रुम-
 चमूपगुडमद्यतीक्ष्णानाम् ॥ १४ ॥
 कोशभवनाग्निहेचिक-
 धात्वाकरशाक्यभिष्णुचौराणाम् ।
 शठदीर्घवैरबद्धाशिनां च
 वसुधासुतो ऽधिपतिः ॥ १५ ॥
 लौहित्यः सिन्धुनदः
 सरयुर्गम्भीरिका रथाह्वा च ।
 गङ्गाकौशिक्याद्याः
 सरितो वैदेहकाम्बोजाः ॥ १६ ॥
 मथुरायाः पूर्वार्धं
 हिमवज्जोमन्तचित्रकूटस्थाः ।
 सौराष्ट्रसेतुजलमार्ग-
 पण्यबिलपर्वताश्रयिणः ॥ १७ ॥
 उदपानयन्त्रगान्धर्व-
 लेख्यमणिरागगन्धयुक्तिविदः ।
 आलेख्यशब्दगणित-
 प्रसाधकायुध्यशिल्पज्ञाः ॥ १८ ॥

चरपुरुषकुहकजीवक-
 शिशुकविशठसूचकाभिचाररताः ।
 दूतनपुंसकहास्यज्ञ-
 भूततन्त्रेन्द्रजालज्ञाः ॥ १९ ॥
 आरक्षकनटनर्तक-
 घृततैलस्रेहबीजतिक्तानि ।
 व्रतचारिरसायनकुशल-
 वेसराश्चन्द्रपुत्रस्य ॥ २० ॥
 सिन्धुनदपूर्वभागा
 मथुरापश्चाधभरतसौवीराः ।
 सुघोदीच्यविपाशा-
 सरिच्छतद्रूमठसाल्वाः ॥ २१ ॥
 चैर्गर्तपौरवाम्बष्ठ-
 पारता वाटधानयौधेयाः ।
 सारस्वतार्जुनायन-
 मत्स्यार्धग्रामराष्ट्राणि ॥ २२ ॥
 हस्त्यश्वपुरोहितभूप-
 मन्त्रिमाङ्गल्यपौष्टिकासक्ताः ।
 कारुण्यसत्यशौच-
 व्रतविद्यादानधर्मयुताः ॥ २३ ॥
 पौरमहाधनशब्दार्थ-
 वेदविदुषोऽभिचारनीतिज्ञाः ।

मनुजेश्वरोपकरणं
 छत्रध्वजचामराद्यं च ॥ २४ ॥
 शैलेयकमांसीतगर-
 कुष्ठरससैन्धवानि वल्लीजम् ।
 मधुररसमधूच्छिष्टानि
 चोरकश्चेति जीवस्य ॥ २५ ॥
 तक्षशिलमार्तिकावत-
 बहुगिरिगान्धारपुष्कलावतकाः ।
 प्रस्थलमालवकैकय-
 दाशाणीशीनराः शिबयः ॥ २६ ॥
 ये च पिबन्ति वितस्ता-
 मिरावतीं चन्द्रभागसरितं च ।
 रथरजताकरकुञ्जर-
 तुरगमहामाचधनयुक्ताः ॥ २७ ॥
 सुरभिकुसुमानुलेपन-
 मणिवज्रविभ्रूषणाम्बुरुहशय्याः ।
 वरतरुणयुवतिकामो-
 पकरणमृष्टान्नमधुरभुजः ॥ २८ ॥
 उद्यानसलिलकामुक-
 यशःसुखौदार्यरूपसम्पन्नाः ।
 विहृदमात्यवणिग्जन-
 घटकृच्चिचाण्डजास्त्रिफलाः ॥ २९ ॥

कौशेयपट्टकम्बल-
 पत्रैर्णिकरोध्रपत्रचोचानि ।
 जातीफलागुरुवचा-
 पिप्पल्यश्चन्दनं च भृगोः ॥ ३० ॥
 आनर्तार्बुदपुष्कर-
 सौराष्ट्राभीरशूद्ररैवतकाः ।
 नष्टा यस्मिन्देष्टे
 सरस्वती पश्चिमो देशः ॥ ३१ ॥
 कुरुभूमिजाः प्रभासं
 विदिशा वेदस्मृती महीतटजाः ।
 खलमलिननीचतैलिक-
 विहीनसत्त्वोपहतपुंस्त्वाः ॥ ३२ ॥
 बन्धनशाकुनिकाशुचि-
 कैवर्तविरूपट्टसैकरिकाः ।
 गणपूज्यस्खलितव्रत-
 शबरपुलिन्दार्थपरिहीनाः ॥ ३३ ॥
 कटुतिक्तसायनविधव-
 योषितो भुजगतस्करमहिष्यः ।
 खरकरभक्षणकवातुल-
 निष्पावाश्चार्कपुत्रस्य ॥ ३४ ॥
 गिरिशिखरकन्दरदरी-
 विनिविष्टा म्लेच्छजातयः शूद्राः ।

गोमायुभक्षशूलिक-
 वोक्काणाश्वमुखविकलाङ्गाः ॥ ३५ ॥
 कुलपांसनहिंस्रकृतघ्न-
 चौरनिःसत्यशौचदानश्च ।
 खरचरनियुद्धवि-
 तीव्ररोषगर्भाशया नीचाः ॥ ३६ ॥
 उपहतदाम्भिकराक्षस-
 निद्राबहुलाश्च जन्तवः सर्वे ।
 धर्मेण च सन्त्यक्ता
 माघतिलाश्चार्कशशिशचोः ॥ ३७ ॥
 गिरिदुर्गपल्लव-
 श्वेतह्लणचोलावगाणमरुचीनाः ।
 प्रत्यन्तधनिमहेच्छ-
 व्यवसायपराक्रमोपेताः ॥ ३८ ॥
 परदारविवादरताः
 पररन्ध्रकुतूहला मद्देत्सिक्ताः ।
 मूर्खाधार्मिकविजिगीषवश्च
 केतोः समास्थाताः ॥ ३९ ॥

उद्यसमये यः स्निग्धांशुर्महान् प्रकृतिस्थितो
 यदि च न हतो निर्घातोल्कारजोग्रहमर्दनैः ।
 स्वभवनगतः स्वोच्चप्राप्तः शुभग्रहवीक्षितः
 स भवति शिवस्तेषां येषां प्रभुः परिकीर्तितः ॥४०॥

अभिहितविपरीतलक्षणैः
 क्षयमुपगच्छति तत्परिग्रहः ।
 डमरभयगदातुरा जना
 नरपतयश्च भवन्ति दुःखिताः ॥ ४१ ॥
 यदि न रिपुकृतं भयं नृपाणां
 स्वसुतकृतं नियमादमात्यजं वा ।
 भवति जनपदस्य चाप्यवृष्ट्या
 गमनमपूर्वपुराद्रिनिम्नगासु ॥ ४२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रह-
 भक्तयो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ * ॥

युद्धं यथा यदा वा
 भविष्यदादिश्यते त्रिकालज्ञैः ।
 तद्विज्ञानं करणे
 मया कृतं सूर्यसिद्धान्तात् ॥ १ ॥
 वियति चरतां ग्रहाणा-
 मुपर्युपर्यात्ममार्गसंस्थानाम् ।
 अतिदूराद्दृग्विषये
 समतामिव सम्प्रयातानाम् ॥ २ ॥

आसन्नक्रमयोगा-
 द्वेदोस्त्रेखांशुमर्दनासव्यैः ।
 युद्धं चतुःप्रकारं
 पराशराद्यैर्मुनिभिरुक्तम् ॥ ३ ॥
 भेदे वृष्टिविनाशो
 भेदः सुहृदां महाकुलानां च ।
 उल्लेखे शस्त्रभयं
 मन्त्रिविरोधः प्रियान्नत्वम् ॥ ४ ॥
 अंशुविरोधे युद्धानि
 भूभृतां शस्त्ररुक्क्षुदवमर्दाः ।
 युद्धे चाप्यपसव्ये भवन्ति
 युद्धानि भूपानाम् ॥ ५ ॥
 रविराक्रन्दो मध्ये
 पौरः पूर्वे ऽपरे स्थितो यायी ।
 पौरा बुधगुरुरविजा
 नित्यं शीतांशुराक्रन्द्रः ॥ ६ ॥
 केतुकुजराहुशुक्रा
 यायिन एते हता ग्रहा हन्युः ।
 आक्रन्दयायिपौरान्
 जयिनो जयदा स्ववर्गस्य ॥ ७ ॥
 पौरे पौरेण हते
 पौराः पौरान् नृपान् विनिघ्नन्ति ।

एवं याय्याक्रन्दौ
 नागरयायिग्रहाश्चैव ॥ ८ ॥
 दक्षिणदिक्स्थः परुषो
 वेपथुरप्राप्य सन्नित्तो ऽणुः ।
 अधिगूढो विकृतो
 निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः ॥ ९ ॥
 उक्तविपरीतलक्षणसम्पन्नो
 जयगतो विनिर्दिष्टः ।
 विपुलः स्निग्धो द्युतिमान्
 दक्षिणदिक्स्थोऽपि जययुक्तः ॥ १० ॥
 द्वावपि मयूखपृक्तौ
 विपुलौ स्निग्धौ समागमे भवतः ।
 तत्रान्योऽन्यप्रीति-
 र्विपरीतावात्मपक्षघ्नौ ॥ ११ ॥
 युद्धं समागमो वा
 यद्यव्यक्तौ तु लक्षणैर्भवतः ।
 भुवि भूधृतामपि तथा
 फलमव्यक्तं विनिर्देश्यम् ॥ १२ ॥
 गुरुणा जितेऽ वनिसुते
 बाह्लीका यायिनेो ऽग्निवार्ताश्च ।
 शशिजेन शूरसेनाः
 कलिङ्गसाल्वाश्च पीद्यन्ते ॥ १३ ॥

सौरेणारे विजिते
 जयन्ति पौराः प्रजाश्च सीदन्ति ।
 कोष्ठागारम्बेच्छ-
 क्षत्रियतापश्च शुक्रजिते ॥ १४ ॥
 भौमेन हते शशिजे
 वृक्षसरित्तापसाश्मकनरेन्द्राः ।
 उत्तरदिक्स्थाः क्रतु-
 दीक्षिताश्च सन्तापमायान्ति ॥ १५ ॥
 गुरुणा बुधे जिते
 म्बेच्छ शूद्रचौरार्थयुक्तपौरजनाः ।
 चैर्गर्तपार्वतीयाः
 पीड्यन्ते कम्पते च मही ॥ १६ ॥
 रविजेन बुधे ध्वस्ते
 नाविकयोधाञ्जसधनगर्भिण्यः ।
 भृगुणा जिते ऽग्निकोपः
 सस्याम्बुदयायिविध्वंसः ॥ १७ ॥
 जीवे शुक्राभिहते
 कुलूतगान्धारकैकया मद्राः ।
 साल्वा वत्सा वङ्गा
 गावः सस्यानि नश्यन्ति ॥ १८ ॥
 भौमेन हते जीवे
 मध्यो देशे नरेश्वरा गावः ।

सौरेण चार्जुनायन-
 वसातियौधेयशिबिविप्राः ॥ १९ ॥
 शशितनयेनापि जिते
 बृहस्पतौ ग्नेच्छंसत्यशस्त्रधृतः ।
 उपयान्ति मध्यदेशश्च
 सङ्ख्यं यच्च भक्तिफलम् ॥ २० ॥
 शुक्रे बृहस्पतिहते
 यायी श्रेष्ठे विनाशमुपयाति ।
 ब्रह्मसूत्रविरोधः
 सलिलं च न वासवस्त्यजति ॥ २१ ॥
 कोशलकलिङ्गवङ्गा
 वत्सा मत्स्याश्च मध्यदेशयुताः ।
 महतीं व्रजन्ति पीडां
 नपुंसकाः शूरसेनाश्च ॥ २२ ॥
 कुजविजिते भृगुतनये
 बलमुख्यवधो नरेन्द्रसङ्ग्रामाः ।
 सौम्येन पार्वतीयाः
 क्षीरविनाशो ऽल्पवृष्टिश्च ॥ २३ ॥
 रविजेन सिते विजिते
 गणमुखाः शस्त्रजीविनः सूत्रम् ।
 जलजाश्च निपीड्यन्ते
 सामान्यं भक्तिफलमन्यत् ॥ २४ ॥

असिते सितेन निहते
 ऽर्धवृद्धिरहिविहगमानिनां पीडा ।
 क्षितिजेन टङ्कणा-
 न्धोद्भ्रकाशिवाह्लीकदेशानाम् ॥ २५ ॥
 सौम्येन पराभूते
 मन्दे ऽङ्गवर्णिग्विहङ्गपशुनागाः ।
 सन्ताप्यन्ते गुरुणा
 स्त्रीबहुला महिषकशकाश्च ॥ २६ ॥
 अयं विशेषोऽभिहितो हतानां
 कुजज्ञवागीशसितासितानाम् ।
 फलं तु वाच्यं ग्रहभक्तितो ऽन्यद्
 यथा तथा घ्नन्ति हताः स्वभक्तीः ॥ २७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहयुञ्जं
 नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ * ॥

भानां यथासम्भवमुत्तरेण
 यातो ग्रहाणां यदिवा शशाङ्कः ।
 प्रदक्षिणं तच्छुभकृन्नराणां
 याम्येन यातो न शिवः शशाङ्कः ॥ १ ॥

चन्द्रमा यदि कुजस्य यात्युदक्
 पार्वतीयबलशालिनां जयः ।
 क्षत्रियाः प्रमुदिताः सयायिनो
 भूरिधान्यमुदिता वसुन्धरा ॥ २ ॥
 उत्तरतः स्वसुतस्य शशाङ्कः
 पौरजयाय सुभिक्षकरश्च ।
 सस्यचयं कुरुते जनहार्दिं
 कोशचयं च नराधिपतीनाम् ॥ ३ ॥
 वृहस्पतेरुत्तरगे शशाङ्के
 पौरद्विजक्षत्रियपण्डितानाम् ।
 धर्मस्य देशस्य च मध्यमस्य
 वृद्धिः सुभिक्षं मुदिताः प्रजाश्च ॥ ४ ॥
 भार्गवस्य यदि यात्युदक् शशी
 कोशयुक्तगजवाजिवृद्धिदः ।
 यायिनां च विजयो धनुष्मतां
 सस्यसम्पदपि चोत्तमा तदा ॥ ५ ॥
 रविजस्य शशी प्रदक्षिणं
 कुर्याच्चेत्पुरभूधृतां जयः ।
 शकबाह्लिकसिन्धुपह्लवा
 मुद्गाजो यवनैः समन्विताः ॥ ६ ॥
 येषामुदग्गच्छति भयहाणां
 प्रालेयरश्मिर्निरुपद्रवश्च ।

तद्द्रव्यपैरेतरभक्तिदेशान्
 पुष्पाति याम्येन निहन्ति तानि ॥ ७ ॥
 शशिनि फलमुदकस्थे यद्ब्रह्मस्योपदिष्टं
 भवति तदपसव्ये सर्वमेव प्रतीपम् ।
 इति शशिसमवायाः कीर्तिता भग्नहाणां
 न खलु भवति युङ्गं साकमिन्दोर्ग्रहर्क्षैः ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां शशि-
 ग्रहसमागमो ऽष्टादशो ऽध्यायः ॥ * ॥

सर्वत्र भूर्विरलसस्ययुता वनानि
 दैवाद्भिभक्षयिषुदंघ्रिसमावृतानि ।
 स्यन्दन्ति नैव च पयः प्रचुरं स्रवन्त्यो
 रुग्भेषजानि न तथातिबलान्वितानि ॥ १ ॥
 तीक्ष्णं तपत्यदितिजः शिशिरेऽपि काले
 नात्यम्बुदा जलमुचो ऽचलसन्निकाशाः ।
 नष्टप्रभर्क्षगणशीतकरं नभश्च
 सीदन्ति तापसकुलानि सगोकुलानि ॥ २ ॥
 हस्त्यश्वपत्तिमदसह्यबलैरुपेता
 वाणासनासिमुशलातिशयाश्चरन्ति ।
 घ्नन्तो नृपा युधि नृपानुचरैश्च देशान्
 संवत्सरे दिनकरस्य दिने ऽथ मासे ॥ ३ ॥

व्याप्तं नभः प्रचलिताचलसन्निकाशै-
 र्थालाञ्जनालिगवलच्छविभिः पयोदैः ।
 गां पूरयद्भिरखिलाममलाभिरद्भि-
 रुत्कण्ठकेन गुरुणा ध्वनितेन चाशाः ॥ ४ ॥
 तोयानि पद्मकुमुदोत्पलवन्धतीव
 फुल्लद्रुमाण्युपवनान्यलिनादितानि ।
 गावः प्रभूतपयसो नयनाभिरामा
 रामा रतैरविरतं रमयन्ति रामान् ॥ ५ ॥
 गोधूमशालियवधान्यवरेक्षुवाटा
 भूः पाल्यते नृपतिभिर्नगराकराब्द्या ।
 चित्यङ्किता क्रतुवरेष्टिविघुष्टनादा
 संवत्सरे शिशिरगोरभिसम्प्रुहत्ते ॥ ६ ॥
 वातोद्धतश्चरति वह्निरतिप्रचण्डो
 ग्रामान् वनानि नगराणि च सन्दिधक्षुः ।
 हाहेति दस्युगणपातहता रटन्ति
 निःस्वीकृता विपशवो भुवि मर्त्यसङ्घाः ॥ ७ ॥
 अभ्युन्नता वियति संहतमूर्तयोऽपि
 मुञ्चन्ति न क्वचिदपः प्रचुरं पयोदाः ।
 सीम्नि प्रजातमपि शोषमुपैति सस्यं
 निष्पन्नमप्यविनयादपरे हरन्ति ॥ ८ ॥
 भूपा न सम्यगभिपालनसक्तचित्ताः
 पित्तोत्थरुक्प्रचुरता भुजगप्रकोपः ।

एवंविधैरुपहता भवति प्रजेयं
 संवत्सरे ऽवनिसुतस्य विपन्नसस्या ॥ ९ ॥
 मायेन्द्रजालकुहकाकरनागराणां
 गान्धर्वलेख्यगणितास्त्रविदां च वृद्धिः ।
 पिप्रीषया नृपतयो ऽद्भुतदर्शनानि
 दित्सन्ति तुष्टिजननानि परस्परेभ्यः ॥ १० ॥
 वार्त्ता जगत्यवितथाविकला त्रयी च
 सम्यक् चरत्यपि मनोरिव दण्डनीतिः ।
 अर्धक्षरं स्वभिनिविष्टधियोऽत्र केचिद्
 आन्वीक्षिकीषु च परं पदमीहमानाः ॥ ११ ॥
 हास्यज्ञद्रूतकविबालनपुंसकानां
 युक्तिज्ञसेतुजलपर्वतवासिनां च ।
 हार्दिं करोति मृगलाञ्छनजः स्वके ऽब्दे
 मासे ऽथवा प्रचुरतां भुवि चौषधीनाम् ॥ १२ ॥
 ध्वनिरुच्चरितो ऽध्वरे शुगामी
 विपुलो यज्ञमुषा मनांसि भिन्दन् ।
 विचरत्यानिशं द्विजोत्तमानां
 हृदयानन्दकरो ऽध्वरांशभाजाम् ॥ १३ ॥
 क्षितिरुत्तमसस्यवत्यनेक-
 द्विपपत्त्यश्वधनोरुगोकुलाख्या ।
 क्षितिपैरभिपालनप्रवृद्धा
 शुचरस्पर्धिजना तदा विभाति ॥ १४ ॥

विविधैर्वियदुन्नतैः पयोदै-
 र्वृतमुर्वीं पयसाभितर्पयद्भिः ।
 सुरराजगुरोः शुभे ऽत्र वर्षे
 बहुसस्या क्षितिरुत्तमर्द्धियुक्ता ॥ १५ ॥
 शालीशुमत्यपि धरा धरणीधराभ-
 धाराधरोज्जितपयःपरिपूर्णवप्रा ।
 श्रीमत्सरोरुहतताम्बुतडागकीर्णा
 योषेव भात्यभिनवाभरणोज्ज्वलाङ्गी ॥ १६ ॥
 क्षत्रं क्षितैः क्षपितभूरिबलारिपक्षम्
 उद्दुष्टनैकजयशब्दविराविताशम् ।
 संहृष्टशिष्टजनदुष्टविनष्टवर्गां
 गां पालयन्त्यवनिपा नगराकराद्याम् ॥ १७ ॥
 पेपीयते मधु मधौ सह कामिनीभि-
 र्जंगीयते श्रवणहारि सवेणुवीणम् ।
 बोभुज्यते ऽतिथिसुहृत्स्वजनैः सहान्नम्
 अब्दे सितस्य मदनस्य जयावघोषः ॥ १८ ॥
 उद्धृत्तदस्युगणभूरिरणकुलानि
 राष्ट्रगण्यनेकपशुवित्तविनाकृतानि ।
 रोरूयमाणहतबन्धुजनैर्जनैश्च
 रोगोत्तमाकुलकुलानि बुभुक्षया च ॥ १९ ॥
 वातोद्धताम्बुधरवर्जितमन्तरिक्षम्
 आरुगणनैकविटपं च धरातलं द्यौः ।

नष्टार्कचन्द्रकिरणातिरजोऽवनङ्गा
 तोयाशयाश्च विजलाः सरितो ऽपि तन्व्यः ॥ २० ॥
 जातानि कुत्रचिदतोयतया विनाशम्
 ष्टच्छन्ति पुष्टिमपराणि जलोक्षितानि ।
 सस्यानि मन्दमभिवर्षति वृत्रशत्रौ
 वर्षे दिवाकरसुतस्य सदा प्रवृत्ते ॥ २१ ॥
 अणुरपटुमयूखो नीचगो ऽन्यैर्जितो वा
 न सकलफलदाता पुष्टिदो ऽतो ऽन्यथा यः ।
 यदशुभमशुभे ऽब्दे मासजं तस्य वृद्धिः
 शुभफलमपि चैवं याप्यमन्योऽन्यतायाम् ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहवर्ष-
 फलमेकोनविंशतितमो ऽध्यायः ॥ * ॥

यस्यां दिशि दृश्यन्ते
 विशन्ति ताराग्रहा रविं सर्वे ।
 भवति भयं दिशि तस्या-
 मायुधकोपक्षुधातङ्कैः ॥ १ ॥
 चक्रधनुःशृङ्गाटक-
 दण्डपुरप्रासवज्रसंस्थानाः ।
 क्षुद्रवृष्टिकरा लोके
 समराय च मानवेन्द्राणाम् ॥ २ ॥

यस्मिन् खांशे दृश्या
 ग्रहमाला दिनकरे दिनान्तगते ।
 तचान्यो भवति नृपः
 परचक्रोपद्रवश्च महान् ॥ ३ ॥
 यस्मिन्नृशे कुर्युः
 समागमं तज्जनान् ग्रहा हन्युः ।
 अविभेदनाः परस्पर-
 ममलमयूखाः शिवास्तेषाम् ॥ ४ ॥
 ग्रहसंवर्तसमागम-
 सम्मोहसमाजसन्निपाताख्याः ।
 कोशश्चेत्येतेपा-
 मभिधास्ये लक्षणं सफलम् ॥ ५ ॥
 एकर्षे चत्वारः
 सह पौरैर्यायिना ऽथवा पञ्च ।
 संवर्ता नाम भवे-
 च्छिखिराहुयुतः स सम्मोहः ॥ ६ ॥
 पौरः पौरसमेतो
 यायी सह यायिना समाजाख्यः ।
 यमजीवसङ्गमे ऽन्यो
 यद्यागच्छेत्तदा कोशः ॥ ७ ॥
 उदितः पश्चादेकः
 प्राक् चान्यो यदि स सन्निपाताख्यः ।

अविद्वत्तनवः स्निग्धा
 विपुलाश्च समागमे धन्याः ॥ ८ ॥
 समौ तु संवर्तसमागमाख्यौ
 सम्मोहकौशौ भयदौ प्रजानाम् ।
 समाजसञ्ज्ञः सुसमः प्रदिष्टो
 वैरप्रकोपः खलु सन्निपाते ॥ ९ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृहत्संहितायां ग्रह-
 शृङ्गाटकं नाम विंशतितमो ऽध्यायः ॥ • ॥

अन्नं जगतः प्राणाः
 प्रावृटकालस्य चान्नमायत्तम् ।
 यस्मादतः परीक्ष्यः
 प्रावृटकालः प्रयत्नेन ॥ १ ॥
 तल्लक्षणानि मुनिभि-
 र्यानि निबद्धानि तानि दृष्ट्वेदम् ।
 क्रियते गर्गपराशर-
 काश्यपवात्स्यादिरचितानि ॥ २ ॥
 दैवविद्वद्वहितचित्तो
 द्युनिशं यो गर्भलक्षणे भवति ।
 तस्य मुनेरिव वाणी
 न भवति मिथ्यामुनिर्देशे ॥ ३ ॥

किं वातः परमन्य-
 च्छास्त्रं ज्यायो ऽस्ति यद्विदित्वैव ।
 प्रध्वंसिन्यपि काले
 त्रिकालदर्शी कलौ भवति ॥ ४ ॥
 केचिद्वदन्ति कार्तिक-
 शुक्लान्तमतोत्य गर्भदिवसाः स्युः ।
 न तु तन्मतं बहूनां
 गर्गादीनां मतं वक्ष्ये ॥ ५ ॥
 मार्गशिरशुक्लपक्ष-
 प्रतिपत्प्रभृति क्षपाकरे ऽषाढाम् ।
 पूर्वां वा समुपगते
 गर्भाणां लक्षणं ज्ञेयम् ॥ ६ ॥
 यन्नक्षत्रमुपगते
 गर्भश्चन्द्रे भवेत् स चन्द्रवशात् ।
 पञ्चनवते दिनशते
 तत्रैव प्रसवमायाति ॥ ७ ॥
 सितपक्षभवाः कृष्णे
 शुक्ले कृष्णा द्युसम्भवा रात्रौ ।
 नक्तंप्रभवाश्चाहनि
 सन्ध्याजाताश्च सन्ध्यायाम् ॥ ८ ॥
 मृगशीर्षाद्या गर्भा
 मन्दफलाः पौषशुक्लजाताश्च ।

पौषस्य कृष्णपक्षेण
 निर्दिशेच्छ्रावणस्य सितम् ॥ ९ ॥
 माघसितोत्था गर्भाः
 श्रावणकृष्णे प्रसूतिमायान्ति ।
 माघस्य कृष्णपक्षेण
 निर्दिशेद्भाद्रपदशुक्लम् ॥ १० ॥
 फाल्गुनशुक्लसमुत्था
 भाद्रपदस्यासिते विनिर्देश्याः ।
 तस्यैव कृष्णपक्षे-
 द्भवास्तु ये ते ऽश्वयुक्शुक्ले ॥ ११ ॥
 चैत्रसितपक्षजाताः
 कृष्णे ऽश्वयुजस्य वारिदा गर्भाः ।
 चैत्रासितसम्भूताः
 कार्तिकशुक्ले ऽभिवर्षन्ति ॥ १२ ॥
 पूर्वाद्भूताः पश्चा-
 दपरोत्थाः प्राग्भवन्ति जीमूताः ॥
 शेषास्वपि दिक्ष्वेवं
 विपर्ययो भवति वायोश्च ॥ १३ ॥
 ह्लादिमृदूदकखिव-
 शक्रदिग्भवो मारुतो वियद्विमलम् ।
 स्निग्धसितबहुल-
 परिवेषपरिवृतौ द्विममयूखाकौ ॥ १४ ॥

पृथुबहुलस्निग्धघनं
 घनसूचीक्षुरकलोहिताश्रयुतम् ।
 काकाण्डमेचकाभं
 वियद्विशुङ्गेन्दुनक्षत्रम् ॥ १५ ॥
 सुरचापमन्द्रगर्जित-
 विद्युत्प्रतिसूर्यकाः शुभा सन्ध्या ।
 शशिशिवशक्राशास्थाः
 शान्तरवाः पक्षिमृगसङ्घाः ॥ १६ ॥
 विपुलाः प्रदक्षिणचराः
 स्निग्धमयूखा ग्रहा निरुपसर्गाः ।
 तरवश्च निरुपसृष्टाङ्कुरा
 नरचतुष्पदा हृष्टाः ॥ १७ ॥
 गर्भाणां पुष्टिकराः
 सर्वेषामेव यो ऽत्र तु विशेषः ।
 स्वर्तुस्वभावजनितो
 गर्भविवृद्धौ तमभिधास्ये ॥ १८ ॥
 पौषे समार्गशीर्षे
 सन्धारारगो ऽम्बुदाः सपरिवेषाः ।
 नात्यर्थं मृगशीर्षे
 शीतं पौषे ऽति हिमपातः ॥ १९ ॥
 माघे प्रबलो वायु-
 स्तुषारकलुषद्युती रविशशाङ्कौ ।

अतिशीतं सघनस्य च
 भानोरस्तोदयौ धन्यौ ॥ २० ॥
 फाल्गुनमासे रूक्ष-
 श्रण्डः पवनो ऽध्रसम्भवाः स्निग्धाः ।
 परिवेघाश्चासकलाः
 कपिलस्ताम्रो रविश्च शुभः ॥ २१ ॥
 पवनघनदृष्टियुक्ता-
 श्रैत्रे गर्भाः शुभाः सपरिवेघाः ।
 घनपवनसलिलविद्युत्-
 स्तनितैश्च हिताय वैशाखे ॥ २२ ॥
 मुक्तारजतनिकाशा-
 स्तमालनीलोत्पलाञ्जनाभासः ।
 जलचरसत्त्वाकारा
 गर्भेषु घनाः प्रभूतजलाः ॥ २३ ॥
 तीव्रदिवाकरकिरणा-
 भितापिता मन्दमारुता जलदाः ।
 रुपिता इव धाराभि-
 र्विस्तृजन्त्यम्भः प्रसवकाले ॥ २४ ॥
 गर्भापघातलिङ्गा-
 न्युक्काशनिपांशुपातदिग्दाहाः ।
 क्षितिकम्पखपुरकीलक-
 केतुग्रहयुद्धनिर्घाताः ॥ २५ ॥

रुधिरादिवृष्टिवैकृत-
 परिघेन्द्रधनूषि दर्शनं राहोः ।
 इत्युत्पातैरेभि-
 स्त्रिविधैश्चान्यैर्हतो गर्भः ॥ २६ ॥
 स्वर्तुस्वभावजनितैः
 सामान्यैर्यैश्च लक्षणैर्वृद्धिः ।
 गर्भाणां विपरीतै-
 स्तैरेव विपर्ययो भवति ॥ २७ ॥
 भद्रपदाद्वयविश्वा-
 म्बुदैवपैतामहेष्यर्क्षेषु ।
 सर्वेषुतुषु विवृद्धो
 गर्भो बहुतोयदो भवति ॥ २८ ॥
 शतभिषगाश्चेषाद्रा-
 स्वातिमघासंयुतः शुभो गर्भः ।
 पुष्पाति बह्वन्दिवसान्
 हन्त्युत्पातैर्हतस्त्रिविधैः ॥ २९ ॥
 मृगमासादिषष्टौ
 षट् षोडश विंशतिश्चतुर्युक्ता ।
 विंशतिरथ दिवसत्रय-
 मेकतमर्क्षेण पञ्चभ्यः ॥ ३० ॥
 क्रूरग्रहसंयुक्ते
 करकाशनिमत्स्यवर्षदा गर्भाः ।

शशिनि रवौ वा शुभ-
 संयुतेक्षिते भूरिवृष्टिकराः ॥ ३१ ॥
 गर्भसमये ऽतिवृष्टि-
 गर्भाभावाय निर्निमित्तकता ।
 द्रोणाष्टांशेऽभ्यधिके
 वृष्टे गर्भः सुतो भवति ॥ ३२ ॥
 गर्भः पुष्टः प्रसवे
 ग्रहोपघातादिभिर्यदि न वृष्टः ।
 आत्मीयगर्भसमये
 करकामिश्रं ददात्यम्भः ॥ ३३ ॥
 काठिन्यं याति यथा
 चिरकालधृतं पयः पयस्विन्याः ।
 कालातीतं तद्वत्सलिलं
 काठिन्यमुपयाति ॥ ३४ ॥
 पञ्चनिमित्तैः शतयोजनं
 तदर्धार्धमेकहान्यातः ।
 वर्षति पञ्च समन्ता-
 द्रूपेणैकेन यो गर्भः ॥ ३५ ॥
 द्रोणः पञ्चनिमित्ते
 गर्भं चोण्याढकानि पवनेन ।
 षड् विद्युता नवाद्यैः
 स्तनितेन द्वादश प्रसवे ॥ ३६ ॥

पवनसलिलविद्युद्गर्जिताभ्रान्वितो यः
 स भवति बहुतोयः पञ्चरूपाभ्युपेतः ।
 विस्तृजति यदि तोयं गर्भकालेऽतिभूरि
 प्रसवसमयमित्वा शीकराभ्रः करोति ॥ ३७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां गर्भल-
 क्षणमेकविंशोऽध्यायः ॥ * ॥

ज्यैष्ठसितेऽष्टम्याद्या-
 श्रत्वारो वायुधारणादिवसाः ।
 मृदुशुभपवनाः शस्ताः
 स्निग्धघनस्थगितगगनाश्च ॥ १ ॥
 तत्रैव स्वात्याद्ये वृष्टे
 भचतुष्टये क्रमान्मासाः ।
 श्रावणपूर्वा ज्ञेयाः
 परिस्रुता धारणास्ताः स्युः ॥ २ ॥
 यदि ताः स्युरेकरूपाः
 शुभास्ततः सान्तरास्तु न शिवाय ।
 तस्करभयदाः प्रोक्ताः
 श्लोकाश्चाप्यत्र वासिष्ठाः ॥ ३ ॥

सविद्युतः सपृषतः सपांशूत्करमारुताः ।
 सार्कचन्द्रपरिच्छन्ना धारणाः शुभधारणाः ॥ ४ ॥

यदा तु विद्युतः श्रेष्ठाः शुभाशाप्रत्युपस्थिताः ।
 तदापि सर्वसस्यानां वृद्धिं ब्रूयाद्विचक्षणः ॥ ५ ॥
 सपांशुवर्षाः सापश्च शुभा बालक्रिया अपि ।
 पक्षिणां सुस्वरा वाचः क्रीडा पांशुजलादिषु ॥ ६ ॥
 रविचन्द्रपरिवेषाः स्निग्धा नात्यन्तदूषिताः ।
 वृष्टिस्तदापि विज्ञेया सर्वसस्याभिवृद्धये ॥ ७ ॥
 मेघाः स्निग्धाः संहताश्च प्रदक्षिणगतिक्रियाः ।
 तदा स्यान्महतो वृष्टिः सर्वसस्यार्थसाधिका ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां धारणा
 नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ * ॥

ज्यैष्ठां समतितायां
 पूर्वाषाढादिसम्प्रवृष्टेन ।
 शुभमशुभं वा वाच्यं
 परिमाणं चाम्भसस्तज्जैः ॥ १ ॥
 हस्तविशालं कुण्डक-
 मधिकृत्याम्बुप्रमाणनिर्देशः ।
 पञ्चाशत्यलमाढक-
 मनेन मिनुयाज्जलं पतितम् ॥ २ ॥
 येन धरित्री मुद्रा
 जनिता वा विन्दवस्तृणाग्नेषु ।

वृष्टेन तेन वाच्यं
 परिमाणं वारिणः प्रथमम् ॥ ३ ॥
 केचिद्यथाभिवृष्टं
 दशयोजनमण्डलं वदन्त्यन्ये ।
 गर्गवसिष्ठपराशर-
 मतमेतद्वादशान्न परम् ॥ ४ ॥
 येषु च भेषभिवृष्टं
 भृयस्तेष्वेव वर्षति प्रायः ।
 यदि नाप्यादिषु वृष्टं
 सर्वेषु तदा त्वनावृष्टिः ॥ ५ ॥
 हस्ताप्यसौम्यचित्रा-
 पौष्णधनिष्ठासु षोडश द्रोणाः ।
 शतभिषगैन्द्रस्वातिषु
 चत्वारः कृत्तिकासु दश ॥ ६ ॥
 श्रवणे मघानुराधा-
 भरणीमूलेषु दश चतुर्युक्ताः ।
 फल्गुन्यां पञ्चकृत्तिः
 पुनर्वसौ विंशतिर्द्रोणाः ॥ ७ ॥
 रेन्द्राग्राख्ये वैश्वे च
 विंशतिः सारपभे दश त्व्यधिकाः ।
 आहिर्बुध्न्यार्यम्ण-
 प्राजापत्येषु पञ्चकृत्तिः ॥ ८ ॥

पञ्चदशजे पुष्ये च
 कीर्तिता वाजिभे दश द्वौ च ।
 रौद्रे ऽष्टादश कथिता
 द्रोणा निरुपद्रवेषु ॥ ९ ॥
 रविरविसुतकेतुपीडिते भे
 क्षितितनयत्रिविधाद्भुताहते च ।
 भवति हि न शिवं न चापि वृष्टिः
 शुभसहिते निरुपद्रवे शिवं च ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रवर्षणं
 नाम त्रयोविंशो ऽध्यायः ॥ ० ॥

कनकशिलाचयविवरज-
 तरुकुसुमासङ्गिमधुकरानुरुते ।
 बहुविहगकलहसुरयुवति-
 गीतमन्द्रस्वनोपवने ॥ १ ॥
 सुरनिलयशिखरिशिखरे
 बृहस्पतिर्नारदाय यानाह ।
 गर्गपराशरकाश्यप-
 मयाश्च याञ्छिष्यसङ्घेभ्यः ॥ २ ॥

तानवलोक्य यथावत्
 प्राजापत्येन्दुसम्प्रयोगार्थान् ।
 स्वल्पग्रन्थेनाहं
 तानेवाभ्युद्यतो वक्तुम् ॥ ३ ॥
 प्राजेशमाषाढतमिस्रपक्षे
 क्षपाकरेणोपगतं समीक्ष्य ।
 वक्तव्यमिष्टं जगतो ऽशुभं वा
 शास्त्रोपदेशाद्ब्रह्मचिन्तकेन ॥ ४ ॥
 योगो यथानागत एव वाच्यः
 स धिष्ण्ययोगः करणे मयोक्तः ।
 चन्द्रप्रमाणद्युतिवर्णमार्गै-
 रुत्यातवातैश्च फलं निगाद्यम् ॥ ५ ॥
 पुरादुदग्यन् पुरतो ऽपि वा स्थलं
 त्यहोषितस्तत्र हुताशतत्परः ।
 ग्रहान् सनक्षत्रगणान् समालिखेत्
 सधूपपुष्पैर्बलिभिश्च पूजयेत् ॥ ६ ॥
 सरत्नतोयैषधिभिश्चतुर्दिशं
 तरुप्रवालापिहितैः सुपूजितैः ।
 अकालमूलैः कलशैरलङ्कृतं
 कुशास्तृतं स्थण्डिलमावसेद्विजः ॥ ७ ॥
 आलभ्य मन्त्रेण महाव्रतेन
 बीजानि सर्वाणि निधाय कुम्भे ।

स्राव्यानि चामीकरदर्भतोयै-
 र्हीमो मरुद्धारुणसौम्यमन्त्रैः ॥ ८ ॥
 श्लक्ष्णां पताकामसितां विदध्याद्
 दण्डप्रमाणां त्रिगुणोच्छ्रितां च ।
 आदौ कृते दिग्ग्रहणे नभस्वान्
 ग्राह्यस्तया योगगते शशाङ्के ॥ ९ ॥
 तत्रार्धमासाः प्रहरैर्विकल्प्या
 वर्षानिमित्तं दिवसास्तदंशैः ।
 सव्येन गच्छञ्छुभदः सदैव
 यस्मिन्प्रतिष्ठा बलवान् स वायुः ॥ १० ॥
 वृत्ते तु योगे ऽङ्कुरितानि यानि
 सन्तीह बीजानि धृतानि कुम्भे ।
 येषां तु यो ऽंशो ऽङ्कुरितस्तदंश-
 स्तेषां विवृद्धिं समुपैति नान्यः ॥ ११ ॥

शान्तपक्षिमृगराविता दिशो
 निर्मलं विद्यदनिन्दितो ऽनिलः ।
 शस्यते शशिनि रोहिणीयुते
 मेघमारुतफलानि वक्ष्यतः ॥ १२ ॥
 क्वचिदसितसितैः सितैः क्वचिच्च
 क्वचिदसितैर्भुजगैरिवाम्बुवाहैः ।
 वलितजठरपृष्ठमाचदृश्यैः
 स्फुरिततडिद्रसनैर्वृतं विशालैः ॥ १३ ॥

विकसितकमलोदरावदातै-
 ररुणकरद्युतिरञ्जितोपकण्ठैः ।
 छुरितमिव वियद्वनैर्विचित्रै-
 र्मधुकरकुङ्कुमकिंशुकावदातैः ॥ १४ ॥
 असितघननिरुद्धमेव वा
 चलिततडित्सुरचापचित्रितम् ।
 द्विपमहिषकुलाकुलीकृतं
 वनमिव दावपरीतमम्बरम् ॥ १५ ॥
 अथवाञ्जनशैलशिलानिचय-
 प्रतिरूपधरैः स्थगितं गगनम् ।
 हिममौक्तिकशङ्खशशाङ्ककर-
 द्युतिहारिभिरम्बुधरैरथवा ॥ १६ ॥
 तडिद्वैमकक्षैर्बलाकाग्रदन्तैः
 खवद्वारिदानैश्चलत्प्रान्तहस्तैः ।
 विचित्रेन्द्रचापध्वजाच्छायशोभै-
 स्तमालालिनीलैर्दृतं चाब्दनागैः ॥ १७ ॥
 सन्थानुरक्ते नभसि स्थितानाम्
 इन्दीवरश्यामरुचां घनानाम् ।
 वृन्दानि पीताम्बरवेष्टितस्य
 क्रान्तिं हरेश्चैरयतां यदा वा ॥ १८ ॥
 सशिखिचातकदर्दुरनिःस्वनै-
 र्यदि विमिश्रितमन्द्रपटुस्वनाः ।

खमवतत्य दिगन्तविलम्बिनः
 सलिलदाः सलिलौघमुचः क्षितौ ॥ १९ ॥
 निगदितरूपैर्जलधरजालै-
 ख्यहमवरुद्धं ह्यहमथवाहः ।
 यदि वियदेवं भवति सुभिक्षं
 मुदितजना च प्रचुरजला भूः ॥ २० ॥
 रूक्षैरल्पैर्मारुताक्षिप्तदेहै-
 रूष्प्रध्वाङ्गप्रेतशाखासृगाभैः ।
 अन्येषां वा निन्दितानां सरूपै-
 र्मूकैश्चाब्दैर्नां शिवं नापि वृष्टिः ॥ २१ ॥
 विगतघने वा वियति विवस्वान्
 अमृदुमयूखः सलिलकृदेवम् ।
 सर इव फुल्लं निशि कुमुदाब्धं
 खमुडुविशुद्धं यदि च सुवृष्ट्यै ॥ २२ ॥
 पूर्वाङ्गतैः सस्यनिष्पत्तिरब्दै-
 राग्नेयाशासम्भवैरग्निकोपः ।
 याम्ये सस्यं क्षीयते नैर्ऋते ऽर्घं
 पश्चाज्जातैः शोभना वृष्टिरब्दैः ॥ २३ ॥
 वायव्यात्यैर्वातवृष्टिः क्वचिच्च
 पुष्टा वृष्टिः सौम्यकाष्ठासमुत्थैः ।
 श्रेष्ठं सस्यं स्थाणुदिक्सम्प्रवृष्टै-
 र्वायुश्चैवं दिक्षु धत्ते फलानि ॥ २४ ॥

उल्कानिपातास्तडितो ऽग्निश्च
 दिग्दाहनिर्घातमहीप्रकम्पाः ।
 नादा मृगाणां सपतत्रिणां च
 ग्राह्या यथैवाम्बुधरास्तथैव ॥ २५ ॥
 नामाङ्कितैस्तैरुदगादिकुम्भैः
 प्रदक्षिणं श्रावणमासपूर्वैः ।
 पूर्यैः स मासः सलिलस्य दाता
 सुतरवृष्टिः परिकल्प्यमूनैः ॥ २६ ॥
 अन्यैश्च कुम्भैर्नृपनामचिह्नै-
 र्देशाङ्कितैश्चाप्यपरैस्तथैव ।
 भग्नैः सुतैर्न्यूनजलैः सुपूर्यै-
 र्भाग्यानि वाच्यानि यथानुरूपम् ॥ २७ ॥
 दूरगो निकटगो ऽथवा शशी
 दक्षिणे पथि यथातथा स्थितः ।
 रोहिणीं यदि युनक्ति सर्वथा
 कष्टमेव जगतो विनिर्दिशेत् ॥ २८ ॥
 स्पृशन्नुदग्याति यदा शशाङ्क-
 स्तदा सुवृष्टिर्बहुलोपसर्गाः ।
 असंस्पृशन्योगमुदक् समेतः
 करोति वृष्टिं विपुलां शिवं च ॥ २९ ॥
 रोहिणीशकटमध्यसंस्थिते
 चन्द्रमस्यशरणीकृता जनाः ।

क्वापि यान्ति शिशुयाचिताशनाः
सूर्यतप्तपिठराम्बुपायिनः ॥ ३० ॥

उदितं यदि श्रोतदीधितिं
प्रथमं पृष्ठत एति रोहिणी ।

शुभमेव तदा स्मरातुराः
प्रमदाः कामिवशे च संस्थिताः ॥ ३१ ॥

अनुगच्छति पृष्ठतः शशी
कामी वनितामिव प्रियाम् ।

मूकरध्वजवाणखेदिताः

प्रमदानां वशगास्तदा नराः ॥ ३२ ॥

आग्नेय्यां दिशि चन्द्रमा यदि भवेत्तत्रोपसर्गा महान्
नैर्ऋत्यां समुपद्रुतानि निधनं सस्यानि यान्तीतिभिः ।
प्राजेशानिल्दिकस्थिते हिमकरे सस्यस्य मध्यश्चयो
याते स्थाणुदिशं गुणाः सुबहवः सस्यार्घवृद्धादयः ॥ ३३ ॥

ताडयेद्यदि च योगतारकाम्
आवृणोति वपुषा यदापिवा ।

ताडने भयमुर्शन्ति दारुणं
छादने नृपवधो ऽङ्गनाकृतः ॥ ३४ ॥

गोप्रवेशसमये ऽग्रतो वृषो
याति कृष्णपशुरेव वा पुरः ।

भूरि वारि शबले तु मध्यमं
नो सिते ऽम्बुपरिकल्पनापरैः ॥ ३५ ॥

दृश्यते न यदि रोहिणीयुत-
 चन्द्रमा नभसि तोयदाहते ।
 रुग्भयं महदुपस्थितं तदा
 भूश्च भूरिजलसस्यसंयुता ॥ ३६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृष्टसंहितायां रोहि-
 णीयोगो नाम चतुर्विंशो ऽध्यायः ॥ * ॥

यद्रोहिणीयोगफलं तदेव
 स्वातावपाढासहिते च चन्द्रे ।
 आपाढशुक्ले निखिलं विचिन्त्यं
 यो ऽस्मिन् विशेषस्तमहं प्रवक्ष्ये ॥ १ ॥
 स्वातौ निशांशे प्रथमे ऽभिवृष्टे
 सस्यानि सर्वाण्युपयान्ति वृद्धिम् ।
 भागे द्वितीये तिलमुद्गमाषा
 ग्रैषां तृतीये ऽस्ति न शारदानि ॥ २ ॥
 वृष्टे ऽह्नि भागे प्रथमे सुवृष्टि-
 स्तद्वद्वितीये तु सकीटसर्पा ।
 वृष्टिस्तु मध्यापरभागवृष्टे
 निम्बिद्रवृष्टिर्द्युनिशं प्रवृष्टे ॥ ३ ॥
 सममुत्तरेण तारा
 चिचायाः कीर्त्यते ह्यपांबत्सः ।

तस्यासन्ने चन्द्रे

स्वातेर्योगः शिवो भवति ॥ ४ ॥

सप्तम्यां स्वातियोगे यदि पतति ह्रिमं माघमासान्धकारे
वायुर्वा चण्डवेगः सजलजलधरो वापि गर्जत्यजसम् ।

विद्युन्मालाकुलं वा यदि भवति तभो नष्टचन्द्रार्कतारं
विज्ञेया प्रावृडेपा मुदितजनपदा सर्वसस्यैरुपेता ॥ ५ ॥

[तथैव फाल्गुने चैत्रे वैशाखस्यासिते ऽपिवा ।

स्वातियोगं विजानीयादाघाढे च विशेषतः ॥ ६ ॥]

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां स्वाति-
योगो नाम पञ्चविंशो ऽध्यायः ॥ • ॥

आषाढ्यां समतुलिताधिवासितानाम्

अन्येद्युर्यदधिकतामुपैति बीजम् ।

तद्वृद्धिर्भवति न जायते यदूनं

मन्त्रो ऽस्मिन् भवति तुलाभिमन्त्रणाय ॥ १ ॥

स्तोतव्या मन्त्रयोगेन सत्या देवी सरस्वती ।

दर्शयिष्यसि यत्सत्यं सत्ये सत्यव्रता ह्यसि ॥ २ ॥

येन सत्येन चन्द्रार्कौ ग्रहा ज्योतिर्गणास्तथा ।

उत्तिष्ठन्तीह पूर्वेण पश्चादस्तं व्रजन्ति च ॥ ३ ॥

यत्सत्यं सर्ववेदेषु यत्सत्यं ब्रह्मवादिषु ।

यत्सत्यं त्रिषु लोकेषु तत्सत्यमिह दृश्यताम् ॥ ४ ॥

ब्रह्मणो दुहितासि त्वमादित्येति प्रकीर्तिता ।

काश्यपी गोचतश्चैव नामतो विश्रुता तुला ॥ ५ ॥

शौमं चतुःसूत्रकसन्निबद्धं

पडङ्गुलं शिक्वकवक्त्रमस्याः ।

सूत्रप्रमाणं च दशाङ्गुलानि

पडेव कक्षाभयशिक्वमध्ये ॥ ६ ॥

याम्ये शिक्वे काञ्चनं सन्निवेश्यं

शेषद्रव्याण्युत्तरे ऽम्बूनि चैवम् ।

तायैः कौष्यैः स्यन्दिभिः सारसैश्च

वृष्टिर्हीना मध्यमा चोत्तमा च ॥ ७ ॥

दन्तैर्नागा गोहयाद्याश्च लोम्ना

हेम्ना भूपाः सिक्वकेन द्विजाद्याः ।

तद्वद्देशा वर्षमासा दिशश्च

शेषद्रव्याण्यात्मरूपस्थितानि ॥ ८ ॥

हैमी प्रधाना रजतेन मध्या

तयोरलाभे खदिरेण कार्या ।

विद्धः पुमान्येन शरेण सा वा

तुला प्रमाणेन भवेद्वितस्तिः ॥ ९ ॥

हीनस्य नाशे ऽभ्यधिकस्य वृद्धि-

स्तुल्येन तुल्यं तुलितं तुलायाम् ।

एतत्तुलाकोशरहस्यमुक्तं

प्राज्ञेशयोगे ऽपि नरो विदध्यात् ॥ १० ॥

स्वातावषाढास्वथ रोहिणीषु
 पापग्रहा योगगता न शस्ताः ।
 ग्राह्यं तु योगद्वयमप्युपोष्य
 यदाधिमासे द्विगुणीकरोति ॥ ११ ॥
 चयो ऽपि योगाः सदृशाः फलेन
 यदा तदा वाच्यमसंशयेन ।
 विपर्यये यत्त्विह रोहिणीजं
 फलं तदेवाभ्यधिकं निगद्यम् ॥ १२ ॥
 निष्पत्तिरग्निकोपो
 वृष्टिर्मन्दाथ मध्यमा श्रेष्ठा ।
 बहुजलपवना पुष्टा
 शुभा च पूर्वादिभिः पवनैः ॥ १३ ॥
 वृत्तायामाषाढ्यां
 कृष्णचतुर्थ्यामजैकपादर्शे ।
 यदि वर्षति पर्जन्यः
 प्रावृत् शस्ता न चेन्न ततः ॥ १४ ॥

[आषाढ्यां पौर्णमास्यां तु यद्यैशानो ऽनिलो भवेत् ।
 अस्तं गच्छति तीक्ष्णांशौ सस्यसम्पत्तिरुत्तमा ॥ १५ ॥]

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामाषाढी-
 योगो नाम षड्विंशो ऽध्यायः ॥ * ॥

[पूर्वः पूर्वसमुद्रवोचिशिखरप्रस्फालनाघूर्णित-
 श्वन्द्राकांशुसटाभिघातकलितो वायुर्यदाकाशतः ।
 नैकान्तस्थितनीलमेघपटलां शरद्यसंवर्धितां
 वसन्तोत्कटसस्यमण्डिततलां विद्यात्तदा मेदिनीम् ॥१॥
 यदाम्नेयो वायुर्मलयशिखरास्फालनपटुः
 स्रवत्यस्मिन्योगे भगवति पतङ्गे प्रवसति ।
 तदा नित्याहीना ज्वलनशिखरालिङ्गिततला
 स्वगात्रेषोच्छ्रासैर्वमति वसुधा भस्मनिकरम् ॥ २ ॥
 तालीपचलतावितानतरुभिः शाखामृगान्नर्तयन्
 योगे ऽस्मिन् स्रवति ध्वनन्सुपरुषो वायुर्यदा दक्षिणः ।
 सर्वोद्योगसमुन्नताश्च गजवत्तालाङ्कुशैर्घट्टिताः
 कोनाशा इव मन्दवारिकणिकान्मुञ्चन्ति मेघास्तदा ॥३॥
 सूक्ष्मैलालवलीलवङ्गनिचयान् व्याघूर्णयन् सागरे
 भानोरस्तमये स्रवत्यविरतो वायुर्यदा नैर्ऋतः ।
 क्षुत्तृष्णानृतमानुषास्थिशकलप्रस्तारभारच्छदा
 मत्ता प्रेतबधूरिवोग्रचपला भूमिस्तदा लक्ष्यते ॥ ४ ॥
 यदा रेणूत्पातैः प्रविकटसटाटोपचपलः
 प्रवातः पश्चार्धे दिनकरकरापातसमये ।
 तदा सस्योपेता प्रवरन्टवराबद्धसमरा
 धरा स्थाने स्थानेष्वविरतवसामांसरुधिरा ॥ ५ ॥
 आषाढीपर्वकाले यदि किरणपतेरस्तकालोपपत्तौ
 वायव्यो वृहत्वेगः स्रवति घनरिपुः पन्नगादानुकारी ।

जानीयाद्वारिधाराप्रमुदितमुदितां मुक्तमण्डूककण्ठां
 सस्योद्गासैकचिह्नां सुखबहुलतया भाग्यसेनामिवोर्वीम्
 मेरुग्रस्तमरीचिमण्डलतले ग्रीष्मावसाने रवौ ॥६॥
 वात्यामेदिकदम्बगन्धसुरभिर्वायुर्यदा चोत्तरः ।
 विद्युद्भ्रान्तिसमस्तकान्तिकलनामत्तास्तदा तोयदा
 उन्मत्ता इव नष्टचन्द्रकिरणां गां पूरयन्त्यम्बुभिः ॥ ७ ॥
 रेशानो यदि शीतलो ऽमरगणैः संसेव्यमानो भवेत्
 पुन्नागागुरुपारिजातसुरभिर्वायुः प्रचण्डध्वनिः ।
 आपूर्णोदकयैवना वसुमती सम्पन्नसस्याकुला
 धर्मिष्ठाः प्रणतारयो नृपतयो रक्षन्ति वर्णांस्तदा ॥ ८ ॥

[इति वातचक्रं नाम सप्तविंशो ऽध्यायः ॥ * ॥]

वर्षाप्रश्ने सलिलनिलयं राशिमाश्रित्य चन्द्रो
 लग्नं यातो भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे ।
 सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमुदकं पापदष्टो ऽल्पमग्निः
 प्रावृट्काले सृजति नचिराच्चन्द्रवद्भार्गवोऽपि ॥ १ ॥
 आर्द्रं द्रव्यं स्पृशति यदि वा वारि तत्सञ्ज्ञकं वा
 तोयासन्नो भवति यदि वा तोयकार्येऽन्मुखो वा ।
 प्रथा वाच्यः सलिलमचिरादस्ति निःसंशयेन
 पृच्छाकाले सलिलमिति वा श्रूयते यत्र शब्दः ॥ २ ॥

उदयशिखरिसंस्थो दुर्निरीक्ष्यो ऽतिदीप्त्या
 द्रुतकनकनिकाशः स्निग्धवैडूर्यकान्तिः ।
 तदहनि कुरुते ऽभस्तोयकाले विवस्वान्
 प्रतपति यदिवोच्चैः खं गतो ऽतीव तीक्ष्णम् ॥ ३ ॥
 विरसमुदकं गोनेचाभं वियद्विमला दिशो
 लवणविकृतिः काकाण्डाभं यदा च भवेन्नभः ।
 पवनविगमः पोऽसूयन्ते झपाः स्थलगामिनो
 रसनमसकन्मण्डूकानां जलागमहेतवः ॥ ४ ॥
 मार्जारा भृशमवनिं नखैर्लिखन्तो
 लोहानां मल्लनिचयः सविस्त्रगन्धः ।
 रथ्यायां शिशुनिचिताश्च सेतुबन्धाः
 सम्प्राप्तं जलमचिरान्निवेदयन्ति ॥ ५ ॥

गिरयो ऽञ्जनपुञ्जसन्निभा
 यदि वा वाष्पनिरुद्धकन्दराः ।
 क्वकवाकुविलोचनोपमाः
 परिवेषाः शशिनश्च दृष्टिदाः ॥ ६ ॥
 विनोपघातेन पिपीलिकाना-
 मण्डोपसङ्क्रान्तिरहिब्यवायः ।
 द्रुमाधिरोहश्च भुजङ्गमानां
 दृष्टेर्निमित्तानि गवां स्रुतं च ॥ ७ ॥
 तरुशिखरोपगताः क्वकलासा
 गगनतलस्थितदृष्टिनिपाताः ।

यदि च गवां रविवीक्षणमूर्ध्वं
 निपतति वारि तदा नचिरेण ॥ ८ ॥
 नेच्छन्ति विनिर्गमं गृहा-
 ड्बुन्वन्ति श्रवणान् खुरानपि ।
 पशवः पशुवच्च कुर्कुरा
 यद्यम्भः पततीति निर्दिशेत् ॥ ९ ॥
 यदा स्थिता गृहपटलेषु कुर्कुरा
 भवन्ति वा यदि विततं दिवोन्मुखाः ।
 दिवा तडिद्यदि च पिनाकिदिग्भवा
 तदा क्षमा भवति समातिवारिणा ॥ १० ॥
 शुककपोतविलोचनसन्निभो
 मधुनिभश्च यदा हिमदीधितिः ।
 प्रतिशशी च यदा दिवि राजते
 पतति वारि तदा नचिराद्विवः ॥ ११ ॥
 स्तनितं निशि विद्युतो दिवा
 रुधिरनिभा यदि दण्डवत् स्थिताः ।
 पवनः पुरतश्च शीतलो
 यदि सलिलस्य तदागमो भवेत् ॥ १२ ॥
 वल्लीनां गगनतलोन्मुखाः प्रवालाः
 स्नायन्ते यदि जलपांशुभिर्विहङ्गाः ।
 सेवन्ते यदि च सरीसृपास्तृणाग्रा-
 ण्यासन्नो भवति तदा जलस्य पातः ॥ १३ ॥

मयूरशुकचापचातकसमानवर्णा यदा
 जपाकुसुमपङ्कजद्युतिमुषश्च सन्धाघनाः ।
 जलोर्मिनगनक्रकच्छपवराहमीनोपमाः
 प्रभूतपुटसञ्चया न तु चिरेण यच्छन्त्यपः ॥१४॥
 पर्यन्तेषु सुधाशशाङ्कधवला मध्ये ऽञ्जनालित्विपः
 स्निग्धा नैकपुटाः क्षरज्जलकणाः सोपानविच्छेदिनः ।
 माहेन्द्रीप्रभवाः प्रयान्त्यपरतः प्राक् चाम्बुपाशोद्भवा
 ये ते वारिमुचस्यजन्ति नचिरादम्भः प्रभूतं भुवि ॥१५॥

शक्रचापपरिघप्रतिस्तर्या
 रोहितो ऽथ तडितः परिवेषाः ।
 उद्गमास्तसमये यदि भानो-
 रादिशेत् प्रचुरमम्बु तदाशु ॥ १६ ॥
 [यदि तित्तिरपचनिभं गगनं
 मुदिताः प्रवदन्ति च पक्षिगणाः ।
 उदयास्तमये सवितुर्द्युनिशं
 विसृजन्ति घना नचिरेण जलम् ॥ १७ ॥]
 यद्यमोघकिरणाः सहस्रगो-
 रस्तभूधरकरा इवोच्छ्रिताः ।
 भूसमं च रसते यदाम्बुद-
 स्तन्महद्भवति दृष्टिलक्षणम् ॥ १८ ॥
 प्रादृषि शीतकरो भृगुपुचात्
 सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः ।

सूर्यसुतान्नवपञ्चमगो वा
 सप्तमगश्च जलागमनाय ॥ १९ ॥
 प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले
 समागमे मण्डलसङ्गमे च ।
 पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते
 दृष्टिर्गते ऽर्के नियमेन चार्द्राम् ॥ २० ॥
 समागमे पतति जलं ज्ञशुक्रयो-
 र्ज्ञजीवयोर्गुरुसितयोश्च सङ्गमे ।
 यमारयोः पवनहुताशजं भयं
 न दृष्टयोरसहितयोश्च सद्गर्हैः ॥ २१ ॥

अग्रतः पृष्ठतो वापि ग्रहाः सूर्यावलम्बिनः ।
 यदा तदा प्रकुर्वन्ति महीमेकार्णवामिव ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सद्यो-
 दृष्टिलक्षणं नामाष्टाविंशो ऽध्यायः ॥ * ॥

फलकुसुमसम्पृष्टिं
 वनस्पतीनां विलोक्य विज्ञेयम् ।
 सुलभत्वं द्रव्याणां
 निष्पत्तिश्चापि सस्यानाम् ॥ १ ॥
 शालेन कलमशाली
 रक्ताशोकेन रक्तशालिश्च ।

पाण्डूकः क्षीरकया
 नीलाशोकेन सूकरकः ॥ २ ॥
 न्यग्रोधेन तु यवक-
 स्तिन्दुकवृद्धा च षष्टिको भवति ।
 अश्वत्येन ज्ञेया
 निष्पत्तिः सर्वसस्यानाम् ॥ ३ ॥
 जम्बूभिस्तिलमाषाः
 शिरीषवृद्धा च कङ्गुनिष्पत्तिः ।
 गोधूमाश्च मधुकै-
 र्यववृद्धिः सप्तपर्णेन ॥ ४ ॥
 अतिमुक्तककुन्दाभ्यां
 कर्पासं सर्षपान्वदेदशनैः ।
 बदरीभिश्च कुलत्यां-
 श्चिरबिल्वेनादिशेन्मुद्गान् ॥ ५ ॥
 अतसी वेतसपुष्पैः
 पलाशकुसुमैश्च कोद्रवा ज्ञेयाः ।
 तिलकेन शङ्खमौक्तिक-
 रजतान्यथ चेद्गुदेन शणः ॥ ६ ॥
 करिणश्च हस्तिकर्णे-
 रादेश्या वाजिनो ऽश्वकर्णेन ।
 गावश्च पाटलाभिः
 कदलीभिरजाविकं भवति ॥ ७ ॥

चम्पककुसुमैः कनकं
 विद्रुमसम्पच्च बन्धुजीवेन ।
 कुरुवकवृद्धा वज्रं
 वैडूर्यं नन्दिकावर्तैः ॥ ८ ॥
 विन्द्याच्च सिन्दुवारेण
 मौक्तिकं कुङ्कुमं कुसुम्भेन ।
 रक्तोत्पलेन राजा
 मन्वी नीलोत्पलेनोक्तः ॥ ९ ॥
 श्रेष्ठी सुवर्णपुष्पैः
 पद्मैर्विप्राः पुरोहिताः कुमुदैः ।
 सौगन्धिकेन बलपति-
 रर्केण हिरण्यपरिवृद्धिः ॥ १० ॥
 आम्रैः श्लेमं भस्मातकै-
 र्भयं पीलुभिस्तथारोग्यम् ।
 खदिरशमीभ्यां दुर्भिष-
 मर्जुनैः शोभना वृष्टिः ॥ ११ ॥
 पिचुमन्दनागकुसुमैः
 सुभिषमथ मारुतः कपित्थेन ।
 निचुलेनावृष्टिभयं
 व्याधिभयं भवति कुटजेन ॥ १२ ॥
 दूर्वाकुशकुसुमाभ्या-
 मिक्षुर्वाह्निश्च कोविदारैण ।

श्यामालताभिवृद्ध्या
 बन्धक्यो वृद्धिमायान्ति ॥ १३ ॥
 यस्मिन्देशे स्निग्धनिष्कृद्रपत्राः
 सन्दृश्यन्ते वृक्षगुल्मा लताश्च ।
 तस्मिन् वृष्टिः शोभना सम्प्रदिष्टा
 रूक्षैश्छिद्रैरल्पमम्भः प्रदिष्टम् ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां कुसुम-
 लताध्याय एकोनत्रिंशो ऽध्यायः ॥ * ॥

आर्धास्तमितानुदितात्
 सूर्यादस्पष्टं नभो यावत् ।
 तावत् सन्ध्याकाल-
 श्चिह्नैरेतैः फलं चास्मिन् ॥ १ ॥
 मृगशकुनपवनपरिवेष-
 परिधिपरिधाभ्रवृक्षसुरचापैः ।
 गन्धर्वनगररविकर-
 दण्डरजःस्नेहवर्णैश्च ॥ २ ॥
 भैरवमुच्चैर्विरुवन्
 मृगो ऽसकृद् ग्रामघातमाचष्टे ।
 रविदीप्तो दक्षिणतो
 महास्वनः सैन्यघातकरः ॥ ३ ॥

अपसव्ये सङ्ग्रामः
 सव्ये सेनासमागमः शान्ते ।
 मृगचक्रे पवने वा
 सन्ध्यायां मिश्रगे वृष्टिः ॥ ४ ॥
 दीप्तमृगाण्डजविरुता
 प्राक् सन्ध्या देशनाशमास्थाति ।
 दक्षिणदिक्स्थैर्विरुता
 ग्रहणाय पुरस्य दीप्तास्यैः ॥ ५ ॥
 गृहतरुतोरणमथने
 सपांशुलोष्टोत्करे ऽनिले प्रबले ।
 भैरवरावे रूक्षे
 खगपातिनि चाशुभा सन्ध्या ॥ ६ ॥
 मन्दपवनावघट्टित-
 चलितपलाशद्रुमा विपवना वा ।
 मधुरस्वरशान्तविहङ्ग-
 मृगरुता पूजिता सन्ध्या ॥ ७ ॥
 सन्ध्याकाले स्निग्धा
 दण्डतडिन्मत्स्यपरिधिपरिवेषाः ।
 सुरपतिचापैरावत-
 रविकिरणाश्चाशु वृष्टिकराः ॥ ८ ॥
 विच्छिन्नविषमविध्वस्त-
 विह्वतकुटिलापसव्यपरिवृत्ताः ।

तनुह्रस्वविकलकलुषाश्च
 विग्रहावृष्टिदाः किरणाः ॥ ९ ॥
 उद्योतिनः प्रसन्ना
 ऋजवो दीर्घाः प्रदक्षिणावर्ताः ।
 किरणाः शिवाय जगतो
 वितमस्के नभसि भानुमतः ॥ १० ॥
 शुक्लाः करा दिनकृतो
 दिवादिमध्यान्तगामिनः स्निग्धाः ।
 अव्युच्छिन्ना ऋजवो
 वृष्टिकरास्ते ह्यमोघाख्याः ॥ ११ ॥
 कल्माषबभ्रुकपिला
 विचित्रमाञ्जिष्ठहरितशबलाभाः ।
 त्रिदिवानुबन्धिने
 वृष्टये ऽल्पभयदास्तु सप्ताहात् ॥ १२ ॥
 ताम्रा बलपतिमृत्युं
 पीतारुणसन्निभाश्च तद्यसनम् ।
 हरिताः पशुसस्यवधं
 धूमसवर्णा गवां नाशम् ॥ १३ ॥
 माञ्जिष्ठाभाः शस्त्राग्नि-
 सम्भ्रमं बभ्रवः पवनवृष्टिम् ।
 भस्मसदृशास्त्ववृष्टिं
 तनुभावं शबलकल्माषाः ॥ १४ ॥

बन्धूकपुष्याञ्जनचूर्णसन्निभं
 सान्धं रजो ऽभ्येति यदा दिवाकरम् ।
 लोकस्तदा रोगशतैर्निपीड्यते
 शुक्लं रजो लोकविवृद्धिशान्तये ॥ १५ ॥
 रविकिरणजलदमरुतां
 सङ्घातो दण्डवत् स्थितो दण्डः ।
 स विदिक्स्थितो नृपाणा-
 मशुभो दिशु द्विजातीनाम् ॥ १६ ॥
 शस्त्रभयातङ्ककरो
 दृष्टः प्राङ्मध्यसन्धिषु दिनस्य ।
 शुक्लाद्यो विप्रादीन्
 यदभिमुखस्तां निहन्ति दिशम् ॥ १७ ॥
 दधिसदृशाग्रो नीलो
 भानुच्छादी खमध्यगो ऽधतरुः ।
 पीतच्छुरिताश्च घना
 घनमूला भूरिवृष्टिकराः ॥ १८ ॥
 अनुलोमगे ऽधवृक्षे
 समुद्गते यायिनो नृपस्य वधः ।
 बालतरुप्रतिरूपिणि
 युवराजामात्ययोर्मृत्युः ॥ १९ ॥
 कुवलयवैडूर्याम्बुज-
 किञ्जल्काभा प्रभञ्जनोन्मुक्ता ।

सन्ध्या करोति वृष्टिं
 रविकिरणोद्भासिता सद्यः ॥ २० ॥
 अशुभाकृतिघनगन्धर्वनगर-
 नीहारपांशुधूमयुता ।
 प्रावृषि करोत्यवग्रह-
 मन्यतां शस्त्रकोपकरो ॥ २१ ॥
 शिशिरादिषु वर्णाः
 शोणपीतसितचिचपद्मरुधिरनिभाः ।
 प्रकृतिभवाः सन्ध्यायां
 स्वर्तां शस्ता विहृतिरन्या ॥ २२ ॥
 आयुधधृन्नररूपं
 छिन्नाभ्रं परभयाय रविगामि ।
 सितखपरे ऽर्काक्रान्ते
 पुरलाभो भेदने नाशः ॥ २३ ॥
 सितनितान्तघनावरणं रवे-
 र्भवति वृष्टिकरं यदि सव्यतः ।
 यदि च वीरणगुल्मनिभैर्घनै-
 र्दिवसभर्तुरदीप्तदिगुद्भवैः ॥ २४ ॥
 नृपविपत्तिकरः परिघः सितः
 क्षतजतुल्यवपुर्बलकोपकृत् ।
 कनकरूपधरो बलवृद्धिदः
 सवितुरुद्गमकालसमुत्थितः ॥ २५ ॥

उभयपार्श्वगतौ परिधी रवेः
 प्रचुरतोयद्वतौ वपुषान्वितौ ।
 अथ समस्तककुप्परिवारिणः
 परिधयो ऽस्ति कणो ऽपि न वारिणः ॥ २६ ॥

ध्वजातपत्रपर्वतद्विपाश्वरूपधारिणः ।

जयाय सन्ध्योर्धना रणाय रक्तसन्निभाः ॥ २७ ॥

पलालधूमसञ्चयस्थितोपमा वलाहकाः ।

बलान्यरूक्षमूर्तयो विवर्धयन्ति भ्रूयताम् ॥ २८ ॥

विलम्बिनो द्रुमोपमाः खरारुणप्रकाशिनः ।

घनाः शिवाय सन्ध्योः पुरोपमाः शुभावहाः ॥ २९ ॥

दीप्तविहङ्गशिवामृगघुष्टा

दण्डरजःपरिघादियुता च ।

प्रत्यहमर्कविकारयुता वा

देशनरेशसुभिन्नवधाय ॥ ३० ॥

प्राची तत्क्षणमेव नक्तमपरा सन्ध्या त्यहाद्वा फलं

सप्ताहात्परिवेषरेणुपरिघाः कुर्वन्ति सद्यो न चेत् ।

तद्वत्सूर्यकरेन्द्रकार्मुकतडित्प्रत्यर्कमेघानिला-

स्तस्मिन्नेव दिने ऽष्टमे ऽथ विहगाः सप्ताहपाका मृगाः ॥

एकं दीप्त्या योजनं भाति सन्ध्या ॥ ३१ ॥

विद्युद्भासा षट् प्रकाशीकरोति ।

पञ्चाब्दानां गर्जितं याति शब्दो

नास्तीयत्ता काचिदुल्कानिपाते ॥ ३२ ॥

प्रत्यर्कसञ्ज्ञः परिधिस्तु तस्य
 चियोजना भा परिघस्य पञ्च ।
 षट् पञ्च दृश्यं परिवेषचक्रं
 दशामरेशस्य धनुर्विभाति ॥ ३३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सन्ध्या-
 लक्षणं नाम चिंशत्तमोऽध्यायः ॥ * ॥

दाहो दिशां राजभयाय पीतो
 देशस्य नाशाय हुताशवर्णः ।
 यश्चारुणः स्यादपसव्यवायुः
 सस्यस्य नाशं स करोति दृष्टः ॥ १ ॥
 यो ऽतीवदीप्त्या कुरुते प्रकाशं
 छायांमपि व्यञ्जयते ऽर्कवद्यः ।
 राज्ञो महद्वेदयते भयं सः
 शस्त्रप्रकोपं क्षतजानुरूपः ॥ २ ॥
 प्राक् क्षत्रियाणां सनरेश्वराणां
 प्राग्दक्षिणे शिल्पिकुमारपीडा ।
 याम्ये सहोग्रैः पुरुषैस्तु वैश्या
 दूताः पुनर्भूमदाश्च कोणे ॥ ३ ॥
 पश्चात्तु शूद्राः कृषिजीविनश्च
 चौरास्तुरङ्गैः सह वायुदिकस्थे ।

पीडां ब्रजन्युत्तरतश्च विप्राः
 पाषण्डिनो वाणिजकाश्च शार्दूयाम् ॥ ४ ॥
 नभः प्रसन्नं विमलानि भानि
 प्रदक्षिणं वाति सदागतिश्च ।
 दिशां च दाहः कनकावदातो
 हिताय लोकस्य सर्पाधिवास्य ॥ ५ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां दिग्दा-
 हलक्षणं नामैकचिंशोऽध्यायः ॥ * ॥

क्षितिकम्पमाहुरेके
 बृहदन्तर्जलनिवासिसत्त्वकृतम् ।
 भूभारखिन्नदिग्गज-
 विश्रामसमुद्भवं चान्ये ॥ १ ॥
 अनिलोऽनिलेन निहतः
 क्षितौ पतन् सस्वनं करोत्येके ।
 केचिन्बृहष्टकारित-
 मिदमन्ये प्राहुराचार्याः ॥ २ ॥
 गिरिभिः पुरा सपद्मै-
 र्वसुधा प्रपतद्भिस्त्वपतद्भिश्च ।
 आकम्पिता पितामह-
 माहामरसदसि सब्रीडम् ॥ ३ ॥

भगवन्नाम ममैत-
 त्तया कृतं यदचलेति तन्न तथा ।
 क्रियते ऽचलैश्चलद्भिः
 शक्ताहं नास्य खेदस्य ॥ ४ ॥
 तस्याः सगद्गदगिरं
 किञ्चित्स्फुरिताधरं विनतमीषत् ।
 साश्रुविलोचनमानन-
 मवलोक्य पितामहः प्राह ॥ ५ ॥
 मन्युं हरेन्द्र धाव्याः
 क्षिप कुलिशं शैलपक्षभङ्गाय ।
 शक्रः कृतमित्युक्त्वा
 मा भैरिति वसुमतीमाह ॥ ६ ॥
 किन्वनिलदहनसुरपति-
 वरुणाः सदसत्फलावबोधार्थम् ।
 प्राग्द्विचिचतुर्भागेषु
 दिननिशोः कम्पयिष्यन्ति ॥ ७ ॥
 चत्वार्यार्यम्णाद्या-
 न्यादित्यं मृगशिरो ऽश्वयुक् चेति ।
 मण्डलमेतद्वायव्य-
 मस्य रूपाणि सप्ताहात् ॥ ८ ॥
 धूमाकुलीकृताशे
 नभसि नभस्वान् रजः क्षिपन् भौमम् ।

विरुजन्दुमांश्च विचरति
 रविरपटुकरावभासी च ॥ ९ ॥
 वायव्ये भूकम्पे
 सस्याम्बुवनौषधीक्षयो ऽभिहितः ।
 श्रयथुश्वासेन्माद-
 ज्वरकासभवा वणिक्पीडा ॥ १० ॥
 रूपायुधभृद्द्वैद्याः
 स्त्रीकविगान्धर्वपण्यशिल्पिजनाः ।
 पीड्यन्ते सौराष्ट्रक-
 कुरुमगधदशार्णमत्स्याश्च ॥ ११ ॥
 पुष्याग्नेयविशाखा-
 भरणीपितृयाजभाग्यसञ्ज्ञानि ।
 वर्गां ह्यैतभुजो ऽयं
 करोति रूपाण्यथैतानि ॥ १२ ॥
 तारोल्कापातावृत-
 मादीप्तमिवाम्बरं सदिग्दाहम् ।
 विचरति मरुत्सहायः
 सप्तार्चिः सप्तदिवसान्तः ॥ १३ ॥
 आग्नेये ऽम्बुदनाशः
 सलिलाशयसङ्गयो नृपतिवैरम् ।
 दद्रूविचर्चिकाज्वर-
 विसर्पिकाः पाण्डुरोगश्च ॥ १४ ॥

दीप्तौजसः प्रचण्डाः
 पीद्यन्ते चाश्रमकाङ्गबाह्लीकाः ।
 तङ्गणकलिङ्गवङ्ग-
 द्रविडाः शबराश्च नैकविधाः ॥ १५ ॥
 अभिजिह्ववणधनिष्ठा-
 प्राजापत्यैन्द्रवैश्वमैत्राणि ।
 सुरपतिमण्डलमेत-
 द्भवन्ति चास्य स्वरूपाणि ॥ १६ ॥
 चलिताचलवर्षाणो
 गम्भीरविराविणस्तडित्वन्तः ।
 गवलालिकुलार्हनिभा
 विस्तृजन्ति पयः पयोवाहाः ॥ १७ ॥
 ऐन्द्रं श्रुतिकुलजाति-
 ख्यातावनिपालगणपविर्धंसि ।
 अतिसारगलग्रहवदन-
 रोगकृच्छर्दिकोपाय ॥ १८ ॥
 काशियुगन्धरपौरव-
 किरातकीराभिसारहलमद्राः ।
 अर्बुदसुवास्तुमालव-
 पीडाकरमिष्टदृष्टिकरम् ॥ १९ ॥
 पौष्णाप्यार्द्राश्लेषा-
 मूलाहिर्बुध्वरुणदेवानि ।

मण्डलमेतदारुण-
 मस्यापि भवन्ति रूपाणि ॥ २० ॥
 नीलोत्पलालिभिन्ना-
 ज्ञनत्विषो मधुरराविषो बहुलाः ।
 तडिदुङ्गासितदेहा
 धाराङ्कुशवर्षिणो जलदाः ॥ २१ ॥
 वारुणमर्णवसरि-
 दाश्रितघ्नमतिदृष्टिदं विगतवैरम् ।
 गोनर्दचेदिकुकुरान्
 किरातवैदेहकान् हन्ति ॥ २२ ॥
 षड्भिर्मासैः कम्पो
 द्वाभ्यां पाकं च याति निर्घातः ।
 अन्यानप्युत्पातान्
 जगुरन्धे मण्डलैरेतैः ॥ २३ ॥
 [उल्का हरिश्चन्द्रपुरं रजश्च
 निर्घातभकम्पककुम्भदाहाः ।
 वातो ऽतिचण्डो ग्रहणं रवीन्दो-
 र्नक्षत्रारागणवैद्यतानि ॥ २४ ॥
 व्यध्रे दृष्टिवैद्यतं वातदृष्टि-
 धूमो ऽनग्नेर्विस्फुलिङ्गार्चिषो वा ।
 वन्यं सत्त्वं ग्राममध्ये विज्ञेद्वा
 राचावैन्द्रं कार्मुकं दृश्यते वा ॥ २५ ॥

सन्ध्याविकाराः परिवेषखण्डा
 नद्यः प्रतीपा दिवि तूर्यनादाः ।
 अन्यच्च यत्स्यात् प्रकृतेः प्रतीपं
 तन्मण्डलैरेव फलं निगाद्यम् ॥ २६ ॥]
 हन्त्यैन्द्रो वायव्यं
 वायुश्चाप्यैन्द्रमेवमन्योऽन्यम् ।
 वारुणह्यैतभुजावपि
 वेलानक्षत्रजाः कम्पाः ॥ २७ ॥
 प्रथितनरेश्वरमरण-
 व्यसनान्याग्नेयवायुमण्डलयोः ।
 क्षुब्धयमरकावृष्टिभि-
 रूपताप्यन्ते जनाश्चापि ॥ २८ ॥
 वारुणपौरन्दरयोः
 सुभिक्षुशिववृष्टिहार्दयो लोके ।
 गावो ऽतिभूरिपयसो
 निवृत्तवैराश्च भूपालाः ॥ २९ ॥
 पक्षैश्चतुर्भिरनिल-
 स्त्रिभिरग्निर्देवराट् च सप्ताहात् ।
 सद्यः फलति च वरुणो
 येषु न कालो ऽद्भुतेषूक्तः ॥ ३० ॥
 चलयति पवनः शतद्वयं
 शतमनलो दशयोजनान्वितम् ।

सलिलपतिरशीतिसंयुतं
 कुलिशधरो ऽभ्यधिकं च षष्टिकम् ॥ ३१ ॥
 त्रिचतुर्थसप्तमदिने
 मासे पक्षे तथा त्रिपक्षे च ।
 यदि भवति भूमिकम्पः
 प्रधानवृषनाशने भवति ॥ ३२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां भूमि-
 कम्पलक्षणं नाम द्वात्रिंशो ऽध्यायः ॥ ० ॥

दिवि भुक्तशुनफलानां
 पततां रूपाणि यानि तान्युक्त्वाः ।
 धिष्ण्योक्त्वाशनिविद्युत्तारा
 इति पञ्चधा भिन्नाः ॥ १ ॥
 उक्त्वा पक्षेण फलं
 तद्वद्विष्ण्याशनिस्त्रिभिः पक्षैः ।
 विद्युदहोभिः षड्भि-
 स्तद्वत्तारा विपाचयति ॥ २ ॥
 तारा फलपादकरी
 फलार्धदात्री प्रकीर्तिता धिष्ण्या ।
 तिस्रः सम्पूर्णाफला
 विद्युदयोक्त्वाशनिश्चेति ॥ ३ ॥

अशनिः स्वनेन महता
 नृगजाश्वमृगाश्ववेष्टतरुपशुषु ।
 निपतति विदारयन्ती
 धरातलं चक्रसंस्थाना ॥ ४ ॥
 विद्युत्सत्त्वचासं
 जनयन्ती तटतटस्वना सहसा ।
 कुटिलविशाला निपतति
 जीवेन्धनराशिषु ज्वलिता ॥ ५ ॥
 धिष्ण्या कृशाल्यपुच्छा
 धनूंषि दश दृश्यते ऽन्तराभ्यधिकम् ।
 ज्वलिताङ्गारनिकाशा
 द्वा हस्तौ सा प्रमाणेन ॥ ६ ॥
 तारा हस्तं दीर्घा
 शुक्ला ताम्राजतन्तुरूपा वा ।
 तिर्यग्धश्चोर्ध्वं वा
 याति वियत्युह्यमानेव ॥ ७ ॥
 उल्का शिरसि विशाला
 निपतन्ती वर्धते प्रतनुपुच्छा ।
 दीर्घा भवति च पुरुषं
 भेदा बहवो भवन्त्यस्याः ॥ ८ ॥
 प्रेतप्रहरणखरकरभ-
 नक्रकपिदंष्ट्रिखलाङ्गलमृगाभाः ।

गोधाहिधूमरूपाः

पापा या चोभयशिरस्का ॥ ९ ॥

ध्वजझषकरिगिरिकमलेन्दु-

तुरगसन्तप्तरजतहंसाभाः ।

श्रीवत्सवज्रशङ्ख-

स्वस्तिकरूपाः शिवसुभिक्षाः ॥ १० ॥

अम्बरमध्यादहो

निपतन्त्यो राजराष्ट्रनाशाय ।

बन्धमती गगनोपरि

विभ्रममाख्याति लोकस्य ॥ ११ ॥

संसृशती चन्द्राकौ

तद्विस्तृता वा सभूपकम्पा च ।

परचक्रागमन्तपवध-

दुर्भिक्षाष्टिभयजननी ॥ १२ ॥

पौरेतरघ्नमुल्का-

पसव्यकरणं दिवाकरहिमांश्वोः ।

उल्का शुभदा पुरतो

दिवाकरविनिःस्तृता यातुः ॥ १३ ॥

शुक्ला रक्ता पीता

कृष्णा चोल्का द्विजादिवर्णघ्नी ।

क्रमशश्चैतान् हन्यु-

र्मूर्धारःपार्श्वपुच्छस्थाः ॥ १४ ॥

उत्तरदिगादिपतिता
 विप्रादीनामनिष्टदा रूक्षा ।
 ऋज्वी स्निग्धाखण्डा
 नीचापगता च तद्दृष्टौ ॥ १५ ॥
 श्यामा वारुणनीला-
 सृग्दहनासितभस्मनिभा रूक्षा ।
 सन्ध्यादिनजा वक्रा
 दलिता च परागमभयाय ॥ १६ ॥
 नक्षत्रग्रहघाते
 तद्भक्तानां क्षयाय निर्दिष्टा
 उदये घृती रवीन्द्र
 पौरेतरमृत्यवे ऽस्ते वा ॥ १७ ॥
 भाग्यादित्यधनिष्ठा-
 मूलेषूल्काहतेषु युवतीनाम् ।
 विप्रक्षत्रियपीडा
 पुष्यानिलविष्णुदेवेषु ॥ १८ ॥
 ध्रुवसौम्येषु नृपाणा-
 मुग्रेषु सदारुणेषु चौराणाम् ।
 क्षिप्रेषु कलाविदुषां
 पीडा साधारणे च हते ॥ १९ ॥
 कुर्वन्धेताः पतिता
 देवप्रतिमासु राजराष्ट्रभयम् ।

शक्रोपरि नृपतीनां
गृहेषु तत्त्वामिनां पीडाम् ॥ २० ॥

आशाग्रहोपघाते
तद्देश्यानां खले कृषिरतानाम् ।

चैत्यतरौ सम्पतिता
सत्कृतपीडां करोत्युक्ता ॥ ११ ॥

द्वारि पुरस्य पुरश्चय-
मथेन्द्रकीले जनक्षयो ऽभिहितः ।

ब्रह्मायतने विप्रान्
विनिहन्याङ्गोमिनो गोष्ठे ॥ २२ ॥

स्वेडास्फोटितवादित-
गीतोत्क्रुष्टस्वना भवन्ति यदा ।

उक्कानिपातसमये
भयाय राष्ट्रस्य सन्दपस्य ॥ २३ ॥

यस्याश्चिरं तिष्ठति खे ऽनुषङ्गे

दण्डाकृतिः सा नृपतेर्भयाय ।

या चोच्चते तन्तुधृतेव खस्था

या वा महेन्द्रध्वजतुल्यरूपा ॥ २४ ॥

श्रेष्ठिनः प्रतीपगा तिर्यगा नृपाङ्गनाः ।

हन्यथोमुखी नृपान् ब्राह्मणानथोर्ध्वगा ॥ २५ ॥

वर्हिपुच्छरूपिणी लोकसङ्ख्यावहा ।

सर्पवत् प्रसर्पिणी योषितामनिष्टदा ॥ २६ ॥

इन्ति मण्डला पुरं छचवत् पुरोहितम् ।
 वंशगुल्मवत् स्थिता राष्ट्रदोषकारिणी ॥ २७ ॥
 व्यालसूकरोपमा विस्फुलिङ्गमालिनी ।
 खण्डशो ऽथवा गता सस्वना च पापदा ॥ २८ ॥
 सुरपतिचापप्रतिमा राज्यं
 नभसि विलीना जलदान् इन्ति ।
 पवनविलोमा कुटिलं याता
 न भवति शस्ता विनिवृत्ता वा ॥ २९ ॥
 अभिभवति यतः पुरं बलं वा
 भवति भयं तत एव पार्थिवस्य ।
 निपतति च यया दिशा प्रदीप्ता
 जयति रिपूनचिरान्तया प्रयातः ॥ ३० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृहत्संहितायामुक्ता-
 लक्षणं नाम त्रयस्त्रिंशो ऽध्यायः ॥ • ॥

सम्मूर्च्छिता रवीन्दोः
 किरणाः पवनेन मण्डलीभ्रूताः ।
 नानावर्णास्ततय-
 स्तन्वध्रे व्योम्नि परिवेषाः ॥ १ ॥
 ते रक्तनीलपाण्डुर-
 कापोताश्चाभशबलहरिशुक्लाः ।

इन्द्रयमवरुणनिर्घृति-
 श्वसनेशपितामहाग्निहताः ॥ २ ॥
 धनदः करोति मेचक-
 मन्योऽन्यगुणाश्रयेण चाप्यन्ये ।
 प्रविलीयते मुहुर्मुहु-
 रल्पफलः सोऽपि वायुहृतः ॥ ३ ॥
 चाषशिखिरजततैल-
 क्षीरजलाभः स्वकालसम्भूतः ।
 अविकलवृत्तः स्निग्धः
 परिवेषः शिवसुभिक्षकरः ॥ ४ ॥
 सकलगगनानुचारी
 नैकाभः क्षतजसन्निभो रूक्षः ।
 असकलशकटशरासन-
 शृङ्गाटकवत्स्थितः पापः ॥ ५ ॥
 शिखिगलसमेऽतिवर्षं
 बहुवर्णं नृपवधो भयं धूम्रे ।
 हरिचापनिभे युद्धा-
 न्यशोककुसुमप्रभे चापि ॥ ६ ॥
 वर्णेनैकेन यदा
 बहुलः स्निग्धः क्षुराभकाकीर्णः ।
 स्वर्तो सद्योवर्षं
 करोति पीतश्च दीप्तार्कः ॥ ७ ॥

दीप्तविहङ्गमृगरुतः
 कलुषः सन्ध्याचयोत्थितो ऽतिमहान् ।
 भयकृत्तडिदुस्काद्यै-
 र्हतो नृपं हन्ति शस्त्रेण ॥ ८ ॥
 प्रतिदिनमर्कहिमांश्वो-
 रहर्निशं रक्तयोर्नरेन्द्रवधः ।
 परिविष्टयोरभीक्ष्णं
 लग्नास्तनभःस्थयोस्तद्वत् ॥ ९ ॥
 सेनापतेर्भयकरो
 द्विमण्डलो नाति शस्त्रकोपकरः ।
 चिप्रभृति शस्त्रकोपं
 युवराजभयं नगररोधम् ॥ १० ॥
 वृष्टिस्थहेण मासेन
 विग्रहो वा ग्रहेन्दुभनिरोधे ।
 हेराजन्माधिपयो-
 र्जन्मर्क्षं वाशुभो राक्षः ॥ ११ ॥
 परिवेषमण्डलगतो
 रवितनयः क्षुद्रधान्यनाशकरः ।
 जनयति च वातवृष्टिं
 स्थावरकृषिकृन्निहन्ता च ॥ १२ ॥
 भौमे कुमारबलपति-
 सैन्यानां विद्रवो ऽग्निशस्त्रभयम् ।

जीवे परिवेषगते
 पुरोहितामात्यन्टपपीडा ॥ १३ ॥
 मन्त्रिस्थावरलेखक-
 परिवृद्धिश्चन्द्रजे सुदृष्टिश्च ।
 शुक्रे यायिस्तच्चिय-
 राज्ञां पीडा प्रियं चान्नम् ॥ १४ ॥
 क्षुदनलमृत्युनराधिप-
 शस्त्रेभ्यो जायते भयं केतौ ।
 परिविष्टे गर्भभयं
 राहौ व्याधिर्नृपभयं च ॥ १५ ॥
 युद्धानि विजानीयात्
 परिवेषाभ्यन्तरे द्वयोर्ग्रहयोः ।
 दिवसकृतः शशिनो वा
 क्षुददृष्टिभयं त्रिषु प्रोक्तम् ॥ १६ ॥
 याति चतुर्षु नरेन्द्रः
 सामात्यपुरोहितो वशं मृत्योः ।
 प्रलयमिव विद्धि जगतः
 पञ्चादिषु मण्डलस्थेषु ॥ १७ ॥
 ताराग्रहस्य कुर्यात्
 पृथगेव समुत्थितो नरेन्द्रवधम् ।
 नक्षत्राणामथवा
 यदि केतोर्नोदयो भवति ॥ १८ ॥

विप्रक्ष्विचयविट्छद्रहा
 भवेत् प्रतिपदादिषु क्रमशः ।
 श्रेणीपुरकोशानां
 पञ्चम्यादिष्वुभकारो ॥ १९ ॥
 युवराजस्याष्टम्यां
 परतस्त्रिषु पार्थिवस्य दोषकरः ।
 पुररोधो द्वादश्यां
 सैन्यश्लोभस्त्रयोदश्याम् ॥ २० ॥
 नरपतिपत्नीपीडां
 परिवेषो ऽभ्युत्थितश्चतुर्दश्याम् ।
 कुर्यात् तु पञ्चदश्यां
 पीडां मनुजाधिपस्यैव ॥ २१ ॥
 नागरकाणामभ्यन्तर-
 स्थिता यायिनां च वाह्यस्था ।
 परिवेषमध्यरेखा
 विज्ञेयाक्रन्दसाराणाम् ॥ २२ ॥
 रक्तः श्यामो रूक्षश्च
 भवति येषां पराजयस्तेषाम् ।
 क्षिग्धः श्वेतो द्युतिमान्
 येषां भागो जयस्तेषाम् ॥ २३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां परि-
 वेषलक्षणं नाम चतुस्त्रिंशो ऽध्यायः ॥ * ॥

सूर्यस्य विविधवर्णाः
 प्रवनेन विघट्टिताः कराः साश्वे ।
 वियति धनुःसंस्थाना
 ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः ॥ १ ॥
 केचिदनन्तकुलोरग-
 निःश्वासोद्भूतमाहुराचार्याः ।
 तद्यायिनां नृपाणा-
 मभिमुखमजयावहं भवति ॥ २ ॥
 अच्छिन्नमवनिगाढं
 द्युतिमत्स्रग्धं घनं विविधवर्णम् ।
 द्विरुदितमनुलोमं च
 प्रशस्तमम्भः प्रयच्छति च ॥ ३ ॥
 विदिगुद्भूतं दिक्स्वामि-
 नाशनं व्यभजं मरककारि ।
 पाटलपोतकनीलैः
 शस्त्राग्निष्कुक्ता दोषाः ॥ ४ ॥
 जलमध्ये ऽनादृष्टि-
 र्भुवि सस्यवधस्तरौ स्थिते व्याधिः ।
 वल्मीके शस्त्रभयं
 निशि सचिववधाय धनुरैन्द्रम् ॥ ५ ॥
 दृष्टिं करोत्यदृष्ट्यां
 दृष्टिं दृष्ट्यां निवारयत्यैन्द्याम् ।

पश्चात् सदैव दृष्टिं
 कुलिशभृतश्चापमाचष्टे ॥ ६ ॥
 चापं मघोनः कुरुते निशायाम्
 आखण्डलायां दिशि भूपपीडाम् ।
 याम्यापरोदकप्रभवं निहन्यात्
 सेनापतिं नायकमन्त्रिणौ च ॥ ७ ॥
 निशि सुरचापं सितवर्णाद्यं
 जनयति पीडां द्विजपूर्वाणाम् ।
 भवति च यस्यां दिशि तद्देश्यं
 नरपतिमुख्यं नचिराद्बन्धात् ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामिन्द्रा-
 युधलक्षणं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ * ॥

उदगादिपुरोहितनृप-
 बलपतियवराजदोषदं खपुरम् ।
 सितरक्तपीतवृष्णां
 विप्रादीनामभावाय ॥ १ ॥
 नागरनृपतिजयावह-
 मुद्गं विदिकस्थं विवर्णनाशाय ।
 शान्ताशयां दृष्टं
 सतोरणं नृपतिविजयाय ॥ २ ॥

सर्वदिगत्यं सततोत्थितं च
 भयदं नरेन्द्रराघ्राणाम् ।
 चौराटविकान् हन्या-
 हूमानलशक्रचापाभम् ॥ ३ ॥
 गन्धर्वनगरमुत्थित-
 मापाण्डुरमशनिपातवातकरम् ।
 दीप्ते नरेन्द्रमृत्यु-
 र्वामे ऽरिभयं जयः सव्ये ॥ ४ ॥
 अनेकवर्णाकृति खे प्रकाशते
 पुरं पताकाध्वजतोरणान्वितम् ।
 यदा तदा नागमनुष्यवाजिनां
 पिबत्यस्तृग्भूरि रणे वसुन्धरा ॥ ५ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां गन्धर्व-
 नगरलक्षणं नाम षट्त्रिंशो ऽध्यायः ॥ ० ॥

प्रतिस्वर्यकः प्रशस्तो
 दिवसकृद्दुर्वर्णसप्रभः स्निग्धः ।
 वैडूर्यनिभः स्वच्छः
 शुक्लश्च क्षेमसौभिहः ॥ १ ॥
 पीतो व्याधिं जनय-
 त्यशोकरूपश्च शस्त्रकोपाय ।

प्रतिसूर्याणां माला
 दस्युभयातङ्कनृपहन्त्रो ॥ २ ॥
 दिवसकृतः प्रतिसूर्यो
 जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितो ऽनिलकृत ।
 उभयस्थः सलिलभयं
 नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा ॥ ३ ॥

इति श्रोवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रतिसू-
 र्यलक्षणं नाम सप्तत्रिंशो ऽध्यायः ॥ ० ॥

[कथयन्ति पार्थिववधं
 रजसा घनतिमिरसञ्चयनिभेन ।
 अविभाव्यमानगिरिपुर-
 तरवः सर्वा दिशश्छन्नाः ॥ १ ॥
 यस्यां दिशि धूमचयः
 प्राक् प्रभवति नाशमेति वा यस्याम् ।
 आगच्छति सप्ताहात्
 तत्रैव भयं न सन्देहः ॥ २ ॥
 श्वेते रजोघनौघे
 पीडा स्यान्मन्त्रिजनपदानां च ।
 नचिरात् प्रकोपमुपयाति
 शस्त्रमतिसङ्कुला सिद्धिः ॥ ३ ॥

अर्कोदये विजृम्भति
 यदि दिनमेकं दिनद्वयं वापि ।
 स्थगयन्निव गगनतलं
 भयमत्युग्रं निवेदयति ॥ ४ ॥
 अनवरतसञ्चयवहं
 रजनीमेकां प्रधाननृपहन्तृ ।
 श्लेमाय च श्लेषाणां
 विचक्षणानां नरेन्द्राणाम् ॥ ५ ॥
 रजनीद्वयं विसर्पति
 यस्मिन् राष्ट्रे रजोधनं बहुलम् ।
 परचक्रस्यागमनं
 तस्मिन्नपि सन्निबोद्धव्यम् ॥ ६ ॥
 निपतति रजनीचितयं
 चतुष्कमप्यन्नरसविनाशाय ।
 राज्ञां सैन्यशोभो
 रजसि भवेत् प्रञ्चरात्रभवे ॥ ७ ॥
 केत्वाद्युदयविमुक्तं
 यदा रजो भवति तीव्रभयदायि ।
 शिशिरादन्यत्रैता
 फलमविकलमाहुराचार्याः ॥ ८ ॥

[इति रजोलक्षणम् ॥ ३८ ॥]

पवनः पवनाभिहतो
 गगनादवनौ यदा समापतति ।
 भवति तदा निर्घातः
 स च पापो दीप्तविहगरुतः ॥ १ ॥
 अर्कोदये ऽधिकरणिक-
 नृपधनियोधाङ्गनावणिग्वेश्याः ।
 आप्रहरांशे ऽजाविक-
 मुपहन्याच्छूद्रपौरांश्च ॥ २ ॥
 आ मध्याह्नाद्राजोपसेविना
 ब्राह्मणांश्च पोडयति ॥
 वैश्यजलदांस्तृतीये
 चौरान् प्रहरे चतुर्थे च ॥ ३ ॥
 अस्तं याते नीचान्
 प्रथमे यामे निहन्ति सस्यानि ।
 रात्रौ द्वितीययामे
 पिशाचसङ्घान्निपीडयति ॥ ४ ॥
 तुरगकरिणस्तृतीये
 विनिहन्याद्यायिनश्चतुर्थे च ।
 भैरवजर्जरशब्दे
 याति यतस्तां दिशं हन्ति ॥ ५ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृहत्संहितायां नि-
 धातलक्षणं नामैकोनचत्वारिंशो ऽध्यायः ॥ * ॥

वृश्चिकवृषप्रवेशे
 भानोर्ये बादरायणेनोक्ताः ।
 ग्रीष्मशरत्सस्यानां
 सदसद्योगाः कृतास्त इमे ॥ १ ॥
 भानोरलिप्रवेशे
 केन्द्रैस्तस्माच्छुभग्रहाक्रान्तैः ।
 बलवद्भिः सौम्यैर्वा
 निरोक्षितैर्ग्रीष्मिकविष्टभिः ॥ २ ॥
 अष्टमराशिगते ऽर्के
 गुरुशशिनोः कुम्भसिंहस्थितयोः ।
 सिंहघटसंस्थयोर्वा
 निष्पत्तिर्ग्रीष्मसस्यस्य ॥ ३ ॥
 अर्कात्सिते द्वितीये
 बुधे ऽथवा युगपदेव वा स्थितयोः ।
 व्ययगतयोरपि तद्व-
 न्निष्पत्तिरतीव गुरुदृष्ट्या ॥ ४ ॥
 शुभमध्ये ऽलिनि सूर्या-
 द्गुरुशशिनोः सप्तमे परा सम्पत् ।
 अल्पादिस्थे सवितरि
 गुरौ द्वितीये ऽर्धनिष्पत्तिः ॥ ५ ॥
 लाभहिबुकार्थयुक्तैः
 सूर्यादलिगात्सितेन्दुशशिपुत्रैः ।

सस्यस्य परा सम्पत्
 कर्मणि जीवे गवां चाग्न्या ॥ ६ ॥
 कुम्भे गुरुर्गवि शशी
 सूर्यो ऽलिमुखे कुजार्कजौ मकरे ।
 निष्पत्तिरस्ति महती
 पश्चात् परचक्ररोगभयम् ॥ ७ ॥
 मध्ये पापग्रहयोः
 सूर्यः सस्यं विनाशयत्यलिगः ।
 पापः सप्तमराशौ
 जातं जातं विनाशयति ॥ ८ ॥
 अर्थस्थाने क्रूरः
 सौम्यैरनिरीक्षितः प्रथमजातम् ।
 सस्यं निहन्ति पश्चा-
 दुप्तं निष्पादयेद्यत्नम् ॥ ९ ॥
 जामिचकेन्द्रसंस्थौ
 क्रूरौ सूर्यस्य वृश्चिकस्थस्य ।
 सस्यविपत्तिं कुरुतः
 सौम्यैर्दृष्टौ न सर्वत्र ॥ १० ॥
 वृश्चिकसंस्थादकात्
 सप्तमषष्ठोपगौ यदा क्रूरौ ।
 भवति तदा निष्पत्तिः
 सस्यानामर्घपरिहानिः ॥ ११ ॥

विधिनानेनैव रवि-
 र्दृषप्रवेशे शरत्समुत्थानाम् ।
 विज्ञेयः सस्यानां
 नाशाय शिवाय वा तज्जैः ॥ १२ ॥
 त्रिषु मेघादिषु सूर्यः
 सौम्ययुतो वीक्षितो ऽपि वा विचरन् ।
 ग्रष्णिकधान्यं कुरुते
 समर्थमभयोपयोग्यं च ॥ १३ ॥
 कार्मुकमृगघटसंस्थः
 शारदस्य तद्वदेव रविः ।
 सङ्ग्रहकाले ज्ञेयो
 विपर्ययः क्रूरहग्यागात् ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सस्य-
 जातकं नाम चत्वारिंशो ऽध्यायः ॥ * ॥

ये येषां द्रव्याणा-
 मधिपतयो राशयः समुद्दिष्टाः ।
 मुनिभिः शुभाशुभार्थं
 तानाममतः प्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥
 वस्त्राविककुतुपानां
 मसूरगोधूमरालूकयवानाम् ।

स्थलसम्भवौषधीनां
 कनकस्य च कीर्तितो मेषः ॥ २ ॥
 गवि वस्त्रकुसुमगोधूम-
 शालियवमहिषसुरभितनयाः स्युः ।
 मिथुने ऽपि धान्यशारद-
 वल्लीशालूककर्पासाः ॥ ३ ॥
 कर्किणि कोद्रवकदली-
 दूर्वाफलकन्दपचचोचानि ।
 सिंहे तुषधान्यरसाः
 सिंहादीनां त्वचः सगुडाः ॥ ४ ॥
 षष्ठे ऽतसीकलायाः
 कुलत्यगोधूममुद्गनिष्पावाः ।
 सप्तमराशौ माषा
 गोधूमाः सर्षपाः सयवाः ॥ ५ ॥
 अष्टमराशाविष्टुः
 सैक्यं लोहान्यजाविकं चापि ।
 नवमे तु तुरगलवणा-
 म्बरास्त्रतिलधान्यमूलानि ॥ ६ ॥
 मकरे तरुगुल्माद्यं
 सैक्येषु सुवर्णाक्षुण्णलोहानि ।
 कुम्भे सलिलजफलकुसुम-
 रत्नचिचाणि रूपाणि ॥ ७ ॥

मीने कपालसम्भव-
 रत्नान्यम्बूद्भवानि वज्राणि ।
 स्नेहाश्च नैकरूपा
 व्यास्थाता मत्स्यजातं च ॥ ८ ॥
 राशेश्चतुर्दशार्थाय-
 सप्तनवपञ्चमस्थितो जीवः ।
 द्वाकादशदशपञ्चाष्टमेषु
 शशिजश्च वृद्धिकरः ॥ ९ ॥
 षट्सप्तमगो हानिं
 वृद्धिं शुक्रः करोति शेषेषु ।
 उपचयसंस्थाः क्रूराः
 शुभदाः शेषेषु हानिकराः ॥ १० ॥
 राशेर्यस्य क्रूराः
 पीडास्थानेषु संस्थिता बलिनः ।
 तत्रोक्तद्रव्याणां
 महार्घता दुर्लभत्वं च ॥ ११ ॥
 दृष्टस्थाने सौम्या
 बलिना येषां भवन्ति राशीनाम् ।
 तद्रव्याणां वृद्धिः
 सामर्थ्यमदुर्लभत्वं च ॥ १२ ॥
 गोचरपीडायामपि
 राशिर्बलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः ।

पीडां न करोति तथा
क्रूरैरेवं विपर्यासः ॥ १३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृहत्संहितायां द्रव्यनि-
श्चयो नामैकचत्वारिंशो ऽध्यायः ॥ * ॥

अतिवृष्ट्युल्कादण्डान्
परिवेषग्रहणपरिधिपूर्वांश्च ।
दृष्टामावास्याया-
मुत्पातान् पूर्णमास्यां च ॥ १ ॥
ब्रूयादर्धविशेषान्
प्रतिमासं राशिषु क्रमात्सूर्ये ।
अन्यतिथावुत्पाता
ये ते डमरार्तये राज्ञाम् ॥ २ ॥
मेषोपगते सूर्ये
ग्रीष्मजधान्यस्य सङ्ग्रहं कुर्यात् ।
वनमूलफलस्य वृषे
चतुर्थमासे तयोर्लाभः ॥ ३ ॥
मिथुनस्थे सर्वरसान्
धान्यानि च सङ्ग्रहं समुपनीय ।
षष्ठे मासे विपुलं
विक्रीणन् प्रामुयास्त्राभम् ॥ ४ ॥

कर्किण्यर्के मधुगन्ध-
 तैलघृतफाणितानि विनिधाय ।
 द्विगुणा द्वितीयमासे
 लब्धिर्हीनाधिके छेदः ॥ ५ ॥
 सिंहे सुवर्णमणिचर्म-
 वर्मशस्त्राणि मैत्रिकं रजतम् ।
 पञ्चममासे लब्धि-
 विक्त्रे तुरतो ऽन्यथा छेदः ॥ ६ ॥
 कन्यागते दिनकरे
 चामरखरकरभवाजिनां क्रेता ।
 षष्ठे मासे द्विगुणं
 लाभमवाप्नोति विक्रीणन् ॥ ७ ॥
 तैलानि तान्तवभाण्डं
 मणिकम्बलकाचपीतकुसुमानि ।
 आद्याद्यान्यानि च
 षण्मासाद्विगुणिता वृद्धिः ॥ ८ ॥
 वृश्चिकसंस्थे सवितरि
 फलकन्दकमूलविविधरत्नानि ।
 वर्षद्वयमुषितानि
 द्विगुणं लाभं प्रयच्छन्ति ॥ ९ ॥
 चापगते गृह्णीयात्
 कुङ्कुमशङ्खप्रवालकाचानि ।

मुक्ताफलानि च ततो
 वर्षार्धाद्विगुणतां यान्ति ॥ १० ॥
 मृगघटगे गृह्णीयाद्
 दिवाकरे लोहभाण्डधान्यानि ।
 स्थित्वा मासं दद्या-
 त्त्वाभार्थी द्विगुणमाप्नोति ॥ ११ ॥
 सवितरि श्लघमुपयाते
 मूलफलं कन्दभाण्डरत्नानि ।
 संस्थाप्य वत्सराधं
 लाभकमिष्टं समाप्नोति ॥ १२ ॥
 राशौ राशौ यस्मिन्
 शिशिरमयूखः सहस्रकिरणो वा ।
 युक्तो ऽधिमिचदृष्ट-
 स्तत्रायं लाभको दिष्टः ॥ १३ ॥

ऽवितृसहितः सम्पूर्णा वा शुभैर्युतवोक्षितः
 शशिरकिरणः सद्यो ऽर्घ्यस्य प्रवृद्धिकरः स्मृतः ।
 प्रशुभसहितः सन्दृष्टो वा हिनस्त्यथवा रविः
 तितृहगतान् भावान् बुद्ध्वा वदेत्सदसत् फलम् ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामर्घका-
 ङं नाम द्वाचत्वारिंशो ऽध्यायः ॥ • ॥

ब्रह्माणमूचुरमरा
 भगवच्छक्ताः स्म नासुरान्समरे ।
 प्रतियोधयितुमतस्त्वां
 शरण्यशरणं समुपयाताः ॥ १ ॥
 देवानुवाच भगवान्
 क्षीरोदे केशवः स वः केतुम् ।
 यं दास्यति तं दृष्ट्वा
 नाजौ स्थास्यन्ति वो दैत्याः ॥ २ ॥
 लब्धवराः क्षीरोदं
 गत्वा ते तुष्टुदुः सुराः सेन्द्राः ।
 श्रीवत्साङ्गं कैस्तुभ-
 मणिकिरणोद्भासितोरस्कम् ॥ ३ ॥
 श्रीपतिमचिन्त्यमसमं
 समन्ततः सर्वदेहिनां सूक्ष्मम् ।
 परमात्मानमनादिं
 विष्णुमविज्ञातपर्यन्तम् ॥ ४ ॥
 तैः संस्तुतः स देव-
 स्तुतोष नारायणो ददौ चैषाम् ।
 ध्वजमसुरसुरबधूमुख-
 कमलवनतुषारतीक्ष्णांशुम् ॥ ५ ॥
 तं विष्णुतेजोभवमष्टचक्रे
 रथे स्थितं भास्वति रत्नचित्रे ।

देदीप्यमानं शरदीव सूर्यं
 ध्वजं समासाद्य मुमोद शक्रः ॥ ६ ॥
 सकिङ्किणीजालपरिस्कृतेन
 सक्छत्रघण्टापिटकान्वितेन ।
 समुच्छ्रितेनामरराड् ध्वजेन
 निन्ये विनाशं समरे ऽरिसैन्यम् ॥ ७ ॥
 उपरिचरस्यामरपो
 वसोर्ददौ चेदिपस्य वेणुमयीम् ।
 यष्टिं तां स नरेन्द्रो
 विधिवत्सम्पूजयामास ॥ ८ ॥
 प्रीतो महेन मघवान्
 प्राहैवं ये नृपाः करिष्यन्ति ।
 वसुवद्वसुमन्तस्ते
 भुवि सिद्धाज्ञा भविष्यन्ति ॥ ९ ॥
 मुदिताः प्रजाश्च तेषां
 भयरोगविवर्जिताः प्रभूतान्नाः ।
 ध्वज एव चाभिधास्यति
 जगति निमित्तैः फलं सदसत् ॥ १० ॥
 पूजा तस्य नरेन्द्रै-
 बलवृद्धिजयार्थिभिर्यथा पूर्वम् ।
 शक्राज्ञया प्रयुक्ता
 तामागमतः प्रवक्ष्यामि ॥ ११ ॥

तस्य विधानं शुभकरण-
 दिवसनक्षत्रमङ्गलमुहूर्तैः ।
 प्रास्थानिकैर्वनमिया-
 ह्वैवज्ञः सूत्रधारश्च ॥ १२ ॥
 उद्यानदेवतालय-
 पितृवनवल्मीकमार्गचितिजाताः ।
 कुलोर्ध्वशुष्ककण्टकि-
 वल्लीवन्दाकयुक्ताश्च ॥ १३ ॥
 बहुविहगालयकोटर-
 पवनानलपीडिताश्च ये तरवः ।
 ये च स्युः स्त्रीसञ्ज्ञा
 न ते शुभाः शक्रकेत्वर्थे ॥ १४ ॥
 श्रेष्ठो ऽर्जुनो ऽश्वकर्णः
 प्रियकधवोदुम्बराश्च पञ्चैते ।
 एतेषामन्यतमं
 प्रशस्तमथवापरं वृक्षम् ॥ १५ ॥
 गौरासितक्षितिभवं
 सम्पूज्य यथाविधि द्विजः पूर्वम् ।
 विजने समेत्य राचौ
 स्पृष्ट्वा ब्रूयादिमं मन्त्रम् ॥ १६ ॥

यानीह वृक्षे भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमो ऽस्तु वः ।
 उपहारं दृष्टीत्वेमं क्रियतां वासपर्ययः ॥ १७ ॥

पार्थिवस्त्वां वरयते स्वस्ति ते ऽस्तु नगोत्तम ।
ध्वजार्थं देवराजस्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥ १८ ॥

द्विन्द्यात् प्रभातसमये
दृक्षमुदक् प्राङ्मुखो ऽपिवा भूत्वा ।
परशोर्जर्जरशब्दो
नेष्टः स्निग्धो घनश्च हितः ॥ १९ ॥
नृपजयदमविध्वस्तं
पतनमनाकुञ्चितं च पूर्वोदक् ।
अविलग्नं चान्यतरौ
विपरीतमतस्यजेत्यतितम् ॥ २० ॥
द्वित्वाग्रे चतुरङ्गुल-
मष्टौ मूले जले क्षिपेद्यष्टिम् ।
उद्धृत्य पुरद्वारं
शकटेन नयेन्मनुष्यैर्वा ॥ २१ ॥
अरभङ्गे बलभेदो
नेम्या नाशो बलस्य विज्ञेयः ।
अर्थक्षयो ऽक्षभङ्गे
तथाणिभङ्गे च वर्धकिनः ॥ २२ ॥
भाद्रपदशुक्लपक्ष-
स्याष्टम्यां नागरैर्दृतेो राजा ।
दैवज्ञसचिवकञ्चुकि-
विप्रप्रमुखैः सुवेषधरैः ॥ २३ ॥

अहताम्बरसंवीतां
 यष्टिं पौरन्दरीं पुरं पौरैः ।
 स्रग्गन्धधूपयुक्तां
 प्रवेशयेच्छङ्खतूर्यरवैः ॥ २४ ॥
 रुचिरपताकातोरण-
 वनमालालङ्कृतं प्रहृष्टजनम् ।
 सम्भार्जितार्चितपथं
 सुवेषगणिकाजनाकीर्णम् ॥ २५ ॥
 अभ्यर्चितापणगृहं
 प्रभूतपुण्याहवेदनिर्घोषम् ।
 नटनर्तकगेयज्ञै-
 राकीर्णचतुष्पथं नगरम् ॥ २६ ॥
 तत्र पताकाः श्वेता
 विजयाय भवन्ति रोगदाः पीताः ।
 जयदाश्च चित्ररूपा
 रक्ताः शस्त्रप्रकोपाय ॥ २७ ॥
 यष्टिं प्रवेशयन्तीं
 निपातयन्तो भयाय नागाद्याः ।
 बालानां तलशब्दे
 सङ्ग्रामः सत्त्वयुद्धे वा ॥ २८ ॥
 सन्तक्ष्य पुनस्तक्षा
 विधिवद्यष्टिं प्ररोपयेद्यन्त्रे ।

जागरमेकादश्यां

नरेश्वरः कारयेच्चास्याः ॥ २९ ॥

सितवस्त्रोष्णीषधरः

पुरोहितः शाक्रवैष्णवैर्मन्त्रैः ।

जुहुयादग्निं सांवत्सरो

निमित्तानि गृह्णीयात् ॥ ३० ॥

इष्टद्रव्याकारः

सुरभिः स्निग्धो घनो ऽनलो ऽर्चिष्मान् ।

शुभकृदतो ऽन्यो नेष्टो

यात्रायां विस्तरौ ऽभिहितः ॥ ३१ ॥

स्वाहावसानसमये स्वयमुज्ज्वलार्चिः

स्निग्धः प्रदक्षिणशिखो हुतभुग् नृपस्य ।

गङ्गादिवाकरसुताजलचारुहारां

धात्रीं समुद्ररसनां वशगां करोति ॥ ३२ ॥

चामीकराशोककुरण्टकाञ्ज-

वैडूर्यनीलोत्पलसन्निभे ऽग्नौ ।

न ध्वान्तमन्तर्भवने ऽवकाशं

करोति रत्नांशुहतं नृपस्य ॥ ३३ ॥

येषां रथौघार्णवमेघदन्तिनां

समस्वनो ऽग्निर्यदिवापि दुन्दुभेः ।

तेषां मदान्धेभघटाविघट्टिता

भवन्ति याने तिमिरोपमा दिशः ॥ ३४ ॥

ध्वजकुम्भहयेभभूधृता-
 मनुरूपे वशमेति भूधृताम् ।
 उदयास्तधराधराधरा
 ह्निमवद्विन्ध्यपयोधरा धरा ॥ ३५ ॥
 द्विरदमदमहीसरोजलाजै-
 र्घृतमधुना च हुताशने सगन्धे ।
 प्रणतन्दपशिरोमणिप्रभाभि-
 र्भवति पुरच्छुरितेव भूर्धृपस्य ॥ ३६ ॥
 उक्तं यदुत्तिष्ठति शक्रकेतौ
 शुभाशुभं सप्तमरीचिरूपैः ।
 तज्जन्मयज्ञग्रहशान्तियाचा-
 विवाहकालेष्वपि चिन्तनीयम् ॥ ३७ ॥
 गुडपूपपायसाद्यै-
 त्त्रिप्रानभ्यर्च्य दक्षिणाभिश्च ।
 अवणेन द्वादश्याम्
 उत्थाप्यो ऽन्यत्र वा अवणात् ॥ ३८ ॥
 शक्रकुमार्यः कार्यः
 प्राह मनुः सप्त पञ्च वा तज्जैः ।
 नन्दोपनन्दसञ्ज्ञो
 पादेनार्धेन चोच्छ्रायात् ॥ ३९ ॥
 षोडशभागाभ्यधिके
 जयविजये द्वे वसुन्धरे चान्ये ।

अधिका शक्रजनिचो
 मध्ये ऽष्टांशेन चैतासाम् ॥ ४० ॥
 प्रीतैः कृतानि विबुधै-
 र्यानि पुरा भूषणानि सुरकेतोः ।
 तानि क्रमेण दद्यात्
 पिटकानि विचित्ररूपाणि ॥ ४१ ॥
 रक्ताशोकनिकाशं
 चतुरश्रं विश्वकर्मणा प्रथमम् ।
 रसना स्वयम्भुवा
 शङ्करेण चानेकवर्णधरी ॥ ४२ ॥
 अष्टाश्रि नीलरक्तं
 तृतीयमिन्द्रेण भूषणं दत्तम् ।
 असितं यमश्चतुर्थं
 मसूरकं कान्तिमदयच्छत् ॥ ४३ ॥
 मञ्जिष्ठाभं वरुणः
 षडश्रि तत्पञ्चमं जलोर्मिनिभम् ।
 मायूरं केयूरं
 षष्ठं वायुर्जलदनीलम् ॥ ४४ ॥
 स्कन्दः स्वं केयूरं •
 सप्तममददद्द्विजाय बहुचिचम् ।
 अष्टममनलज्वाला-
 सक्ताशं हव्यभुग्दत्तम् ॥ ४५ ॥

वैदूर्यसदृशमिन्दु-
 र्नवमं ग्रैवेयकं ददावन्यत् ।
 रथचक्राभं दशमं
 सूर्यस्त्वष्टा प्रभायुक्तम् ॥ ४६ ॥
 एकादशमुद्गं
 विश्वे देवाः सरोजसङ्काशम् ।
 द्वादशमपि च निवशं
 मुनयो नीलोत्पलाभासम् ॥ ४७ ॥
 किञ्चिदधजर्ध्वनिर्णत-
 मुपरि विशालं चयोदशं केतोः ।
 शिरसि बृहस्पतिशुकौ
 लाक्षारससन्निभं ददतुः ॥ ४८ ॥
 यद्यद्येन विनिर्मित-
 ममरेण विभूषणं ध्वजस्यार्थं ।
 तत्तत्तद्दैवत्यं
 विज्ञातव्यं विपश्चिद्भिः ॥ ४९ ॥
 ध्वजपरिमाणव्यंशः
 परिधिः प्रथमस्य भवति पिटकस्य ।
 परतः प्रथमात्प्रथमा-
 दष्टांशाष्टांशहीनानि ॥ ५० ॥
 कुर्याद्दहनि चतुर्थे
 पूरणमिन्द्रध्वजस्य शास्त्रज्ञः ।

मनुना चागमगीतान्-

मन्त्रानेतान् पठेन्नियतः ॥ ५१ ॥

हराकवैवस्वतशक्रसोमै-
र्धनेशवैश्वानरपाशभृद्भिः ।

महर्षिसङ्घैः सदिगप्सरोभिः

शुक्राङ्गिरःस्कन्दमरुद्गणैश्च ॥ ५२ ॥

यथा त्वमूर्जस्कर नैकरूपैः

समर्चितस्त्वाभरणैरुदारैः ।

तथेह तान्याभरणानि देव

शुभानि सम्प्रीतमना गृहाण ॥ ५३ ॥

अज्ञो ऽव्ययः शाश्वत एकरूपो

विष्णुर्वराहः पुरुषः पुराणः ।

त्वमन्तकः सर्वहरः कृशानुः

सहस्रशीर्षा शतमन्युरोद्यः ॥ ५४ ॥

कविं सप्तजिह्वं चातारम्

इन्द्रमवितारं सुरेशम् ।

ह्वयामि शक्रं वृचहणं सुषेणम्

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु ॥ ५५ ॥

प्रपूरणे चोच्छ्रयणे प्रवेशे

स्नाने तथा माल्यविधौ विसर्गे ।

पठेदिमान्द्रूपतिः सोपवासो

मन्त्राञ्छुभान् पुरुङ्गतस्य केतोः ॥ ५६ ॥

छत्रध्वजादर्शफलार्धचन्द्रै-
 विचित्रमालाकदलीक्षुदण्डैः ।
 सव्यालसिंहैः पिटकैर्गवाक्षै-
 रलङ्कृतं दिक्षु च लोकपालैः ॥ ५७ ॥
 अस्त्रिन्वरज्जुं दृढकाष्ठमातृकं
 सुस्निष्टयन्मार्गलपादतोरणम् ।
 उत्थापयेत्क्षम सहस्रचक्षुषः

सारद्रुमाभग्नकुमारिकान्वितम् ॥ ५८ ॥

अविरतजनरावं मङ्गलाशीःप्रणामैः
 पटुपटहृदङ्गैः शङ्खभेर्यादिभिश्च ।
 श्रुतिविहितवचोभिः पापठङ्गिश्च विप्रै-
 रशुभरहितशब्दं केतुमुत्थापयीत ॥ ५९ ॥
 फलदधिघृतलाजाक्षौद्रपुष्पाग्रहस्तैः
 प्रणिपतितशिरोभिस्तुष्टुवद्भिश्च पौरैः ।
 धृतमनिमिषभर्तुः केतुमीशः प्रजानाम्
 अरिनगरनताग्रं कारयेद्विबुधाय ॥ ६० ॥
 नातिद्रुतं न च विलम्बितमप्रकम्पम्
 अध्वस्तमाल्यपिटकादिविभूषणं च । •
 उत्थानमिष्टमशुभं यदतो ऽन्यथा स्यात्
 तच्छान्तिभिर्नरपतेः शमयेत्पुरोधाः ॥ ६१ ॥
 क्रव्यादकौशिककपोतककाककङ्कैः
 केतुस्थितैर्महदुश्नन्ति भयं नृपस्य ।

चाषेण चापि युवराजभयं वदन्ति
श्येनो विलोचनभयं निपतन् करोति ॥ ६२ ॥

छत्रभङ्गपतने नृपमृत्यु-

स्तस्करान्मधु करोति निलीनम् ।

हन्ति चाप्यथ पुरोहितमुल्का

पार्थिवस्य महिषीमशनिश्च ॥ ६३ ॥

राज्ञीविनाशं पतिता पताका

करोत्यवृष्टिं पिटकस्य पातः ।

मध्याग्रमूलेषु च केतुभङ्गो

निहन्ति मन्त्रिक्षितिपालपौरान् ॥ ६४ ॥

धूमावृते शिखिभयं तमसा च मोहो

व्यालैश्च भग्नपतितैर्न भवन्त्यमात्याः ।

ग्लायन्त्युदक्प्रभृति च क्रमशो द्विजाद्या

भङ्गे च बन्धकिवधः कथितः कुमार्याः ॥ ६५ ॥

रज्जूत्सङ्गच्छेदने बालपीडा

राज्ञो मातुः पीडनं मातृकायाः ।

यद्यत्कुर्युर्बालकाश्चारणा वा

सत्तत्ताहृग्भावि पापं शुभं वा ॥ ६६ ॥

दिनचतुष्टयमुत्थितमर्चितं

समभिपूज्य नृपो ऽहनि पञ्चमे ।

प्रकृतिभिः सह लक्ष्म विसर्जयेद्

बलभिदः स्वबलाभिविद्वये ॥ ६७ ॥

उपरिचरवसुप्रवर्तितं
 नृपतिभिरप्यनु सन्ततं कृतम् ।
 विधिमिममनुमन्य पार्थिवो
 न रिपुकृतं भयमाप्नुयादिति ॥ ६८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामिन्द्र-
 ध्वजसम्पन्नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ० ॥

भगवति जलधरपश्म-
 क्षपाकारार्केक्षणे कमलनाभे ।
 उन्मीलयति तुरङ्गम-
 करिनरनीराजनं कुर्यात् ॥ १ ॥
 द्वादश्यामष्टम्यां
 कार्तिकशुक्लस्य पञ्चदश्यां वा ।
 आश्वयुजे वा कुर्या-
 न्नीराजनसञ्ज्ञितां शान्तिम् ॥ २ ॥
 नगरोत्तरपूर्वदिशि
 प्रशस्तभूमौ प्रशस्तदारुमयम् ।
 षोडशहस्तोच्छ्रायं
 दशविपुलं तोरणं कार्यम् ॥ ३ ॥
 सर्जोदुम्बरशाखा-
 ककुभमयं शान्तिसद्म कुशबहुलम् ।

वंशविनिर्मितमत्स्य-
 ध्वजचक्रालङ्कृतदारम् ॥ ४ ॥
 प्रतिसरया तुरगाणां
 भस्नातकशालिकुष्ठसिद्धार्थान् ।
 कण्ठेषु निबध्नीयात्
 पुष्ट्यर्थं शान्तिगृहगानाम् ॥ ५ ॥
 रविवरुणविश्वदेव-
 प्रजेशपुरुहूतवैष्णवैर्मन्त्रैः ।
 सप्ताहं शान्तिगृहे
 कुर्याच्छान्तिं तुरङ्गाणाम् ॥ ६ ॥
 अभ्यर्चिता न परुष
 वक्तव्या नापि ताडनीयास्ते ।
 पुण्याहशङ्खतूर्य-
 ध्वनिगीतरवैर्विमुक्तभयाः ॥ ७ ॥
 प्राप्ते ऽष्टमे ऽह्नि कुर्या-
 दुदङ्मुखं तोरणस्य दक्षिणतः ।
 कुशचौरावृतमाश्रम-
 मग्निं पुरतो ऽस्य वेद्यां च ॥ ८ ॥
 चन्दनकुष्ठसमङ्गा-
 हरितालमनःशिलाप्रियङ्गुवचाः ।
 दन्त्यमृताञ्जनरजनी-
 सुवर्णपुष्पाग्निमन्थाश्च ॥ ९ ॥

श्वेतां सपूर्णकोशां
 कटम्भरात्रायमाणसहदेवीः ।
 नागकुसुमं स्वगुप्तां
 शतावरीं सोमराजो च ॥ १० ॥
 कलशेषेतान् कृत्वा
 सम्भारानुपहरेद्वलिं सस्यक् ।
 भक्ष्यैर्नानाकारै-
 र्मधुपायसयावकप्रचुरैः ॥ ११ ॥
 खदिरपलाशोदुम्बर-
 काश्मर्यश्वत्थनिर्मिताः समिधः ।
 सुक्कनकाद्रजताद्वा
 कर्तव्या भूतिकामेन ॥ १२ ॥
 पूर्वाभिमुखः श्रीमान्
 वैयाघ्रे चर्मणि स्थितो राजा ।
 तिष्ठेदनलसमीपे
 तुरगभिषग्दैववित्सहितः ॥ १३ ॥
 यात्रायां यदभिहितं
 ग्रहयज्ञविधौ महेन्द्रकेतौ च ।
 वेदीपुरोहितानल-
 लक्षणमस्मिंस्तदवधार्यम् ॥ १४ ॥
 लक्षणयुक्तं तुरगं
 द्विरदवरं चैव दीक्षितं ज्ञातम् ।

अहतसिताम्बरगन्ध-
 सगंधूपाभ्यर्चितं कृत्वा ॥ १५ ॥
 आश्रमतोरणमूलं
 समुपनयेत्सान्त्वयञ्छनैर्वाचा ।
 वादित्रशङ्खपुण्याह-
 निःस्वनापूरितदिगन्तम् ॥ १६ ॥
 यद्यानीतस्तिष्ठेद्
 दक्षिणचरणं हयः समुत्क्षिप्य ।
 स जयति तदा नरेन्द्रः
 शत्रूनचिराद्दिना यत्नात् ॥ १७ ॥
 चस्यन्नेष्टो राज्ञः
 परिशेषं चेष्टितं द्विपहयानाम् ।
 यात्रायां व्याख्यातं
 तदिह विचिन्त्यं यथायुक्ति ॥ १८ ॥
 पिण्डमभिमन्त्र्य दद्यात्
 पुरोहितो वाजिने स यदि जिघ्रेत् ।
 अश्लीयाद्वा जयक-
 द्विपरीतो ऽतो ऽन्यथाभिहितः ॥ १९ ॥
 कलशोदकेषु शाखा-
 माह्लाव्यौदुम्बरीं स्पृशेत्तुरगान् ।
 शान्तिकपौष्टिकमन्त्रै-
 रेवं सेनां सन्तपनागाम् ॥ २० ॥

शान्तिं राष्ट्रविष्टह्यौ
 कृत्वा भूयो ऽभिचारकैर्मन्त्रैः ।
 मृन्मयमरिं विभिन्द्या-
 च्छूलेनारःस्थले विप्रः ॥ २१ ॥
 खलिनं हयाय दद्या-
 दभिमन्थ्य पुरोहितस्ततो राजा ।
 आरुह्योदक्पूर्वां
 यायान्नीराजितः सबलः ॥ २२ ॥
 मृदङ्गशङ्खध्वनिहृष्टकुञ्जर-
 स्रवन्मदामोदसुगन्धिमारुतः ।
 शिरोमणित्रातचलत्प्रभाचयै-
 र्ज्वलन्विवस्वानिव तोयदात्यये ॥ २३ ॥
 हंसपङ्क्तिभिरितस्ततो ऽद्रिराट्
 सम्पतद्भिरिव शुक्लचामरैः ।
 मृष्टगन्धपवनानुवाहिभि-
 र्धूयमानरुचिरस्रगम्बरः ॥ २४ ॥
 नैकवर्णमणिवज्रभूषितै-
 र्भूषितो मुकुटकुण्डलाङ्गदैः ।
 भूरिरत्नकिरणानुरञ्जितः
 शक्रकार्मुकरुचं समुद्वहन् ॥ २५ ॥
 उत्पतद्भिरिव खं तुरङ्गमै-
 र्दारयद्भिरिव दन्तिभिर्धराम् ।

निर्जितारिभिरिवामरैर्नरैः
 शक्रवत्परिवृतो ब्रजेन्द्रपः ॥ २६ ॥
 सवज्रमुक्ताफलभूषणो ऽथवा
 सितस्रगुष्णीषविलेपनाम्बरः ।
 धृतातपत्रो गजपृष्ठमाश्रितो
 घनोपरीवेन्दुतले धृगोः सुतः ॥ २७ ॥
 सम्प्रहृष्टनरवाजिकुञ्जरं
 निर्मलप्रहरणांशुभासुरम् ।
 निर्विकारमरिपक्षभीषणं
 यस्य सैन्यमचिरात्स गां जयेत् ॥ २८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नीरा-
 जनविधिर्नाम चतुश्चत्वारिंशो ऽध्यायः ॥ * ॥

खञ्जनको नामायं
 यो विहगस्तस्य दर्शने प्रथमे ।
 प्रोक्तानि यानि मुनिभिः
 फलानि तानि प्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥
 स्थूलो ऽभ्युन्नतकण्ठः
 कृष्णाग्लो भद्रकारको भद्रः ।
 आ कण्ठमुखात् कृष्णः
 सम्पूर्णाः पूरयत्याशाम् ॥ २ ॥

कृष्णो गले ऽस्य विन्दुः
 सितकरटान्तः स रिक्तद्विक्तः ।
 पीतो गोपीत इति
 क्लेशकरः खञ्जनो दृष्टः ॥ ३ ॥
 अथ मधुरसुरभिफलकुसुम-
 तरुषु सलिलाशयेषु पुण्येषु ।
 करितुरगभुजगमूर्ध्नि
 प्रासादोद्यानहर्म्येषु ॥ ४ ॥
 गोगोष्ठसत्समागम-
 यज्ञोत्सवपार्थिवद्विजसमीपे ।
 हस्तितुरङ्गमशाला-
 च्छ्वध्वजचामराद्येषु ॥ ५ ॥
 हेमसमीपसिताम्बर-
 कमलोत्पलपूजितोपलिप्तेषु ।
 दधिपात्रधान्यकूटेषु च
 अत्रियं खञ्जनः कुरुते ॥ ६ ॥
 पङ्के स्वाद्वन्नाति-
 गौरससम्यच्च गोमयोपगते ।
 शाङ्गलगे वस्त्रातिः
 शकटस्थे देशविभ्रंशः ॥ ७ ॥
 गृहपटले ऽर्थभ्रंशो
 वध्रे बन्धो ऽग्नौ भवति रोगः ।

पृष्ठे त्वजाविकानां
 प्रियसङ्गममावहत्याशु ॥ ८ ॥
 महिषोद्भ्रगर्दभास्थि-
 श्मशानगृहकोणशर्कराद्रिस्थः ।
 प्राकारभस्मकेशेषु
 चाशुभो मरणरुग्भयदः ॥ ९ ॥
 पशौ धुन्वन्न शुभः
 शुभः पिबन् वारि निम्नगासंस्थः ।
 सूर्योदये ऽथ शस्तो
 नेष्टफलः खञ्जनो ऽस्तमये ॥ १० ॥
 नीराजने निवृत्ते
 यथा दिशा खञ्जनं नृपो यान्तम् ।
 पश्येत्तया गतस्य
 क्षिप्रमरातिर्वशमुपैति ॥ ११ ॥
 तस्मिन्निधिर्भवति मैथुनमेति यस्मिन्
 यस्मिंस्तु हृदयति तत्र तले ऽस्ति काचः ।
 अङ्गारमप्युपदिशन्ति पुरोषणे ऽस्य
 तत्कौतुकापनयनाय खनेह्वरिचीम् ॥ १२ ॥
 मृतविकलविभिन्नरोगितः
 स्वतनुसमानफलप्रदः खगः ।
 धनकृदभिनिर्लीयमानको
 वियति च बन्धुसमागमप्रदः ॥ १३ ॥

नृपतिरपि शुभं शुभप्रदेशे
 खगमवलोक्य महीतले विदध्यात् ।
 सुरभिकुसुमधूपयुक्तमर्घं
 शुभमभिनन्दितमेवमेति वृद्धिम् ॥ १४ ॥
 अशुभमपि विलोक्य खञ्जनं
 द्विजगुरुसाधुसुरार्चने रतः ।
 न नृपतिरशुभं समाप्नुयान्
 न यदि दिनानि च सप्त मांसभुक् ॥ १५ ॥
 आ वर्षात् प्रथमे दर्शने
 फलं प्रतिदिनं तु दिनशेषे ।
 दिक्स्थानमूर्तिलग्नर्क्ष-
 शान्तदीप्तादिभिश्चोद्धृत् ॥ १६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां खञ्जन
 दर्शनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ * ॥

यानत्रेरुत्यातान्
 गर्गः प्रोवाच तानहं वक्ष्ये ।
 तेषां सङ्क्षेपोऽयं
 प्रकृतेरन्यत्वमुत्पातः ॥ १ ॥
 अपचारेण नराणा-
 मुपसर्गः पापसञ्चयाद्भवति ।

संस्रुचयन्ति दिव्या-
 न्तरिक्षभौमास्तदुत्पाताः ॥ २ ॥
 मनुजानामपचारा-
 दपरक्ता देवताः सृजन्येतान् ।
 तत्रप्रतिघाताय नृपः
 शान्तिं राष्ट्रे प्रयुञ्जीत ॥ ३ ॥
 दिव्यं ग्रहर्षवैकृत-
 मुल्कानिर्घातपवनपरिवेषाः ।
 गन्धर्वपुरपुरन्दरचापादि
 यदान्तरिक्षं तत् ॥ ४ ॥
 भौमं चरस्थिरभवं
 तच्छान्तिभिराहतं शममुपैति ।
 नाभसमुपैति मृदुतां
 शाम्यति नो दिव्यमित्येके ॥ ५ ॥
 दिव्यमपि शममुपैति
 प्रभूतकनकान्नगोमहीदानैः ।
 रुद्रायतने भूमौ
 गोदोहात् कोटिहोमाच्च ॥ ६ ॥
 आत्मसुतकोशवाहन-
 पुरदारपुरोहितेषु लोकेषु ।
 पाकमुपयाति दैवं
 परिकल्पितमष्टधा नृपतेः ॥ ७ ॥

अनिमित्तभङ्गचलन-
 स्वदाश्रुनिपातजल्पनाद्यानि ।
 लिङ्गार्चायतनानां
 नाशाय नरेशदेशानाम् ॥ ८ ॥
 दैवतयात्राशकटा-
 क्षचक्रयुगकेतुभङ्गपतनानि ।
 सम्पर्यासनसादन-
 सङ्गाश्च न देशन्तपशुभदाः ॥ ९ ॥
 ऋषिधर्मपितृब्रह्म-
 प्रोद्भूतं वैद्यतं द्विजातीनाम् ।
 यद्रुद्रलोकपालोद्भवं
 पशूजामनिष्टं तत् ॥ १० ॥
 गुरुसितशनैश्चरोत्थं
 पुरोधसां विष्णुजं च लोकानाम् ।
 स्कन्दविशाखसमुत्थं
 माण्डलिकानां नरेन्द्राणाम् ॥ ११ ॥
 वेदव्यासे मन्त्रिणि
 विनायके वैद्यतं चमूनाथे ।
 धातरि सविश्वकर्मणि
 लोकाभावाय निर्दिष्टम् ॥ १२ ॥
 देवकुमारकुमारी-
 वनिताप्रेष्येषु वैद्यतं यत्स्यात् ।

तन्नरपतेः कुमारक-
 कुमारिकास्त्रीपरिजनानाम् ॥ १३ ॥
 रक्षःपिशाचगुह्यक-
 नागानामेतदेव निर्देश्यम् ।
 मासैश्चाप्यष्टाभिः
 सर्वेषामेव फलपाकः ॥ १४ ॥
 बुद्ध्या देवविकारं
 शुचिः पुरोध्याख्यहोषितः स्नातः ।
 स्नानकुसुमानुलेपन-
 वस्त्रैरभ्यर्चयेत् प्रतिमाम् ॥ १५ ॥
 मधुपर्केण पुरोधा
 भक्षैर्बलिभिश्च विधिवदुपतिष्ठेत् ।
 स्थालीपाकं जुहुया-
 द्विधिवन्मन्त्रैश्च तस्त्रिङ्गैः ॥ १६ ॥
 इति विबुधविकारे शान्तयः सप्तरात्रं
 द्विजविबुधगणार्चा गीतन्त्योत्सवाश्च ।
 विधिवद्वनिपालैर्यैः प्रयुक्ता न तेषां
 भवति दुरितपाको दक्षिणाभिश्च रुद्धः ॥ १७ ॥
 इति लिङ्गवैकृतम् ॥

राष्ट्रं यस्यानग्निः
 प्रदीप्यते दीप्यते च नेन्धनवान् ।

मनुजेश्वरस्य पीडा
 तस्य सराध्रस्य विज्ञेया ॥ १८ ॥
 जलमांसार्द्रज्वलने
 नृपतिवधः प्रहरणे रणो रौद्रः ।
 सैन्यग्रामपुरेषु च
 नाशो वहेर्भयं कुरुते ॥ १९ ॥
 प्रासादभवनतोरण-
 केत्वादिघ्नलेन दग्धेषु ।
 तडिता वा षण्मासात्
 परचक्रस्यागमो नियमात् ॥ २० ॥
 धूमो ऽनग्निमुत्थो
 रजस्तमश्चाह्निजं महाभयदम् ।
 व्यम्ने निश्चुडुनाशो
 दर्शनमपि चाह्नि दोषकरम् ॥ २१ ॥
 नगरचतुष्पादाण्डज-
 मनुजानां भयकरं ज्वलनमाहुः ।
 धूमग्निविस्फुलिङ्गैः
 शय्याम्बरकेशगैर्भृत्युः ॥ २२ ॥
 आयुधज्वलनसर्पणस्वनाः
 कोशनिर्गमनवेदनानि वा ।
 वैकृतानि यदि वायुधे ऽपरा-
 ण्याश्च रौद्ररणसङ्कुलं वदेत् ॥ २३ ॥

मन्त्रैर्वाहैः क्षीरदृक्षात्समिद्धि-
 र्हीतव्यो ऽग्निः सर्षपैः सर्षिषा च ।
 अग्न्यादीनां वैद्यते शान्तिरेवं
 देयं चास्मिन् काञ्चनं ब्राह्मणेभ्यः ॥ २४ ॥
 इत्यग्निवैद्यतम् ॥

शाखाभङ्गे ऽकस्माद्
 दृक्षाणां निर्दिशेद्रणोद्योगम् ।
 हसने देशभ्रंशं
 रुदिते च व्याधिबाहुल्यम् ॥ २५ ॥
 राष्ट्रविभेदस्त्वन्तैौ
 बालवधो ऽतीव कुसुमिते बाले ।
 दृक्षात् क्षीरस्रावे
 सर्वद्रव्यक्षयो भवति ॥ २६ ॥
 मद्ये वाहननाशः
 सङ्ग्रामः शोणिते मधुनि रोगः ।
 स्नेहे दुर्भिक्षभयं
 महद्भयं निःसृते सलिले ॥ २७ ॥
 शुष्कविरोहे वीर्या-
 न्नसङ्ख्यः शोषणे च विरुजानाम् ।
 पतितानामुत्थाने
 स्वयं भयं दैवजनितं च ॥ २८ ॥

पूजितवृक्षे ह्यन्तौ
 कुसुमफलं नृपवधाय निर्दिष्टम् ।
 धूमस्तस्मिन् ज्वालायवा
 भवेन्नृपवधायैव ॥ २९ ॥
 सर्पत्सु तरुषु जल्पत्सु वापि
 जनसङ्घयो विनिर्दिष्टः ।
 वृक्षाणां वैकृत्ये
 दशभिर्मासैः फलविपाकः ॥ ३० ॥
 स्वग्गन्धधूपाम्बरपूजितस्य
 छत्रं निधायोपरि पादपस्य ।
 कृत्वा शिवं रुद्रजपो ऽत्र कार्यो
 रुद्रेभ्य इत्यत्र षडङ्गहोमः ॥ ३१ ॥
 पायसेन मधुना च भोजयेद्
 ब्राह्मणान् घृतयुतेन भूपतिः ।
 मेदिनी निगदितात्र दक्षिणा
 वैकृते तरुकृते महर्षिभिः ॥ ३२ ॥
 इति वृक्षवैकृतम् ॥

नाले ऽजयवादीना-
 मेकस्मिन् द्वित्रिसम्भवो मरणम् ।
 कथयति तदधिपतीनां
 यमसं जातं च कुसुमफलम् ॥ ३३ ॥

अतिदृष्टिः सस्यानां
 नानाफलकुसुमभवो दृष्टे ।
 भवति हि यद्येकस्मिन्
 परचक्रस्यागमो नियमात् ॥ ३४ ॥
 अर्धेन यदा तैलं
 भवति तिलानामतैलता वा स्यात् ।
 अन्नस्य च वैरस्यं
 तदा च विन्द्याद्भयं सुमहत् ॥ ३५ ॥
 विकृतकुसुमं फलं वा
 ग्रामादथवा पुराद्दृष्टिः कार्यम् ।
 सौम्यो ऽत्र चरुः कार्यो
 निर्वाण्यो वा पशुः शान्त्यै ॥ ३६ ॥
 सस्ये च दृष्ट्या विकृतिं प्रदेयं
 तत् श्लेचमेव प्रथमं द्विजेभ्यः ।
 तस्यैव मध्ये चरुमत्र भौमं
 कृत्वा न दोषान् समुपैति तज्जान् ॥ ३७ ॥
 इति सस्यवैकृतम् ॥

दुर्भिक्षमनावृष्ट्या-
 मतिदृष्ट्यां क्षुद्भयं सपरचक्रम् ।
 रोगो ह्यन्तुभवायां
 नृपवधो ऽनभ्रजातायाम् ॥ ३८ ॥

शीतोष्णविपर्यासे
 नो सम्यगृतुषु च सम्प्रवृत्तेषु ।
 षण्मासाद्राद्रभयं
 रोगभयं दैवजनितं च ॥ ३९ ॥
 अन्यतो सप्ताहं
 प्रबन्धवर्षे प्रधानवृषमरणम् ।
 रक्ते शस्त्रोद्योगो
 मांसास्थिवसादिभिर्मरकः ॥ ४० ॥
 धान्यहिरण्यत्वक्फल-
 कुसुमाद्यैर्वर्षितैर्भयं विन्द्यात् ।
 अङ्गारपांशुवर्षे
 विनाशमायाति तन्नगरम् ॥ ४१ ॥
 उपला विना जलधरै-
 विक्लता वा प्राणिनो यदा वृष्टाः ।
 छिद्रं वाप्यतिवृष्टौ
 सस्यानामीतिसञ्जननम् ॥ ४२ ॥
 [क्षीरघृतक्षौद्राणां
 दध्ना रुधिरोष्णवारिणां वर्षे ।
 देशविनाशो ज्ञेयो
 ऽसृग्वर्षे चापि नृपयुद्धम् ॥ ४३ ॥]
 यद्यमले ऽर्के छाया
 न दृश्यते दृश्यते प्रतीपा वा ।

देशस्य तदा सुमह-
 द्भयमायातं विनिर्देश्यम् ॥ ४४ ॥
 व्यभ्रे नभसीन्द्रधनु-
 र्दिवा यदा दृश्यते ऽथवा राचौ ।
 प्राच्यामपरस्यां वा
 तदा भवेत् क्षुब्धयं सुमहत् ॥ ४५ ॥
 सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां
 योगः स्मृतो वृष्टिविकारकाले ।
 धान्यान्नगोकाञ्चनदक्षिणाश्च
 देयास्ततः शान्तिमुपैति पापम् ॥ ४६ ॥
 इति वृष्टिवैकृतम् ॥

अपसर्पणं नदीनां
 नगरादचिरेण शून्यतां कुरुते ।
 शेषश्चाशेष्याणा-
 मन्येषां वा हृदादीनाम् ॥ ४७ ॥
 स्नेहासृङ्गांसवहाः
 सङ्कुलकलुषाः प्रतीपगाश्चापि ।
 परचक्रस्यागमनं
 नद्यः कथयन्ति षण्मासात् ॥ ४८ ॥
 ज्वालाधूमक्वाथा
 रुदितोत्क्रुष्टानि चैव कूपानाम् ।

गीतप्रजल्पितानि च
 जनमरकाय प्रदिष्टानि ॥ ४९ ॥
 तोयोत्पत्तिरखाते
 गन्धरसविपर्यये च तोयानाम् ।
 सलिलाशयविकृतौ वा
 महद्भयं तत्र शान्तिरियम् ॥ ५० ॥
 सलिलविकारे कुर्यात्
 पूजां वरुणस्य वारुणैर्मन्त्रैः ।
 तैरेव च जपहोमं
 शममेवं पापमुपयाति ॥ ५१ ॥
 इति जलवैकृतम् ॥

प्रसवविकारे स्त्रीणां
 द्विचिचतुःप्रभृतिसम्प्रसृतौ वा ।
 हीनातिरिक्तकाले च
 देशकुलसङ्घयो भवति ॥ ५२ ॥
 वडवोद्गमहिषगो-
 हस्तिनीषु यमलोद्भवे मरणमेषाम् ।
 षण्मासात्सतिफलं
 शान्तौ श्लोकौ च गर्गोक्तौ ॥ ५३ ॥

नार्यः परस्य विषये त्यक्तव्यास्ता हितार्थिना ।
 तर्पयेच्च द्विजान् कामैः शान्तिं चैवात्र कारयेत् ॥ ५४ ॥

चतुष्पदाः स्वयूयेभ्यस्त्यक्तव्याः परभूमिषु ।
 नगरं स्वामिनं यूथमन्यथा हि विनाशयेत् ॥ ५५ ॥
 इति प्रसववैद्यतम् ॥

परयोनावभिगमनं
 भवति तिरश्चामसाधु धेनूनाम् ।
 उक्षाणौ वान्योऽन्यं
 पिबति श्वा वा सुरभिपुत्रम् ॥ ५६ ॥
 मासत्रयेण विन्ध्यात्
 तस्मिन्निःसंशयं परागमनम् ।
 तत्प्रतिघातायैतौ
 श्लोकौ गर्गेण निर्दिष्टौ ॥ ५७ ॥

त्यागो विवासनं दानं तत्तस्याशु शुभं भवेत् ।
 तर्पयेद्वाह्मणांश्चात्र जपहोमांश्च कारयेत् ॥ ५८ ॥
 स्थालीपाकेन धातारं पशुना च पुरोहितः ।
 प्राजापत्येन मन्त्रेण यजेद्द्वन्द्वदक्षिणम् ॥ ५९ ॥
 इति चतुष्पदवैद्यतम् ॥

यानं वाहवियुक्तं
 यदि गच्छेन्न ब्रजेच्च वाहयुतम् ।
 राष्ट्रभयं भवति तदा
 चक्राणां सादभङ्गे च ॥ ६० ॥

अनभिहततूर्यनादः
 शब्दो वा ताडितेषु यदि न स्यात् ।
 व्युत्पत्तौ वा तेषां
 परागमो नृपतिमरणं वा ॥ ६१ ॥
 गीतरवतूर्यनादा
 नभसि यदा वा चरस्थिरान्यत्वम् ।
 मृत्युस्तदा गदा वा
 विस्वरतूर्ये पराभिभवः ॥ ६२ ॥
 गोलाङ्गलयोः सङ्गे
 दर्वीश्रुर्पाद्युपस्करविकारे ।
 क्रोष्टुकनादे च तथा
 शस्त्रभयं मुनिवचश्चेदम् ॥ ६३ ॥
 वायव्येषु नृपतिर्वायुं शक्तुभिरर्चयेत् ।
 आ वायोरिति पञ्चर्चा जाप्याश्च प्रयतैर्द्विजैः ॥ ६४ ॥
 ब्राह्मणान् परमान्नेन दक्षिणाभिश्च तर्पयेत् ।
 बह्वन्नदक्षिणा होमाः कर्तव्याश्च प्रयत्नतः ॥ ६५ ॥
 इति वायव्यवैकतम् ॥

पुरपक्षिणो वनचरा
 वन्या वा निर्भया विशन्ति पुरम् ।
 नक्तं वा दिवसचराः
 क्षपाचरा वा चरन्त्यहनि ॥ ६६ ॥

सन्ध्याद्वयेऽपि मण्डल-
 मावधन्तो मृगा विहङ्गा वा ।
 दीप्तायां दिश्यथवा
 क्रोशन्तः संहता भयदाः ॥ ६७ ॥
 श्वानः प्ररुदन्त इव
 द्वारे वाशन्ति जम्बुका दीप्ताः ।
 प्रविशेन्न रेन्द्रभवने
 कपोतकः कौशिको यदिवा ॥ ६८ ॥
 कुक्कुटरुतं प्रदोषे
 हेमन्तादौ च कोकिलालापाः ।
 प्रतिलोममण्डलचराः
 श्येनाद्याश्चाम्बरे भयदाः ॥ ६९ ॥
 गृहचैत्यतोरणेषु
 द्वारेषु च पक्षिसङ्घसम्पाताः ।
 मधुवल्मीकाम्भोरुह-
 समुद्भवाश्चापि नाशाय ॥ ७० ॥
 श्वभिरस्थिशवावयव-
 प्रवेशनं मन्दिरेषु मरकाय ।
 पशुशस्त्रव्याहारे
 नृपमृत्युर्मुनिवचश्चैदम् ॥ ७१ ॥

गपक्षिविकारेषु कुर्याद्भोमान् सदक्षिणान् ।

त्राः कपोत इति च जप्तव्याः पञ्चभिर्द्विजैः ॥ ७२ ॥

सु देवा इति चैकेन देया गावश्च दक्षिणा ।
जपेच्छाकुनसूक्तं वा मनोवेदशिरांसि च ॥ ७३ ॥
इति मृगपश्यादिवैद्वतम् ॥

शक्रध्वजेन्द्रकील-
स्तम्भद्वारप्रपातभङ्गेषु ।
तद्वत्कपाटतोरण-
केतूनां नरपतेर्मरणम् ॥ ७४ ॥
सन्ध्याद्वयस्य दीप्ति-
धूमोत्पत्तिश्च कानने ऽनग्नौ ।
छिद्राभावे भूमे-
दरुणं कम्पश्च भयकारी ॥ ७५ ॥
पाषण्डानां नास्तिकानां च भक्तः ।
साध्वाचारप्रोज्झितः क्रोधशीलः ।
ईर्ष्युः क्रूरो विग्रहासक्तचेता
यस्मिन् राजा तस्य देशस्य नाशः ॥ ७६ ॥
प्रहर हर छिन्दि भिन्दी-
त्यायुधकाष्ठाश्रुपाणयो बालाः ।
निगदन्तः प्रहरन्ते
तत्रापि भयं भवत्याशु ॥ ७७ ॥
अङ्गारगैरिकाद्यै-
र्विकृतप्रेताभिलेखनं यस्मिन् ।

नायकचिचितमथवा
 क्षये क्षयं याति नचिरेण ॥ ७८ ॥
 लूतापटाङ्गशबलं
 न सन्ध्योः पूजितं कलहयुक्तम् ।
 नित्योच्छिष्टस्त्रीकं च
 यद्गृहं तत्क्षयं याति ॥ ७९ ॥
 दृष्टेषु यातुधानेषु
 निर्दिशेन्मरकमाशु सम्प्राप्तम् ।
 प्रतिघातायैतेषां
 गर्गः शान्तिं चकारेमाम् ॥ ८० ॥

महाशान्त्यो ऽथ बलयो भोज्यानि सुमहान्ति च ।
 कारयेत् महेन्द्रं च माहेन्द्रीभिः समर्चयेत् ॥ ८१ ॥
 इति शक्रध्वजेन्द्रकीलादिवैकृतम् ॥

नरपतिदेशविनाशे
 केतोरुदये ऽथवा ग्रहे ऽर्केन्दोः ।
 उत्पातानां प्रभवः
 स्वर्तुभवश्चाप्यदोषाय ॥ ८२ ॥
 ये च न दोषान् जनय-
 न्युत्पातास्तानृतुस्वभावकृतान् ।
 षड्विधेषु चकृतैः श्लोकै-
 र्विद्यादेतैः समासोक्तैः ॥ ८३ ॥

वज्राशनिमहीकम्पसन्धानिर्घातनिःस्वनाः ।
 परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमनोदयाः ॥ ८४ ॥
 द्रुमेभ्यो ऽन्नरसस्नेहबहुपुष्पफलोद्गमाः ।
 गोपक्षिमददृद्धिश्च शिवाय मधुमाधवे ॥ ८५ ॥
 तारोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम् ।
 अन्नग्निज्वलनस्फोटधूमरेखनिलाहतम् ॥ ८६ ॥
 रक्तपद्मारुणं सान्ध्यं नभः क्षब्धार्यवोपमम् ।
 सरितां चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत् ॥ ८७ ॥
 शक्रायुधपरीवेषविद्युच्छुष्कविरोहणम् ।
 कम्पोद्वर्तनवैकृत्यं रसनं द्रुणं क्षितेः ॥ ८८ ॥
 सरोनद्युदपानानां दृष्ट्वाध्वतरणस्रवाः ।
 सरणं चाद्रिगेहानां वर्षासु न भयावहम् ॥ ८९ ॥
 दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनम् ।
 ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं च दिवाम्बरे ॥ ९० ॥
 गीतवादित्रनिर्घोषा वनपर्वतसानुषु ।
 सस्यदृद्धिरपां हानिरपापाः शरदि स्मृताः ॥ ९१ ॥
 शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम् ।
 रक्षोयक्षादिसत्त्वानां दर्शनं वागमानुषी ॥ ९२ ॥
 दिशो धूमान्धकाराश्च सनभोवनपर्वताः ।
 उच्चैः सूर्यादयास्तौ च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः ॥ ९३ ॥
 हिमपातानिलोत्पाता विरूपाद्भुतदर्शनम् ।
 कृष्णाञ्जनाभमाकाशं तारोल्कापातपिञ्जरम् ॥ ९४ ॥

चित्रगर्भोद्भवाः स्त्रीषु गोऽजाश्चमृगपक्षिषु ।
 पत्राङ्कुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः ॥ ६५ ॥
 ऋतुस्वभावजा ह्येते दृष्टाः स्वर्तो शुभप्रदाः ।
 ऋतोरन्यत्र चात्पाता दृष्टास्ते भृशदारुणाः ॥ ६६ ॥
 उन्मत्तानां च या गाथाः शिश्रूनां भाषितं च यत् ।
 स्त्रियो यच्च प्रभाषन्ते तस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥ ६७ ॥
 पूर्वं चरति देवेषु पश्चाद्गच्छति मानुषान् ।
 नाचोदिता वाग्वदति सत्या ह्येषा सरस्वती ॥ ६८ ॥
 उत्पातान् गणितविवर्जितोऽपि बुद्ध्वा
 विख्यातो भवति नरेन्द्रवत्सभश्च ।
 एतत्तन्मुनिवचनं रहस्यमुक्तं
 यज्ज्ञात्वा भवति नरस्त्रिकालदर्शी ॥ ६९ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामुत्पा-
 तलक्षणं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ • ॥

दिव्यान्तरिक्षाश्रयमुक्तमादौ
 मया फलं शस्तमशोभनं च ।
 प्रायेण चारेषु समागमेषु
 युद्धेषु मार्गादिषु विस्तरेण ॥ १ ॥
 भूयो वराहमिहिरस्य न युक्तमेतत्
 कर्तुं समासद्वदसाविति तस्य दोषः ।

तज्ज्ञैर्न वाच्यमिदं फलानुगीति
 यद्वर्हिचिचकमिति प्रथितं वराङ्गम् ॥ २ ॥
 स्वरूपमेव तस्य तत् प्रकीर्तितानुकीर्तनम् ।
 ब्रवीम्यहं न चेदिदं तथापि मे ऽच वाच्यता ॥ ३ ॥

उत्तरवीथिगता द्युतिमन्तः
 क्षेमसुभिश्चशिवाय समस्ताः ।
 दक्षिणमार्गगता द्युतिहीनाः
 क्षुब्धयतस्करमृत्युकरास्ते ॥ ४ ॥
 कोष्ठागारगते ध्रुगुपुत्रे
 पुष्यस्थे च गिराम्प्रभविष्णौ ।
 निर्वैराः क्षितिपाः सुखभाजः
 संहृष्टाश्च जना गतरोगाः ॥ ५ ॥
 पीडयन्ति यदि कृत्तिकां मघां
 रोहिणीं श्रवणमैन्द्रमेव वा ।
 प्रोज्झ्य सूर्यमपरे ग्रहास्तदा
 पश्चिमा दिगनयेन पीड्यते ॥ ६ ॥

प्राच्यां चेद्भजवदवस्थिता दिनान्ते
 प्राच्यानां भवति हि विग्रहो नृपाणाम् ।
 मध्ये चेद्भवति हि मध्यदेशपीडा
 रूक्षस्तैर्म तु रुचिरैर्मयूखवद्भिः ॥ ७ ॥
 दक्षिणां ककुभमाश्रितैस्तु तै-
 र्दक्षिणापथपयोमुचां क्षयः ।

हीनरूक्षतनुभिश्च विग्रहः
 स्थूलदेहकिरणान्वितैः शुभम् ॥ ८ ॥
 उत्तरमार्गे स्पष्टमयूखाः
 शान्तिकरास्ते तन्नृपतीनाम् ।
 ह्रस्वशरीरा भस्मसवर्णा
 दोषकराः स्युर्देशनृपाणाम् ॥ ९ ॥
 नक्षत्राणां तारकाः सग्रहाणां
 धूमज्वालाविस्फुलिङ्गान्विताश्चेत् ।
 आलोकं वा निर्निमित्तं न यान्ति
 याति ध्वंसं सर्वलोकः सम्भूपः ॥ १० ॥
 दिवि भाति यदा तुहिनांशुयुगं
 द्विजवृद्धिरतीव तदाशु शुभा ।
 तदनन्तरवर्णरणो ऽर्कयुगे
 जगतः प्रलयस्त्रिचतुःप्रभृति ॥ ११ ॥
 मुनीनभिजितं ध्रुवं मघवतश्च भं संस्पृशन्
 शिखी घनविनाशकृत् कुशलकर्महा शोकदः ।
 भुजङ्गभमथ स्पृशेद्भवति वृष्टिनाशो ध्रुवं
 क्षयं व्रजति विद्रुतो जनपदश्च बालाकुलः ॥ १२ ॥
 प्राग्द्वारेषु चरन् रविपुत्रो
 नक्षत्रेषु करोति च वक्रम् ।
 दुर्भिक्षं कुरुते भयमुग्रं
 मित्राणां च विरोधमवृष्टिम् ॥ १३ ॥

रोहिणीशकटमर्कनन्दनो
 यदि भिनत्ति रुधिरो ऽथवा शिखी ।
 किं वदामि यदनिष्टसागरे
 जगदशेषमुपयाति सङ्ख्यम् ॥ १४ ॥
 उदयति सततं यदा शिखी
 चरति भचक्रमशेषमेव वा ।
 अनुभवति पुराकृतं तदा फलम्
 अशुभं सचराचरं जगत् ॥ १५ ॥
 धनुःस्थायी रूक्षो रुधिरसदृशः क्षुब्धयकरो
 बलोद्योगं चेन्दुः कथयति जयं ज्यास्य च यतः ।
 अवाक्शृङ्गो गोघ्नो निधनमपि सस्यस्य कुरुते
 ज्वलन्धूमायन् वा नृपतिमरणायैव भवति ॥ १६ ॥
 स्निग्धः स्थूलः समशृङ्गो विशाल-
 स्तुङ्गश्चोदग्विचरन्नागवीथ्याम् ।
 दृष्टः सौम्यैरशुभैर्विप्रयुक्तो
 लोकानन्दं कुरुते ऽतीव चन्द्रः ॥ १७ ॥
 पितृमैत्रपुरुहूतविशाखा-
 त्वाष्ट्रमेत्य च युनक्ति शशाङ्कः ।
 दक्षिणेन न शुभो हितहत्स्याद्
 यद्युदक् चरति मध्यगतो वा ॥ १८ ॥
 परिघ इति मेघरेखा
 या तिर्यग्भास्करोदये ऽस्ते वा ।

परिधिस्तु प्रतिस्वर्यो
 दण्डस्त्वृजुरिन्द्रचापनिभः ॥ १९ ॥
 उदये ऽस्ते वा भानो-
 र्यं दीर्घा रश्मयस्त्वमोघास्ते ।
 सुरचापखण्डमृजु यद्
 रोहितमैरावतं दीर्घम् ॥ २० ॥
 अधीस्तमयात्सन्ध्या
 व्यक्तीभूता न तारका यावत् ।
 तेजःपरिहानिमुखाद्
 भानोरर्धोदयं यावत् ॥ २१ ॥
 तस्मिन् सन्ध्याकाले
 चिह्नैरेतैः शुभाशुभं वाच्यम् ।
 सर्वैरेतैः स्निग्धैः
 सद्योवर्षं भयं रूक्षैः ॥ २२ ॥

अच्छिन्नः परिघो वियच्च विमलं श्यामा मयूखा रवेः
 स्निग्धदीधितयः सितं सुरधनुर्विद्युच्च पूर्वोत्तरा ।
 स्निग्धो मेघतरुर्दिवाकरकरैरालिङ्गितो वा यदा
 दृष्टिः स्याद्यदि वार्कमस्तसमये मेघो महान्च्छादयेत् ॥ २३ ॥
 खण्डो वक्रः कृष्णो ह्रस्वः काकाद्यैर्वा चिह्नैर्विद्वः ।
 यस्मिन्देष्टे रूक्षश्चार्कस्तत्राभावः प्रायो रात्रः ॥ २४ ॥
 वाहिनीं समुपयाति पृष्ठतो
 मांसभुक्खगगणो युयुत्सतः ।

यस्य तस्य बलविद्रवो महान्
अग्रगैस्तु विजयो विहङ्गमैः ॥ २५ ॥

भानोरुदये यदि वास्तमये
गन्धर्वपुरप्रतिमा ध्वजिनो ।

बिम्बं निरुणद्धि तदा नृपतेः

प्राप्तं समरं सभयं प्रवदेत् ॥ २६ ॥

शस्ता शान्तद्विजमृगघुष्टा

सन्ध्या स्निग्धा नृदुपवना च ।

पांशुध्वस्ता जनपदनाशं

धत्ते रूक्षा रुधिरनिभा वा ॥ २७ ॥

यद्विस्तरेण कथितं मुनिभिस्तदस्मिन्

सर्वं मया निगदितं पुनरुक्तवर्जम् ।

श्रुत्वापि कोकिलरुतं बलिभुग्विरौति

यत्तत्त्वभावकृतमस्य पिकं न जेतुम् ॥ २८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां मयूर-
चिचकं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ० ॥

मूलं मनुजाधिपतिः

प्रजातरोस्तदुपघातसंस्कारात् ।

अशुभं शुभं च लोके

भवति यतोऽतो नृपतिचिन्ता ॥ १ ॥

या व्याख्याता शान्तिः
 स्वयम्भुवा सुरगुरोर्महेन्द्रार्थे ।
 तां प्राप्य वृद्धगर्गः
 प्राह यथा भागुरेः शृणुत ॥ २ ॥
 पुष्यस्नानं नृपतेः
 कर्तव्यं दैववित्पुरोधाभ्याम् ।
 नातः परं पवित्रं
 सर्वोत्पातान्तकरमस्ति ॥ ३ ॥
 श्लेष्मातकाक्षकण्टकि-
 कटुतिक्तविगन्धिपादपविहीने ।
 कौशिकगृध्रप्रभृतिभि-
 रनिष्टविहगैः परित्यक्ते ॥ ४ ॥
 तरुणतरुगुल्मवल्ली-
 लताप्रतानावृते वनोद्देशे ।
 निरुपहतपत्रपल्लव-
 मनोज्ञमधुरद्रुमप्राये ॥ ५ ॥
 एकवाकुजीवजीवक-
 शुक्रशिखिशतपत्रचाषहारीतैः ।
 क्रकारचकोरकपिञ्जल-
 वञ्जुलपारावतश्रीकैः ॥ ६ ॥
 कुसुमरसपानमत्त-
 द्विरेफपुंस्कोकिलादिभिश्चान्यैः ।

विरुते वनोपकण्ठे
 श्लेचागारे शुचावथवा ॥ ७ ॥
 हृदिनीविलासिनीनां
 जलखगनखविक्षतेषु रम्येषु ।
 पुलिनजघनेषु कुर्याद्
 दृङ्मनसोः प्रीतिजननेषु ॥ ८ ॥
 प्रोत्सुतहंसच्छ्वे
 कारण्डवकुररसारसोज्जीते ।
 फुल्लेन्दीवरनयने
 सरसि सहस्राक्षकान्तिधरे ॥ ९ ॥
 प्रोत्फुल्लकमलवदनाः
 कलहंसकलस्वनप्रभाषिण्यः ।
 प्रोत्तुङ्गकुङ्कुमकुचा
 यस्मिन्नलिनीविलासिन्यः ॥ १० ॥
 कुर्याद्गोरोमन्यज-
 फेनलवशक्तखुरक्षतोपचिते ।
 अचिरप्रसूतहुङ्कृत-
 वस्त्रितवत्सोत्सवे गोष्ठे ॥ ११ ॥
 अथवा समुद्रतीरे
 कुशलागतपोतरत्नसम्बाधे ।
 घननिचुललीनजलचर-
 सितखगशबलीकृतोपान्ते ॥ १२ ॥

क्षमया क्रोध इव जितः
 सिंहे मृग्याभिभूयते यत्र ।
 दत्ताभयखगमृग-
 शावकेषु तेष्वाश्रमेष्वथवा ॥ १३ ॥
 काञ्चीकलापनूपुर-
 गुरुजघनोद्धहनविघ्नितपदाभिः ।
 श्रीमति मृगेक्षणाभि-
 र्यहे ऽन्यभृतवल्गुवचनाभिः ॥ १४ ॥
 पुण्येष्वायतनेषु च
 तीर्थेषूद्यानरम्यदेशेषु ।
 पूर्वादक्लवभूमौ
 प्रदक्षिणाम्भोवहायां च ॥ १५ ॥
 भस्माङ्गारास्थूपर-
 तुषकेशश्चक्रकटावासैः ।
 श्वाविन्मूषकविवरै-
 र्वल्मीकैर्या च सन्त्यक्ता ॥ १६ ॥
 धात्री घना सुगन्धा
 स्निग्धा मधुरा समा च विजयाय ।
 सेनावासे ऽप्येवं
 योजयितव्या यथायोगम् ॥ १७ ॥
 निःक्रम्य पुरान्तं
 दैवज्ञामात्ययाजकाः प्राच्याम् ।

कौबेर्यां वा कृत्वा
 बलिं दिशोशाधिपायां वा ॥ ५८ ॥
 लाजाश्लतदधिकुसुमैः
 प्रयतः प्रणतः पुरोहितः कुर्यात् ।
 आवाहनमथ मन्त्र-
 स्तस्मिन्मुनिभिः समुद्दिष्टः ॥ १९ ॥

आगच्छन्तु सुराः सर्वे ये ऽत्र पूजाभिलाषिणः ।
 दिशो नागा द्विजाश्चैव ये चान्ये ऽप्यंशभागिनः ॥ २० ॥
 आवाह्यैवं ततः सर्वानेवं ब्रूयात् पुरोहितः ।
 श्वः पूजां प्राप्य यास्यन्ति दत्त्वा शान्तिं महीपतेः ॥ २१ ॥

आवाहितेषु कृत्वा पूजां
 तां शर्वरीं वसेयुस्ते ।
 सदसत्स्वप्ननिमित्तं
 यात्रायां स्वप्नविधिरुक्तः ॥ २२ ॥
 अपरे ऽहनि प्रभाते
 सम्भारानुपहरेद्यथोक्तगुणान् ।
 गत्वावनिप्रदेशे
 श्लोकाश्चाप्यत्र मुनिंगीताः ॥ २३ ॥

तस्मिन् मण्डलमालिस्थ कल्पयेत्तत्र मेदिनीम् ।
 नानारत्नाकरवतीं स्थानानि विविधानि च ॥ २४ ॥
 पुरोहितो यथास्थानं नागान्यश्चान्सुरान्पितृन् ।
 गन्धर्वाप्सरसश्चैव मुनीन् सिद्धांश्च विन्यसेत् ॥ २५ ॥

ग्रहांश्च सह नक्षत्रै रुद्रांश्च सह मातृभिः ।
 स्कन्दं विष्णुं विशाखं च लोकपालान्सुरस्त्रियः ॥ २६ ॥
 वर्णकैर्विविधैः कृत्वा हृद्यैर्गन्धगुणान्वितैः ।
 यथास्वं पूजयेद्विद्वान् गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ २७ ॥
 भक्ष्यैरन्यैश्च विविधैः फलमूलामिषैस्तथा ।
 पानकैर्विविधैर्हृद्यैः सुराक्षीरासवादिभिः ॥ २८ ॥

कथयाम्यतः परमहं

पूजामस्मिन्यथाभिलिखितानाम् ।

ग्रहयज्ञे यः प्रोक्तो

विधिर्ग्रहाणां स कर्तव्यः ॥ २९ ॥

मांसौदनमद्याद्यैः

पिशाचदितितनयदानवाः पूज्याः ।

अभ्यञ्जनाञ्जनतिलैः

पितरो मांसौदनैश्चापि ॥ ३० ॥

सामयजुर्भिर्मुनय-

स्त्वृग्भिर्गन्धैश्च धूपमाल्ययुतैः ।

अश्लेषकवर्णै-

स्त्रिमधुरेण चाभ्यर्चयेन्नागान् ॥ ३१ ॥

धूपाज्याहुतिमाल्यै-

विबुधान् रत्नैः स्तुतिप्रणामैश्च ।

गन्धर्वानप्सरसो

गन्धैर्माल्यैश्च सुसुगन्धैः ॥ ३२ ॥

शेषांस्तु सार्ववर्णिक-
 बलिभिः पूजां न्यसेच्च सर्वेषाम् ।
 प्रतिसरवस्त्रपताका-
 भूषणयज्ञोपवीतानि ॥ ३३ ॥
 मण्डलपश्चिमभागे
 दत्त्वाग्निं दक्षिणे ऽथवा वेद्याम् ।
 आदद्यात्सम्भारान्
 दर्भान्दीर्घानगर्भांश्च ॥ ३४ ॥
 लाजाज्याक्षतदधिमधु-
 सिद्धार्थकगन्धसुमनसो धूपान् ।
 गौरोचनाञ्जनतिलान्
 स्वर्तुजमधुराणि च फलानि ॥ ३५ ॥
 सघृतस्य पायसस्य च
 तच्च शरावाणि तैश्च सम्भारैः ।
 पश्चिमवेद्यां पूजां
 कुर्यात्स्नानस्य सा वेदी ॥ ३६ ॥
 तस्याः कोशेषु दृढान्
 कलशान् सितसूत्रवेष्टितग्रीवान् ।
 सक्षीरवृक्षपल्लव-
 फलापिधानान्व्यवस्थाप्य ॥ ३७ ॥
 पुष्यस्नानविमिश्रेणा-
 पूर्णानम्भसा सरत्नांश्च ।

पुष्यस्नानद्रव्या-

स्यादद्याद्गर्गगीतानि ॥ ३८ ॥

ज्योतिष्मतीं चायमाणामभयामपराजिताम् ।
 जीवां विश्वेश्वरीं पाठां समङ्गां विजयां तथा ॥ ३९ ॥
 सहां च सहदेवीं च पूर्णकोशं शतावरीम् ।
 अरिष्टिकां शिवां भद्रां तेषु कुम्भेषु विन्यसेत् ॥ ४० ॥
 ब्राह्मीं क्षेमामजां चैव सर्वबीजानि काञ्चनम् ।
 मङ्गल्यानि यथालाभं सर्वाषधो रसांस्तथा ॥ ४१ ॥
 रत्नानि सर्वगन्धांश्च विल्वं च सविकङ्कतम् ।
 प्रशस्तानान्यश्चौषधो हिरण्यं मङ्गलानि च ॥ ४२ ॥
 आदावनडुहश्चर्म जरया संहृतायुषः ।
 प्रशस्तलक्षणभृतः प्राचीनग्रीवमास्तरेत् ॥ ४३ ॥
 ततो वृषस्य योधस्य चर्म रोहितमक्षतम् ।
 सिंहस्याथ तृतीयं स्याद्वाघस्य च ततः परम् ॥ ४४ ॥
 चत्वार्येतानि चर्माणि तस्यां वेद्यामुपास्तरेत् ।
 शुभे मुहूर्ते सम्प्राप्ते पुष्ययुक्ते निशाकरे ॥ ४५ ॥

भद्रासनमेकतमेन

कारितं कनकरजतताम्राणाम् ।

क्षीरतरुनिर्मितं वा

विन्यस्यं चर्मणामुपरि ॥ ४६ ॥

त्रिविधस्तस्योष्णयो

हस्तः पादाधिको ऽर्धयुक्तश्च ।

माण्डलिकानन्तरजित्-
समस्तराज्यार्थिनां शुभदः ॥ ४७ ॥

अन्तर्धाय हिरण्यं
तत्रोपविशेन्नरेश्वरः सुमनाः ।
सचिवाप्तपुरोहितदेव-
पौरकल्याणनामवृतः ॥ ४८ ॥

वन्दिजनपौरविप्र-
प्रघुष्टपुण्याहनिर्घोषैः ।
समृद्ङ्गशङ्खतूर्यै-
र्मङ्गलशब्दैर्हृतानिष्टः ॥ ४९ ॥

अहतक्षौमनिवसनं
पुरोहितः कम्बलेन सञ्छाद्य ।
कृतबलिपूजं कलशै-
रभिषिञ्चेत्सर्पिषा पूरुणैः ॥ ५० ॥

अष्टावष्टाविंशति-
रष्टशतं वापि कलशपरिमाणम् ।
अधिके ऽधिके गुणोत्तर-
मयं च मन्त्रो ऽत्र मुनिगीतः ॥ ५१ ॥

आज्यं तेजो समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम् ।
आज्यं सुराणामाहार आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ५२ ॥
भौमान्तरिक्षं दिव्यं च यत्ते किस्त्रिषमागतम् ।
सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छतु ॥ ५३ ॥

कम्बलमपनीय ततः

पुष्यस्नानाम्बुभिः सफलपुष्पैः ।

अभिषिञ्चेन्मनुजेन्द्रं

पुरोहितो ऽनेन मन्त्रेण ॥ ५४ ॥

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च सिद्धाः पुरातनाः ।

ब्रह्मा विष्णुश्च शम्भुश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥ ५५ ॥

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ ।

अदितिर्देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती ॥ ५६ ॥

कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रोत्र्य सिनीवाली कुहूस्तथा ।

दनुश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ॥ ५७ ॥

देवपत्न्यश्च या नोक्ता देवमातर एव च ।

सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु दिव्याश्चाप्सरसां गणाः ॥ ५८ ॥

नक्षत्राणि मुहूर्ताश्च पक्षाहेराचसन्धयः ।

संवत्सरा दिनेश्वरश्च कलाः काष्ठाः क्षणा लवाः ॥ ५९ ॥

सर्वं त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः ।

वैमानिकाः सुरगणा मनवः सागरैः सह ॥ ६० ॥

सप्तर्षयः सदारश्च ध्रुवस्थानानि यानि च ।

मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥ ६१ ॥

भृगुः सनत्कुमारश्च सनको ऽथ सनन्दनः ।

सनातनश्च दक्षश्च जैगीषव्यो भगन्दरः ॥ ६२ ॥

एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जावालिकश्यपौ ।

दुर्वासा दुर्विनीतश्च कण्वः कात्यायनस्तथा ॥ ६३ ॥

मार्कण्डेयो दीर्घतपाः शुनःशेषो विदूरथः ।
 ऊर्वः संवर्तकश्चैव च्यवने ऽत्रिः पराशरः ॥ ६४ ॥
 द्वैपायनो यवक्रीतो देवराजः सहानुजः ।
 एते चान्ये च मुनयो वेदव्रतपरायणाः ॥ ६५ ॥
 सशिष्यास्ते ऽभिषिञ्चन्तु सदाराश्च तपोधनाः ।
 पर्वतास्तरवो बह्व्यः पुण्यान्यायतनानि च ॥ ६६ ॥
 सरितश्च महाभागा नागाः किम्पुरुषास्तथा ।
 वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये ॥ ६७ ॥
 प्रजापतिर्दितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः ।
 वाहनानि च दिव्यानि सर्वलोकाश्चराचराः ॥ ६८ ॥
 अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः खं दिशो जलम् ।
 एते चान्ये च बहवः पुण्यसङ्कीर्तनाः शुभाः ॥ ६९ ॥
 तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वात्पातनिबर्हणैः ।
 कल्याणं ते प्रकुर्वन्तु आयुरारोग्यमेव च ॥ ७० ॥

इत्येतैश्चान्यैश्चा-

प्यथर्वकल्पविहितैः सरुद्रगणैः ।

कौष्माण्डमहारौहिण-

कुबेरहृद्यैः समृद्ध्या च ॥ ७१ ॥

आपो हि ष्ठा तिसृभि-

र्हिरण्यवर्णेति चतसृभिर्जप्तम् ।

कार्पासिकवस्त्रयुगं

विभृयात्स्नातो नराधिपतिः ॥ ७२ ॥

पुण्याहशङ्खशब्दै-
 राचान्तो ऽभ्यर्च्य देवगुरुविप्रान् ।
 छत्रध्वजायुधानि च
 ततः स्वपूजां प्रयुञ्जीत ॥ ७३ ॥
 आयुष्यं वर्चस्यं
 रायस्योषाभिर्ऋग्भिरेताभिः ।
 परिजप्तं वैजयिकं
 नवं विदध्यादलङ्कारम् ॥ ७४ ॥
 गत्वा द्वितीयवेदीं
 समुपविशेच्चर्मणामुपरि राजा ।
 देयानि चैव चर्मा-
 ण्युपर्युपर्येवमेतानि ॥ ७५ ॥

वृषस्य वृषदंशस्य रुरोश्च पृषतस्य च ।
 तेषामुपरि सिंहस्य व्याघ्रस्य च ततः परम् ॥ ७६ ॥

मुख्यस्थाने जुहुयात्
 पुरोहितो ऽग्निं समित्तिलघृताद्यैः ।
 चिनयनशक्रवृहस्पति-
 नारायणनित्यगतिऋग्भिः ॥ ७७ ॥
 इन्द्रध्वजनिर्दिष्टा-
 न्यग्निनिमित्तानि दैवविद्भूयात् ।
 कृत्वाशेषसमाप्तिं
 पुरोहितः प्राञ्जलिर्ब्रूयात् ॥ ७८ ॥

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवात् ।
सिद्धिं दत्त्वा सुविपुलां पुनरागमनाय वै ॥ ७९ ॥

नृपतिरतो दैवज्ञं
पुरोहितं चार्चयेद्वनैर्बहुभिः ।
अन्यांश्च दक्षिणीयान्
यथार्हतः श्राद्धियप्रभृतीन् ॥ ८० ॥

दत्त्वाभयं प्रजाना-
माघातस्थानगान्विस्तृज्य पशून् ।

बन्धनमोक्षं कुर्या-
दभ्यन्तरदोषकृद्द्वर्जम् ॥ ८१ ॥

एतत् प्रयुज्यमानं
प्रतिपुष्यं सुखयशोऽर्थवृद्धिकरम् ।

पुष्यं विनार्धफलदा
पौषी शान्तिः पुरा प्राक्ता ॥ ८२ ॥

राष्ट्रोत्पातोपसर्गेषु राहोः केतोश्च दर्शने ।
ग्रहावमर्दने चैव पुष्यस्नानं समाचरेत् ॥ ८३ ॥
नास्ति लोके स उत्पातो यो ह्यनेन न शाम्यति ।
मङ्गलं चापरं नास्ति यदस्मादतिरिच्यते ॥ ८४ ॥
अधिराज्यार्थिनो राज्ञः पुत्रजन्म च काङ्क्षतः ।
तत्पूर्वमभिषेके च विधिरेष प्रशस्यते ॥ ८५ ॥
महेन्द्रार्थमुवाचेदं बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिः ।
स्नानमायुःप्रजावृद्धिसौभाग्यकरणं परम् ॥ ८६ ॥

अनेनैव विधानेन हस्त्यश्वं स्नापयित यः ।
तस्यामयविनिर्मुक्तं परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ८७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृहत्संहितायां पुष्य-
स्नानं नामाष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ * ॥

विस्तरशो निर्दिष्टं
पट्टानां लक्षणं यदाचार्यैः ।
तत्सङ्क्षेपः क्रियते
मयाच सकलार्थसम्पन्नः ॥ १ ॥
पट्टः शुभदेो राज्ञां
मध्ये ऽष्टावङ्गुलानि विस्तीर्णाः ।
सप्त नरेन्द्रमहिष्याः
षड् युवराजस्य निर्दिष्टः ॥ २ ॥
चतुरङ्गुलविस्तारः
पट्टः सेनापतेर्भवति मध्ये ।
द्वे च प्रसादपट्टः
पञ्चैते कीर्तिताः पट्टाः ॥ ३ ॥
सर्वे द्विगुणायामा
मध्यादर्धेन पार्श्वविस्तीर्णाः ।
सर्वे च शुद्धकाञ्चन-
विनिर्मिताः श्रेयसो दृड्यौ ॥ ४ ॥

पञ्चशिखो भूमिपते-
 स्त्रिशिखो युवराजपार्थिवमहिष्योः ।
 एकशिखः सैन्यपतेः
 प्रसादपट्टो विना शिखया ॥ ५ ॥
 क्रियमाणं यदि पचं
 सुखेन विस्तारमेति पट्टस्य ।
 दृद्धिजयौ भूमिपते-
 स्तथा प्रजानां च सुखसम्पत् ॥ ६ ॥
 जीवितराज्यविनाशं
 करोति मध्ये व्रणः समुत्पन्नः ।
 मध्ये स्फुटितस्त्याज्यो
 विघ्नकरः पार्श्वयोः स्फुटितः ॥ ७ ॥
 अशुभनिमित्तोत्पत्तौ
 शास्त्रज्ञः शान्तिमादिशेद्राज्ञः ।
 शस्तनिमित्तः पट्टो
 नृपराष्ट्रविद्वहये भवति ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृढत्संहितायां पट्ट-
 क्षणं नाम एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ * ॥

अङ्गुलशतार्धमुत्तम
 जनः स्यात्पञ्चविंशतिं खङ्गः ।
 अङ्गुलमानाज्जेयो
 व्रणो ऽशुभो विषमपर्वस्थः ॥ १ ॥
 श्रीवृक्षवर्धमानातपच-
 शिवलिङ्गकुण्डलाब्जानाम् ।
 सदृशा व्रणाः प्रशस्ता
 ध्वजायुधस्वस्तिकानां च ॥ २ ॥
 ककलासकाककङ्क-
 क्रव्यादकबन्धवृश्चिकाकृतयः ।
 खङ्गे व्रणा न शुभदा
 वंशानुगाः प्रभूताश्च ॥ ३ ॥
 स्फुटितो ह्रस्वः कुण्ठो
 वंशच्छिन्नो न दृङ्मनोऽनुगतः ।
 अस्वन इति चानिष्टः
 प्रोक्तविपर्यस्त इष्टफलः ॥ ४ ॥
 क्कणितं मरणायोक्तं
 पराजयाय प्रवर्तनं कोशात् ।
 स्वयमुद्गीर्णं युद्धं
 ज्वलिते विजयो भवति खङ्गे ॥ ५ ॥
 नाकारणं विवृणुयान्न विघट्टयेच्च
 पश्येन्न तत्र वदनं न वदेच्च मूल्यम् ।

देशं न चास्य कथयेत् प्रतिमानयेच्च
 नैव स्पृशेन्नृपतिरप्रयतो ऽसियष्टिम् ॥ ६ ॥
 गोजिह्वासंस्थानो
 नीलोत्पलवंशपत्रसदृशश्च ।
 करवीरपत्रश्रूलाग्र-
 मण्डलाग्राः प्रशस्ताः स्युः ॥ ७ ॥
 निष्पन्नो न ऋद्यो
 निकषैः कार्यः प्रमाणयुक्तः सः ।
 मूले म्रियते स्वामी
 जननी तस्याग्रतश्छिन्ने ॥ ८ ॥
 यस्मिन् त्सरुप्रदेशे
 व्रणो भवेत्तद्देव खड्गस्य ।
 वनितानामिव तिलको
 गुह्ये वाच्यो मुखे दृष्ट्वा ॥ ९ ॥
 अथवा स्पृशति यद्दङ्गं
 प्रष्टा निस्त्रिंशभृत्तदवधार्य ।
 कोशस्थस्यादेश्यो
 व्रणो ऽस्ति शास्त्रं विदित्वेदम् ॥ १० ॥
 शिरसि स्पृष्टे प्रथमे
 ऽङ्गुले द्वितीये ललाटसंस्पर्शे ।
 भ्रूमध्ये च तृतीये
 नेत्रे स्पृष्टे चतुर्थे च ॥ ११ ॥

नासोष्ठकपोलहनु-
 श्रवणग्रीवांसकेषु पञ्चाद्याः ।
 उरसि द्वादशसंस्थ-
 स्त्रयोदशे कक्षयोर्ज्ञेयः ॥ १२ ॥
 स्तनहृदयोदरकुक्षी-
 नाभीषु चतुर्दशादयो ज्ञेयाः ।
 नाभीमूले कथ्यां
 गुच्छे चैकोनविंशतितः ॥ १३ ॥
 ऊर्वोर्द्वाविंशे स्याद्
 ऊर्वोर्मध्ये व्रणस्त्रयोविंशे ।
 जानुनि च चतुर्विंशे
 जङ्घायां पञ्चविंशे च ॥ १४ ॥
 जङ्घामध्ये गुरुफे
 पाण्ड्यां पादे तदङ्गुलीष्वपि च ।
 षड्विंशतिकाद्याव-
 च्चिंशदिति मतेन गर्गस्य ॥ १५ ॥
 पुत्रमरणं धनाप्ति-
 र्धनहानिः सम्पदश्च बन्धश्च ।
 एकाद्यङ्गुलसंस्थै-
 व्रणैः फलं निर्दिशेत्क्रमशः ॥ १६ ॥
 सुतलाभः कलहे
 हस्तिलब्धयः पुत्रमरणधनलाभौ ।

क्रमशो विनाशवनिताप्ति-
 चित्तदुःखानि षट्प्रभृति ॥ १७ ॥
 लब्धिर्हानिस्त्रीलब्धया
 वधो वृद्धिमरणपरितोषाः ।
 ज्ञेयाश्चतुर्दशदिषु
 धनहानिश्चैकविंशे स्यात् ॥ १८ ॥
 वित्ताप्तिरनिर्वाणं
 धनागमो मृत्युसम्पदो ऽस्वत्वम् ।
 ऐश्वर्यमृत्युराज्यानि
 च क्रमान्निंशदिति यावत् ॥ १९ ॥
 परतो न विशेषफलं
 विषमसमस्थास्तु पापशुभफलदाः ।
 कैश्चिदफलाः प्रदिष्टा-
 स्त्रिंशत्परतो ऽग्रमिति यावत् ॥ २० ॥
 करवीरोत्पलगजमद-
 घृतकुङ्कुमकुन्दचम्पकसगन्धः ।
 शुभदोऽनिष्टो गोमूत्र-
 पङ्कमेदःसदृशगन्धः ॥ २१ ॥
 कूर्मवसासृक्क्षारोपमश्च
 भयदुःखदो भवति गन्धः ।
 वैडूर्यकनकविद्युत्प्रभा
 जयारोग्यवृद्धिकरः ॥ २२ ॥

इदमौशनसं च शस्त्रपानं
 रुधिरेण श्रियमिच्छतः प्रदीप्ताम् ।
 हविषा गुणवत्सुताभिलिप्साः
 सलिलेनाक्षयमिच्छतश्च वित्तम् ॥ २३ ॥
 वडवोद्भ्रकरेणुदुग्धपानं
 यदि पापेन समीहते ऽर्थसिद्धिम् ।
 अषपित्तमृगाश्ववस्तदुग्धैः
 करिहस्तच्छिदये सतालगर्भैः ॥ २४ ॥
 आर्कं पयो हुडुविषाणमघीसमेतं
 पारावताखुशकृता च युतं प्रलेपः ।
 शस्त्रस्य तैलमथितस्य ततो ऽस्य पानं
 पश्चाच्छित्तस्य न शिलासु भवेद्विघातः ॥ २५ ॥
 क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते
 दिनेषिते पायितमायसं यत् ।
 सम्यक् छितं चाश्मनि नैति भङ्गं
 न चान्यलोहेष्वपि तस्य कौण्ड्यम् ॥ २६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां खड्ग-
 लक्षणं नाम पञ्चाशो ऽध्यायः ॥ * ॥

दैवज्ञेन शुभाशुभं दिग्दितस्थानाहृतानीक्षता
 वाच्यं प्रष्टृनिजापराङ्घटनां चालोक्य कालं धिया ।
 सर्वज्ञो हि चराचरात्मकतयासौ सर्वदर्शो विभु-
 श्रेष्ठाव्याहृतिभिः शुभाशुभफलं सन्दर्शयत्यर्थिनाम् ॥ १ ॥
 स्थानं पुष्पसुहासिभूरिफलभृत्सुस्त्रिग्धकृत्तिच्छदा-
 सत्यक्षिच्युतशस्तसञ्ज्ञिततरुच्छायोपगूढं समम् ।
 देवर्षिद्विजसाधुसिद्धनिलयं सत्पुष्पसस्योक्षितं
 सत्खादूदकनिर्मलत्वजनिताह्लादं च सच्छाड्वलम् ॥ २ ॥

द्विन्नभिन्नकामिखातकण्टकि-

सुष्टरूक्षकुटिलैर्न सत् कुजैः ।

क्रूरपक्षियुतनिन्द्यनामभिः

शुष्कशीर्णबहुपर्णवर्मभिः ॥ ३ ॥

श्मशानशून्यायतनं चतुष्पथं

तथामनोज्ञं विषमं सदेाघरम् ।

अवस्कराङ्गारकपालभस्मभि-

श्चितं तुषैः शुष्कटणैर्न शोभनम् ॥ ४ ॥

प्रव्रजितनग्ननापित-

रिपुबन्धनसूनिक्वैस्तथा श्वपचैः ।

कितवयतिपीडितैर्युत-

मायुधमाध्वीकविक्रयैर्न शुभम् ॥ ५ ॥

प्रागुत्तरैशाश्च दिशः प्रशस्ताः

प्रष्टुर्न वाखम्बुयमाग्निरक्षः ।

पूर्वाह्नकाले ऽस्ति शुभं न रात्रौ
 सन्ध्याद्वये प्रश्नकृतो ऽपराह्णे ॥ ६ ॥
 यात्राविधाने हि शुभाशुभं यत्
 प्रोक्तं निमित्तं तदिहापि वाच्यम् ।
 दृष्ट्वा पुरो वा जनताहृतं वा
 प्रष्टुः स्थितं पाणितले ऽथ वस्त्रे ॥ ७ ॥

अथाङ्गान्युर्वाषस्तनदृषणपादं च दशना
 भुजौ हस्तौ गण्डौ कचगलनखाङ्गुष्ठमपि यत् ।
 सशङ्खं कक्षांसश्रवणगुदसन्धीति पुरुषे
 स्त्रियां भ्रूनासास्फिग्वलिकटिसुलेखाङ्गुलिचयम् ॥ ८ ॥

जिह्वा ग्रीवा पिरिडके पाष्णिगुग्मं
 जङ्घे नाभिः कर्णपाली कृकाटी ।
 वक्त्रं पृष्ठं जत्रुजान्वस्थिपार्श्वं
 हृत्ताल्वक्षी मेहनोरस्त्रिकं च ॥ ९ ॥
 नपुंसकाख्यं च शिरो ललाटम्
 आश्राद्यसञ्चरपरैश्चिरेण ।
 सिद्धिर्भवेज्जातु नपुंसकैर्ना
 रूक्षस्तैर्भग्नैश्चैश्च पूर्वैः ॥ १० ॥

सृष्टे वा चालिते वापि पादाङ्गुष्ठे ऽक्षिरुग्भवेत् ।
 अङ्गुल्यां दुहितुः शोकं शिरोघाते नृपाङ्गयम् ॥ ११ ॥
 विप्रयोगमुरसि स्वगाचतः
 कर्पटाहतिरनर्थदा भवेत् ।

स्यात्प्रियात्तिरभिगृह्य कर्पटं
 पृच्छतश्चरणपादयोजितुः ॥ १२ ॥
 पादाङ्गुष्ठेन विलिखेद्भूमिं श्लेचोत्थचिन्तया ।
 हस्तेन पादौ कण्डूयेत्तस्य दासीमया च सा ॥ १३ ॥
 तालभूर्जपटदर्शने ऽंशुकं
 चिन्तयेत्कचतुषास्थिभस्मगम् ।
 व्याधिराश्रयति रज्जुजालकं
 वल्कलं च समवेक्ष्य बन्धनम् ॥ १४ ॥
 पिप्पलीमरिचशुण्ठिवारिदै
 रोध्रकुष्ठवसनाम्बजीरकैः ।
 गन्धमांसिशतपुष्पया वदेत्
 पृच्छतस्तगरकेण चिन्तनम् ॥ १५ ॥
 स्त्रीपुरुषदोषपीडित-
 सर्वाध्वसुतार्थधान्यतनयानाम् ।
 द्विचतुष्पदक्षितीनां
 विनाशतः कीर्तितैर्दृष्टैः ॥ १६ ॥
 न्यग्रोधमधुकतिन्दुक-
 जम्बूसक्षाम्रवदरिजातिफलैः ।
 धनकनकपुरुषलोहांशुक-
 रूप्योदुम्बरात्तिरपि करगैः ॥ १७ ॥
 धान्यपरिपूर्णपात्रं
 कुम्भः पूर्णः कुटुम्बद्विकरौ ।

गजगोशुनां पुरीषं
 धनयुवतिसुहृद्दिनाशकरम् ॥ १८ ॥
 पशुहस्तिमहिषपङ्कज-
 रजतव्याघ्रैर्लभेत सन्दृष्टैः ।
 अविधननिवसनमलयज-
 कौशेयाभरणसङ्घातम् ॥ १९ ॥
 पृच्छा वृद्धश्रावक-
 सुपरिव्राड्दर्शने नृभिर्विहिता ।
 मित्रद्यूतार्थभवा
 गणिकानृपसूतिकार्थकृता ॥ २० ॥
 शक्योपाध्यायार्हत-
 निर्ग्रन्थनिमित्तनिगमकैवर्तैः ।
 चौरचमूपतिवणिजां
 दासीयोधापणस्यवधानाम् ॥ २१ ॥
 तापसे शौण्डिके दृष्टे प्रोषितः पशुपालनम् ।
 हृद्गतं पृच्छकस्य स्यादुञ्छरत्तौ विपन्नता ॥ २२ ॥
 इच्छामि प्रष्टुं भण
 पश्यत्वार्थः समादिशेत्युक्ते ।
 संयोगकुटुम्बोत्था
 लाभैश्वर्योन्नता चिन्ता ॥ २३ ॥
 निर्दिशेति गदिते जयाध्वगा
 प्रत्यवेक्ष्य मम चिन्तितं वद ।

आशु सर्वजनमध्यगं त्वया
 दृश्यतामिति च बन्धुचौरजा ॥ २४ ॥
 अन्तःस्थे ऽङ्गे स्वजन उदितो बाह्यजे बाह्य एवं
 पादाङ्गुष्ठाङ्गुलिकलनया दासदासीजनः स्यात् ।
 जङ्घे प्रेष्या भवति भगिनी नाभितो हृत्स्वभार्या
 पाण्यङ्गुष्ठाङ्गुलिचयद्वतस्पर्शने पुचकन्ये ॥ २५ ॥
 मातरं जठरे मूर्ध्नि गुरुं दक्षिणवामकौ ।
 बाहू धाताय तत्पत्नी स्पृष्ट्वैवं चौरमादिशेत् ॥ २६ ॥
 अन्तरङ्गमवमुच्य बाह्यग-
 स्पर्शनं यदि करोति पृच्छकः ।
 श्लेषमूत्रशङ्कतस्यजन्मधः
 पातयेत्करतलस्थवस्तु चेत् ॥ २७ ॥
 धृशमवनामिताङ्गपरिमोहनतो ऽप्यथवा
 जनधृतरिक्तभाण्डमवलोकाय च चौरजनम् ।
 हृतपतितक्षतास्मृतविनष्टविभग्नगतो-
 न्मुषितमृताद्यनिष्टरवतो लभते न हृतम् ॥ २८ ॥
 निगदितमिदं यत्तत्सर्वं तुषास्थिविषादिकैः
 सह मृतिकारं पीडार्तानां समं रुदितक्षुतैः ।
 अवयवमपि स्पृष्ट्वान्तःस्थं दृढं मरुदाहरेद्
 अतिबहु तदा भुक्तान्नं संस्थितः सुहितो वदेत् ॥ २९ ॥
 ललाटस्पर्शनाच्छूकदर्शनाच्छालिजौदनम् ।
 उरःस्पर्शात् षष्टिकान्नं ग्रीवास्पर्शं च यावकम् ॥ ३० ॥

कुक्षिकुचजठरजानु-

स्पर्श माघाः पयस्त्रिलयवाग्बः ।

आस्वादयतश्चौष्ठौ

लिहतो मधुरं रसं ज्ञेयम् ॥ ३१ ॥

विस्पृक्ते स्फोटयेज्जिह्वामान्त्रे वक्त्रं विक्रणयेत् ।

कटुतिक्तकषायोष्णैर्हिक्तेन्ध्रिवेच्च सैन्यवे ॥ ३२ ॥

श्लेष्मत्यागे शुष्कतिक्तं तदल्पं

श्रुत्वा क्रव्यादं प्रेक्ष्य वा मांसमिश्रम् ।

धूगण्डौष्ठस्पर्शने शाकुनं तद्

भुक्तं तेनेत्युक्तमेतन्निमित्तम् ॥ ३३ ॥

मूर्धगलकेशहनुशङ्ख-

कर्णजङ्घं वस्तिं च स्पृष्ट्वा ।

गजमहिषमेषश्रूकर-

गोशशमृगमांसयुग्भुक्तम् ॥ ३४ ॥

दृष्टे श्रुते ऽप्यशकुने

गोधामत्स्यामिषं वदेद्भुक्तम् ।

गर्भिण्या गर्भस्य च

निपतनमेवं प्रकल्पयेत्प्रभे ॥ ३५ ॥

पुंस्त्रीनपुंसकाख्ये

दृष्टे ऽनुमिते पुरःस्थिते स्पृष्टे ।

तज्जन्म भवति पानान्न-

पुष्यफलदर्शने च शुभम् ॥ ३६ ॥

अङ्गुष्ठेन भ्रूदरं वाङ्गुलिं वा
 स्पृष्ट्वा पृच्छेद्गर्भचिन्ता तदा स्यात् ।
 मध्वाज्याद्यैर्हर्मरत्नप्रवालै-
 रग्रस्थैर्वा मातृधात्यात्मजैश्च ॥ ३७ ॥
 गर्भयुताजठरे करगे स्याद्
 दुष्टनिमित्तवशात्तदुदासः ।
 कर्षति तज्जठरं यदि पीठो-
 त्पीडनतः करगे च करे ऽपि ॥ ३८ ॥

घ्राणाय दक्षिणे द्वारे स्पृष्टे मासोत्तरं वदेत् ।
 वामे द्वौ कर्णौ एवं मा द्विचतुर्घ्नः श्रुतिस्तने ॥ ३९ ॥
 वेणीमूले चीन् सुतान् कन्यके द्वे
 कर्णे पुत्रान् पञ्च हस्ते चयं च ।
 अङ्गुष्ठान्ते पञ्चकं चानुपूर्व्या
 पादाङ्गुष्ठे पार्श्वार्णयुग्मे ऽपि कन्याम् ॥ ४० ॥

सव्यासव्योरुसंस्पर्शं स्त्रुते कन्यासुतद्वयम् ।
 स्पृष्टे ललाटमध्यान्ते चतुस्त्रितनया भवेत् ॥ ४१ ॥
 शिरोललाटभ्रूकर्णागण्डहनुरदा गलम् ।
 सव्यापसव्यस्कन्धश्च हस्तौ चिबुकनालकम् ॥ ४२ ॥

उरः कुचं दक्षिणमप्यसव्यं
 हृत्पार्श्वमेवं जठरं कटिश्च ।
 स्फिकं पायुसन्ध्यूरुयुगं च जानू
 जङ्घे ऽथ पादाविति कृत्तिकादौ ॥ ४३ ॥

इति निगदितमेतद्वाचसंस्पर्शलक्ष्म
 प्रकटमभिमतास्यै वीक्ष्य शास्त्राणि सम्यक् ।
 विपुलमतिरुदारो वेत्ति यः सर्वमेत-
 न्नरपतिजनताभिः पूज्यते ऽसौ सदैव ॥ ४४ ॥
 इत्यङ्गविद्या नामैकपञ्चाशत्तमो ऽध्यायः ॥ • ॥

सितरक्तपीतकृष्णा

विप्रादीनां क्रमेण पिटका ये ।

ते क्रमशः प्रोक्तफला

वर्णानामग्रजादीनाम् ॥ १ ॥

सुस्निग्धव्यक्तशोभाः शिरसि धनचयं मूर्ध्नि सौभाग्यमाराद्
 दौर्भाग्यं भ्रूयुगोत्थाः प्रियजनघटनामाशु दुःशीलतां च ।
 तन्मध्येत्याश्च शोकं नयनपुटगता नेत्रयोरिष्टदृष्टिं
 प्रव्रज्यां शङ्खदेशे ऽश्रुजलनिपतनस्थानगाश्चातिचिन्ताम्
 घ्राणागण्डे वसनसुतदाश्चोष्ठयोरन्नलाभं ॥ २ ॥
 कुर्युस्तद्वच्चिबुकतलगा भूरि विसं ललाटे ।
 हन्वोरेवं गलकृतपदा भूषणान्यन्नपाने
 श्रोत्रे तद्भूषणगणमपि ज्ञानमात्मस्वरूपम् ॥ ३ ॥
 शिरःसन्धिग्रीवाहृदयकुचपार्श्वारसि गता
 अयोघातं घातं सुततनयलाभं शुचमपि ।
 प्रियप्राप्तिं स्कन्धे ऽप्यटनंमथ भिक्षार्थमसकृद्
 विनाशं कक्षोत्था विदधति धनानां बहुसुखम् ॥ ४ ॥

दुःखशत्रुनिचयस्य विघातं
 पृष्ठबाहुयुगजा रचयन्ति ।
 संयमं च मणिबन्धनजाता

भूषणाद्यमुपबाहुयुगोत्थाः ॥ ५ ॥

धनाग्निं सौभाग्यं शुचमपि कराङ्गुल्युदरगाः
 सुपानान्नं नाभौ तदध इह चौरैर्धनहृतिम् ।
 धनं धान्यं बस्तौ युवतिमथ मेद्रे सुतनयान्
 धनं सौभाग्यं वा गुददृषणजाता विदधति ॥ ६ ॥
 ऊर्वीर्यानाङ्गनालाभं जान्वोः शत्रुजनात्क्षतिम् ।
 शस्त्रेण जङ्घयोर्गुल्फे ऽध्वबन्धक्लेशदायिनः ॥ ७ ॥
 स्फिक्पाष्णिपादजाता धननाशागम्यगमनमध्वानम् ।
 बन्धनमङ्गुलिनिचये ऽङ्गुष्ठे च ज्ञातिलोकतः पूजाम् ॥ ८ ॥
 उत्पातगण्डपिटका दक्षिणतो वामतस्त्वभीघाताः ।
 धन्या भवन्ति पुंसां तद्विपरीतास्तु नारीणाम् ॥ ९ ॥
 इति पिटकविभागः प्रोक्त आ मूर्धतो ऽयं
 वृणतिलकविभागो ऽप्येवमेव प्रकल्प्यः ।
 भवति मशकलश्मावर्तजन्मापि तद्व-
 न्निगदितफलकारि प्राणिनां देहसंस्थम् ॥ १० ॥

इति पिटकलक्षणं नाम द्वापञ्चाशो ऽध्यायः ॥ * ॥

वास्तुज्ञानमथातः

कमलभवान्मुनिपरम्परायातम् ।

क्रियते ऽधुना मयेदं

विदग्धसांवत्सरप्रोत्थै ॥ १ ॥

किमपि किल भूतमभवद्

रुन्धानं रोदसी शरीरेण ।

तदमरगणेन सहसा

विनिगृह्याधोमुखं न्यस्तम् ॥ २ ॥

यत्र च येन गृहीतं

विबुधेनाधिष्ठितः स तत्रैव ।

तदमरमयं विधाता

वास्तुनरं कल्पयामास ॥ ३ ॥

उत्तममष्टाभ्यधिकं

हस्तशतं नृपगृहं पृथुत्वेन ।

अष्टाष्टो नान्येवं

पञ्च सपादानि दैर्घ्येण ॥ ४ ॥

षड्भिः षड्भिर्हीना

सेनापतिसद्गर्ना चतुःषष्टिः ।

पञ्चैवं विस्तारात्

षड्भागसमन्विता दैर्घ्यम् ॥ ५ ॥

षष्टिश्चतुर्विहीना

वेश्मानि भवन्ति पञ्च सचिवस्त ।

स्वाष्टांशयुता दैर्घ्यं
 तदर्धतो राजमहिषीणाम् ॥ ६ ॥
 षड्भिः षड्भिश्चैवं
 युवराजस्यापवर्जिताशीतिः ।
 त्वंशान्विता च दैर्घ्यं
 पञ्च तदर्धैस्तदनुजानाम् ॥ ७ ॥
 नृपसचिवान्तरतुल्यं
 सामन्तप्रवरराजपुरुषाणाम् ।
 नृपयुवराजविशेषः
 कञ्चुकिवेश्याकलाज्ञानाम् ॥ ८ ॥
 अर्ध्याधिक्षतानां
 सर्वेषामेव कोशरतितुल्यम् ।
 युवराजमन्त्रिविवरं
 कर्मान्ताध्यक्षदूतानाम् ॥ ९ ॥
 चत्वारिंशद्भोजना
 चतुश्चतुर्भिस्तु पञ्च यावदिति ।
 षड्भागयुता दैर्घ्यं
 दैवज्ञपुरोधसोर्भिषजः ॥ १० ॥
 वास्तुनि यो विस्तारः
 स एव चोच्छ्रायनिश्चयः शुभदः ।
 शालैकेषु गृहेष्वपि
 विस्ताराद्भिगुणितं दैर्घ्यम् ॥ ११ ॥

चातुर्वर्ण्यव्यासे
 द्वात्रिंशत् स्याच्चतुश्चतुर्हीनाः ।
 आ षोडशादिति परं
 न्यूनतरमतीवहीनानाम् ॥ १२ ॥
 सदशांशं विप्राणां
 क्षत्रस्याष्टांशसंयुतं दैर्घ्यम् ।
 षड्भागयुतं वैश्यस्य
 भवति शूद्रस्य पादयुतम् ॥ १३ ॥
 नृपसेनापतिगृहयो-
 रन्तरमानेन कोशरतिभवने ।
 सेनापतिचातुर्वर्ण्य-
 विवरतो राजपुरुषाणाम् ॥ १४ ॥
 अथ पारसवादीनां
 स्वमानसंयोगदलसमं भवनम् ।
 हीनाधिकं स्वमाना-
 दशुभकरं वास्तु सर्वेषाम् ॥ १५ ॥
 पश्चात्प्रमिणाममितं
 धान्यायुधवह्निरतिगृहाणां च ।
 नेच्छन्ति शास्त्रकारा
 हस्तशतादुच्छ्रितं परतः ॥ १६ ॥
 सेनापतिनृपतीनां
 सप्ततिसहिते द्विधाकृते व्यासे ।

शाला चतुर्दशहृते
 पञ्चत्रिंशद्भृते ऽलिन्दः ॥ १७ ॥
 हस्तद्वात्रिंशादिषु
 चतुश्चतुस्त्रिचिक्रिकाः शालाः ।
 सप्तदशत्रितयतिथि-
 चयोदशकृताङ्गुलाभ्यधिकाः ॥ १८ ॥
 त्रिचिद्विद्विद्विसमाः
 श्यक्रमादङ्गुलानि चैतेषाम् ।
 व्येका विंशतिरष्टौ
 विंशतिरष्टादश त्रितयम् ॥ १९ ॥
 शालात्रिभागतुल्या
 कर्तव्या वीथिका बहिर्भवनात् ।
 यद्यग्रतो भवति सा
 सोष्णीषं नाम तद्वास्तु ॥ २० ॥
 सायाश्रयमिति पश्चात्
 सावष्टमं तु पार्श्वसंस्थितया ।
 सुस्थितमिति च समन्तात्
 शास्त्रज्ञैः पूजिताः सर्वाः ॥ २१ ॥
 विस्तारषोडशांशः
 सचतुर्हस्तो भवेद्गृहोच्छ्रायः ।
 द्वादशभागेनाने
 भूमौ भूमौ समस्तानाम् ॥ २२ ॥

व्यासात् षोडशभागः
 सर्वेषां सद्गनां भवति भित्तिः ।
 पक्वैष्टकाकृतानां
 दारुकृतानां तु सविकल्पः ॥ २३ ॥
 एकादशभागयुतः
 सप्ततिर्नृपबलेशयोर्व्यासः ।
 उच्छ्रायो ऽङ्गुलतुल्यो
 द्वारस्यार्धेन विष्कम्भः ॥ २४ ॥
 विप्रादीनां व्यासात्
 पञ्चांशो ऽष्टादशाङ्गुलसमेतः ।
 साष्टांशो विष्कम्भो
 द्वारस्य द्विगुण उच्छ्रायः ॥ २५ ॥
 उच्छ्रायहस्तसङ्घ्या-
 परिमाणान्यङ्गुलानि बाहुल्यम् ।
 शाखाद्वये ऽपि कार्यं
 सार्धं तत्स्यादुदुम्बरयोः ॥ २६ ॥
 उच्छ्रायात् सप्तगुणा-
 दशीतिभागः पृथुत्वमेतेषाम् ।
 नवगुणिते ऽशीत्यंशः
 स्तम्भस्य दशांशहीनो ऽग्रे ॥ २७ ॥
 समचतुरश्रो रुचको
 वज्रो ऽष्टाश्रिर्द्विवज्रको द्विगुणः ।

द्वात्रिंशता तु मध्ये
 प्रलीनको वृत्त इति वृत्तः ॥ २८ ॥
 स्तम्भं विभज्य नवधा
 वह्ननं भागो घटो ऽस्य भागो ऽन्यः ।
 पद्मं तथोत्तरोष्ठं
 कुर्याद्भागेन भागेन ॥ २९ ॥
 स्तम्भसमं बाहुल्यं
 भारतुलानामुपर्युपर्यासाम् ।
 भवति तुलोपतुलाना-
 मूनं पादेन पादेन ॥ ३० ॥
 अप्रतिषिद्धालिन्दं
 समन्तो वास्तु सर्वतोभद्रम् ।
 नृपविबुधसमूहानां
 कार्यं द्वारैश्चतुर्भिरपि ॥ ३१ ॥
 नन्द्यावर्तमलिन्दैः
 शालाकुद्यात् प्रदक्षिणान्तगतैः ।
 द्वारं पश्चिममस्मिन्
 विहाय श्रेष्ठाणि कार्याणि ॥ ३२ ॥
 द्वारालिन्दो ऽन्तगतः
 प्रदक्षिणो ऽन्यः शुभस्ततश्चान्यः ।
 तद्वच्च वर्धमाने
 द्वारं तु न दक्षिणं कार्यम् ॥ ३३ ॥

अपरो ऽन्तगतो ऽलिन्दः
 प्रागन्तगतौ तदुत्थितौ चान्यौ ।
 तदवधिविद्युत्तश्चान्यः
 प्राग्द्वारं स्वस्तिके ऽशुभदम् ॥ ३४ ॥
 प्राक्पश्चिमावलिन्दा-
 वन्तगतौ तदवधिस्थितौ शेषौ ।
 रुचके द्वारं न शुभद-
 मुत्तरतो ऽन्यानि शस्तानि ॥ ३५ ॥
 श्रेष्ठं नन्द्यावर्तं
 सर्वेषां वर्धमानसज्जं च ।
 स्वस्तिकरुचके मध्ये
 शेषं शुभदं नृपादीनाम् ॥ ३६ ॥
 उत्तरशालाहीनं
 हिरण्यनाभं त्रिशालकं धन्यम् ।
 प्राक्शालया वियुक्तं
 सुक्षेत्रं दृष्ट्वा वास्तु ॥ ३७ ॥
 याम्याहीनं चुल्ली-
 त्रिशालकं वित्तनाशकरमेतत् ।
 पद्मघ्नमपरया वर्जितं
 सुतध्वंसवैरकरम् ॥ ३८ ॥
 सिद्धार्थमपरयाम्ये
 यमसूर्यं पश्चिमोत्तरे शाले ।

दण्डाख्यमुदकपूर्वे
 वाताख्यं प्राग्युता याम्या ॥ ३९ ॥
 पूर्वापरे तु शाले
 गृहचुल्ली दक्षिणोत्तरे काचम् ।
 सिद्धार्थे ऽर्थावाप्ति-
 र्यमसूर्ये गृहपतेर्भृत्युः ॥ ४० ॥
 दण्डवधो दण्डाख्ये
 कलहोद्देगः सदैव वाताख्ये ।
 वित्तविनाशश्चुल्ल्यां
 ज्ञातिविरोधः स्मृतः काचे ॥ ४१ ॥
 एकाशीतिविभागे
 दश दश पूर्वोत्तरायता रेखाः ।
 अन्तस्त्रयोदश सुरा
 द्वात्रिंशद्वाह्यकौष्ठस्थाः ॥ ४२ ॥
 शिखिपर्जन्यजयन्तेन्द्र-
 सूर्यसत्या भृशो ऽन्तरिक्षश्च ।
 ऐशान्याद्याः क्रमशो
 दक्षिणपूर्वे ऽनिलः कोणे ॥ ४३ ॥
 पूषा वितथदृहत्क्षत-
 यमगन्धर्वाख्यभृङ्गराजमृगाः ।
 पितृदौवारिकसुग्रीव-
 कुसुमदन्ताम्बुपत्यसुराः ॥ ४४ ॥

शोषो ऽथ पापयश्मा
 रोगः कोणे ततो ऽहिमुख्यौ च ।
 भल्लाटसोमभुजगा-
 स्ततो ऽदितिर्दितिरिति क्रमशः ॥ ४५ ॥
 मध्ये ब्रह्मा नवकोष्ठका-
 धिपो ऽस्यार्धमा स्थितः प्राच्याम् ।
 एकान्तरात्प्रदक्षिण-
 मस्मात्सविता विवस्वांश्च ॥ ४६ ॥
 विबुधाधिपतिस्तस्मा-
 न्मित्रो ऽन्यो राजयश्मनामा च ।
 पृथ्वीधरापवत्सा-
 वित्येते ब्रह्मणः परिधौ ॥ ४७ ॥
 आपो नामैशाने
 कोणे हैताशने च सावित्रः ।
 जय इति च नैर्ऋते
 रुद्र आनिले ऽभ्यन्तरपदेषु ॥ ४८ ॥
 आपस्तथापवत्सः
 पर्जन्यो ऽग्निर्दितिश्च वर्गो ऽयम् ।
 एवं कोणे कोणे
 पदिकाः स्युः पञ्च पञ्च सुराः ॥ ४९ ॥
 बाह्या द्विपदाः श्रेया-
 स्ते विबुधा विंशतिः समाख्याताः ।

शेषाश्चत्वारो ऽन्ये
 त्रिपदा दिक्ष्वर्यमाद्यास्ते ॥ ५० ॥
 पूर्वोत्तरदिङ्मूर्धा
 पुरुषो ऽयमवाङ्मुखो ऽस्य शिरसि शिखी ।
 आपो मुखे स्तने ऽस्या-
 र्यमा ह्युरस्यापवत्सश्च ॥ ५१ ॥
 पर्जन्याद्या बाह्या
 दृक्श्रवणोरःस्थलांसगा देवाः ।
 सत्याद्याः पञ्च भुजे
 हस्ते सविता ससावित्रः ॥ ५२ ॥
 वितथो बृहत्क्षतयुतः
 पार्श्वे जठरे स्थितो विवस्वांश्च ।
 जरू जानू जङ्घे
 स्फिगिति यमाद्यैः परिगृहीताः ॥ ५३ ॥
 एते दक्षिणपार्श्वे
 स्थानेष्वेवं च वामपार्श्वस्थाः ।
 मेढ्रे शक्रजयन्तौ
 हृदये ब्रह्मा पितांङ्घ्रिगतः ॥ ५४ ॥
 अष्टाष्टकपदमथवा
 कृत्वा रेखाश्च कोणगास्तिर्यक् ।
 ब्रह्मा चतुःपदो ऽस्मि-
 न्निर्धपदा ब्रह्मकोणस्थाः ॥ ५५ ॥

अष्टौ च बहिःकोणे-
 घर्धपदास्तदुभयस्थिताः सार्धाः ।
 उक्तेभ्यो ये शेषा-
 स्ते द्विपदा विंशतिस्ते च ॥ ५६ ॥
 सम्पाता वंशानां
 मध्यानि समानि यानि च पदानाम् ।
 मर्माणि तानि विन्द्या-
 न्नपरिपीडयेत्प्राज्ञः ॥ ५७ ॥
 तान्यशुचिभाण्डकील-
 स्तम्भाद्यैः पीडितानि शल्यैश्च ।
 गृहभर्तुस्तत्तुल्ये
 पीडामङ्गे प्रयच्छन्ति ॥ ५८ ॥
 कण्डूयते यदङ्गं
 गृहपतिना यत्र वामंराहुत्याम् ।
 अशुभं भवेन्निमित्तं
 विह्वतिर्वाग्नेः सशल्यं तत् ॥ ५९ ॥
 धनहानिर्दारुमये
 पशुपीडारुग्भयानि चास्थिह्वते ।
 [लोहमये शस्त्रभयं
 कपालकेशेषु मृत्युः स्यात् ॥ ६० ॥
 अङ्गारे स्तेनभयं
 भस्मनि च विनिर्दिशेत्सदाग्निभयम् ।

शल्यं हि मर्मसंस्थं
 सुवर्णरजतादृते ऽत्यशुभम् ॥ ६१ ॥
 मर्मण्यमर्मगो वा
 रुणद्धर्थागमं तुषसमूहः ।
 अपि नागदन्तको
 मर्मसंस्थितो दोषकृद्भवति ॥ ६२ ॥
 रोगाद्वायुं पितृतो
 हुताशनं शोषसूत्रमपि वितथात् ।
 मुस्थाद्भृशं जयन्ताच्च
 भृङ्गमदितेश्च सुग्रीवम् ॥ ६३ ॥
 तत्सम्पाता नव ये
 तान्यतिमर्माणि सम्प्रदिष्टानि ।
 यश्च पदस्याष्टांश-
 स्तत्रोक्तं मर्मपरिमाणम् ॥ ६४ ॥
 पदहस्तसङ्ख्यया
 सन्मितानि वंशो ऽङ्गुलानि विस्तीर्णः ।
 वंशव्यासो ऽध्यर्धः
 शिराप्रमाणं विनिर्दिष्टम् ॥ ६५ ॥
 सुखमिच्छन् ब्रह्माणं
 यत्नाद्रक्षेद्गृही गृहान्तस्थम् ।
 उच्छिष्टाद्युपघाताद्
 गृहपतिरुपतप्यते तस्मिन् ॥ ६६ ॥

दक्षिणभुजेन हीने
 वास्तुनरे ऽर्थक्षयो ऽङ्गनादोषाः ।
 वामे ऽर्थधान्यहानिः
 शिरसि गुणैर्हीयते सर्वैः ॥ ६७ ॥
 स्त्रीदोषाः सुतमरणं
 प्रेष्यत्वं चापि करणवैकल्ये ।
 अविकल्पपुरुषे वसतां
 मानार्थयुतानि सौख्यानि ॥ ६८ ॥
 गृहनगरग्रामेषु च
 सर्वचैवं प्रतिष्ठिता देवाः ।
 तेषु च यथानुरूपं
 वर्णा विप्रादयो वास्याः ॥ ६९ ॥
 वासगृहाणि च विन्द्याद्
 विप्रादीनामुदग्दिगाद्यानि ।
 विशतां च यथाभवनं
 भवन्ति तान्येव दक्षिणतः ॥ ७० ॥
 नवगुणसूत्रविभक्ता-
 न्यष्टगुणेनाथवा चतुःषष्टेः ।
 द्वाराणि यानि तेषा-
 मनलादीनां फलोपनयः ॥ ७१ ॥
 अनलभयं स्त्रीजन्म
 प्रभूतधनता नरेन्द्रबाह्यम् ।

क्रोधपरतान्दृष्टत्वं
 क्रौर्यं चौर्यं च पूर्वेण ॥ ७२ ॥
 अल्पसुतत्वं प्रैष्यं
 नीचत्वं भक्ष्यपानसुतदृष्टिः ।
 रौद्रं कृतघ्नमधनं
 सुतवीर्यघ्नं च याम्येन ॥ ७३ ॥
 सुतपीडा रिपुदृष्टि-
 र्न धनसुताप्तिः सुतार्थबलसम्पत् ।
 धनसम्पन्नृपतिभयं
 धनक्षयो रोग इत्यपरे ॥ ७४ ॥
 वधबन्धौ रिपुदृष्टि-
 र्धनसुतलाभः समस्तगुणसम्पत् ।
 पुत्रधनाप्तिर्वैरं
 सुतेन दोषाः स्त्रिया नैःस्वम् ॥ ७५ ॥
 मार्गतरुकोणकूप-
 स्तम्भध्रमविद्धमशुभदं द्वारम् ।
 उच्छ्रायाद्विगुणमितां
 त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ॥ ७६ ॥
 रथ्याविद्धं द्वारं
 नाशाय कुमारदोषदं तरुणा ।
 पङ्कद्वारे शोको
 व्ययो ऽम्बुनि स्वाविणि प्रोक्तः ॥ ७७ ॥

कूपेनापस्मारो
 भवति विनाशश्च देवताविज्ञे ।
 स्तम्भेन स्त्रीदोषाः
 कुलनाशो ब्रह्मणो ऽभिमुखे ॥ ७८ ॥
 उन्मादः स्वयमुद्घाटिते
 ऽथ पिहिते स्वयं कुलविनाशः ।
 मानाधिके नृपभयं
 दस्युभयं व्यसनदं नोचम् ॥ ७९ ॥
 द्वारं द्वारस्योपरि
 यत्तन्न शिवाय सङ्कटं यच्च ।
 श्राव्यात्तं क्षुद्भयदं
 कुञ्जं कुलनाशनं भवति ॥ ८० ॥
 पीडाकरमतिपीडित-
 मन्तर्विनतं भवेद्भावाय ।
 बाह्यविनते प्रवासो
 दिग्भ्रान्ते दस्युभिः पीडा ॥ ८१ ॥
 मूलद्वारं नान्यै-
 द्वारैरतिसन्दधीत रूपद्वा ।
 घटफलपत्रप्रमथादिभिश्च
 तन्मङ्गलैश्चिनुयात् ॥ ८२ ॥
 ऐशान्यादिषु कोणेषु
 संस्थिता बाह्यतो गृहस्यैताः ।

चरकी विदारिनामाथ
 पूतना राक्षसी चेति ॥ ८३ ॥
 पुरभवनग्रामाणां
 ये कोणास्तेषु निवसतां दोषाः ।
 श्वपचादयो ऽन्त्यजात्या-
 स्तेष्वेव विवृद्धिमायान्ति ॥ ८४ ॥
 याम्यादिष्वशुभफला
 जातास्तरवः प्रदक्षिणेनैते ।
 उदगादिषु प्रशस्ताः
 लक्षवटोदुम्बराश्वत्याः ॥ ८५ ॥
 आसन्नाः कण्टकिनो
 रिपुभयदाः क्षीरिणो ऽर्थनाशाय ।
 फलिनः प्रजाक्षयकरा
 दारूण्यपि वर्जयेदेषाम् ॥ ८६ ॥
 छिन्द्याद्यदि न तरुंस्तान्
 तदन्तरे पूजितान्वपेदन्यान् ।
 पुन्नागाशोकारिष्ट-
 बकुलपनसान् शमीशालौ ॥ ८७ ॥

शस्तौषधिद्रुमलतामधुरा सुगन्धा
 स्निग्धा समा न सुषिरा च मही नराणाम् ।
 अप्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां
 धत्ते अग्र्यं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु ॥ ८८ ॥

सचिवालये ऽर्थनाशो
 धूर्तगृहे सुतवधः समीपस्थे ।
 उद्वेगो देवकुले
 चतुष्पथे भवति चाकीर्तिः ॥ ८६ ॥
 चैत्ये भयं ग्रहकृतं
 वल्मीकश्वभ्रसङ्कुले विपदः ।
 गर्तायां तु पिपासा
 कूर्माकारे धनविनाशः ॥ ८७ ॥
 उदगादिस्रवमिष्टं
 विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैव ।
 विप्रः सर्वत्र वसे-
 दनुवर्णमथेष्टमन्वेषाम् ॥ ८८ ॥
 गृहमध्ये हस्तमितं
 खात्वा परिपूरितं पुनः श्वभ्रम् ।
 यद्यूनमनिष्टं तत्
 समे समं धन्यमधिकं यत् ॥ ८९ ॥
 श्वभ्रमथवाम्बुपूर्णं
 पदशतमित्वागतस्य यदि नोनम् ।
 तद्द्वयं यच्च भवेत्
 पलान्यपामाढकं चतुःषष्टिः ॥ ९० ॥
 आमे वा मृत्यात्रे
 श्वभ्रस्थे दीपवर्तिरभ्यधिकम् ।

ज्वलति दिशि यस्य शस्ता
 सा भूमिस्तस्य वर्णस्य ॥ ६४ ॥
 श्वधोषितं न कुसुमं
 यस्मिन् प्रम्त्वायते ऽनुवर्णसमम् ।
 तत्तस्य भवति शुभदं
 यस्य च यस्मिन्ननो रमते ॥ ६५ ॥
 सितरक्तपीतकृष्णा
 विप्रादीनां प्रशस्यते भूमिः ।
 गन्धश्च भवति यस्या
 घृतरुधिरान्नाद्यमद्यसमः ॥ ६६ ॥
 कुशयुक्ता शरबहुला
 दूर्वाकाशावृता क्रमेण मही ।
 अनुवर्णं वृद्धिकरी
 मधुरकषायाम्बकटुका च ॥ ६७ ॥
 कृष्टां प्ररूढबीजां
 गोऽधुषितां ब्राह्मणैः प्रशस्तां च ।
 गत्वा महीं गृहपतिः
 काले सांवत्सरोद्दिष्टे ॥ ६८ ॥
 भक्ष्यैर्नानाकारै-
 र्दध्यक्षतसुरभिकुसुमधूपैश्च ।
 दैवतपूजां कृत्वा
 स्थपतीनभ्यर्च्य विप्रांश्च ॥ ६९ ॥

विप्रः स्पृष्ट्वा शीघ्रं
 वक्षश्च क्षत्रियो विशश्चोरु ।
 शूद्रः पादौ स्पृष्ट्वा
 कुर्याद्रेखां गृह्यारम्भे ॥ १०० ॥
 अङ्गुष्ठकेन कुर्या-
 न्मध्याङ्गुल्याथवा प्रदेशिन्या ।
 कनकमणिरजतमुक्ता-
 दधिफलकुसुमाक्षतैश्च शुभम् ॥ १०१ ॥
 शस्त्रेण शस्त्रमृत्यु-
 र्बन्धो लोहेन भस्मनाग्निभयम् ।
 तस्करभयं तृणेन च
 काष्ठोल्लिखिता च राजभयम् ॥ १०२ ॥
 वक्रा पादालिखिता
 शस्त्रभयक्लेशदा विरूपा च ।
 चर्माङ्गारास्थिकता
 दन्तेन च कर्तुरशिवाय ॥ १०३ ॥
 वैरमपसव्यलिखिता
 प्रदक्षिणं सम्पदो विनिर्देश्याः ।
 वाचः परुषा निष्ठीवितं
 क्षुतं चाशुभं कथितम् ॥ १०४ ॥
 अर्धनिचितं कृतं वा
 प्रविशन् स्थपतिर्गृहे निमित्तानि ।

अवलोकयेद्बृहपतिः
 क्व संस्थितः स्पृशति किं चाङ्गम् ॥ १०५ ॥
 रविदीप्तो यदि शकुनि-
 स्तस्मिन् काले विरौति परुषरवः ।
 संस्पृष्टाङ्गसमानं
 तस्मिन्देष्टे ऽस्थि निर्देश्यम् ॥ १०६ ॥
 शकुनसमये ऽथवान्ये
 हस्त्यश्वश्चादयो ऽनुवाशन्ते ।
 तत्रभवमस्थि तस्मिन्-
 स्तदङ्गसम्भूतमेवेति ॥ १०७ ॥
 सूत्रे प्रसार्यमाणे
 गर्दभरावो ऽस्थिशल्यमाचष्टे ।
 श्वशृगाललङ्घिते वा
 सूत्रे शल्यं विनिर्देश्यम् ॥ १०८ ॥
 दिशि शान्तायां शकुने
 मधुरविरावी यदा तदा वाच्यः ।
 अर्थस्तस्मिन् स्थाने
 गृहेश्वराधिष्ठिते ऽङ्गे वा ॥ १०९ ॥
 सूत्रच्छेदे मृत्युः
 क्रीले चावाङ्मुखे महान् रोगः ।
 गृहनाथस्थपतीनां
 स्मृतिलोपे मृत्युरादेश्यः ॥ ११० ॥

स्नान्धाञ्च्युते शिरोरुक्
 कुलोपसर्गा ऽपवर्जिते कुम्भे ।
 भग्ने ऽपि च कर्मिवध-
 च्युते कराङ्गहपतेर्मुत्युः ॥ १११ ॥
 दक्षिणपूर्वे कोणे
 कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमाम् ।
 शेषाः प्रदक्षिणेन
 स्तम्भाश्चैवं समुत्थाप्याः ॥ ११२ ॥
 छत्रस्रगम्बरयुतः
 कृतधूपविलेपनः समुत्थाप्यः ।
 स्तम्भस्तथैव कार्यौ
 द्वारोच्छ्रायः प्रयत्नेन ॥ ११३ ॥
 विहगादिभिरवलीनै-
 राकम्पितपतितदुःस्थितैश्च फलम् ।
 शक्रध्वजफलसदृशं
 तस्मिंश्च शुभं विनिर्दिष्टम् ॥ ११४ ॥
 प्रागुत्तरोन्नते धनसुतक्षयः
 सुतवधश्च दुर्गन्धे ।
 वक्रे बन्धुविनाशे
 न सन्ति गर्भाश्च दिग्मूढे ॥ ११५ ॥
 इच्छेद्यदि गृहदृष्टिं
 ततः समन्ताद्विवर्धयेत्सुख्यम् ।

एकोद्देशे दोषः

प्रागथवाप्युत्तरे कुर्यात् ॥ ११६ ॥

प्राग्भवति मित्रवैरं

मृत्युभयं दक्षिणेन यदि वृद्धिः ।

अर्थविनाशः पश्चा-

दुदग्विवृद्धौ मनस्तापः ॥ ११७ ॥

ऐशान्यां देवगृहं

महानसं चापि कार्यमाग्नेय्याम् ।

नैर्ऋत्यां भाण्डोपस्करो

ऽर्थधान्यानि मारुत्याम् ॥ ११८ ॥

प्राच्यादिस्थे सलिले

सुतहानिः शिखिभयं रिपुभयं च ।

स्त्रीकलहः स्त्रीदौष्ट्यं

नैःस्थं वित्तात्मजविवृद्धिः ॥ ११९ ॥

खगनिलयभग्नसंशुष्क-

दग्धदेवालयश्मशानस्थान् ।

क्षीरतरुधवविभीतक-

निम्बारणिवर्जितांश्छिन्द्यात् ॥ १२० ॥

राचौ कृतबलिपूजं

प्रदक्षिणं छेदयेद्दिवा वृक्षम् ।

धन्यमुदक्प्राक्पतनं

न ग्राह्यो ऽतो ऽन्यथा पतितः ॥ १२१ ॥

खेदेो यद्यविकारी
 ततः शुभं दारु तद्गृहैापयिकम् ।
 पीते तु मण्डले निर्दिशेत्
 तरोर्मध्यगां गोधाम् ॥ १२२ ॥
 मञ्जिष्ठाभे भेको
 नीले सर्पस्तथारुणे सरटः ।
 मुद्गाभे ऽश्मा कपिले तु
 मूषको ऽम्भश्च खङ्गाभे ॥ १२३ ॥
 धान्यगोगुरुहुताशसुराणां
 न स्वपेदुपरि नाप्यनुवंशम् ।
 नोत्तरापरशिरा न च नम्रो
 नैव चार्द्रचरणः अत्रिमिच्छन् ॥ १२४ ॥
 भूरिपुष्पनिकरं सतोरणं
 तोयपूर्णाकलशोपशोभितम् ।
 धूपगन्धबलिपूजितामरं
 ब्राह्मणध्वनियुतं विशेद्गृहम् ॥ १२५ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृष्टसंहितायां वास्तु-
 विद्या नाम त्रिपञ्चाशो ऽध्यायः ॥ * ॥

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतो ऽहं
 दगार्गलं येन जलोपलब्धिः ।
 पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव
 क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः ॥ १ ॥
 एकेन वर्णेन रसेन चाम्भ-
 च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात् ।
 नानारसत्वं बहुवर्णातां च
 गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव ॥ २ ॥
 पुरुहूतानलयमनिर्कृति-
 वरुणपवनेन्दुशङ्करा देवाः ।
 विज्ञातव्याः क्रमशः
 प्राच्याद्यानां दिशां पतयः ॥ ३ ॥
 दिक्पतिसञ्ज्ञाश्च शिरा
 नवमी मध्ये महाशिरानाम्नी ।
 एताभ्यो ऽन्याः शतशो
 विनिःसृता नामभिः प्रथिताः ॥ ४ ॥
 पातालादूर्ध्वशिराः
 शुभाश्चतुर्दिक्षु संस्थिता याश्च ।
 कोणदिगुत्या न शुभाः
 शिरानिमित्तान्यतो वक्ष्ये ॥ ५ ॥
 यदि वेतसो ऽम्बुरहिते
 देशे हस्तैस्त्रिभिस्ततः पश्चात् ।

सार्धं पुरुषे तोयं
 वहति शिरा पश्चिमा तत्र ॥ ६ ॥
 चिह्नमपि चार्धपुरुषे
 मण्डूकः पाण्डुरो ऽथ मृत्पीता ।
 पुटभेदकश्च तस्मिन्
 पाषाणो भवति तोयमधः ॥ ७ ॥
 जम्ब्वाश्चोदग्धस्तै-
 स्त्रिभिः शिराधो नरद्वये पूर्वा ।
 मृल्लोहगन्धिका पाण्डुराथ
 पुरुषे ऽत्र मण्डूकः ॥ ८ ॥
 जम्बूवृक्षस्य प्राग्
 वल्मीको यदि भवेत्समीपस्थः ।
 तस्माद्दक्षिणपार्श्वे
 सलिलं पुरुषद्वये स्वादु ॥ ९ ॥
 अर्धपुरुषे च मत्स्यः
 पारावतसन्निभश्च पाषाणः ।
 मृद्भवति चात्र नीला
 दीर्घं कालं बहु च तोयम् ॥ १० ॥
 पश्चादुदुम्बरस्य
 त्रिभिरेव करैर्नरद्वये सार्धं ।
 पुरुषे सितो ऽहिरश्मा-
 ज्ञनोपमो ऽधः शिरा सुजला ॥ ११ ॥

उदगर्जुनस्य दृश्यो
 वल्मीको यदि ततो ऽर्जुनाइस्तैः ।
 त्रिभिरम्बु भवति पुरुषै-
 स्त्रिभिरर्धसमन्वितैः पश्चात् ॥ १२ ॥
 श्वेता गोधार्धनरे
 पुरुषे मृद्धूसरा ततः कृष्णा ।
 पीता सिता ससिकता
 ततो जलं निर्दिशेदमितम् ॥ १३ ॥
 वल्मीकोपचितायां
 निर्गुण्ड्यां दक्षिणेन कथितकरैः ।
 पुरुषद्वये सपादे
 स्वादु जलं भवति चाशोष्यम् ॥ १४ ॥
 रोहितमत्स्यो ऽर्धनरे
 मृत्कपिला पाण्डुरा ततः परतः ।
 सिकता सशर्कराय
 क्रमेण परतो भवत्यम्भः ॥ १५ ॥
 पूर्वेण यदि बदर्या
 वल्मीको दृश्यते जलं पश्चात् ।
 पुरुषैस्त्रिभिरादेश्यं
 श्वेता मृद्गोधिकार्धनरे ॥ १६ ॥
 सपलाशा बदरी चेद्
 दिश्यपरस्यां ततो जलं भवति ।

पुरुषत्रये सपादे
 पुरुषे ऽच च दुण्डुभिश्चिह्नम् ॥ १७ ॥
 बिल्वोदुम्बरयोगे
 विहाय हस्तत्रयं तु याम्येन ।
 पुरुषैस्त्रिभिरम्बु भवेत्
 कृष्णो ऽर्धनरे च मण्डूकः ॥ १८ ॥
 काकोदुम्बरिकायां
 वल्मीको दृश्यते शिरा तस्मिन् ।
 पुरुषत्रये सपादे
 पश्चिमदिकस्था वहति सा च ॥ १९ ॥
 आपाण्डुपीतिका मृद्
 गोरसवर्णश्च भवति पाषाणः ।
 पुरुषार्धे कुमुदनिभो
 दृष्टिपथं मूषको याति ॥ २० ॥
 जलपरिहीने देशे
 वृक्षः कम्पिल्लको यदा दृश्यः ।
 प्राच्यां हस्तचितये
 वहति शिरा दक्षिणा प्रथमम् ॥ २१ ॥
 मृन्नीलोत्पलवर्णा
 कापोता चैव दृश्यते तस्मिन् ।
 हस्ते ऽजगन्धिमत्स्यो
 भवति पयो ऽल्पं च सक्षारम् ॥ २२ ॥

शोणाकतरोरपरोत्तरे
 शिरा द्वा करावतिक्रम्य ।
 कुमुदा नाम शिरा सा
 पुरुषत्रयवाहिनी भवति ॥ २३ ॥
 आसन्नो वल्मीको
 दक्षिणपार्श्वे विभीतकस्य यदि ।
 अर्धे तस्य शिरा
 पुरुषे ज्ञेया दिशि प्राच्याम् ॥ २४ ॥
 तस्यैव पश्चिमायां
 दिशि वल्मीको यदा भवेद्भस्ते ।
 तत्रोदग्भवति शिरा
 चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥ २५ ॥
 श्वेतो विश्वम्भरकः
 प्रथमे पुरुषे तु कुङ्कुमाभो ऽश्मा ।
 अपरस्यां दिशि च शिरा
 नश्यति वर्षत्रये ऽतीते ॥ २६ ॥
 सकुशासित ऐशान्यां
 वल्मीको यत्र कौविदारस्य ।
 मध्ये तयोर्नरैरर्ध-
 पञ्चमैस्तोयमक्षोभ्यम् ॥ २७ ॥
 प्रथमे पुरुषे भुजगः
 कमलोदरसन्निभो मही रक्ता ।

कुरुविन्दः पाषाण-
 श्चिह्नान्येतानि वाच्यानि ॥ २८ ॥
 यदि भवति सप्तपर्णी
 वल्मीकवृत्तस्तदुत्तरे तोयम् ।
 वाच्यं पुरुषैः पञ्चभि-
 रचापि भवन्ति चिह्नानि ॥ २९ ॥
 पुरुषार्धे मण्डूको
हरितो हरितालसन्निभा भूश्च ।
पाषाणो ऽध्निकाशः
 सौम्या च शिरा शुभाम्बुवहा ॥ ३० ॥
 सर्वेषां वृक्षाणा-
 मधःस्थितो दर्दुरो यदा दृश्यः ।
 तस्माद्भस्ते तोयं
 चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥ ३१ ॥
 पुरुषे तु भवति नकुलो
 नीला मृत्पीतिका ततः श्वेता ।
 दर्दुरसमानरूपः
 पाषाणो दृश्यते चात्र ॥ ३२ ॥
 यद्यहिनिलयो दृश्यो
 दक्षिणतः संस्थितः करञ्जस्य ।
 हस्तद्वये तु याम्ये
 पुरुषचितये शिरा सार्धे ॥ ३३ ॥

कच्छपकः पुरुषार्थे
 प्रथमं चोद्भिद्यते शिरा पूर्वा ।
 उदगन्या स्वादुजला
 हरितो ऽश्माधस्ततस्तोयम् ॥ ३४ ॥
 उत्तरतश्च मधुका-
 दहिनिलयः पश्चिमे तरोस्तोयम् ।
 परिहृत्य पञ्च हस्तान्
 अर्धाष्टमपौरुषे प्रथमम् ॥ ३५ ॥
 अहिराजः पुरुषे ऽस्मिन्
 धूम्रा धात्री कुलत्यवर्णा ऽश्मा ।
 माहेन्द्री भवति शिरा
 वहति सफेनं सदा तोयम् ॥ ३६ ॥
 वल्मीकः स्निग्धो दक्षिणेन
 तिलकस्य सकुशदूर्वश्चेत् ।
 पुरुषैः पञ्चभिरम्भो
 दिशि वारुण्यां शिरा पूर्वा ॥ ३७ ॥
 सर्पावासः पश्चाद्
 यदा कदम्बस्य दक्षिणेन जलम् ।
 परतो हस्तचितयात्
 षड्भिः पुरुषैस्तुरीयानैः ॥ ३८ ॥
 कौबेरी चात्र शिरा
 वहति जलं लोहगन्धि चाक्षोभ्यम् ।

कनकनिभो मण्डूको
 नरमात्रे मृत्तिका पीता ॥ ३९ ॥
 वल्मीकसंवृतो यदि
 तालो वा भवति नालिकेरो वा ।
 पश्चात् षड्भिर्हस्तै-
 नरैश्चतुर्भिः शिरा याम्या ॥ ४० ॥
 याम्येन कपित्थस्या-
 हिसंश्रयश्चेदुदग्जलं वाच्यम् ।
 सप्त परित्यज्य करान्
 खात्वा पुरुषान् जलं पञ्च ॥ ४१ ॥
 कर्बुरको ऽहिः पुरुषे
 कृष्णा मृत्युटभिदपि च पाषाणः ।
 श्वेता मृत्यश्चिमतः
 शिरा ततश्चात्तरा भवति ॥ ४२ ॥
 अश्वन्तकस्य वामे
 बदरी वा दृश्यते ऽहिनिलयो वा ।
 षड्भिरुदक् तस्य करैः
 सार्धं पुरुषत्रये तोयम् ॥ ४३ ॥
 कूर्मः प्रथमे पुरुषे
 पाषाणो धूसरः ससिकता मृत् ।
 आदौ शिरा च याम्या
 पूर्वोत्तरतो द्वितीया च ॥ ४४ ॥

वामेन हरिद्रतरो-
 र्वल्मीकश्चेत्ततो जलं पूर्वं ।
 हस्तचितये पुरुषैः
 सत्यंशैः पञ्चभिर्भवति ॥ ४५ ॥
 नीलो भुजगः पुरुषे
 मृत्युता मरकतोपमश्चाश्मा ।
 कृष्णा भूः प्रथमं
 वारुणी शिरा दक्षिणेनान्धा ॥ ४६ ॥
 जलपरिहीने देशे
 दृश्यन्ते ऽनूपज्ञानि चिह्नानि ।
 वीरणदूर्वा मृदवश्च
 यत्र तस्मिन् जलं पुरुषे ॥ ४७ ॥
 भाङ्गी चिष्टता दन्ती
 सूकरपादी च लक्ष्मणा चैव ।
 नवमालिका च हस्त-
 द्वये ऽम्बु याम्ये त्रिभिः पुरुषैः ॥ ४८ ॥
 स्निग्धाः प्रलम्बशाखा
 वामनविटपट्टुमाः समीपजलाः ।
 सुषिरा जर्जरपत्रा
 रूक्षाश्च जलेन सन्त्यक्ताः ॥ ४९ ॥
 तिलकाम्नातकवरुणक-
 भस्नातकबिल्वतिन्दुकाङ्गोत्साः ।

पिण्डारशिरीषाञ्जन-
 परूषका वञ्जुलातिबलाः ॥ ५० ॥
 एते यदि सुस्निग्धा
 वल्मीकैः परिवृतास्ततस्तोयम् ।
 हस्तैस्त्रिभिरुत्तरत-
 श्रतुर्भिरर्धेन च नरस्य ॥ ५१ ॥
 श्रतुणे सतृणा यस्मिन्
 सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र ।
 तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा
 वक्तव्यं वा धनं तस्मिन् ॥ ५२ ॥
 कण्टक्यकण्टकानां
 व्यत्यासे ऽम्भस्त्रिभिः करैः पश्चात् ।
 खात्वा पुरुषचितयं
 त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात् ॥ ५३ ॥
 नदति मही गम्भीरं
 यस्मिंश्चरणाहता जलं तस्मिन् ।
 सार्धैस्त्रिभिर्मनुष्यैः
 कौबेरी तत्र च शिरा स्यात् ॥ ५४ ॥
 वृक्षस्यैका शाखा
 यदि विनता भवति पाण्डुरा वा स्यात् ।
 विज्ञातव्यं शाखा-
 तले जलं त्रिपुरुषं खात्वा ॥ ५५ ॥

फलकुसुमविकारो यस्य
 तस्य पूर्वे शिरा त्रिभिर्हस्तैः ।
 भवति पुरुषैश्चतुर्भिः
 पाषाणो ऽधः क्षितिः पीता ॥ ५६ ॥
 यदि कण्टकारिका
 कण्टकैर्विना दृश्यते स्तितैः कुसुमैः ।
 तस्यास्तले ऽम्बु वाच्यं
 त्रिभिर्नरैरर्धपुरुषे च ॥ ५७ ॥
 खर्जूरी द्विशिरस्का
 यत्र भवेज्जलविवर्जिते देशे ।
 तस्याः पश्चिमभागे
 निर्देश्यं त्रिपुरुषे वारि ॥ ५८ ॥
 यदि भवति कर्णिकारः
 सितकुसुमः स्यात्पलाशवृक्षो वा ।
 सव्येन तत्र हस्त-
 द्वये ऽम्बु पुरुषत्रये भवति ॥ ५९ ॥
 जष्पा यस्यां धात्र्यां
 धूमो वा तत्र वारि नरयुग्मे ।
 निर्देष्टव्या च शिरा
 महता तोयप्रवाहेण ॥ ६० ॥
 यस्मिन् श्लेचोद्देशे
 जातं सस्यं विनाशमुपयाति ।

स्निग्धमतिपाण्डुरं वा
 महाशिरा नरयुगे तच्च ॥ ६१ ॥
 मरुदेशे भवति शिरा
 यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि ।
 ग्रीवा करभागामिव
 भूतलसंस्थाः शीरा यान्ति ॥ ६२ ॥
 पूर्वाक्षरेण पीलो-
 र्यदि वल्मीको जलं भवति पश्चात् ।
 उत्तरगमना च शिरा
 विज्ञेया पञ्चभिः पुरुषैः ॥ ६३ ॥
 चिह्नं दर्दुर आदौ
 मृत्कपिलातः परं भवेद्धरिता ।
 भवति च पुरुषे ऽधो ऽश्मा
 तस्य तले वारि निर्देश्यम् ॥ ६४ ॥
 पीलोरेव प्राच्यां
 वल्मीको ऽतो ऽर्धपञ्चमैर्हस्तैः ।
 दिशि याम्यायां तोयं
 वृक्तव्यं सप्तभिः पुरुषैः ॥ ६५ ॥
 प्रथमे पुरुषे भुजगः
 सितासितः हस्तमात्रमूर्तिश्च ।
 दक्षिणतो वहति शिरा
 सक्षारं भूरि पानीयम् ॥ ६६ ॥

उत्तरतश्च करीरा-
 दहिनिलये दक्षिणे जलं स्वादु ।
 दशभिः पुरुषैर्ज्ञेयं
 पुरुषे पीतो ऽत्र मण्डूकः ॥ ६७ ॥
 रोहीतकस्य पश्चा-
 दहिवासश्चेत्त्रिभिः करैर्याम्ये ।
 द्वादश पुरुषान् खात्वा
 सक्षारा पश्चिमेन शिरा ॥ ६८ ॥
 इन्द्रतरोर्वल्मीकः
 प्राग्दृश्यः पश्चिमे शिरा हस्ते ।
 खात्वा चतुर्दश नरान्
 कपिला गोधा नरे प्रथमे ॥ ६९ ॥
 यदि वा सुवर्णनाम्न-
 स्तरोर्भवेद्दामतो भुजङ्गगृहम् ।
 हस्तद्वये तु याम्ये
 पञ्चदशनरावसाने ऽम्बु ॥ ७० ॥
 क्षारं पयो ऽत्र नकुलो
 ऽर्धमानवे ताम्रसन्निभश्चाश्मा ।
 रक्ता च भवति वसुधा
 वहति शिरा दक्षिणा तत्र ॥ ७१ ॥
 बदरीरोहितवृक्षौ
 सम्पृक्तौ चेद्दिनापि वल्मीकम् ।

हस्तत्रये ऽम्बु पश्चात्
 षोडशभिर्मानवैर्भवति ॥ ७२ ॥
 सुरसं जलमादौ दक्षिणा
 शिरा वहति चोत्तरेणान्या ।
 पिष्टनिभः पाषाणो
 मृच्छेता वृश्चिको ऽर्धनरे ॥ ७३ ॥
 सकरीरा चेद्बदरी
 त्रिभिः करैः पश्चिमेन तत्राम्भः ।
 अष्टादशभिः पुरुषै-
 रैशानी बहुजला च शिरा ॥ ७४ ॥
 पीलुसमेता बदरी
 हस्तत्रयसम्मिते दिशि प्राच्याम् ।
 विंशत्या पुरुषाणा-
 मशौष्यमम्भो ऽत्र सक्षारम् ॥ ७५ ॥
 ककुभकरीरावेकत्र
 संयुतौ यत्र ककुभबिल्लौ वा ।
 हस्तद्वये ऽम्बु पश्चा-
 न्नरुर्भवेत्यञ्चविंशत्या ॥ ७६ ॥
 वल्मीकमूर्धनि यदा
 दूर्वा च कुशाश्च पाण्डुराः सन्ति ।
 क्लृपो मध्ये देयो
 जलमत्र नरैकविंशत्या ॥ ७७ ॥

भूमी कदम्बकयुता
 वल्मीके यत्र दृश्यते दूर्वा ।
 हस्तत्रयेण याम्ये
 नरैर्जलं पञ्चविंशत्या ॥ ७८ ॥
 वल्मीकत्रयमध्ये
 रोहोतकपादपो यदा भवति ।
 नानावृक्षैः सहित-
 स्त्रिभिर्जलं तत्र वक्तव्यम् ॥ ७९ ॥
 हस्तचतुष्के मध्यात्
 षोडशभिश्चाङ्गुलैरुदग्वारि ।
 चत्वारिंशत्पुरुषान्
 खात्वाश्मातः शिरा भवति ॥ ८० ॥
 ग्रन्थिप्रचुरा यस्मि-
 ञ्छमी भवेदुत्तरेण वल्मीकः ।
 पश्चात्पञ्चकरान्ते
 शतार्धसहस्रैर्नरैः सलिलम् ॥ ८१ ॥
 एकस्थाः पञ्च यदा
 वल्मीका मध्यमे भवेच्छेतः ।
 तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा
 नरषष्ट्या पञ्चवर्जितया ॥ ८२ ॥
 सपलाशा यत्र शमी
 पश्चिमभागे ऽम्ब मानवैः षष्ट्या ।

अर्धनरे ऽहिः प्रथमं
 सवालुका पीतमृत्परतः ॥ ८३ ॥
 वल्मीकेन परिवृतः
 श्वेतो रोहीतको भवेद्यस्मिन् ।
 पूर्वेण हस्तमात्रे
 सप्तत्या मानवैरम्बु ॥ ८४ ॥
 श्वेता कण्टकबहुला
 यत्र शमी दक्षिणेन तत्र पयः ।
 नरपञ्चकसंयुतया
 सप्तत्याहिर्नरार्धे च ॥ ८५ ॥
 मरुदेशे यच्चिह्नं
 न जाङ्गले तैर्जलं विनिर्देश्यम् ।
 जम्बूवेतसपूर्वे
 ये पुरुषास्ते मरौ द्विगुणाः ॥ ८६ ॥
 जम्बूस्त्रिवृता मूर्वा
 शिशुमारी सारिवा शिवा श्यामा ।
 वीरुधयो वाराही
 ज्योतिष्मती च गरुडवेगा ॥ ८७ ॥
 सूकरिकमाषपर्णी
 व्याघ्रपदाश्चेति यद्यहेर्निलये ।
 वल्मीकादुत्तरत-
 स्त्रिभिः करैस्त्रिपुरुषे तोयम् ॥ ८८ ॥

एतदनूपे वाच्यं
 जाङ्गलभूमौ तु पञ्चभिः पुरुषैः ।
 एतैरेव निमित्तै-
 र्मरुदेशे सप्तभिः कथयेत् ॥ ८९ ॥
 एकनिभा यत्र मही
 तृणतरुवल्मीकगुल्मपरिहीना ।
 तस्यां यत्र विकारो
 भवति धरित्यां जलं तत्र ॥ ९० ॥
 यत्र स्निग्धा निम्ना
 सवालुका सानुनादिनी वा स्यात् ।
 तत्रार्धपञ्चमैर्वारि
 मानवैः पञ्चभिर्यदिवा ॥ ९१ ॥
 स्निग्धतरूणां याम्ये
 नरैश्चतुर्भिर्जलं प्रभूतं च ।
 तरुगहने ऽपि हि विकृतो
 यस्तस्मात्तद्वदेव वदेत् ॥ ९२ ॥
 नमते यत्र धरित्री
 सार्धं पुरुषे ऽम्बु जाङ्गलानूपे ।
 कीटा वा यत्र विनालयेन
 बहवो ऽम्बु तत्रापि ॥ ९३ ॥
 उष्णा शीता च मही
 शीतोष्णाम्बुस्त्रिभिर्नरैः सार्धैः ।

इन्द्रधनुमत्स्थो वा
वल्मीको वा चतुर्हस्तात् ॥ ६४ ॥

वल्मीकानां पङ्क्त्यां
यद्येको ऽभ्युच्छितः शिरा तदधः ।

शुष्यति न रोहते वा
सस्यं यस्यां च तचाम्भः ॥ ६५ ॥

न्यग्रोधपलाशोदुम्बरैः
समेतैस्त्रिभिर्जलं तदधः ।

वटपिप्पलसमवाये
तद्द्विद्वार्च्यं शिरा चोदक् ॥ ६६ ॥

आग्नेये यदि कोणे
ग्रामस्य पुरस्य वा भवति क्लृपः ।

नित्यं स करोति भयं
दाहं च समानुषं प्रायः ॥ ६७ ॥

नैर्ऋतकोणे बाल-
क्षयं वनिताभयं च वायव्ये ।

दिक्त्रयमेतत्त्र्यक्ता
शेषासु शुभावहाः क्लृपाः ॥ ६८ ॥

सारस्वतेन मुनिना
दुर्गार्ग्यं यत्कृतं तद्वन्नेवम् ।

आर्याभिः कृतमेतद्
वृत्तरपि मानवं वक्ष्ये ॥ ६९ ॥

स्निग्धा यतः पादपगुल्मवल्गो
 निश्छिद्रपचाश्च ततः शिरास्ति ।
 पद्मक्षुरोशीरकुलाः सगुण्ड्राः
 काशाः कुशा वा नलिका नलो वा ॥ १०० ॥
 खर्जूरजम्ब्वर्जुनवेतसाः स्युः
 क्षीराम्बिता वा द्रुमगुल्मवल्गुः ।
 छत्रेभनागाः शतपत्रनीपाः
 स्युर्नक्तमालाश्च ससिन्दुवाराः ॥ १०१ ॥
 विभीतको वा मदयन्तिका वा
 यत्रास्ति तस्मिन् पुरुषत्रये ऽम्भः ।
 स्यात्पर्वतस्योपरि पर्वतो ऽन्य-
 स्तत्रापि मूले पुरुषत्रये ऽम्भः ॥ १०२ ॥
 या मौञ्जकैः काशकुशैश्च युक्ता
 नीला च मृद्यच्च सशर्करा च ।
 तस्यां प्रभूतं सुरसं च तोयं
 कृष्णायवां यच्च च रक्तमृदा ॥ १०३ ॥
 सशर्करा ताम्रमही कपायं
 क्षारं धरित्री कपिला करोति ।
 आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टं
 मिष्टं पयो नीलवसुन्धरायाम् ॥ १०४ ॥
 शाकाश्चकर्णाजुनबिल्वसर्जाः
 श्रीपर्ण्यरिष्टाधवशिंशपाश्च ।

छिद्रैश्च पर्णैर्द्रुमगुल्मवल्गो
 रूक्षाश्च दूरे ऽम्बु निवेदयन्ति ॥ १०५ ॥
 सूर्याग्निभस्मोद्भ्रखरानुवर्णा
 या निर्जला सा वसुधा प्रदिष्टा ।
 रक्ताङ्कुराः क्षीरयुताः करीरा
 रक्ता धरा चेज्जलमश्मनो ऽधः ॥ १०६ ॥
 वैडूर्यमुद्गाम्बुदमेचकाभा
 पाकोन्मुखोदुम्बरसन्निभा वा ।
 भृङ्गाञ्जनाभा कपिलाथवा या
 ज्ञेया शिला भूरिसमोपतोया ॥ १०७ ॥
 परावतक्षौद्रघृतोपमा वा
 क्षौमस्य वस्त्रस्य च तुल्यवर्णा ।
 या सोमवल्ग्याश्च समानरूपा
 साप्याशु तोयं कुरुते ऽक्षयं च ॥ १०८ ॥
 ताम्रैः समेता पृषतैर्विचिचै-
 रापाण्डुभस्मोद्भ्रखरानुरूपा ।
 भृङ्गोपमाङ्गुष्ठिकपुष्पिका वा
 सूर्याग्निवर्णा च शिला वितोया ॥ १०९ ॥
 चन्द्रातपस्फटिकमौक्तिकहेमरूपा
 याश्चेन्द्रनीलमणिहिङ्गुलुकाञ्जनाभाः ।
 सूर्यादयांशुहरितालनिभाश्च याः स्यु-
 स्ताः शोभना मुनिवचो ऽथ च वृत्तमेतत् ॥ ११० ॥

एता ह्यभेद्याश्च शिलाः शिवाश्च
 यक्षैश्च नागैश्च सदाभिजुष्टाः ।
 येषां च राष्ट्रेषु भवन्ति राक्षां
 तेषामवृष्टिर्न भवेत्कदाचित् ॥ १११ ॥
 भेदं यदा नैति शिला तदानीं
 पालाशकाष्ठैः सह तिन्दुकानाम् ।
 प्रज्वालयित्वानलमग्निवर्णा
 सुधाम्बुसिक्ता प्रविदारमेति ॥ ११२ ॥
 तोयं शृतं मोक्षकभस्मना वा
 यत्सप्तकृत्वः परिषेचनं तत् ।
 कार्यं शरक्षारयुतं शिलायाः
 प्रस्फोटनं वह्निवितापितायाः ॥ ११३ ॥
 तक्रकाञ्जिकसुराः सकुलत्या
 योजितानि बदराणि च तस्मिन् ।
 सप्तरात्रमुषितान्यभितप्तं
 दारयन्ति हि शिलां परिषेकैः ॥ ११४ ॥
 नैम्बं पत्रं त्वक् च नालं तिलानां
 सापामार्गं तिन्दुकं स्याद्गुडूची ।
 गोमूत्रेण स्वावितः क्षार एषां
 षट्कृत्वो ऽतस्तापितो भिद्यते ऽश्मा ॥ ११५ ॥
 आर्कं पयो हुडुविषाणमपीसमेतं
 पारावतासुशुक्ता च युतं प्रलेपः ।

टङ्कस्य तैलमद्यितस्य ततो ऽस्य पानं
पश्चाच्छितस्य न शिलासु भवेद्विघातः ॥ ११६ ॥

क्षारे कदल्या मद्यितेन यक्ते
दिनोषिते पायितमायसं यत् ।
सम्यक् छितं चाग्निनि मैति भङ्गं

न चान्यलोहेष्वपि तस्य कौशयम् ॥ ११७ ॥

पाली प्रागपरायताम्बु सुचिरं धत्ते न याम्योत्तरा
कस्योत्तरवदारमेति मरुता सा प्रायशः प्रेरितैः ।
तां चेदिच्छति सारदारुभिरपां सम्यातमावारयेत्
पाषाणादिभिरेव वा प्रतिचयं क्षुब्धं द्विपाश्वादिभिः ॥

ककुभवटाम्रसप्तकदम्बैः ॥ ११८ ॥

सनिचुलजम्बूवेतसनीपैः ।

कुरवकतालाशोकमधुकै-

र्वकुलविमिश्रैश्चावृत्ततीराम् ॥ ११९ ॥

द्वारं च नैर्वाहिकमेकदेशे

कार्यं शिलासञ्चितवारिमार्गम् ।

कोशस्थितं निर्विवरं कपाटं

कृत्वा ततः पांशुभिरावपेत्तम् ॥ १२० ॥

अञ्जनमुस्तोशीरैः

सराजकोशातकामलकचूर्णैः ।

कतकफलसमायुक्तै-

र्यैः कूपे प्रदातव्यः ॥ १२१ ॥

अभ्याशजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परम् ।
 मिश्रैर्मूलैश्च न फलं सम्यग्यच्छन्ति पीडिताः ॥ १३ ॥
 शीतवातातपै रोगो जायते पाण्डुपचता ।
 अष्टद्विंश प्रवालानां शाखाशोषो रसस्तुतिः ॥ १४ ॥
 चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशोधनम् ।
 विडङ्गघृतपक्काक्तान् सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥ १५ ॥
 फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्त्रिलैर्यवैः ।
 शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाभिवृद्धये ॥ १६ ॥
 अविकाजशकृच्चूर्णस्य ङ्गुके द्वे तिलाढकम् ।
 सक्तुप्रस्थो जलद्रोणो गोमांसतुलया सह ॥ १७ ॥
 सप्तरात्रोपितैरेतैः सेकः कार्या वनस्पतेः ।
 वल्लीगुल्मलतानां च फलपुष्पाय सर्वदा ॥ १८ ॥

वासराणि दश दुग्धभावितं
 बीजमाज्ययुतहस्तयोजितम् ।
 गोमयेन बहुशो विरूक्षितं
 क्रौडमार्गपिशितैश्च धूपितम् ॥ १९ ॥
 मत्स्यसूकरवसासमन्वितं
 रोपितं च परिकर्मितावनौ ।
 क्षीरसंयुतजलावसेचितं
 जायते कुसुमयुक्तमेव तत् ॥ २० ॥
 तिल्लिडोत्यपि करोति बह्वरीं
 ब्रोहिमाषतिलचूर्णसक्तुभिः ।

पूतिमांससहितैश्च सेचिता
 धूपिता च सततं हरिद्रया ॥ २१ ॥
 कपित्थवल्लीकरणाय मूला-
 न्यास्फोतधात्रीधववासिकानाम् ।
 पलाशिनी वेतससूर्यवल्ली
 श्यामातिमुक्तैः सहिताष्टमूली ॥ २२ ॥
 क्षीरे शृते चाप्यनया सुशीते
 नालाशतं स्थाप्यं कपित्थबीजम् ।
 दिने दिने शोषितमर्कपादै-
 र्मांसं विधिस्त्वेष ततो ऽधिरोप्यम् ॥ २३ ॥
 हस्तायतं तद्विगुणं गभीरं
 खात्वावटं प्रोक्तजलावपूर्णम् ।
 शुष्कं प्रदग्धं मधुसर्पिषा तत्
 प्रलेपयेद्भस्मसमन्वितेन ॥ २४ ॥
 चूर्णैर्दुतैर्माषतिलैर्यवैश्च
 प्रपूरयेन्मृत्तिकयान्तरस्थैः ।
 मत्स्यामिषाम्भःसहितं च हन्याद्
 यावद्हनत्वं समुपागतं तत् ॥ २५ ॥
 उप्तं च बीजं चतुरङ्गुलाधो
 मत्स्याम्भसा मांसजलैश्च सिक्तम् ।
 बल्ली भवत्याशु शुभप्रवाला
 विस्सापनी मण्डपमावृणोति ॥ २६ ॥

अभ्याशजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परम् ।
 मिश्रैर्मूलैश्च न फलं सम्यग्यच्छन्ति पीडिताः ॥ १३ ॥
 शीतवातातपै रोगो जायते पाण्डुपत्रता ।
 अट्टद्विश्च प्रवालानां शाखाशोषो रससुतिः ॥ १४ ॥
 चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशेषणम् ।
 विडङ्गघृतपङ्काक्तान् सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥ १५ ॥
 फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्त्रिलैर्यवैः ।
 शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाभिवृद्धये ॥ १६ ॥
 अविकाजशकृच्चूर्णस्य ङ्गुले द्वे तिलाढकम् ।
 सक्तुप्रस्थो जलद्राणो गोमांसतुलया सह ॥ १७ ॥
 सप्तरात्रोपितैरेतैः सेकः कार्यो वनस्पतेः ।
 वल्लीगुल्मलतानां च फलपुष्पाय सर्वदा ॥ १८ ॥

वासराणि दश दुग्धभावितं
 बीजमाज्ययुतद्वस्तथोजितम् ।
 गोमयेन बहुशो विरूक्षितं
 कौडमार्गपिशितैश्च धूपितम् ॥ १९ ॥
 मत्स्यसूकरवसासमन्वितं
 रोपितं च परिकर्मितावनौ ।
 क्षीरसंयुतजलावसेचितं
 जायते कुसुमयुक्तमेव तत् ॥ २० ॥
 तिल्लिडोत्थपि करोति बह्वरीं
 ब्रौहिमापतिलचूर्णसक्तुभिः ।

पूतिमांससहितैश्च सेचिता
 धूपिता च सततं हरिद्रया ॥ २१ ॥
 कपित्थवल्लीकरणाय मूला-
 न्यास्फोतधात्रीधववासिकानाम् ।
 पलाशिनी वेतससूर्यवल्ली
 श्यामातिमुक्तैः सहिताष्टमूली ॥ २२ ॥
 क्षीरे शृते चाप्यनया सुशीते
 नालाशतं स्थाप्यं कपित्थबीजम् ।
 दिने दिने शोषितमर्कपादै-
 र्मांसं विधिस्त्वेष ततो ऽधिरोप्यम् ॥ २३ ॥
 हस्तायतं तद्विगुणं गभीरं
 खात्वावटं प्रोक्तजलावपूर्णम् ।
 शुष्कं प्रदग्धं मधुसर्पिषा तत्
 प्रलेपयेद्भस्मसमन्वितेन ॥ २४ ॥
 चूर्णैर्दत्तैर्माषतिलैर्यवैश्च
 प्रपूरयेन्मृत्तिकयान्तरस्थैः ।
 मत्स्यामिषाभःसहितं च हन्याद्
 यावद्भनत्वं समुपागतं तत् ॥ २५ ॥
 उप्तं च बीजं चतुरङ्गुलाधो
 मत्स्याभसा मांसजलैश्च सिक्तम् ।
 बल्ली भवत्याशु शुभप्रवासा
 विस्सापनी मण्डपमावृणोति ॥ २६ ॥

शतशो ऽङ्गोत्ससम्भूतफलकल्केन भावितम् ।
 शततैलेन वा बीजं श्लेषातकफलेन वा ॥ २७ ॥
 वापितं करकोन्मिश्रं मृदि तत्क्षणजन्मकम् ।
 फलभारान्विता शाखा भवतीति किमद्भुतम् ॥ २८ ॥

श्लेषातकस्य बीजानि
 निष्कलीकृत्य भावयेत्प्राज्ञः ।
 अङ्गोत्सविज्जलाद्भि-
 श्छायायां सप्तकृत्वैवम् ॥ २९ ॥
 माहिषगोमयघृष्टान्यस्य
 करीषे च तानि निश्चिष्य ।
 करकाजलमृद्योगे
 न्युत्तान्यह्ना फलकराणि ॥ ३० ॥
 ध्रुवमृदुमूलविशाखा
 गुरुभं श्रवणस्तथाश्विनीहस्तम् ।
 उक्तानि दिव्यदृग्भिः
 पादपसरोपणे भानि ॥ ३१ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वृक्षा-
 युर्वेदो नाम पञ्चपञ्चाशो ऽध्यायः ॥ • ॥

कृत्वा प्रभूतं सलिलमारामान्विनवेश्य च ।
 देवतायतनं कुर्यादशोधर्माभिवृद्धये ॥ १ ॥

इष्टापूर्तेन लभ्यन्ते ये लोकास्तान् बुभूषता ।
 देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र दृश्यते ॥ २ ॥
 सलिलोद्यानयुक्तेषु कृतेष्वकृतकेषु च ।
 स्थानेष्वेतेषु सान्निध्यमुपगच्छन्ति देवताः ॥ ३ ॥
 सरःसु नलिनीञ्चनिरस्तरविरश्मिषु ।
 हंसांसाक्षिप्तकह्लारवीचीविमलवारिषु ॥ ४ ॥
 हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्रवाकविराविषु ।
 पर्यन्तनिचुलच्छायाविश्रान्तजलचारिषु ॥ ५ ॥
 क्रौञ्चकाञ्चीकलापाश्च कलहंसकलस्वनाः ।
 नद्यस्तोयांशुका यत्र शफरीकृतमेखलाः ॥ ६ ॥
 फुल्लतीरद्रुमेत्तंसाः सङ्गमश्रोणिमण्डलाः ।
 पुलिनाभ्युन्नतोरस्या हंसहासाश्च निम्नगाः ॥ ७ ॥
 वनोपान्तनदीशैलनिर्झरोपान्तभूमिषु ।
 रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवत्सु च ॥ ८ ॥
 भूमयो ब्राह्मणादीनां याः प्रोक्ता वास्तुकर्मणि ।
 ता एव तेषां शस्यन्ते देवतायतनेष्वपि ॥ ९ ॥
 चतुःषष्टिपदं कार्यं देवतायतनं सदा ।
 द्वारं च मध्यमं तत्र समदिकस्थं प्रशस्यते ॥ १० ॥
 यो विस्तारो भवेद्यस्य द्विगुणा तत्समुन्नतिः ।
 उच्छायाद्यस्तृतीयोऽंशस्तेन तुल्या कटिर्भवेत् ॥ ११ ॥
 विस्तारार्धं भवेद्गर्भो भित्तयो ऽन्याः समन्ततः ।
 गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं द्विगुणमुच्छ्रितम् ॥ १२ ॥

उच्छ्रायात्पादविस्तीर्णा शाखा तद्दुदुम्बरः ।
 विस्तारपादप्रतिमं बाहुल्यं शाखयोः स्मृतम् ॥ १३ ॥
 चिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिस्तत्रशस्यते ।
 अथः शाखाचतुर्भागे प्रतीहारौ निवेशयेत् ॥ १४ ॥
 शेषं मङ्गल्यविद्गैः श्रीवृक्षस्वस्तिकैर्घटैः ।
 मिथुनैः पञ्चवस्तीभिः प्रमथैश्चोपशोभयेत् ॥ १५ ॥
 द्वारमानाष्टभागाना प्रतिमा स्यात्सपिण्डिका ।
 द्वौ भागौ प्रतिमा तत्र तृतीयांशश्च पिण्डिका ॥ १६ ॥
 मेरुमन्दरकैलासविमानच्छन्दनन्दनाः ।
 समुद्रपद्मगरुडनन्दिवर्धनकुञ्जराः ॥ १७ ॥
 गुहराजो वृषो हंसः सर्वतोभद्रको घटः ।
 सिंहेो वृत्तश्चतुष्कोणः षोडशाष्टाश्रयस्तथा ॥ १८ ॥
 इत्येते विंशतिः प्रोक्ताः प्रासादाः सञ्जया मया ।
 यथोक्तानुक्रमेणैव लक्षणानि वदाम्यतः ॥ १९ ॥

तत्र घडश्रिर्मेरु-

द्वादशभौमो विचित्रकुहरश्च ।

द्वारैर्युतश्चतुर्भि-

र्द्वाविंशद्द्वस्तविस्तीर्णः ॥ २० ॥

त्रिंशद्द्वस्तायामो

दशभौमो मन्दरः शिखरयुक्तः ।

कैलासो ऽपि शिखरवान्

अष्टाविंशो ऽष्टभौमश्च ॥ २१ ॥

जालगवाशकयुक्तो
 विमानसञ्जस्त्रिसप्तकायामः ।
 नन्दन इति षड्भौमो
 द्वात्रिंशः षोडशाण्डयुतः ॥ २२ ॥
 वृत्तः समुद्रनामा
 पद्मः पद्माकृतिः शयानष्टौ ।
 शृङ्गेणैकेन भवे-
 देकैव च भूमिका तस्य ॥ २३ ॥
 गरुडाकृतिश्च गरुडो
 नन्दीति च षट्चतुष्कविस्तीर्णः ।
 कार्यश्च सप्तभौमो
 विभूषितो ऽण्डैश्च विंशत्या ॥ २४ ॥
 कुञ्जर इति गजपृष्ठः
 षोडशहस्तः समन्ततो मूलात् ।
 गुह्यराजः षोडशक-
 स्त्रिचन्द्रशाला भवेद्वलभी ॥ २५ ॥
 वृष एकभूमिशृङ्गो
 द्वादशहस्तः समन्ततो वृत्तः ।
 हंसो हंसाकारो
 घटो ऽष्टहस्तः कलशरूपः ॥ २६ ॥
 द्वारैर्युतश्चतुर्भि-
 र्बहुशिखरो भवति सर्वतोभद्रः ।

बहुरुचिरचन्द्रशालः

षड्विंशः पञ्चभौमश्च ॥ २७ ॥

सिंहः सिंहाक्रान्तो

द्वादशकोणो ऽष्टहस्तविस्तीर्णः ।

चत्वारो ऽञ्जनरूपाः

पञ्चाण्डयुतस्तु चतुरश्रः ॥ २८ ॥

भूमिकाङ्गुलमानेन मयस्याष्टोत्तरं शतम् ।

सार्धं हस्तत्रयं चैव कथितं विश्वकर्मणा ॥ २९ ॥

प्राहुः स्थपतयश्चात्र मतमेकं विपश्चितः ।

कपोतपालिसंयुक्ता न्यूना गच्छन्ति तुल्यताम् ॥ ३० ॥

प्रासादलक्षणमिदं कथितं समासाद्

गर्गेण यद्विरचितं तदिहास्ति सर्वम् ।

मन्वादिभिर्विरचितानि पृथूनि यानि

तत्संस्मृतिं प्रति मयाच कृतो ऽधिकारः ॥३१॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रासा-
दलक्षणं नाम षट्पञ्चाशो ऽध्यायः ॥ * ॥

श्रामं तिन्दुकमामं

कपित्थकं पुष्यमपि च शाल्मल्याः ।

बीजानि शल्लकीनां

धन्वनवल्को वचा चेति ॥ १ ॥

एतैः सलिलद्रोणः
 काथयितव्यो ऽष्टभागशेषश्च ।
 अवतार्यो ऽस्य च कल्को
 द्रव्यैरेतैः समनुयोज्यः ॥ २ ॥
 श्रीवासकरसगुग्गुलु
 भस्मातककुन्दुरूकसर्जरसैः ।
 अतसीबिल्वैश्च युतः
 कल्को ऽयं वज्रलेपाख्यः ॥ ३ ॥
 प्रासादहर्म्यवलभी-
 लिङ्गप्रतिमासु कुच्यकूपेषु ।
 सन्तप्तो दातव्यो
 वर्षसहस्रायुतस्थायी ॥ ४ ॥
 लाक्षाकुन्दुरूगुग्गुलु-
 गृहधूमकपित्यबिल्वमध्यानि ।
 नागबलाफलतिन्दुक-
 मदनफलमधूकमञ्जिष्ठाः ॥ ५ ॥
 सर्जरसरसामलकानि चेति
 कल्कः कृतो द्वितीया ऽयम् ।
 वज्राख्यः प्रथमगुणै-
 रयमपि तेष्वेव कार्येषु ॥ ६ ॥
 गोमहिषाजविषाणैः
 खररोम्णा महिषचर्मगव्यैश्च ।

निम्बकपित्थरसैः सह
वज्रतरो नाम कल्को ऽन्धः ॥ ७ ॥

अष्टौ सीसकभागाः

कांसस्य द्वौ तु रीतिकाभागः ।

मयकथितो योगो ऽयं

विज्ञेयो वज्रसङ्घातः ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वज्र-
लेपो नाम सप्तपञ्चाशो ऽध्यायः ॥ * ॥

जालान्तरगे भानौ

यदणुतरं दर्शनं रजो याति ।

तद्विन्ध्यात्परमाणुं

प्रथमं तद्वि प्रमाणानाम् ॥ १ ॥

परमाणुरजो वालाग्र-

लिङ्गयूका यवो ऽङ्गुलं चेति ।

अष्टगुणानि यथोत्तर-

मङ्गुलमेकं भवति मात्रा ॥ २ ॥

देवागारद्वार-

स्थाष्टांशानस्य यस्तृतीयो ऽंशः ।

तत्पिण्डकाप्रमाणं

प्रतिमा तद्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥

स्वैरङ्गुलप्रमाणै-
 र्द्वादश विस्तीर्णमायतं च मुखम् ।
 नम्रजिता तु चतुर्दश
 दैर्घ्येण द्राविडं कथितम् ॥ ४ ॥
 नासाललाटचिबुक-
 ग्रीवाश्चतुरङ्गुलास्तथा कर्णौ ।
 हे अङ्गुले च हनुके
 चिबुकं तु द्यङ्गुलं विस्तृतम् ॥ ५ ॥
 अष्टाङ्गुलं ललाटं,
 विस्ताराद् द्यङ्गुलात्परे शङ्खौ ।
 चतुरङ्गुलौ तु शङ्खौ
 कर्णौ तु द्यङ्गुलं पृथुसौ ॥ ६ ॥
 कर्णोपान्तः कार्यो
 ऽर्धपञ्चमे धूसमेन सूत्रेण ।
 कर्णश्रोतः सुकुमारकं च
 नयनप्रबन्धसमम् ॥ ७ ॥
 चतुरङ्गुलं वसिष्ठः
 कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् ।
 अधरो ऽङ्गुलप्रमाण-
 स्तस्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥
 अर्धाङ्गुला तु गोष्ठा
 वक्त्रं चतुरङ्गुलायतं कार्यम् ।

विपुलं तु सार्धमङ्गुलं
 मध्यात्तद्यङ्गुलं व्याप्तम् ॥ ९ ॥
 द्यङ्गुलतुल्यौ नासापुटौ च
 नासा पुटाग्रतो ज्ञेया ।
 स्याद् द्यङ्गुलमुच्छ्राय-
 श्चतुरङ्गुलमन्तरं चाक्ष्णोः ॥ १० ॥
 द्यङ्गुलमितो ऽक्षिकोशो
 द्वे नेत्रे तच्चिभागिका तारा ।
 दृक् तारापञ्चांशो
 नेत्रविकाशो ऽङ्गुलं भवति ॥ ११ ॥
 पर्यन्तात्पर्यन्तं
 दश भ्रुवो ऽर्धाङ्गुलं भ्रुवोर्लेखा ।
 भ्रूमध्यं द्यङ्गुलकं
 भ्रूर्दूर्ध्वेर्ध्याङ्गुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥
 कार्या तु केशरेखा
 भ्रूबन्धसमाङ्गुलार्धविस्तीर्णा ।
 नेत्रान्ते करवीरक-
 मुपन्यसेदङ्गुलप्रमितम् ॥ १३ ॥
 द्वाविंशत्परिणाहा-
 चतुर्दशायामतो ऽङ्गुलानि शिरः ।
 द्वादश तु चित्रकर्मणि
 दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥

आस्यं सकेशनिचयं
 षोडश दैर्घ्येण नम्रजित्प्रोक्तम् ।
 ग्रीवा दश विस्तीर्णा
 परिणाहाद्विंशतिः सैका ॥ १५ ॥
 कण्ठाद्वादश हृदयं
 हृदयान्नाभिश्च तत्प्रमाणेन ।
 नाभीमध्यान्मेद्धान्तरं च
 तत्तुल्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥
 जरू चाङ्गुलमानै-
 श्चतुर्युता विंशतिस्तथा जङ्घे ।
 जानुकपिच्छे चतुरङ्गुले च
 पादौ च तत्तुल्यौ ॥ १७ ॥
 द्वादश दीर्घा षट् पृथुतया च
 पादौ त्रिकायताङ्गुष्ठौ ।
 पञ्चाङ्गुलपरिणादौ
 प्रदेशिनी व्यङ्गुलं दीर्घा ॥ १८ ॥
 अष्टांशाष्टांशानाः
 शेषाङ्गुलयः क्रमेण कर्तव्याः ।
 सचतुर्थभागमङ्गुल-
 मुत्सेधो ऽङ्गुष्ठकस्योक्तः ॥ १९ ॥
 अङ्गुष्ठनखः कथित-
 श्चतुर्थभागानमङ्गुलं तज्जैः ।

शेषनखानामर्धाङ्गुलं
 क्रमात् किञ्चिद्गुणं वा ॥ २० ॥
 जङ्घाग्रे परिणाह-
 श्वतुर्दशोक्तस्तु विस्तरः पञ्च ।
 मध्ये तु सप्त विपुला
 परिणाहान्निगुणिताः सप्त ॥ २१ ॥
 अष्टौ तु जामुमध्ये
 वैपुल्यं त्र्यष्टकं तु परिणाहः ।
 विपुलौ चतुर्दशोरू
 मध्ये द्विगुणश्च तत्परिधिः ॥ २२ ॥
 कटिरष्टादश विपुला
 चत्वारिंशच्चतुर्युता परिधौ ।
 अङ्गुलमेकं नाभि-
 र्वेधेन तथा प्रमाणेन ॥ २३ ॥
 चत्वारिंशद् द्वियुता
 नाभीमध्येन मध्यपरिणाहः ।
 स्तनयोः षोडश चान्तर-
 मूर्ध्वं कक्षे षडङ्गुलिके ॥ २४ ॥
 कार्यावष्टावसौ
 द्वादश बाहू तथा प्रबाहू च ।
 बाहू षड्विस्तीणा
 प्रतिबाहू त्वङ्गुलचतुष्कम् ॥ २५ ॥

षोडश बाह्य मूले
 परिष्ठायाद्दशमस्तोत्रम् ।
 विस्तारेण करतलं
 षडङ्गुलं सप्त दैर्घ्यम् ॥ २६ ॥
 पञ्चाङ्गुलानि मध्या
 प्रदेशिनी मध्यपर्वदक्षिणा ।
 अनया तुल्या चानामिका
 कनिष्ठा तु पर्वीना ॥ २७ ॥
 पर्वद्वयमङ्गुष्ठः
 शेषाङ्गुल्यस्त्रिभिस्त्रिभिः कार्याः ।
 नखपरिमाणं कार्यं
 सर्वासां पर्वणो ऽर्धेन ॥ २८ ॥
 देशानुरूपभूषण-
 वेषालङ्कारमूर्तिभिः कार्या ।
 प्रतिमा लक्षणयुक्ता
 सन्निहिता वृद्धिदा भवति ॥ २९ ॥
 दशरथतनयो रामो
 बलिश्च वैरोचनिः शतं विंशम् ।
 द्वादशहान्या शेषाः
 प्रवरसमन्वूनपरिमाणाः ॥ ३० ॥
 कार्यो ऽष्टभुजो भगवां-
 श्चतुर्भुजो द्विभुज एव वा विष्णुः ।

श्रीवत्साङ्कितवक्त्राः
 कैस्तुभमक्षिभूषितोरक्ताः ॥ ३१ ॥
 अतसीकुसुमश्यामः
 पीताम्बरनिवसनः प्रसन्नमुखः ।
 कुण्डलकिरीटधारी
 पीनगलोरःस्थलांसभुजः ॥ ३२ ॥
 खड्गगदाशरपाणि-
 र्दक्षिणतः शान्तिदः चतुर्थकरः ।
 वामकरेषु च कामुक-
 खेटकचक्राणि शङ्खश्च ॥ ३३ ॥
 अथ च चतुर्भुजमिच्छति
 शान्तिद एको गदाधरश्चान्यः ।
 दक्षिणपार्श्वे ह्येवं
 वामे शङ्खश्च चक्रञ्च ॥ ३४ ॥
 द्विभुजस्य तु शान्तिकरो
 दक्षिणहस्तो ऽपरश्च शङ्खधरः ।
 एवं विष्णोः प्रतिमा
 कर्तव्या भूतिमिच्छद्भिः ॥ ३५ ॥
 बलदेवो हलपाणि-
 र्मदविभ्रमलोचनश्च कर्तव्यः ।
 विभ्रत् कुण्डलमेकं
 शङ्खेन्दुस्रुणास्रुणैरवपुः ॥ ३६ ॥

एकानंशा कार्या
 देवी वलदेवस्ययोर्मध्ये ।
 कटिसंस्थितवामकरा
 सरोजमितरेण चोदयती ॥ ३७ ॥
 कार्या चतुर्भुजा या
 वामकराभ्यां सपुस्तकं कमलम् ।
 द्वाभ्यां दक्षिणपार्श्वे
 वरमर्थिघ्नसूत्रं च ॥ ३८ ॥
 वामेष्वष्टभुजायाः
 कमण्डलुश्चापमम्बुजं शास्त्रम् ।
 वरशरदर्पणयुक्ताः
 सव्यभुजाः साक्षसूत्राश्च ॥ ३९ ॥
 श्याम्बश्च गदाहस्तः
 प्रद्युम्नश्चापधृत् सुरूपश्च ।
 अनयोः स्त्रियौ च कार्ये
 खेटकनिस्त्रिंशधारिण्यौ ॥ ४० ॥
 ब्रह्मा कमण्डलुकर-
 श्चतुर्मुखः पद्मजासनस्थश्च ।
 स्कन्दः कुमाररूपः
 शक्तिधरो वह्निकेतुश्च ॥ ४१ ॥
 शुक्लश्चतुर्विषाणो
 द्विपो महेन्द्रस्य वज्रपाणित्वम् ।

तिर्यग्ललाटसंस्थं
 तृतीयमपि लोचनं चिह्नम् ॥ ४२ ॥
 शम्भोः शिरसीन्दुकला
 वृषध्वजो ऽक्षि च तृतीयमप्यूर्ध्वम् ।
 श्रूलं धनुः पिनाकं
 वामार्धे वा गिरिसुतार्धम् ॥ ४३ ॥
 पद्माङ्कितकरचरणः
 प्रसन्नमूर्तिः सुनीचकेशश्च ।
 पद्मासनोपविष्टः
 पितेव जगतो भवेदुद्धः ॥ ४४ ॥
 आजानुलम्बबाहुः
 श्रीवत्साङ्गः प्रशान्तमूर्तिश्च ।
 दिग्वासास्तरुणो
 रूपवांश्च कार्यो ऽर्हतां देवः ॥ ४५ ॥
 नासाललाटजङ्घोरु-
 गण्डवक्षांसि चोन्नतानि रवेः ।
 कुर्यादुदीच्यवेषं
 गूढं पादादुरो यावत् ॥ ४६ ॥
 विभ्राणः स्वकररुहे
 पाण्डिभ्यां पङ्कजे मुकुटधारी ।
 कुण्डलभूषितवदनः
 प्रलम्बहारो वियन्नहतः ॥ ४७ ॥

कमलोदरद्युतिमुखः
 कञ्चुकगुप्तः स्मितप्रसन्नमुखः ।
 रत्नोज्ज्वलप्रभामण्डलश्च
 कर्तुः शुभकरो ऽर्कः ॥ ४८ ॥
 सौम्या तु हस्तमात्रा
 वसुदा हस्तदयोच्छ्रिता प्रतिमा ।
 श्वेतसुभिक्षाय भवेत्
 त्रिचतुर्हस्तप्रमाणा या ॥ ४९ ॥
 नृपभयमत्यङ्गायां
 हीनाङ्गायामकल्यता कर्तुः ।
 शातोदर्यां शुद्धयम्
 अर्थविनाशः कृशायां च ॥ ५० ॥
 मरणं तु सक्षतायां
 शस्त्रनिपातेन निर्दिशेत्कर्तुः ।
 वामावनता पत्नीं
 दक्षिणविनता हिनस्त्यायुः ॥ ५१ ॥
 अन्यत्वमूर्ध्वदृष्ट्या
 करोति चिन्तामघोमुखी दृष्टिः ।
 सर्वप्रतिमास्वेवं
 शुभाशुभं भास्करोक्तसमम् ॥ ५२ ॥
 लिङ्गस्य वृत्तपरिधिं
 दैर्घ्येणास्य तत् विधा विभजेत् ।

मूले तच्चतुरश्रं
 मध्ये त्वष्टाश्रि वृत्तमतः ॥ ५६ ॥
 चतुरश्रमवनिखाते
 मध्यं कार्यं तु पिण्डकाश्वधे ।
 दृश्योच्छ्रायेण समा
 समन्ततः पिण्डका श्वधात् ॥ ५७ ॥
 दशदीर्घं देशघ्नं
 पार्श्वविहीनं पुरस्य नाशाय ।
 यस्य क्षतं भवेन्मस्तके
 विनाशाय तल्लिङ्गम् ॥ ५८ ॥
 मातृगणः कर्तव्यः
 स्वनामदेवानुरूपद्वतचिह्नः ।
 रेवन्तो ऽश्वारूढो
 मृगयाक्रीडादिपरिवारः ॥ ५९ ॥
 दण्डी यमो महिषगो
 हंसारूढश्च पाशभृद्गणः ।
 नरवाहनः कुबेरो
 वामकिरीटी बृहत्कुक्षिः ॥ ६० ॥
 [प्रमथाधिपो गजमुखः
 प्रलम्बजठरः कुठारधारी स्यात् ।
 एकविषाणो विध्व-
 न्मूलककन्दं सुनीलदलकन्दम् ॥ ६१ ॥]

इति श्रीवराहमिहिरकृती बृहत्संहितायां प्रतिमा-
 लक्षणं नामाष्टापञ्चाशो ऽध्यायः ॥ * ॥

कर्तुरनुकूलदिवसे
 देवस्यविशोधिते शुभनिमित्ते ।
 मङ्गलशकुनैः प्रास्थानिकैश्च
 वनसम्प्रवेशः स्यात् ॥ १ ॥
 पितृवनमार्गसुरालय-
 वल्मीकोद्यानतापसाश्रमजाः ।
 चैत्यसरित्सङ्गमसम्भवाश्च
 घटतोयसिक्ताश्च ॥ २ ॥
 कुञ्जानुजातवल्ली-
 निपीडिता वज्रमारुतोपहताः ।
 स्वपतितहस्तिनिपीडित-
 शुष्काम्निस्तुष्टमधुनिलयाः ॥ ३ ॥
 तरवो वर्जयितव्याः
 शुभदाः स्युः स्निग्धपत्रकुसुमफलाः ।
 अभिमतदृष्टं गत्वा
 कुर्यात्पूजां सबलिपुष्पाम् ॥ ४ ॥
 सुरदारुचन्दनशमी-
 मधूकतरवः शुभा द्विजातीनाम् ।
 ह्यचस्यारिष्टाश्चत्य-
 खदिरबिल्वा विष्टद्विकराः ॥ ५ ॥
 वैश्यानां जीवकखदिर-
 सिन्धुकस्यन्दनाश्च शुभकलदाः ।

तिन्दुककेसरसर्जा-
जुनाम्नशालाश्च शूद्राणाम् ॥ ६ ॥

लिङ्गं वा प्रतिमा वा
द्रुमवत्स्थाप्या यथादिशं यस्मात् ।

तस्माच्चिह्नयितव्या
दिशो द्रुमस्योर्ध्वमथवाधः ॥ ७ ॥

परमान्नमोदकौदन-
दधिपल्लोल्लोपिकादिभिर्भक्ष्यैः ।

मद्यैः कुसुमैर्धूपै-
र्गन्धैश्च तरुं समभ्यर्च्य ॥ ८ ॥

सुरपितृपिशाचराक्षस-
भुजगासुरगणविनायकाद्यानाम् ।

कृत्वा रात्रौ पूजां
वृक्षं संस्पृश्य च ब्रूयात् ॥ ९ ॥

अर्चार्थममुकस्य त्वं देवस्य परिकल्पितः ।

नमस्ते वृक्ष पूजेयं विधिवत्सम्प्रगृह्यताम् ॥ १० ॥

यानीह भूतानि वसन्ति तानि
बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् ।

अन्यच्च वासं परिकल्पयन्तु
क्षमन्तु तान्यद्य नमो ऽस्तु तेभ्यः ॥ ११ ॥

वृक्षं प्रभाते सलिलेन सिञ्चा
पूर्वात्तरस्यां दिशि सञ्चिह्नयत्य ।

मध्वाज्यलिप्तेन कुठारकेण
 प्रदक्षिणं शेषमतो ऽभिह्न्यात् ॥ १२ ॥
 पूर्वेण पूर्वात्तरतो ऽथवोदक्
 पतेद्यदा वृद्धिकरस्तदा स्यात् ।
 आग्नेयकोणात्क्रमशो ऽग्निदाहः
 क्षुद्रोगरोगास्तुरगक्षयश्च ॥ १३ ॥
 यन्नोक्तमस्मिन्वनसंप्रवेशे
 निपातविच्छेदनवृक्षगर्भाः ।
 इन्द्रध्वजे वास्तुनि च प्रदिष्टाः
 पूर्वं मया ते ऽत्र तथैव योज्याः ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ वृहत्संहितायां वन-
 सम्प्रवेशो नामैकोनषष्टितमो ऽध्यायः ॥ * ॥

दिशि सौम्यायां कुर्या-
 दधिवासनमण्डपं बुधः प्राग्वा ।
 तोरणचतुष्टययुतं
 शस्तद्रुमपल्लवच्छन्नम् ॥ १ ॥
 पूर्वं भागे चिन्ताः
 स्रजः पताकाश्च मण्डपस्योक्ताः ।
 आग्नेय्यां दिशि रक्ताः
 कृष्णाः स्युर्याम्यनैर्ऋतयोः ॥ २ ॥

श्वेता दिश्यपरस्यां
 वायव्यायां तु पाण्डुरा एव ।
 चित्राश्चोत्तरपार्श्वे
 पीताः पूर्वोत्तरे कोणे ॥ ३ ॥
आयुःश्रीबलजयदा
दारुमयी चृन्मयी तथा प्रतिमा ।
लोकहिताय मणिमयी
सौवर्णी पुष्टिदा भवति ॥ ४ ॥
रजतमयी कीर्तिकरी
प्रजाविवर्द्धिं करोति ताम्रमयी ।
शुक्लाभं तु महान्तं
शैली प्रतिमाथवा लिङ्गम् ॥ ५ ॥
शङ्कूपहता प्रतिमा
प्रधानपुरुषं कुलं च घातयति ।
श्वभ्रूपहता रोगान्
उपद्रवांश्चाक्षयान् कुरुते ॥ ६ ॥
मण्डपमध्ये स्थण्डिल-
मुपलिप्यास्तीर्य सिकतयाथ कुशैः ।
भद्रासनकृतशीर्षा-
पधानपादां न्यसेत्प्रतिमाम् ॥ ७ ॥
स्रक्ष्णाश्वत्थोदुम्बर-
शिरीषवटसम्भवैः कषायजलैः ।

मङ्गल्यसञ्ज्ञिताभिः
 सर्वौषधिभिः कुशाद्याभिः ॥ ८ ॥
 द्विपदृषभोद्धृतपर्वत-
 वल्मीकसरित्समागमतटेषु ।
 पद्मसरःसु च मृद्भिः
 सपञ्चमथैश्च तीर्थजलैः ॥ ९ ॥
 पूर्वशिरस्कां स्नातां
 सुवर्णरत्नान्नुभिश्च ससुगन्धैः ।
 नानातूर्यनिनादैः
 पुण्याहैर्वेदनिर्घोषैः ॥ १० ॥
 ऐन्द्र्यां दिशीन्द्रलिङ्गा
 मन्त्राः प्राग्दक्षिणे ऽग्निलिङ्गाश्च ।
 जप्तव्या द्विजमुखैः
 पूज्यास्ते दक्षिणाभिश्च ॥ ११ ॥
 यो देवः संस्थाप्य-
 स्तन्मन्त्रैश्चानलं द्विजा जुहुयात् ।
 अग्निनिमित्तानि मया
 प्रोक्तानीन्द्रध्वजाच्छाये ॥ १२ ॥
 धूमाकुलो ऽपसव्यो
 मुहुर्मुहुर्विस्फुलिङ्गद्वय शुभः ।
 हेतुः स्मृतिलोपो वा
 प्रसर्पणं वाशुभं प्रोक्तम् ॥ १३ ॥

स्नातात्मभुक्तवस्त्रां
 स्वलङ्कृतां पूजितां कुसुमगन्धैः ।
 प्रतिमां स्वास्तीर्षायां
 शय्यायां स्थापकः कुर्यात् ॥ १४ ॥

सुप्तां सुन्दत्यगीतै-
 र्जागरकैः सम्यगेवमधिवास्य ।
 दैवज्ञसम्प्रदिष्टे
 काले संस्थापनं कुर्यात् ॥ १५ ॥

अभ्यर्च्य कुसुमवस्त्रा-
 नुलेपनैः शङ्खतूर्यनिर्घोषैः ।
 प्रादक्षिण्येन नये-
 दायतनस्य प्रयत्नेन ॥ १६ ॥

कृत्वा बलिं प्रभूतं
 सम्पूज्य ब्राह्मणांश्च सभ्यांश्च ।
 दत्त्वा हिरण्यशकलं
 विनिक्षिपेत्पिण्डकाश्रम्रे ॥ १७ ॥

स्थापकदैवज्ञद्विज-
 सभ्यस्थपतीन् विशेषतो ऽभ्यर्च्य ।
 कल्याणानां भागी
 भवतीह परत्र च स्वर्गी ॥ १८ ॥

विष्णोर्भागवतान् मगांश्च सवितुः शम्भोः सभस्मद्विजान्
 मातृणामपि मातृमण्डलविदेः विप्रान्द्विदुर्ब्रह्मणः ।

शाक्यान् सर्वहितस्य शान्तमन्त्रो जगत्स्य विद्वानां विदु-
र्यं यं देवमुपाश्रिताः सन्निविष्टाः सन्निविष्टाः सन्निविष्टाः क्रिया ॥

उद्गयने सितपथे [१८ ॥

शिशिरवभस्तौ च भीतवर्गस्ये ।

सग्ने स्थिरे स्थिराग्ने

सौम्यैर्धीधर्मकेन्द्रगतौ ॥ २० ॥

पापैरुपचयसंस्थै-

र्भुवन्दुहरितिष्यवायुदेवेषु ।

विकुजे दिने ऽनुकूले

देवानां स्थापनं शस्तम् ॥ २१ ॥

सामान्यमिदं समासतो

लोकानां हितदं मया कृतम् ।

अधिवासनसंनिवेशने

सावित्रे पृथगेव विस्तरात् ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रतिष्ठा-
पनं नाम षष्ठितमो ऽध्यायः ॥ * ॥

पराशरः प्राह बृहद्रथाय

गोलक्ष्णं यत्क्रियते ततो ऽयम् ।

मया समासः शुभलक्षणास्ताः

सर्वास्तथाप्यागमतो ऽभिधास्ये ॥ १ ॥

सास्रविलरूक्षाद्यो
 मूषकनयनाश्च न शुभदा गावः ।
 प्रचलच्चिपिटविषाणाः
 करटाः खरसदृशवर्णाः ॥ २ ॥
 दशसप्तचतुर्दन्धः
 प्रलम्बमुण्डामना विनतपृष्ठाः ।
 ह्रस्वस्थूलग्रीवा
 यवमध्या दारितक्षुराश्च ॥ ३ ॥
 श्यावातिदीर्घजिह्वा
 गुरुफैरतितनुभिरतिष्ठ हृद्भिर्वा ।
 अतिककुदाः कृशदेहा
 नेष्टा होनाधिकाङ्ग्यश्च ॥ ४ ॥
 दृषभो ऽप्येवं स्थूला-
 तिलम्बदृषणः शिराततक्रोडः ।
 स्थूलशिराचितगण्ड-
 स्त्रिस्थानं मेहते यश्च ॥ ५ ॥
 मार्जारारक्षः कपिलः
 करटो वा न शुभदो द्विजस्येष्टः ।
 कृष्णोष्ठतालुजिह्वः
 श्वसनो यूथस्य घातकरः ॥ ६ ॥
 स्थूलशकृन्मसिशृङ्गः
 सितोदरः कृष्णसारवर्णश्च ।

यद्वजातो ऽपि त्याज्यो

यूथविनांशावहो वृषभः ॥ ७ ॥

श्यामकपुष्पचिताङ्गो

भस्मादृशसन्निभो विडालाक्षः ।

विप्राणामपि न शुभं

करोति वृषभः परियुहीतः ॥ ८ ॥

ये चोद्धरन्ति पादान्

पङ्कादिव योजिताः कश्यपीवाः ।

कातरनयना हीनाश्च

पृष्ठतस्ते न भारसहाः ॥ ९ ॥

मृदुसंहततामेका-

स्तनुस्फिजस्ताम्रताक्षुजिह्वाश्च ।

तनुद्वस्वोच्चश्रवणाः

सुकुक्षयः स्पष्टजङ्घाश्च ॥ १० ॥

आताम्रसंहतखुरा

व्यूढोरक्ता दृढाङ्गुदयुक्ताः ।

स्निग्धस्रक्ष्यातनुत्व-

ग्रोमाणस्ताम्रतनुश्चक्राः ॥ ११ ॥

तनुभूस्पृग्वाखधयो

रक्तान्तविशोचना महोच्छासाः ।

सिंहस्कन्धास्तन्वल्प-

कम्बलाः पूजिताः सुगताः ॥ १२ ॥

वामाध्वैर्वामे
 दक्षिणपार्श्वे च दक्षिणावर्तैः ।
 शुभदा भवन्त्यनडुहे
 जङ्घाभिश्चैकनिभाभिः ॥ १३ ॥
 वैडूर्यमल्लिका-
 बुहुदेक्षणाः स्थूलनेत्रवर्माणः ।
 पाणिभिर्गम्फुटिताभिः
 शस्ताः सर्वेऽपि भारवहाः ॥ १४ ॥
 घ्राणोद्देशे सवलि-
 मर्जारमुखः सितश्च दक्षिणतः ।
 कमलोत्पललाक्षाभः
 सुवालधिर्वाजितुल्यजवः ॥ १५ ॥
 लम्बैर्दृषणैर्मेघोदरश्च
 सङ्घितवङ्कणाक्रोडः ।
 ज्ञेयो भाराध्वसहे
 जवे ऽश्वतुल्यश्च शस्तफलः ॥ १६ ॥
 सितवर्णः पिङ्गाक्ष-
 स्ताश्चविधाणेक्षणे महाबक्रः ।
 हंसो नाम शुभफलो
 यूथस्य विवर्धनः प्रोक्तः ॥ १७ ॥
 भ्रूसृग्वालधिराताम्ब-
 वङ्कणो रक्तदृक् ककुद्भी च ।

कल्पायश्च स्वामिन-
 मचिरात् कुरुते पतिं लक्ष्म्याः ॥ १८ ॥
 यो वा सितैकचरणो
 यथेष्टवर्णश्च सोऽपि शस्तफलः ।
 मिश्रफलोऽपि ग्राह्यो
 यदि नैकान्तप्रशस्तो ऽस्ति ॥ १९ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृहत्संहितायां गोल-
 क्षणं नामैकपष्ठितमो ऽध्यायः ॥ ० ॥

पादाः पञ्चनखास्त्रयो ऽग्रचरणः षड्भिर्नखैर्दक्षिण-
 स्तामोष्ठाग्रनसो मृगेश्वरगतिर्निर्गन् भुवं याति च ।
 लाङ्गूलं ससटं दृष्ट्वसहशी कर्णौ च लम्बौ मूढू
 यस्य स्यात्स करोति पोष्टुरचिरात्पुष्टां श्रियंश्चा गृहे ॥

पादे पादे पञ्च पञ्चाग्रपादे [॥ १ ॥

वामे यस्याः षण्णखा मस्त्रिकाख्याः ।

वक्रं पुच्छं पिङ्गलासम्बकर्णौ

या सा रश्मिं कुक्षी पाति पोष्टुः ॥ २ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृहत्संहितायां श्वल-
 क्षणं नाम द्वापष्ठितमो ऽध्यायः ॥ * ॥

कुक्कुटस्त्वृजुतनूरुहाङ्गुलि-
 स्ताम्रवक्त्रनखचूषिकः सितः ।
 रौति सुस्वरमुषात्यये च शो
 वृद्धिदः स नृपराष्ट्रवाजिनाम् ॥ १ ॥
 यवग्रीवो यो वा बदरसहश्रो वापि विहगो
 वृहन्मूर्धा वर्णैर्भवति बहुभिर्यश्च रुचिरः ।
 स शस्तः सङ्ग्रामे मधुमधुपवर्णश्च जयक-
 न्न शस्तो यो ऽतो ऽन्यः कश्चनुरवः खञ्जचरणः ॥ २ ॥
 कुक्कुटी च नृदुचारुभाषिणी
 स्निग्धमूर्तिरुचिराननेक्षणा ।
 सा ददाति सुचिरं महीक्षितां
 श्रीयशोविजयवीर्यसम्पदः ॥ ३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां कुक्कुट-
 लक्षणं नाम त्रिषष्टितमो ऽध्यायः ॥ * ॥

स्फटिकरजतवर्णो नीलराजोविचित्रः
 कलशसदृशमूर्तिश्चारुवंशश्च कूर्मः ।
 अरुणसमवपूर्वा सर्षपाकारचित्रः
 सकलनृपमहत्त्वं मन्दिरस्थः करोति ॥ १ ॥
 अञ्जनधृङ्गश्यामतनुर्वा
 विन्दुविचित्रो ऽव्यङ्गशरीरः ।

सर्पशिरा वा स्थूलमलो यः
 सोऽपि नृपाली रात्रिविष्टौ ॥ २ ॥
 वैडूर्यत्विट् स्थूलकाष्ठस्त्रिकोणो
 गूढच्छिद्रश्चाहवंशश्च शस्तः ।
 क्रीडावाप्यां तोयपूर्णे मलौ वा
 कार्यः कूर्मो मन्त्रकार्यं नरेन्द्रैः ॥ ३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां कूर्मल-
 क्षणं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ० ॥

छागशुभाशुभलक्षण-
 मभिधास्ये नवदशाष्टदन्तस्ते ।
 धन्याः स्थाप्या वेष्मनि
 सन्त्याज्याः सप्तदन्ता ये ॥ १ ॥
 दक्षिणपार्श्वे मण्डल-
 मसितं शुक्लस्य शुभफलं भवति ।
 ऋष्यनिभकृष्णलोहित-
 वर्णानां श्वेतमपि शुभदम् ॥ २ ॥
 स्तनवद्वलम्बते यः
 कण्ठेऽजानां मणिः स विज्ञेयः ।
 एकमणिः शुभफलक-
 ह्वन्यतमा द्वित्रिमणयो ये ॥ ३ ॥

मुण्डाः सर्वे शुभदाः
 सर्वसिताः सर्वकृष्णदेहाश्च ।
 अर्धासिताः सितार्धा
 धन्याः कपिलार्धकृष्णाश्च ॥ ४ ॥
 विचरति यूथस्याग्रे
 प्रथमं चाम्भो ऽवगाहते यो ऽजः ।
 स शुभः सितमूर्धा वा
 मूर्धनि वा टिकिका यस्य ॥ ५ ॥
 सपृषतकण्ठशिरा वा
 तिलपिष्टनिभश्च ताम्रहृक् शस्तः ।
 कृष्णचरणः सितो वा
 कृष्णो वा श्वेतचरणो यः ॥ ६ ॥
 यः कृष्णाण्डः श्वेतो
 मध्ये कृष्णेन भवति पट्टेन ।
 यो वा चरति सशब्दं
 मन्दं च स शोभनच्छागः ॥ ७ ॥
 ऋष्यशिरोरुहपादे
 यो वा प्राक् पाण्डुरो ऽपरे नीलः ।
 स भवति शुभकृष्णागः
 श्लोकश्चाप्यत्र गर्गोक्तः ॥ ८ ॥

कुट्टकः कुटिलश्चैव जटिलो वामनस्तथा ।

ते चत्वारः त्रियः पुत्रा नास्वश्रीके वसन्ति ते ॥ ९ ॥

अथाप्रशस्ताः खरतुल्यमादाः
 प्रदीप्तपुच्छाः कुनखा विवर्षाः ।
 निहत्तकर्णा द्विपमस्तकाश्च
 भवन्ति ये चासिततालुजिह्वाः ॥ १० ॥
 वरुणैः प्रशस्तैर्मणिभिश्च युक्ता
 मुण्डाश्च ये ताम्रविखोचनाश्च ।
 ते पूजिता वेश्मसु मानवानां
 सौस्थानि कुर्वन्ति यज्ञः त्रियं च ॥ ११ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां छाग-
लक्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ० ॥

दीर्घग्रीवाक्षिकूटस्त्रिकहृदयपृथुस्ताम्रतास्त्रोष्ठजिह्वः
 स्त्रस्तत्वकेशवालः सुशफगतिमुखो ह्रस्वकर्णोष्ठपुच्छः ।
 जङ्घाजानूरुवृत्तः समसितदशनश्चारुसंस्थानरूपो
 वाजी सर्वाङ्गशुद्धो भवति नृपतेः शत्रुनाशाय नित्यम्
 अश्रुपातहनुगण्डहृत्त्रिल- [॥ १ ॥
 प्रोक्षशङ्खकटिबस्त्रिजानुनि ।
 मुष्कनाभिककुदे तथा मुदे
 सव्यकुक्षिचरयोषु चाशुभाः ॥ २ ॥
 ये प्रपाणगलकैर्बसंस्थिताः
 पृष्ठमध्यनयनोपरि स्थिताः ।

श्रोष्ठसक्थिभुजकुक्षिपार्श्वगा-
स्ते लखाटसहिताः सुशोभनाः ॥ ३ ॥

तेषां प्रपाण एको
ललाटकेशेषु च भ्रुवावर्तः ।

रन्ध्रोपरन्ध्रमूर्धनि
वक्षसि चेति स्मृतौ द्वौ द्वौ ॥ ४ ॥

षड्भिर्दन्तैः सिताभैर्भवति ह्यशिशुस्तैः कषायैर्द्विवर्षः
सन्दंशैर्मध्यमान्यैः पतितसमुदितैस्त्युब्दपञ्चाब्दिकोऽश्वः ।
सन्दंशानुक्रमेण त्रिकपरिगणिताः कालिकापीतशुक्लाः
काचा माक्षीकशङ्खावटचलनमतो दन्तपातं च विद्धि ॥

॥ ५ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ वृहत्संहितायामश्व-
क्षणं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ * ॥

मध्वाभदन्ताः सुविभक्तदेहा
न चोपदिग्धाश्च कशाः क्षमाश्च ।

गावैः समैश्चापसमानवंशा
वराहमुखैर्जघनैश्च भद्राः ॥ १ ॥

वक्षोऽथ कक्षावलयः क्षयाश्च
लम्बोदरस्त्रग्दृष्टी गलश्च ।

स्थूला च कुक्षिः सह रेचकेन
सैन्धी च हृद्यन्दमतङ्गजस्य ॥ २ ॥

मृगास्तु ह्रस्वाधरवालमेद्रा-
 स्तन्वंहिकण्डिजहस्तकर्णाः ।
 स्थूलेक्षणायैति यथोक्तचिह्नैः
 सङ्कीर्णनागा व्यतिमिश्रचिह्नाः ॥ ३ ॥
 पञ्चोन्नतिः सप्त मृगस्य दैर्घ्य-
 मष्टौ च हस्ताः परिणाहमानम् ।
 एकद्विवृद्धावथ मन्दभद्रौ
 सङ्कीर्णनागो ऽनियतप्रमाणः ॥ ४ ॥
 भद्रस्य वर्णो हरितो मदस्य
 मन्दस्य हारिद्रकसन्निकाशः ।
 कृष्णो मदश्चाभिहितो मृगस्य
 सङ्कीर्णनागस्य मदो विमिश्रः ॥ ५ ॥
 ताम्रोष्ठतालुवदनाः कलविद्धनेत्राः
 स्निग्धोन्नताग्रदशनाः पृथुलायतास्याः ।
 चापोन्नताथतमिगूढनिमग्रवंशा-
 स्तन्वेकरोमचितकूर्मसमोमकुम्भाः ॥ ६ ॥
 विल्लीर्ष्यकर्षहनुनाभिललाटगुह्याः
 कूर्मोन्नतदिनवविंशतिभिर्नखैश्च ।
 रेखाचयोपचितवृत्तकराः सुवाला
 धन्याः सुगन्धिमदपुष्करमाहताश्च ॥ ७ ॥
 दीर्घाङ्गुलिरक्तपुष्कराः
 सजलाम्भोदनिनादृंहिणः ।

दृहदायतदृहत्कन्धरा
 धन्या भूमिपतेर्मतङ्गजाः ॥ ८ ॥
 निर्मदाभ्यधिकहीननखाङ्गान्
 कुञ्जवामनकमेषविषाणान् ।
 दृश्यकोशफलपुष्करहीनान्
 श्यावनीलशबलासिततालून ॥ ९ ॥
 स्वल्पवक्त्ररुहमत्कुण्डलान्
 हस्तिनीं च गजलक्ष्णयुक्ताम् ।
 गर्भिणीं च वृषतिः परदेशं
 प्रापयेदतिविरुधफलास्ते ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृहत्संहितायां गज-
 लक्षणं नाम सप्तषष्ठितमोऽध्यायः ॥ * ॥

उन्मानमानगतिसंहतिसारवर्ष-
 खेहस्वरप्रकृतिसत्त्वमनुकमादौ ।
 क्षेपं नृजां च विधिषत्कुशलोऽवलोक्य
 सामुद्रचिह्नदति यातमनागतं च ॥ १ ॥
 अस्वेदनौ नृदुतसौ कमलोदरामौ
 श्लिष्टाङ्गुली रश्मिरताम्रनसौ सुपाष्णी ।
 उष्णौ शिराविरहिणौ सुनिगूढगुल्फौ
 कूर्मोन्नतौ च चरसौ मनुजेश्वरस्य ॥ २ ॥

शूर्पाकारविरुक्षपाण्डुरनखौ बक्रौ शिरासन्तौ
 संशुष्कौ विरलाङ्गुली च चरखौ दारिद्र्यदुःखप्रदौ ।
 मार्गायोत्कटकौ कषायसहशैव्यंशस्य विच्छित्तिदौ
 ब्रह्मघ्नौ परिपक्वमृद्द्युतितलौ पीतावगम्यरतौ ॥ ३ ॥

प्रविरलतनुरोमवृत्तजङ्घा
 द्विरदकरप्रतिमैर्वरोरुभिश्च ।

उपचितसमजानवश्च भूपा

धनरहिताः श्मश्रुगालतुल्यजङ्घाः ॥ ४ ॥

रोमैकैकं कूपके शार्थिवानां

द्वे द्वे श्रेये प्रशिद्धसन्नेत्रियाणाम् ।

त्याद्यैर्निःस्वा मानवा दुःखभाजः

केशाद्यैवं निन्दिताः पूजिताश्च ॥ ५ ॥

निर्मासजानुर्नियते प्रवासे

सौभाग्यमल्पैर्विकटैर्दरिद्राः ।

स्त्रीनिर्जिताश्चापि भवन्ति निम्नै

राज्यं समांसैश्च महन्निरायुः ॥ ६ ॥

लिङ्गे ऽल्पे धनवानपत्यरहितः स्थूले विहीनो धनै-

र्मद्रे वामनते सुतार्थरहितो बक्रो ऽन्यथा पुषवान् ।

दारिद्र्यं विनते त्वघो ऽक्षतन्त्रयो लिङ्गे शिरासन्तते

स्थूलग्रन्ययुते सुखी मृदु कसेत्यन्तं प्रमेहादिभिः ॥

कोशनिगूढैर्भूषा ॥ ७ ॥

दीर्घैर्भ्रमैश्च वित्तपरिहीनाः ।

अजुष्टतशेषसो
 लघुशिरालिशिञ्जाश्च धनवन्तः ॥ ८ ॥
 जलमृत्युरेकद्वयलो
 विषमैः स्त्रीचञ्चलः समैः क्षितिपः ।
 ह्रस्वायुश्चोद्वैः
 प्रलम्बवृषणस्य शतमायुः ॥ ९ ॥
 रक्तैराद्या मणिभि-
 निर्द्रव्याः पाण्डुरैश्च मलिनैश्च ।
 सुखिनः सशब्दमूचा
 निःस्वा निःशब्दधारीश्च ॥ १० ॥
 द्विचिचतुर्धाराभिः
 प्रदक्षिणावर्तवस्त्रितमूचाभिः ।
 पृथ्वीपतयो ज्ञेया
 विकीर्णमूचाश्च धनहीनाः ॥ ११ ॥
 एकैव मूचधारा
 वस्त्रिता रूपप्रधानसुतदायी ।
 द्विग्धोन्नतसममणयो
 धनवन्ति तारकभोक्तारः ॥ १२ ॥
 मणिभिश्च मध्यनिवैः
 कन्यापितरो भवन्ति निःस्वाश्च ।
 बहुपशुभाजो मधीक्रीश्च
 नात्युत्सवस्यैर्धनिजः ॥ १३ ॥

परिशुष्कवस्तिशीर्षे-
 र्धनरहिता दुर्भवाश्च विघ्नेयाः ।
 कुसुमसमगन्धशुक्ला-
 विघ्नातव्या महीपालाः ॥ १४ ॥
 मधुगन्धे बहुवित्ता
 मत्स्यसगन्धे बहुन्यपत्यानि ।
 तनुशुक्रः स्त्रीजनको
 मांससगन्धो महामोगी ॥ १५ ॥
 मदिरागन्धे यज्वा
 क्षारसगन्धे च रेतसि दरिद्रः ।
 शीघ्रं मैथुनगामी
 दीर्घायुरतो ऽन्यथास्पायुः ॥ १६ ॥
 निःस्वो ऽतिस्थूलस्त्रिक्
 समं सलस्त्रिक् सुखान्वितो भवति ।
 व्याघ्रान्तो ऽध्यर्धस्त्रि-
 ग्मण्डूकस्त्रिजराधिपतिः ॥ १७ ॥
 सिंहकटिर्मनुजेन्द्रः
 कपिकरभकटिर्धनैः परित्यक्तः ।
 समजठरा भोगशुला
 घटपिठरनिभेदरा निःस्वाः ॥ १८ ॥
 अविक्लपार्श्वी धनिलो
 निर्वैर्बक्रैश्च भोगसक्यताः

समकुक्षा भोगाब्जा
 निम्नाभिर्भोगपरिष्केनाः ॥ १९ ॥
 उन्नतकुक्षाः क्षितिपाः
 कुटिलाः स्युर्मानवा विषमकुक्षाः ।
 सर्पीदरा दरिद्रा
 भवन्ति बह्नाश्चिन्त्यैव ॥ २० ॥
 परिमण्डलोन्नताभि-
 र्विस्तीर्णाभिश्च नाभिभिः सुखिनः ।
 स्वरूपा त्वदृश्यनिम्ना
 नाभिः क्लेशावहा भवति ॥ २१ ॥
 वलिमध्यगता विषमा
 शूलाबाधं करोति नैःस्व्यं च ।
 शब्दं वामावर्ता
 करोति मेघां प्रदक्षिणतः ॥ २२ ॥
 पार्श्वायता चिरावुष-
 मुपरिष्ठाचेखरं नवाब्जमधः ।
 शतपत्रकर्णिकाभा
 नाभिर्लघुचेखरं कुरुते ॥ २३ ॥
 शस्त्रान्तं स्त्रीभोगिभ-
 वाचार्यं बहुसुरं यथासह्यम् ।
 एकद्विचिचकुर्भि-
 र्वलिभिर्विचिचपृषं त्वकलिम् ॥ २४ ॥

विषमवलयो मनुष्या
 भवन्त्यगम्याभिगामिनः पापाः ।
 ऋजुवलयः सुखभाजः
 परदारद्वेषिणश्चैव ॥ २५ ॥
 मांसलमृदुभिः पार्श्वैः
 प्रदक्षिणावर्तरोमभिर्भूपाः ।
 विपरीतैर्निर्द्रव्याः
 सुखपरिहीनाः परप्रेष्याः ॥ २६ ॥
 सुभगा भवन्त्यनुद्वङ्गचूचुका
 निर्धना विषमदीर्घैः ।
 पीनोपचितनिमग्नैः
 क्षितिपतयश्चूचुकैः सुखिनः ॥ २७ ॥
 हृदयं समुन्नतं पृथु
 न वेपनं मांसलं च नृपतीनाम् ।
 अधमानां विपरीतं
 खररोमचितं शिरालं च ॥ २८ ॥
 समवक्षसो ऽर्थवन्तः
 पीनैः शूरास्त्वकिञ्चनास्तनुभिः ।
 विषमं वक्षो येषां
 ते निःस्वाः शस्त्रनिधनाश्च ॥ २९ ॥
 विषमैर्विषमो जचुभि-
 रर्थविहीनो ऽस्थिस्तन्निपरिखड्यैः ।

उन्नतजचुर्भागी
 निम्नैर्निःस्वो ऽर्धवान् पीनैः ॥ ३० ॥
 चिपिटग्रीवो निःस्वः
 शुष्का सशिरा च यस्य वा ग्रीवा ।
 महिषग्रीवः शूरः
 शस्त्रान्तो वृषसमग्रीवः ॥ ३१ ॥
 कम्बुग्रीवो राजा
 प्रलम्बकण्ठः प्रभक्ष्यो भवति ।
 पृष्ठमभङ्गमरोमश-
 मर्धवतामशुभदमते ऽन्यत् ॥ ३२ ॥
 अस्वेदनपीनोन्नत-
 सुगन्धिसमरोमसकुलाः कक्षाः ।
 विश्नातव्या धनिना-
 मते ऽन्यथार्धैर्विहीनाणाम् ॥ ३३ ॥
 निर्मांसौ रोमचितौ
 भग्नावहपौ च निर्धमस्वांसौ ।
 विपुलावव्युच्छिन्नौ
 सुश्लिष्टौ सौख्यवीर्यवताम् ॥ ३४ ॥
 करिकरसहस्रौ वृत्ता-
 वाजान्धवलम्बिनौ समौ पीनौ ।
 बाहू पृथिवीशाना-
 मधमानां रोमशौ श्रुत्वा ॥ ३५ ॥

हस्ताङ्गुलयो दीर्घा-
 श्विरायुषामवसिताश्च सुभगानाम् ।
 मेधाविनां च सूक्ष्मा-
 श्विपिटाः परकर्मनिरतानाम् ॥ ३६ ॥
 स्थूलाभिर्धनरहिता
 बहिर्नताभिश्च शस्त्रनिर्याणाः ।
 कपिसदृशकरा धनिना
 व्याघ्रोपमपाण्डयः पापाः ॥ ३७ ॥
 मणिवन्धनैर्निगूढै-
 र्दृढैश्च सुखिष्टसन्धिभिर्भूपाः ।
 हीनैर्हस्तच्छेदः
 श्लथैः सशब्दैश्च निर्द्रव्याः ॥ ३८ ॥
 पितृवित्तेन विहीना
 भवन्ति निबन्धनकरतलेन नराः ।
 संवृतनिम्नैर्धनिनः
 प्रोत्तानकराश्च दातारः ॥ ३९ ॥
 विषमैर्विषमा निःस्वाश्च
 करतलैरीश्वरास्तु लाक्षाभिः ।
 पीतैरगम्यवनिताभिगामिना
 निर्धना रूक्षैः ॥ ४० ॥
 तुषसदृशनखाः स्त्रीवा-
 श्विपिटैः स्फुटितैश्च वित्तसम्पन्नाः ।

कुनखविवर्णैः परतर्कुकाश्च
 ताम्रैश्च भूपतयः ॥ ४१ ॥
 अङ्गुष्ठयवैराद्याः
 सुतवन्तो ऽङ्गुष्ठमूलगैश्च यवः ।
 दीर्घाङ्गुलिपर्वाणः
 सुभगा दीर्घायुषश्चैव ॥ ४२ ॥
 स्निग्धा निम्ना रेखा
 धनिनां तद्भृत्ययेन निःस्वानाम् ।
 विरलाङ्गुलयो निःस्वा
 धनसञ्चयिनो घनाङ्गुलयः ॥ ४३ ॥
 तिस्रो रेखा मणिवन्धनेत्यिताः
 करतलोपगा नृपतेः ।
 मीनयुगाङ्कितपाणि-
 न्दित्यं सचप्रदो भवति ॥ ४४ ॥
 वज्राकारा धनिनां
 विद्याभाजां तु मीनपुच्छनिभाः ।
 शङ्खगतपञ्चशिविका-
 गजाश्वपद्मोपमा नृपतेः ॥ ४५ ॥
 कलशमृणालपताका-
 ङ्गुशोपमाभिर्भवन्ति निधिपाखाः ।
 दामनिभाभिश्चाद्याः
 स्वस्तिकरूपाभिरैश्वर्यम् ॥ ४६ ॥

चक्रासिपरश्रुतोमर-
 शक्तिधनुःकुन्तसन्निभा रेखाः ।
 कुर्वन्ति चमूनाथं
 यज्वानमुखूललाकाराः ॥ ४७ ॥
 मकरध्वजकोष्ठागार-
 सन्निभाभिर्महाधनोपेताः ।
 वेदीनिभेन चैवाग्नि-
 होत्रिणो ब्रह्मतीर्थेन ॥ ४८ ॥
 वापीदेवकुलाद्यै-
 र्धर्मं कुर्वन्ति च त्रिकोणाभिः ।
 अङ्गुष्ठमूलरेखाः
 पुत्राः स्युर्दारिकाः स्वप्नाः ॥ ४९ ॥
 रेखाः प्रदेशिनीगाः
 शतायुषां कल्पनीयमृणाभिः ।
 छिन्नाभिर्द्रुमपतनं
 बहुरेखारेखिणो निःस्वः ॥ ५० ॥
 अतिदृशदीर्घैश्चिबुकै-
 र्निर्द्रव्या मांसस्यैर्धनोपेताः ।
 विम्बोपमैरवकै-
 रधरैर्भूयास्तनुभिरस्वः ॥ ५१ ॥
 ओष्ठैः स्फुटितविस्मिडित-
 विवर्णैरुद्वेष्ट धनपरित्यागाः ।

स्निग्धा घनाश्च दशनाः
 सुतीक्ष्णदंष्ट्राः समाश्च शुभाः ॥ ५२ ॥
 जिह्वा रक्ता दीर्घा
 श्लक्ष्णा सुसमा च भोगिनां ज्ञेया ।
 श्वेता कृष्णा परुषा
 निर्द्रव्याणां तथा तालु ॥ ५३ ॥
 वक्त्रं सौम्यं संवृत-
 ममलं श्लक्ष्णं समं च भूपानाम् ।
 विपरोतं क्लेशभुजां
 महामुखं दुर्भगाणां च ॥ ५४ ॥
 स्त्रीमुखमनपत्यानां
 शायवतां मण्डलं परिज्ञेयम् ।
 दीर्घं निर्द्रव्याणां
 भोरुमुखाः पापकर्मिणः ॥ ५५ ॥
 चतुरश्रं धूर्तानां
 निखं वक्त्रं च कनयरहितानाम् ।
 कृपणानामतिशूलं
 सम्पूर्णं भोगिनां क्लेशम् ॥ ५६ ॥
 अस्फुटिताग्रं जिह्वं
 श्मश्रु शुभं कटु च सव्रतं चैव ।
 रक्तैः परुषैश्चैराः
 श्मश्रुभिरुपैश्च विज्ञेयाः ॥ ५७ ॥

निर्मांसैः कर्णैः पापमृत्यव-
श्चर्पटैः सुबहुभोगाः ।
कृपणाश्च ह्रस्वकर्णाः
शङ्कुश्रवणाश्च भूपतयः ॥ ५८ ॥
रोमशकर्णा दीर्घायुषस्तु
धनभागिनो विपुलकर्णाः ।
क्रूराः शिरावनडै-
र्व्यालम्बैर्मांसलैः सुखिनः ॥ ५९ ॥
भोगी त्वनिम्नगण्डो
मन्त्री सम्पूर्णांसांसगण्डो यः ।
सुखभाक् शुकसमनास-
श्चिरजीवी शुष्कनासश्च ॥ ६० ॥
द्विन्नानुरूपयागम्यनाभिना
दीर्घया तु सौभाग्यम् ।
आकुञ्चितया चौरः
स्त्रीमृत्युः स्याद्विपिण्डनासः ॥ ६१ ॥
धनिनो ऽग्रवक्रनासा
दक्षिणवक्राः प्रभवन्ति क्रूराः ।
कृञ्ची स्वल्पविष्टया
सुपुटा नासा सभाग्यानाम् ॥ ६२ ॥
धनिनां द्युतं सद्यद्
द्विचिपिण्डितं ह्यादि सान्नायकं च ।

दीर्घायुषां प्रमुक्तं
 विज्ञेयं संहतं चैव ॥ ६३ ॥
 पद्मदलामैर्धनिना
 रक्तान्तविलोचनाः श्रियोभाजः ।
 मधुपिङ्गलैर्महार्था
 मार्जारविलोचनाः पापाः ॥ ६४ ॥
 हरिणाक्षा मण्डललोचनाश्च
 जिह्वैश्च लोचनैश्चैराः ।
 क्रूराः केकरनेचा
 गजसदृशदृशश्च भूपतयः ॥ ६५ ॥
 ऐश्वर्यं गम्भीरै-
 र्नीलोत्पलकान्तिभिश्च विद्वांसः
 अतिदृष्टान्तरकाणा-
 मक्ष्णामुत्पाटनं भवति ॥ ६६ ॥
 मन्त्रित्वं स्थूलदृशां
 श्यावाक्षाणां च भवति सौभाग्यम् ।
 दीना दृग्निःस्वानी
 स्त्रिग्या विपुलार्थभोग्यताम् ॥ ६७ ॥
 अभ्युन्नताभिरल्पायुषो
 विशलोकताभिरतिसुखिनः ।
 विषमभुवो दरिद्रा
 बालेन्दुगतयुवः सधना ॥ ६८ ॥

दीर्घासंसक्ताभि-
 र्धमिनः खण्डाभिरर्थपरिहीनाः ।
 मध्यविनतध्रुवो ये
 ते सक्ताः स्त्रीषगम्यासु ॥ ६९ ॥
 उन्नतविपुलैः शङ्खै-
 र्धन्या निम्नैः सुतार्थसन्धक्ताः ।
 विषमललाटा विधना
 धनवन्तो ऽर्धेन्दुसदृशेन ॥ ७० ॥
 शुक्तिविशालैराचार्यता
 शिरासङ्गतैरधर्मरताः ।
 उन्नतशिराभिराढ्याः
 स्वस्तिकवत्संस्थिताभिश्च ॥ ७१ ॥
 निम्नललाटा वधवन्ध-
 भागिनः क्रूरकर्मनिरताश्च ।
 अभ्युन्नतैश्च मूपाः
 कृपणाः स्युः सङ्कटललाटाः ॥ ७२ ॥
 रुदितमदीनमनश्च
 क्षिप्रं च शुभावहं मनुष्याणाम् ।
 रूढं दीनं प्रकुरासु चैव
 न शुभप्रदं पुंसाम् ॥ ७३ ॥
 हसितं शुभदमकामं
 सनिमीषितालोचनं च पापमयम् ॥

हृष्टस्य हसितमसकृत्
 सोन्मादस्यासकृत्प्रान्ते ॥ ७४ ॥
 तिस्रो रेखाः शतजीविनां
 ललाटायताः स्थिता यदि ताः ।
 चतसृभिरवनीशत्वं
 नवतिश्चायुः सपञ्चाब्दा ॥ ७५ ॥
 विच्छिन्नाभिश्चागम्य-
 गामिनो नवतिरप्यरेखेण ।
 केशान्तोपगताभी
 रेखाभिरशीतिर्षयायुः ॥ ७६ ॥
 पञ्चभिरायुः सप्तति-
 रेकाग्रावस्थिताभिरपि षष्टिः ।
 बहुरेखेण शतार्धं
 चत्वारिंशच्च वक्राभिः ॥ ७७ ॥
 त्रिंशद्ब्रूलग्राभि-
 विंशतिकश्चैव कामवक्राभिः ।
 क्षुद्राभिः स्वल्पायु-
 र्गूनाभिश्चान्तरे कल्पम् ॥ ७८ ॥
 परिमण्डलैर्गवाक्ष-
 म्बुजाकारैः शिरोभिरवनीशाः ।
 त्रिपिटैः पितृमातृघ्नाः
 करोटिश्चिरसां चिराञ्जत्युः ॥ ७९ ॥

घटमूर्धा ध्वानरुचि-
 द्विमस्तकः पामरुहनीस्यक्तः ।
 निम्नं तु शिरो महतां
 बहुनिम्नमनर्थदं भवति ॥ ८० ॥
 एकैकभवैः स्निग्धैः
 कृष्णैराकुञ्चितैरभिन्नाग्रैः ।
 मृदुभिर्न चातिबहुभिः
 केशैः सुखभाग्ज्वरेन्द्रे वा ॥ ८१ ॥
 बहुमूलविषमकपिलाः
 स्थूलस्फुटिताग्रफणपत्रस्वाद्यः ।
 अतिकुटिलाश्चर्चितवनाद्यः
 मूर्धजा पित्तहीनाग्राम् ॥ ८२ ॥
 यद्यज्ञाचं रूक्षं
 मांसविहीनं शिरावन्तं च ।
 तत्तदनिष्टं प्रोक्तं
 विपरीतमतः शुभं सर्वम् ॥ ८३ ॥
 त्रिषु विपुलो गम्भीर-
 स्त्रिषु च बहुसतयतुर्हस्तः ।
 सप्तसु रत्नो राजा
 पञ्चसु दोषेषु ह्यक्षयः ॥ ८४ ॥
 नाभिः स्वरः सप्तमिति प्रदिष्टं
 गम्भीरमेतन्नित्यं नराधाम् ॥

उरो ललाटं वदनं च पुंसां
 विस्तीर्णमेतच्चितयं प्रशस्तम् ॥ ८५ ॥
 वक्षो ऽथ कक्षा नखनासिकास्यं
 कृकाटिका चेति षडुन्नतानि ।
 ह्रस्वानि चत्वारि च लिङ्गपृष्ठं
 ग्रीवा च जङ्घे च हितप्रदानि ॥ ८६ ॥
 नेत्रान्तपादकरतास्वधरोष्ठजिह्वा
 रक्ता नखाश्च खलु सप्त सुखायहानि ।
 सूक्ष्मानि पञ्च दशनाङ्गुलिपर्वकेशाः
 सार्कं त्वच्चा कररुहाश्च न दुःखितानाम् ॥ ८७ ॥
 हनुलोचनबाहुनासिकाः
 स्तनयोरन्तरमच पञ्चमम् ।
 इति दीर्घमिदं तु पञ्चकं
 न भवत्येव मृक्षामभूभृताम् ॥ ८८ ॥
 इति श्लेषम् ॥

छाया शुभाशुभफलानि निवेदयन्ती
 लक्ष्या मनुष्यपशुपक्षिषु लक्षणत्रयैः ।
 तेजोगुणान् बहिरपि प्रविकाशयन्ती
 दीपप्रभा स्फटिकरत्नघटस्थितेव ॥ ८९ ॥
 स्निग्धद्विजत्वङ्गखरिमकेश-
 छाया सुगन्धा च महीसमुत्था ।

तुष्ट्यर्थलाभाभ्युदयान् करोति
 धर्मस्य चाहन्वहनि प्रवृत्तिम् ॥ ६० ॥
 स्निग्धा सिताच्छरिता नयनाभिरामा
 सौभाग्यमार्दवसुखाभ्युदयान् करोति ।
 सर्वार्थसिद्धिजननी जननीव चाप्या
 छाया फलं तनुष्टतां शुभमादधाति ॥ ६१ ॥
 चण्डाधृष्या पद्महेमाम्निवर्णा
 युक्ता तेजोविक्रमैः सप्रतापैः ।
 आग्नेयीति प्राणिनां स्याज्जयाय
 क्षिप्रं सिद्धिं वाञ्छितार्थस्य धत्ते ॥ ६२ ॥
 मलिनपरुषकृष्णा पापगन्धानिलोत्था
 जनयति वधबन्धव्याधनर्थार्थनाशान् ।
 स्फटिकसदृशरूपा भाग्ययुक्तात्युदारा
 निधिरिव गगनोत्था श्रेयसां स्वच्छवर्णा ॥ ६३ ॥
 छायाः क्रमेण कुजलाग्न्यनिलाम्बरोत्थाः
 केचिद्ददन्ति दश ताश्च यथानुपूर्व्या ।
 सूर्याब्जनाभपुरुहूतयमोडुपानां
 तुल्यास्तु लक्ष्मणफलैरिति तत्समासः ॥ ६४ ॥
 इति मृजा ॥

करिवृषरथौघभेरी-

मृदङ्गसिंहाद्विःस्वना शूपाः ।

गर्दभजर्जररुक्ष-
 स्वराश्च धनसौख्यसन्त्यक्ताः ॥ ६५ ॥
 इति स्वरः ॥

सप्त भवन्ति च सारा
 भेदो मज्जात्वगस्थिशुक्राणि ।
 रुधिरं मांसं चेति
 प्राणभृतां तत्समासफलम् ॥ ६६ ॥
 ताल्लोष्ठदन्तपाली-
 जिह्वानेचान्तपायुकरचरणैः ।
 रक्तैस्तु रक्तसारा
 बहुसुखवनिता र्थपुत्रयुताः ॥ ६७ ॥
 स्निग्धत्वक्का धनिना
 मृदुभिः सुभगा विचक्षणस्तनुभिः ।
 मज्जामेदःसाराः
 सुशरीराः पुत्रवित्तयुक्ताः ॥ ६८ ॥
 स्थूलास्थिरस्थिसारो
 बलवान् विद्यान्तगः सुरूपयश्च ।
 बहुगुरुशुक्राः सुभगा
 विद्वांसो रूपवन्तश्च ॥ ६९ ॥
 उपचितदेहो विद्वान्
 धनी सुरूपश्च मांससारे यः ।

इति सारः ॥

सङ्घात इति च सुस्निष्ट-
सन्धिता सुखभुजा ज्ञेया ॥ १०० ॥
इति संहतिः ॥

खेहः पञ्चसु लक्ष्यो
वाग्जिह्वादान्तनेत्रनखसंस्थः ।
सुतधनसौभाग्ययुताः
स्निग्धैस्तैर्निर्धना रुक्षैः ॥ १०१ ॥
इति खेहः ॥

द्युतिमान्वर्यः स्निग्धः
क्षितिपानां मध्यमः सुतार्थवताम् ।
रुक्षो धनहीनानां
शुद्धः शुभदो न सङ्घीर्यः ॥ १०२ ॥
इति वर्णः ॥

साध्यमनूकं वक्त्राद्
गोष्टपशादूर्लसिहयहृदमुखाः ।
अप्रतिहतप्रताप
जितरिपवो मानवेन्द्राय ॥ १०३ ॥
वानरमहिषवराज-
तुल्यवदनाः सुतार्थसुखभाजः ।

गर्दभकरभप्रतिमै-
 मुंखैः शरीरैश्च निःस्वसुखाः ॥ १०४ ॥
 इत्यनूकम् ॥

अष्टशतं षष्ठवतिः
 परिमाणं चतुरशीतिरिति पुंसाम् ।
 उत्तमसमहीनाना-
 मङ्गुलसङ्घास्वमानिन ॥ १०५ ॥
 इत्युन्मानम् ॥

भारार्धतनुः सुखभाक्
 तुलितो ऽतो दुःखभागभवत्यूनः ।
 भारो ऽतोवाढ्याना-
 मध्यर्धः सर्वधरणीशः ॥ १०६ ॥
 विंशतिवर्षा नारी
 पुरुषः खलु पञ्चविंशतिभिरब्दैः ।
 अर्हति मानोन्मानं
 जीवितभागे चतुर्थे वा ॥ १०७ ॥
 इति मानम् ॥

भूजलशिस्थनिलाम्बर-
 सुरनररक्षःपिशाचकतिरश्चाम् ।

सत्त्वेन भवति पुरुषो
 खल्लक्षणमेतद्भवत्त्वेषाम् ॥ १०८ ॥
 महीस्वभावः शुभमुष्यगन्धः
 सम्भोगवान् सुश्रवसः स्थिरश्च ।
 तोयस्वभावो बहुतोयपायी
 प्रियाभिलाषी रसभोजनश्च ॥ १०९ ॥
 अग्निप्रकृत्या चर्मणो इतितीक्ष्ण-
 शब्दः क्षुधाक्षुर्बहुभोजनश्च ।
 वायोः स्वभावेन चलः कृशश्च
 क्षिप्रं च कोपस्य वशं प्रयाति ॥ ११० ॥
 खप्रकृतिर्निपुणो विवृतास्यः
 शब्दगतेः कुशलः सुषिराङ्गः ।
 त्यागयुतो पुरुषो मृदुकोपः
 स्नेहरतश्च भवेत्सुरसत्त्वः ॥ १११ ॥
 मर्त्यसत्त्वसंयुतो गीतभूषणप्रियः ।
 संविभागशीलवान्नित्यमेव मानवः ॥ ११२ ॥
 तीक्ष्णप्रकोपः खलचेष्टितश्च
 पापश्च सत्त्वेन निशाचराणाम् ।
 पिशाचसत्त्वश्चपक्षो मलाक्तो
 बहुप्रलापी च समुख्खणाङ्गः ॥ ११३ ॥
 भीरुः क्षुधाक्षुर्बहुभुक् च यः स्या-
 ज्ञेयः स सत्त्वेन नरस्तिरश्चाम् ।

एवं नराणां प्रकृतिः प्रदिष्टा
 यत्प्रक्षणाः प्रवदन्ति सत्त्वम् ॥ ११४ ॥
 इति प्रकृतिः ॥

शार्दूलहंससमद्विपगोपतीनां
 तुल्या भवन्ति गतिभिः शिखिनां च भूपाः ।
 येषां च शब्दरहितं स्तिमितं च यातं
 तेऽपीश्वरा द्रुतपरिस्रुतगा दरिद्राः ॥ ११५ ॥
 इति गतिः ॥

श्रान्तस्य यानमशनं च बुभुक्षितस्य
 पानं तृषापारिगतस्य भयेषु रक्षा ।
 एतानि यस्य पुरुषस्य भवन्ति काले
 धन्यं वदन्ति खलु तं नरलक्षणाः ॥ ११६ ॥
 पुरुषलक्षणमुक्तमिदं मया
 मुनिमतान्यवलोक्य समाप्ततः ।
 इदमधीत्य नरो नृपसम्पतो
 भवति सर्वजनस्य च वल्लभः ॥ ११७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृष्टत्संहितायां पुरुष-
 लक्षणं नामाष्टाषष्टितमोऽध्यायः ॥ ० ॥

ताराग्रहैर्बलयुतैः
 स्वश्लेषस्वोच्चगैश्चतुष्टयगैः ।
 पञ्च पुरुषाः प्रशस्ता
 जायन्ते तानहं वक्ष्ये ॥ १ ॥
 जीवेन भवति हंसः
 सौरेण शशः कुजेन रुचकश्च ।
 भद्रोऽधुन बलिना
 मासव्यो दैत्यपूज्येन ॥ २ ॥
 सत्त्वमहीनं सूर्या-
 च्छारोरं मानसं च चन्द्रबलात् ।
 यद्राशिभेदयुक्ता-
 वेतौ तल्लक्षणः स पुमान् ॥ ३ ॥
 तद्वातुमहाभूत-
 प्रकृतिद्युतिवर्षसत्त्वरूपयाचैः ।
 अवलरवीन्दुयुतैस्तैः
 सङ्कीर्णाः सप्तशतैः पुरुषाः ॥ ४ ॥
 भौमात्सत्त्वं गुह्यता
 बुधात्सुरेभ्योऽक्षरः सितात्क्षेत्रः ।
 वर्णः सौरादीनां
 गुणदोषैः साध्यसाधुत्वम् ॥ ५ ॥
 सङ्कीर्णाः स्युर्न ऋषा
 दशासु तेषां भवन्ति सुखभाजः ।

रिपुगृहणीचोच्च्युत-
सत्यापनिरीक्षणैर्भेदः ॥ ६ ॥

षण्वतिरङ्गुलानां
व्यायामो दीर्घता च हंसस्य ।

शशरुचकभद्रमालव्य-
सञ्ज्ञितास्यङ्गुलविष्टया ॥ ७ ॥

यः सात्त्विकस्तस्य दया स्थिरत्वं
सत्त्वार्जवं ब्राह्मणदेवभक्तिः ।

रजोऽधिकः काव्यकलाक्रतुस्त्री-
संसक्तचित्तः पुरुषो ऽतिशूरः ॥ ८ ॥

तमोऽधिको वञ्चयिता परेषां
मूर्खो ऽलसः क्रोधपरो ऽतिनिद्रः ।

मिश्रैर्गुणैः सत्त्वरजस्तमोभि-
र्मिश्रास्तु ते सप्त सह प्रभेदैः ॥ ९ ॥

मालव्यो नागनासासमभुजयुगलो जानुसम्प्राप्तहस्तो
मांसैः पूर्णाङ्गसन्धिः समरुचिरतनुर्मध्यभागे कृशश्च ।
पञ्चाष्टौ चोर्ध्वमास्यं श्रुतिविवरमपि व्यङ्गुलोर्ध्वं च तिर्यग्
दीप्ताक्षं सत्कपोलं समसितदशनं नांतिमांसाधरोष्ठम् ॥

मालवान् सभरुकच्छसुराङ्गान् ॥ १० ॥

लाटसिन्धुविषयप्रवृत्तीश्च ।

विक्रमार्जितधनो ऽवति राजा

पारियाचनिलयः द्रुतबुद्धिः ॥ ११ ॥

सप्ततिवर्षा मालव्यो ऽयं
 त्यक्ष्यति सम्यक् प्राणांस्तोर्थे ।
 लक्षणमेतत्सम्यक् प्रोक्तं
 शेषनराणां चातो वक्ष्ये ॥ १२ ॥
 उपचितसमष्टतलम्बबाहु-
 र्भुजयुगलप्रमितः समुच्छ्रयो ऽस्य ।
 मृदुतनुघनरोमनङ्गण्डो
 भवति नरः खलु लक्षणेन भद्रः ॥ १३ ॥
 त्वक्शुक्रसारः पृथुपीनवक्षाः
 सत्त्वाधिको व्याघ्रमुखः स्थिरश्च ।
 क्षमान्वितो धर्मपरः कृतज्ञो
 गजेन्द्रगामी बहुशास्त्रवेत्ता ॥ १४ ॥
 प्राज्ञो वपुष्मान् सुखलाटशङ्खः
 कलास्वभिज्ञो धृतिमान् सुकुक्षिः ।
 सरोजगर्भद्युतिपाणिपादो
 योगी सुनासः समसंहतधूः ॥ १५ ॥
 नवाम्बुसिक्तावनिषवकुङ्कुम-
 द्विपेन्द्रदानामुरुतुल्यगन्धता ।
 शिरोरुहायैकजङ्घण्यकुञ्चिता-
 स्तुरङ्गनागोपमगूढमुञ्चता ॥ १६ ॥
 हलमुशखगदासिशङ्खचक्र-
 द्विपमकराञ्जरवाङ्गिताङ्घ्रिहस्तः ।

विभवमपि जनो ऽस्य बोभुजीति
क्षमति हि न स्वजनं स्वतन्त्रबुद्धिः ॥ १७ ॥

अङ्गुलानि नवतिश्च षडूना-
न्युच्छयेण तुलयापि हि भारः ।
मध्यदेशन्टपतिर्यदि पुष्टा-
ख्यादयो ऽस्य सकलावनिनाथः ॥ १८ ॥

भुक्त्वा सम्यग्वसुधां
शौर्येणोपार्जितामशीत्यब्दः ।
तीर्थे प्राणांस्त्यक्त्वा
भद्रो देवालयं याति ॥ १९ ॥

ईषदन्तुरकस्तनुद्विजनखः कोशेक्षणः शीघ्रगो
विद्याधातुवणिक्क्रियासु निरतः सम्पूर्णगण्डः शठः ।
सेनानीः प्रियमैथुनः परजनस्त्रीसक्ताचित्तश्चलः
शूरो मातृहितो वनाचलनदीदुर्गेषु सक्तः शशः ॥ २० ॥

दीर्घो ऽङ्गुलानां शतमष्टहीनं
साशङ्कचेष्टः पररन्ध्रविद्ध ।
सारो ऽस्य मज्जा निवृत्तप्रचारः
शशो शयं नातिगुरुः प्रदिष्टः ॥ २१ ॥

मध्ये कृशः खेटकसङ्गवीणा-
पर्यङ्कमालामुरजानुरूपाः ।
शूलोपमाश्वेर्धर्मताश्च रेखाः
शशस्य पादोपगताः करे वा ॥ २२ ॥

प्रात्यन्तिको माण्डलिको ऽथवायं
स्फिक्स्नावश्रुलाभिभवार्तमूर्तिः ।
एवं शशः सप्ततिहायनो ऽयं
वैवस्वतस्यालयमभ्युपैति ॥ २३ ॥

रक्तं पीनकपोलमुन्नतनसं वक्त्रं सुवर्णोपमं
वृत्तं चास्य शिरो ऽश्लिणी मधुनिभे सर्वे च रक्ता नखाः ।
सगदामाङ्कुशशङ्खमत्स्ययुगलकत्वङ्गकुम्भाम्बुजै-
श्चिह्नैर्हंसकलस्वनः सुचरयो हंसः प्रसन्नेन्द्रियः ॥ २४ ॥

रतिरम्भसि शुक्रसारता
द्विगुणा चाष्टशतैः पक्षैर्मितिः ।
परिमाणमथास्य षड्युता
नवतिः सम्परिकीर्तिता बुधैः ॥ २५ ॥
भुनक्ति हंसः खसश्रुरसेनान्
गान्धारगङ्गायमुनान्तरालम् ।
शतं दशेनं शरदां नृपत्वं
कृत्वा वनान्ते समुपैति वृत्युम् ॥ २६ ॥

सुधूकेशो रक्तश्यामः कम्बुग्रीवो व्यादीर्घास्यः ।
शूरः क्रूरः श्रेष्ठो मन्त्री चौरस्वामी व्यायामी च ॥ २७ ॥
यन्माचमास्यं रुचकस्य दीर्घं
मध्यप्रदेशे चतुरश्रता सा ।
तनुच्छविः शोषितमांससारो
हन्ता द्विषां साहससिद्धकार्यः ॥ २८ ॥

खट्वाङ्गवीणाद्युषचापवज्र-
 शक्तीन्दुश्रुलाङ्कितपाणिपादः ।
 भक्तो गुरुब्राह्मणदेवतानां
 शताङ्गुलः स्यात्तुलया सहस्रम् ॥ २९ ॥
 मन्त्राभिचारकुशलः दृशजानुजङ्घो
 विन्ध्यं ससह्यगिरिमुज्जयनीं च भुक्त्वा ।
 सम्प्राप्य सप्ततिसमा रुचको नरेन्द्रः
 शस्त्रेण मृत्युमुपयात्यथवानलेन ॥ ३० ॥
 पञ्चापरे वामनको जघन्यः
 कुञ्जो ऽपरो मण्डलको ऽथ सामी ।
 पूर्वाक्तभूपानुचरा भवन्ति
 सङ्कोर्णसञ्ज्ञाः शृणु लक्ष्णैस्तान् ॥ ३१ ॥
 सम्पूर्णाङ्गो वामनो भग्नपृष्ठः
 किञ्चिच्चौरुर्मध्यकक्षान्तरेषु ।
 ख्यातो राज्ञो ह्येष भद्रानुजीवी
 स्फोतो दाता वासुदेवस्य भक्तः ॥ ३२ ॥
 मालव्यसेवी तु जघन्यनामा
 खण्डेन्दुतुल्यश्रवणः सुसन्धिः ।
 शुक्रेण सारः पिशुनः कविश्च
 रूक्षच्छविः स्थूलकराङ्गुलीकः ॥ ३३ ॥
 क्रूरो धनी स्थूलमतिः प्रतीत-
 स्ताम्रच्छविः स्वात्परिहासशीलः ।

उरोऽह्निहस्तेघसिशक्तिपाश-
 परश्वधाङ्गश्च जघन्यनामा ॥ ३४ ॥
 कुब्जो नाम्ना यः स शुद्धो ह्यधस्तात्
 क्षीणः किञ्चित्पूर्वकाये नतश्च ।
 हंसासेवी नास्तिको ऽर्थरूपेते
 विद्वान् शूरः सूचकः स्यात् कृतज्ञः ॥ ३५ ॥
 कलास्वभिन्नः कलहप्रियश्च
 प्रभूतधृत्यः प्रमदाजितश्च ।
 सम्पूज्य लोकं प्रजहात्यकस्मात्
 कुब्जो ऽयमुक्तः सततोद्यतश्च ॥ ३६ ॥
 मण्डलकनामधेया
 रुचकानुचरो ऽभिचारवित्कुशलः ।
 कृत्यावैतालादिषु
 कर्मसु विद्यासु चानुरतः ॥ ३७ ॥
 वृद्धाकारः खररूक्ष-
 मूर्धजः श्चुनाशने कुशलः ।
 द्विजदेवयज्ञयोग-
 प्रसक्तधीः स्त्रीजितो मतिमान् ॥ ३८ ॥
 सामीति यः सो ऽतिविरूपदेहः
 शशानुगामी खलु दुर्भगश्च ।
 दाता महारम्भसमाप्तकार्यो
 गुणैः शशस्यैव भवेत्समानः ॥ ३९ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पञ्चम-
 हापुरूपलक्षणं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ * ॥

स्त्रिगोत्रताग्रतनुताम्रनखौ कुमार्याः
 पादौ समोपचितचारुनिगूढगुल्फौ ।
 श्लिष्टाङ्गुलो कमलकान्तितलौ च यस्या-
 स्तामुद्दहेद्यदि भुवो ऽधिपतित्वमिच्छेत् ॥ १ ॥
 मत्स्याङ्गुशाक्यवक्त्रहलासिचिह्ना-
 वस्त्रेदनौ मृदुतलौ चरणौ प्रशस्तौ ।
 जङ्घे च रोमरहिते त्रिशिरे सुदृते
 जानुद्वयं सममनुष्वणसन्धिदेशम् ॥ २ ॥
 ऊरू घनौ करिकरप्रतिमावरोमा-
 वश्रत्यपचसदृशं विपुलं च गुह्यम् ।
 श्रोणीललाटमुरु कूर्मसमुन्नतं च
 गूढो मण्डिश्च विपुलां श्रियामादधाति ॥ ३ ॥
 विस्तीर्णमांसोपचितो नितम्बो
 गुरुश्च धत्ते रसनाकलापम् ।
 नाभिर्गम्भीरा विपुलाङ्गनानां
 प्रदक्षिणावर्तगता प्रशस्ता ॥ ४ ॥
 मध्यं स्त्रियास्त्रिवलिनाथमरोमशं च
 हृत्तौ घनावविषमौ कठिनावुरस्यौ ।
 रोमापवर्जितमुरो मृदु चाङ्गनानां
 श्रोवा च कम्बुनिचितार्थसुखानि धत्ते ॥ ५ ॥
 बन्धुजीवकुसुमोपमो ऽधरो
 मांसलो रुचिरबिम्बरूपधृत् ।

कुन्दकुड्मलनिभाः समा द्विजा
 योषितां पतिसुखामितार्थदाः ॥ ६ ॥
 दाक्षिण्ययुक्तमशठं परपुष्टईस-
 वस्सु प्रभाषितमदीनमनख्यसौख्यम् ।
 नासा समा समपुष्टा वृष्टिरा प्रशस्ता
 दृष्टीलनीरजदलद्युतिहारिणी च ॥ ७ ॥
 नो सङ्गते नातिपृथु न लम्बे
 शस्ते ध्रुवौ बालशशाङ्कवक्रे ।
 अर्धेन्दुसंस्थानमरोमशं च
 शस्तं ललाटं न नतं न तुङ्गम् ॥ ८ ॥
 कर्णयुग्ममपि युक्तमांसलं
 शस्यते मृदु समं समाहितम् ।
 स्निग्धनीलमृदुकुञ्चितैकजा
 मूर्धजाः सुखकराः समं शिरः ॥ ९ ॥

धृङ्गारासनवाजिकुञ्जररथश्रीदृष्टयूपेषुभि-
 र्मालाकुण्डलचामराङ्कुशयवैः शैलैर्ध्वजैस्तोरणैः ।
 मत्स्यस्वस्तिकवेदिकाव्यजनकैः शङ्खगतपञ्चाम्बुजैः
 पादे पाशितले ऽपिवा युवतयो गच्छन्ति राष्ट्रीपदम् ॥
 निगूढमखिबन्धनैः तरुणपद्मगर्भोपमौ [१०] ॥
 करौ नृपतियोषितां तनुविद्युद्युवर्वाङ्गुली ।
 न निम्नमति नोन्नतं करतलं सुरेखाञ्चितं
 करोत्यविधवां चिरं सुतसुखार्थसमीचिनीम् ॥ ११ ॥

मध्याङ्गुलिं या मणिवन्धनेत्या
 रेखा गता पाणितले ऽङ्गनायाः ।
 ऊर्ध्वस्थिता पादतले ऽथवा या
 पुंसो ऽथवा राज्यसुखाय सा स्यात् ॥ १२ ॥
 कनिष्ठिकामूलभवा गता या
 प्रदेशिनीमध्यमिकान्तरालम् ।
 करोति रेखा परमायुषः सा
 प्रमाणमूना तु तदूनमायुः ॥ १३ ॥
 अङ्गुष्ठमूले प्रसवस्य रेखाः
 पुत्रा वृहत्स्यः प्रमदास्तु तन्व्यः ।
 अच्छिन्नदीर्घा वृहदायुषां ताः
 स्वल्पायुषां छिन्नलघुप्रमाणाः ॥ १४ ॥
 इतीदमुक्तं शुभमङ्गनाना-
 मतो विपर्यस्तमनिष्टमुक्तम् ।
 विश्लेषतो ऽनिष्टफलानि यानि
 समासतस्तान्यनुकीर्तयामि ॥ १५ ॥
 कनिष्ठिका वा तदनन्तरा वा
 महीं न यस्याः स्पृशती स्त्रियाः स्यात् ।
 गताथवाङ्गुष्ठमतीत्य यस्याः
 प्रदेशिनी सा पुच्छटातिपाया ॥ १६ ॥
 उद्वहाभ्यां पित्तिकाभ्यां शिराले
 सुक्ते जह्वे शिराले चातिमृत्ति ।

वामावर्तं निम्नमल्पं च गुह्यं

कुम्भाकारं चोदरं दुःखितानाम् ॥ १७ ॥

ह्रस्वयातिनिःस्वता दीर्घया कुलक्षयः ।

ग्रीवया पृथूत्यया योषितः प्रचण्डता ॥ १८ ॥

नेत्रे यस्याः केकरे पिङ्गले वा-

सा दुःशीला श्यावलोलक्षणा च ।

कूपौ यस्या गण्डयोश्च स्मितेषु

निःसन्दिग्धं बन्धकीं तां वदन्ति ॥ १९ ॥

प्रविलम्बिनि देवरं ललाटे

श्वशुरं हन्युदरे स्फिजोः पतिं च ।

अतिरोमचयान्वितोत्तरोष्ठी

न शुभा भर्तुरतीव या च दीर्घा ॥ २० ॥

स्तनौ सरोमौ मलिनोत्बणौ च

क्लेशं दधाते विषमौ च कर्णौ ।

स्थूलाः कराला विषमाश्च दन्ताः

क्लेशाय चौर्याय च दृष्टामांसाः ॥ २१ ॥

क्रव्यादरूपैर्दृक्काककङ्क-

सरोस्तपोलूकसमानचिह्नैः ।

शुष्कैः शिरालैर्विषमैश्च हस्तै-

र्भवन्ति नार्यः सुखवितहीनाः ॥ २२ ॥

या तूत्तरोष्ठेन समुत्तरीन-

रुद्धावर्तिनी कसत्रमिया वा ।

प्रायो विरूपासु भवन्ति दोषा
 यत्रावृत्तिस्तत्र गुणा वसन्ति ॥ २३ ॥
 पादौ सगुल्फा प्रथमं प्रदिष्टौ
 जङ्घे द्वितीयं च सजानुचक्रे ।
 मेढ्रेरुमुष्कं च ततस्तृतीयं
 नाभिः कटिश्वेति चतुर्थमाहुः ॥ २४ ॥
 उदरं कथयन्ति पञ्चमं
 हृदयं षष्ठमतः स्तनान्वितम् ।
 अथ सप्तममंसजत्रुणी
 कथयन्त्यष्टममोष्ठकन्धरे ॥ २५ ॥
 नवमं नयने च समुष्णी
 सललाटं दशमं शिरस्तथा ।
 अशुभेषुभं दशाफलं
 चरणाद्येषु शुभेषु शोभनम् ॥ २६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां स्त्रील-
 क्षणं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ • ॥

वस्त्रस्य कोशेषु वसन्ति देवाः

नराश्च पाशान्दशानामधी ।

शेषास्त्रयश्चात्र निशाचरांशा-
 स्तथैव शय्यासनपादुकासु ॥ १ ॥
 लिप्ते मषीगोमयकर्दमाद्यै-
 श्लिन्ने प्रदग्धे स्फुटिते च विन्द्यात् ।
 पुष्टं नवे ऽल्पाल्पतरं च भुक्ते
 पापं शुभं वाधिकमुत्तरीये ॥ २ ॥
 रुग्राक्षसांश्रेष्ठथवापि मृत्युः
 पुञ्जन्मतेजश्च मनुष्यभागे ।
 भागे ऽमराणामथ भोगवृद्धिः
 प्रान्तेषु सर्वत्र वदन्त्यनिष्टम् ॥ ३ ॥
 कङ्कलवोलूककपोतकाक-
 क्रव्यादगोमायुखरोध्रसर्पैः ।
 छेदाकृतिर्देवतभागगापि
 पुंसां भयं मृत्युसमं करोति ॥ ४ ॥
 छत्रध्वजस्वस्तिकवर्धमान-
 श्रीवृक्षकुम्भाम्बुजतोरणाद्यैः ।
 छेदाकृतिर्नैर्ऋतभागगापि
 पुंसां विधत्ते नचिरेण लक्ष्मीम् ॥ ५ ॥
 प्रभृतवस्त्रदाश्विनी भरण्यथापहारिणी ।
 प्रदह्यते ऽग्निदैवते प्रजेश्वरे ऽर्थसिद्धयः ॥ ६ ॥
 मृगे तु मूषकाङ्गयं व्यसुत्वमेव शाङ्करे ।
 पुनर्वसौ शुभागमस्तदग्रभे धनैर्युतिः ॥ ७ ॥

भुजङ्गभे विलुप्यते मघासु मृत्तुमादिश्रेत् ।
 भगाह्वये नृपाङ्गयं धनागमाय चोत्तरा ॥ ८ ॥
 करेण कर्मसिद्धयः शुभागमस्तु चित्रया ।
 शुभं च भोज्यमानले द्विदैवते जनप्रियः ॥ ९ ॥
 सुहृद्युतिश्च मित्रभे पुरन्दरे ऽम्बरक्षयः ।
 जलस्रुतिश्च नैर्ऋते रुजा जलाधिदैवते ॥ १० ॥

मिष्टमन्नमथ विश्वदैवते
 वैष्णवे भवति नेत्ररोगता ।
 धान्यन्नब्धिमपि वासवे विदु-
 वारुणे विषकृतं महद्भयम् ॥ ११ ॥
 भद्रपदासु भयं सलिलोत्थं
 तत्परतश्च भवेत्सुतलब्धिः ।
 रत्नयुतिं कथयन्ति च पौष्णे
 यो ऽभिनवाम्बरमिच्छति भोक्तुम् ॥ १२ ॥
 विप्रमतादथ भूपतिदत्तं
 यच्च विवाहविधावभिलष्यम् ।
 तेषु गुणै रहितेष्वपि भोक्तुं
 नूतनमम्बरमिष्टफलं स्यात् ॥ १३ ॥

[भोक्तुं नवाम्बरं शस्तमृष्टे ऽपि गुणवर्जिते ।
 विवाहे राजसम्भावे ब्राह्मणानां च सम्भते ॥ १४ ॥]

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वस्त्रच्छे-
 दलक्षणं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ * ॥

देवैश्चमर्यः किल बालहेतोः
 सृष्टा हिमक्ष्माधरकन्दरेषु ।
 आपीतवर्णाश्च भवन्ति तासां
 कृष्णाश्च लाङ्गूलभवाः सिताश्च ॥ १ ॥
 स्नेहे मृदुत्वं बहुबालता च
 वैशद्यमल्पास्थिनिबन्धनत्वम् ।
 शौक्ल्यं च तेषां गुणसम्पदुक्ता
 विज्ञाल्पसुप्तानि न शोभनानि ॥ २ ॥
 अर्धहस्तप्रमितो ऽस्य दण्डो
 हस्तो ऽथवारत्निसमो ऽथवान्यः ।
 काष्ठाच्छुभात् काञ्चनरूप्यगुप्ताद्
 रत्नैर्विचित्रैश्च हिताय राज्ञाम् ॥ ३ ॥
 यज्यातपचाङ्कुशवेचचाप-
 वितानकुन्तध्वजचामराणाम् ।
 व्यापीततन्त्रीमधुकृष्णवर्णा
 वर्णक्रमेणैव हिताय दण्डाः ॥ ४ ॥
 मातृभूधनकुलक्षयावह्नी
 रोगमृत्युजननाश्च पर्वभिः ।
 ह्यादिभिर्द्विकविधैः क्रमाद्
 द्वादशाक्षविरतैः समैः फलम् ॥ ५ ॥
 याचाप्रसिद्धिर्द्विषतां विनाशो
 लाभः प्रभूतो वसुधागमश्च ।

वृद्धिः पशूनामभिवाञ्छितासि-
स्त्याद्येष्वयुग्मेषु तदीश्वराणाम् ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां चामर-
लक्षणं नाम द्वासप्ततितमोऽध्यायः ॥ * ॥

निचितं तु हंसपक्षैः
 एकवाकुमयूरसारसानां च ।
 दौक्त्रलेन नवेन तु
 समन्ततश्छादितं शुक्लम् ॥ १ ॥
 मुक्ताफलैरुपचितं
 प्रलम्बमालाविलं स्फटिकमूलम् ।
 षड्ढस्तशुद्धैर्मं
 नवपर्वनगैकदण्डं च ॥ २ ॥
 दण्डार्धविस्तृतं तत्
 समाहतं रत्नविभूषितमुदग्रम् ।
 नृपतेस्तदात्तैषं
 कल्याणपरं विजयदं च ॥ ३ ॥
 युवराजनृपतिपत्न्याः
 सेनापतिदण्डनायकानां च ।
 दण्डोऽर्धपञ्चहस्तः
 समपञ्चहस्तार्धविस्तारः ॥ ४ ॥

अन्येषामुष्णं
 प्रसादपट्टैर्विभूषितशिरस्कम् ।
 व्यालम्बिरत्नमालं
 छत्रं कार्यं च मायरम् ॥ ५ ॥
 अन्येषां च नराणां
 शीतातपवारणं तु चतुरश्रम् ।
 समवृत्तदण्डयुक्तं
 छत्रं कार्यं तु विप्राणाम् ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां छत्र-
 लक्षणं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ * ॥

जये धरिव्याः पुरमेव सारं
 पुरे गृहं सद्गानि चैकदेशः ।
 तत्रापि शय्याशयने वरा स्त्री
 रत्नोष्णस्ना राज्यसुखस्य सारः ॥ १ ॥
 रत्नानि विभूषयन्ति येषां
 भूष्यन्ते वनिता न रत्नकान्त्या ।
 चेतो वनिता हरन्त्यरत्ना
 ने रत्नानि विना कदापि सत्त्वात् ॥ २ ॥

आकारं विनिगूहतां विपुत्रकां जेतुं समुत्तिष्ठतां
 तन्त्रं चिन्तयतां कृताकृतस्तव्यापारश्यासाकुलम् ।

मन्त्रिप्रोक्तनिषेविनां क्षितिभुजामाशङ्किनां सर्वतो
दुःखाभोनिधिवर्तिनां सुखलवः कान्तासमालिङ्गनम् ॥
श्रुतं दृष्टं स्पृष्टं स्मृतमपि नृणां ह्लादजननं ॥ ३ ॥
न रत्नं स्त्रीभ्यो ऽन्यत्क्वचिदपि कृतं लोकपतिना ।
तदर्थं धर्मार्थौ सुतविषयसौस्थानि च ततो
गृहे लक्ष्म्यो मान्याः सततमबला मानविभवैः ॥ ४ ॥

ये ऽप्यङ्गनानां प्रवदन्ति दोषान्

वैराग्यमार्गेण गुणान्विहाय ।

ते दुर्जना मे मनसो वितर्कः

सद्भाववाक्यानि न तानि तेषाम् ॥ ५ ॥

प्रब्रूत सत्यं कतरो ऽङ्गनानां

दोषो ऽस्ति यो नाचरितो मनुष्यैः ।

धार्ष्ट्येन पुम्भिः प्रमदा निरस्ता

गुणाधिकास्ता मनुनाच चोक्तम् ॥ ६ ॥

सोमस्तासामदाञ्छैचं गन्धर्वाः शिक्षितां गिरम् ।

अग्निश्च सर्वभक्षित्वं तस्मान्निष्कसमाः स्त्रियः ॥ ७ ॥

ब्राह्मणाः पादतो मेध्या गावो मेध्यास्तु पृष्ठतः ।

अजाश्वा मुखतो मेध्याः स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः ॥ ८ ॥

स्त्रियः पविचमतुल्लं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित् ।

मासि मासि रजो ह्यासां दुःकृतान्त्वपरुषति ॥ ९ ॥

जामयो यानि मेधानि अपन्यतिपूजिताः ।

तानि हत्याहतानीव विनाशयन्ति ससप्ततः ॥ १० ॥

जाया वा स्याज्जनिची वा सम्भवः स्वोक्ततो नृणाम् ।
 हे कृतघ्नास्तयोर्निन्दा कुर्वतां वः कुतः सुखम् ॥ ११ ॥
 दम्पत्योर्व्युत्क्रमे दोषः समः शास्त्रे प्रतिष्ठितः ।
 नरा न तमवेक्षन्ते तेनात्र वरमङ्गनाः ॥ १२ ॥
 बहिर्लोम्ना तु घणमासान् वेष्टितः खरचर्मणा ।
 दारातिक्रमणे भिक्षां देहीत्युक्त्वा विशुध्यति ॥ १३ ॥
 न शतेनापि वर्षाणामपैति मदनाशयः ।
 तत्राशक्त्या निवर्तन्ते नरा धैर्येण योषितः ॥ १४ ॥
 अहे धार्ढ्यमसाधूनां निन्दतामनघाः स्त्रियः ।
 मुष्णतामिव चौराणां तिष्ठ चैरेति जल्पताम् ॥ १५ ॥

पुरुषश्चाटुलानि कामिनीनां

कुरुते यानि रहे न तानि पश्चात् ।

सुकृतघ्नतयाङ्गना गतासून

अवगूह्य प्रविशन्ति सप्तजिह्वम् ॥ १६ ॥

स्वीरत्नभोगो ऽस्ति नरस्य यस्य

निःस्वोऽपि स्वं प्रत्यवनीश्वरो ऽसौ ।

राज्यस्य सारो ऽशनमङ्गनाश्च

तृष्णामलोहीपनदारु शेषम् ॥ १७ ॥

कामिनीं प्रथमयौवनावितां

मन्दवस्त्रगुह्यदुपीडितस्वजाम् ।

उत्सर्गि समवस्त्रम्ब या रतिः

सा न धातृभवने ऽस्ति जे मतिः ॥ १८ ॥

तच्च देवमुजिसिंहधारणी
 मान्यमानपितृसेवसेवनात्
 व्रतं पातुभवने ऽस्ति किं सुखं
 वद्रहः समप्रलम्ब्य नःस्त्रियम् ॥ १९ ॥
 आब्रह्मकीटान्मिदं निबद्धं
 पुंस्त्रीप्रयोगेण जगत्समस्तम् ।
 व्रीडाच्च का यच्च चतुर्मुखत्व-
 मीशो ऽपि बोभाङ्गमितो युवत्याः ॥ २० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामन्तः-
 पुरचिन्तायां स्त्रीप्रशंसा नाम चतुःसप्ततितमो ऽध्या-
 यः ॥ ० ॥

जात्यं मनोभवसुखं सुभगस्य सर्वम्
 आभासमाचमितरस्य मनोवियोगात् ।
 चित्तेन भावयति दूरगतापि यं स्त्री
 गर्भं विभर्ति सदृशं पुरुषस्य तस्य ॥ १ ॥
 भङ्क्ता क्वाण्डं पादपस्योत्तमुर्व्या
 बीजं वास्यां मान्यतामेति यद्वत् ।
 एवं ह्यात्मा आयते स्त्रीषु भूयः
 कश्चित्स्मिन् श्लेषयोगाद्विशेषः ॥ २ ॥
 आत्मा सहेति मनसा मन इन्द्रियेण
 स्वार्थेन चेन्द्रियमिति क्रम एव शीघ्रः ।

योगो ऽयमेव ज्ञानसः विमममममस्ति
 यस्मिन्ननोः कसति तत्र गतोः ऽयमात्मा ॥ ३ ॥
 आत्मायसात्मनि सतोः हृदये ऽस्मिन्नस्यो
 प्राप्नोति ऽयमेव ज्ञानसः सतताभिव्येगात् ।
 यो यं विचिन्तयति चाति स तन्ममत्वं
 यस्मादतः सुभगमेव गता युवत्यः ॥ ४ ॥
 दाक्षिण्यमेकं सुभगत्वहेतु-
 विद्वेषणं तद्विपरीतचेष्टा ।
 मन्त्रौषधाद्यैः कुहकप्रयोगै-
 र्भवन्ति दोषा बहवो न शर्म ॥ ५ ॥
 वाल्मभ्यमायाति विहाय मानं
 दौर्भाग्यमापादयते ऽभिमानः ।
 कृच्छ्रेण संसाधयते ऽभिमानो
 कार्याण्ययत्नेन वदन्प्रियाणि ॥ ६ ॥
 तेजा न तद्यत्प्रियसाहसत्वं
 वाक्यं न चानिष्टमसत्प्रणोतम् ।
 कार्यस्य गत्वान्तमनुद्धता ये
 तेजस्विनस्ते न विकल्पना ये ॥ ७ ॥
 यः सार्वजन्यं सुभगत्वमिच्छेद्
 गुणान् स सर्वस्य वदेत्यरोह्ये ।
 प्राप्नोति दोषानसतो ऽप्यनेकान्
 परस्य यो दोषकथां करोति ॥ ८ ॥

सर्वापकारानुगतस्य लोकः
 सर्वापकारानुगतो नरस्य ।
 कृत्वोपकारं द्विषतां विपत्सु
 या कीर्तिरख्येन न सा शुभेन ॥ ९ ॥
 तृणैरिवान्निः सुतरां विवृद्धि-
 माच्छाद्यमानो ऽपि गुणो ऽभ्युपैति ।
 स केवलं दुर्जनभावमेति
 हन्तुं गुणान् वाञ्छति यः परस्य ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामन्तः-
 पुरचिन्तायां सौभाग्यकरणं नाम पञ्चसप्ततितमो
 ऽध्यायः ॥ * ॥

रक्ते ऽधिके स्त्री पुरुषस्तु शुभे
 नपुंसकं शोणितशुक्रसाम्ये ।
 यस्मादतः शुक्रविद्विदानि
 निषेवितव्यानि रसायनानि ॥ १ ॥
 हर्म्यपृष्ठमुद्गनावरश्मयः
 सौत्यसं मधु मदालसा ग्रिधा ।
 वल्लकी स्मरकवा रश्मः स्रजो
 वर्ग एष मदनस्य वागुरा ॥ २ ॥
 माध्वीकधातुमधुवारद्वेषोऽपुत्र-
 पथ्याशिलाजतुविषण्णतानि यो ऽद्यात् ।

सैकानि विंशतिरहानि जराग्वितोऽपि
 सो ऽशीतिकोऽपि रमयत्यबलां युवेव ॥ ३ ॥
 क्षीरं शृतं यः कपिकच्छुमूलैः
 पिबेत्क्षयं स्त्रीषु न सो ऽभ्युपैति ।
 माषान् पयःसर्पिषि वा विपक्वान्
 षड्ग्रासमाचांश्च पयोऽनुपानान् ॥ ४ ॥
 विदारिकायाः स्वरसेन चूर्णं
 मुहुर्मुहुर्भावितशोषितं च ।
 शृतेन दुग्धेन सशर्करेण
 पिबेत्स यस्य प्रमदाः प्रभूताः ॥ ५ ॥
 धात्रीफलानां स्वरसेन चूर्णं
 सुभावितं क्षौद्रसिताज्ययुक्तम् ।
 लोड्ढानु यीत्वा च पयो ऽग्निशक्त्या
 कामं निकामं पुरुषो निषेवेत् ॥ ६ ॥
 क्षीरेण वस्तायड्युजा शृतेन
 सम्भाव्य कामी बहुशक्तिलान् यः ।
 सुशोषितानसि पिबेत्पयश्च
 तस्याग्रतो किं चटकः करोति ॥ ७ ॥
 माषहृत्पसहितेन सर्पिषा
 षष्टिकौदनमदन्ति ये नराः ।
 क्षीरमय्यनु पिबन्ति तासु ते
 शर्वरीषु मद्ने न शेरते ॥ ८ ॥

तिलाश्वगन्धाकपिकण्डुमूली
 विदारिकाषष्टिकपिष्टयोगः ।
 आग्नेन पिष्टः पयसा घृतेन
 पक्त्वा भवेच्चक्षुस्त्रिकामिष्ट्या ॥ ९ ॥
 क्षीरेण वा गोक्षुरमेोपयोमं
 विदारिकाकन्दकमखण्डं वा ।
 कुर्वन्न सीदेद्यदि जीर्यते ऽस्य
 मन्दाग्निता वेदिदसन्न चूर्णम् ॥ १० ॥
 साजमोदखवशा हरीतकी
 शृङ्गवेरसहिता च पिप्पली ।
 मद्यतक्रतरलोष्यापरिभि-
 चूर्णपानमुदराग्निदीपनम् ॥ ११ ॥
 अत्यम्बतिक्लृप्तवयानि कटूनि चाग्नि
 हारशाकबहुलानि च भोजनानि ।
 दृक्छुक्कवोर्यरहितः स करोत्यनेकान्
 व्याजान् जरन्निच युषाध्यवसासवाप्य ॥ १२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामन्तःपु-
 रचिन्तायां कान्दर्पिकं नाम षट्सप्ततितमो ऽध्यायः ॥ * ॥

स्रग्गन्धधूपान्नरसूषयाद्यं
 न शोभते शुक्लशिरोरुहस्य ।

यस्मादतो मूर्धनरामसेना
 कुर्याद्यथैवाग्निमूर्धनानाम् ॥ १ ॥
 लोहे ऋते तस्युत्थान केद्रवाणां
 शुक्ले पक्षासोहृत्पुत्रं साजाम् ।
 पिष्टान् हृष्टं मूर्ध्नि बुक्ताम्बुके
 दद्यात्तिष्ठेद्येद्यित्पार्श्वपथैः ॥ २ ॥
 याते द्वितीये प्रहरे विज्ञाय
 दद्याच्छिरस्यास्यकप्रलेपम् ।
 सम्हाद्य पथैः प्रहरद्वयेन
 प्रक्षालितं कार्श्यमुपैति शीर्षम् ॥ ३ ॥
 पश्चाच्छिरःस्नानमुगन्धतैले-
 लोहान्धगन्धं शिरसोऽप्रकीर्य ।
 हृद्यैश्च गन्धैर्विविधैश्च धूपै-
 रनाःपुरे राज्यमुत्तं तिष्ठेवेत् ॥ ४ ॥
 त्वङ्कुष्ठरेणुनसिका-
 स्पृक्षारसतम्रपाण्डुवैस्तुल्यैः ।
 केसरपत्रविमिश्रै-
 नरपतियोग्यं शिरःस्नानम् ॥ ५ ॥
 मञ्जिष्ठया व्याघ्रनखेन युक्तया
 त्वचा सकुष्ठेन रसेन चूर्याः ।
 तैलेन युक्तो ऽर्कमशूखतप्तः
 करोति तच्चर्मकगन्धि तैलम् ॥ ६ ॥

तुल्यैः पत्रतुरुष्कवालातगरैर्बन्धः स्मरोद्दीपनः
 सव्यामो बकुलो ऽयमेव कटुकाहिरुप्रधूपान्वितः ।
 कुष्ठेनात्यलगन्धिकः समलयः पूर्वा भवेच्चम्पको
 जातीत्वक्सहितो ऽतिमुक्तक इति श्रेयः सकुस्तुम्बुरः ॥७॥

शतपुष्पाकुन्दरुक्मौ
 पादेनार्धेन नखतुरुष्कौ च ।
 मलयप्रियङ्गुभागौ
 गन्धो धूप्यो गुडनखेन ॥ ८ ॥
 गुग्गुलुवालकलाक्षा-
 मुस्तानखशर्कराः क्रमाद्दूपः ।
 अन्यो मांसीवालक-
 तुरुष्कनखचन्दनैः पिरुडः ॥ ९ ॥

हरीतकीशङ्खधनद्रवाम्बुभि-
 र्गुडोत्पत्तैः शैलकमुस्तकान्वितैः ।
 नवान्तपादादिविवर्धितैः क्रमाद्
 भवन्ति धूपा बहुवोः सजोहराः ॥ १० ॥
 भागैश्चतुर्भिः सितशैलमुस्ताः
 श्रीसर्षभगौ नखगुग्गुलू च ।
 कर्पूरबोधो मधुपिण्डितो ऽयं
 कोपच्छदो नाम नरेन्द्रधूपः ॥ ११ ॥
 त्वगुशीरपत्रभागैः
 सखीनार्धेन संयुतधूपः ।

पटवासः प्रवरोऽयं
 मृगकर्पूरप्रबोधेन ॥ १२ ॥
 घनवालकशैलेयक-
 कर्पूरोशीरनागपुष्पानि ।
 व्याघ्रनखसृक्कागुरु-
 दमनकनखतगरधान्यानि ॥ १३ ॥
 कर्पूरचोरमलयैः
 स्वेच्छापरिवर्तितैश्चतुर्भिरतः ।
 एकद्विचित्रतुर्भि-
 र्भागैर्मन्त्रार्णवो भवति ॥ १४ ॥
 अत्युत्खण्डनत्वाद्
 एकाग्रो नित्यमेव यान्धानाम् ।
 कर्पूरस्य तदूना
 नैतैः द्विष्यादिभिर्देवैः ॥ १५ ॥
 श्रीसर्जगुडनखैस्ते
 धूपवितन्वाः क्रमात्क पिण्डस्यैः ।
 बोधः कस्तूरिकया
 देवः कर्पूरसंयुतया ॥ १६ ॥
 अत्र सप्तसप्ततुष्टय-
 मन्थानि च सप्तसप्तसप्तसप्त ।
 सप्तं शतानि सप्त
 विंशतियुक्तानि कन्धानाम् ॥ १७ ॥

एकैकमेकभागं

द्विचिचतुर्भागिकैर्युतं द्रव्यैः ।

षड्गन्धकरं तदद्

द्विचिचतुर्भागिकं कुरुते ॥ १८ ॥

द्रव्यचतुष्टययोगाद्

गन्धचतुर्विंशतिर्यथैकस्य ।

एवं शेषाणामपि

षस्रवतिः सर्वमिषडो ऽच ॥ १९ ॥

षोडशके द्रव्यगणे

चतुर्विकल्पेन भिद्यमानानाम् ।

अष्टादश जायन्ते

शतानि सहितानि विंशत्या ॥ २० ॥

षस्रवतिभेदभिन्न-

श्चतुर्विकल्पो गणो यतस्तस्मात् ।

षस्रवतिगुणः कार्यः

सा सङ्ख्या भवति गन्धानाम् ॥ २१ ॥

पूर्वेण पूर्वेण गतेन युक्तं

स्थानं विनान्धं प्रवदन्ति सङ्ख्याम् ।

दृष्ट्वाविकल्पैः क्रमशो ऽभिधीय

नीते निवृत्तिः पुनरन्वनीतिः ॥ २२ ॥

द्विचिन्द्रियाष्टभागै-

रगुरुः पञ्च तुरुष्वाशेषेषु ।

विषयाष्टपक्षदहनाः ॥ २३ ॥
 प्रियङ्गुमुस्तारसाः केशः ॥ २३ ॥
 स्पृक्षात्वक्तगराखा
 मांस्याश्च क्षतैकसप्तषड्भागाः ।
 सप्तर्तुवेदचन्द्रै-
 र्मलयनखश्रीककुन्दरुकाः ॥ २४ ॥
 षोडशके कच्छपुटे
 यथा तथा मिश्रितैश्चतुर्द्रव्यैः ।
 ये ऽचाष्टादश भागा-
 स्ते ऽस्मिन् गन्धादयो योगाः ॥ २५ ॥
 नखतगरतुरुष्कयुता
 जातीकर्पूरमृगक्षतोदोधाः ।
 गुडनखधूप्या गन्धाः
 कर्तव्याः सर्वतोभद्राः ॥ २६ ॥
 जातीफलमृगकर्पूर-
 बोधितैः ससहकारमधुसिक्तैः ।
 बहवो ऽत्र परिजाता-
 श्चतुर्भिरिच्छापरिगृहीतैः ॥ २७ ॥
 सर्जरसश्रीवासक-
 ससम्बिता ये ऽत्र धूपयोगास्तैः ।
 श्रीसर्जरसविद्युक्तैः
 ज्ञानानि सवाचसन्निभा ॥ २८ ॥

रोधोशीरनतागुरु-

मुस्ताप्रियङ्गुचमपथ्याः ।

नवकोष्ठात्कच्छपुटाद्

द्रव्यचितयं समुद्धृत्य ॥ २६ ॥

चन्दनतुरष्कभागा

शुक्लवर्धं पादिका तु शतमुपमा ।

काटुहिङ्गुलगुडधूप्याः

केसरगन्धाश्चतुरशीतिः ॥ २७ ॥

सप्ताहं गोमूत्रे

हरितकीचूर्यसंयुते क्षिप्त्वा ।

गन्धोदके च भूषो

विनिश्चयेदन्तकाष्ठानि ॥ २८ ॥

एलात्वक्पचाञ्जन-

मधुमरिचैर्नीरापुष्पकृष्टैश्च ।

गन्धाम्भः कर्तव्यं

कञ्चिन्नासं सिलान्यस्त्रिभू ॥ २९ ॥

जातीफलपत्रैला-

कर्पूरैः कृतयमैकशिशिभागैः ।

अवचूर्यितानि भागा-

र्मरीचिभिः शोथशीतानि च ॥ ३० ॥

वर्षाप्रसादं वदनस्य कानि

वशसमाप्तस्य सुगन्धिना च ॥

संसेवितुः श्रोत्रमुखं च वाचं ।
 कुर्वन्ति काष्ठान्बसकद्रव्यानाम् ॥ ३४ ॥
 कामं प्रदीपयन्ति रूपमभिष्वनन्ति
 सौभाग्यमावहति वक्त्रसुगन्धितां च ।
 ऊर्जं करोति कफजांश्च निहन्ति रोगां-
 स्ताम्बूलमेवमपरांश्च गुणान् करोति ॥ ३५ ॥
 युक्तेन चूर्णेन करोति रागं
 रागहृत्तयं पूगफलातिरिक्तम् ।
 चूर्णाधिकं वक्त्रविगन्धकारि
 पचाधिकं साधु करोति गन्धम् ॥ ३६ ॥
 पचाधिकं निशि हितं सफलं दिवा च
 प्रोक्तान्यथाकरणमस्य विडम्बनैव ।
 कक्कोलपूगलवलीफलापारिजातै-
 रामोदितं मदमुदासुदितं करोति ॥ ३७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृता दृष्टसंहितायामन्तःपु-
 रचिन्तायां गन्धयुक्तिर्नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ • ॥

शस्त्रेण वेद्योविनिगूहितेन
 विदूरान् स्त्रा मन्दिरी कषाण ।
 विषप्रदिग्धेन च म्पुत्रेय
 देवी त्रिदश्या मित कः श्रीरामम् ॥ १ ॥

एवं विरक्ताः जययन्ति दोषान् ।
 प्रायश्चित्तो ज्यैरनुकीर्तितः स्मृतः ।
 रक्ताः विरक्ताः पुत्रपौत्रयोः शीतः
 परोक्षितन्याः प्रसदाः प्रसदाः ॥ २ ॥
 ज्ञेहं मनोभयकृतं कथयन्ति भावाः
 नाभीभुजस्तनविभुजस्तदर्शनानि ।
 वस्त्राभिसंयमनकेशविशेषाद्यनि
 भूषेपकम्बितकटाक्षमिरीक्ष्याति ॥ ३ ॥

उच्चैः शीवनमुत्कटप्रवृत्तितं शय्यासनेोत्सर्ग्यं
 गात्रास्फोटनजृम्भनानि सुखभद्रव्याज्यसम्प्रार्थना ।
 बालालिङ्गनचुम्बनान्यभिमुखे सख्याः समस्योक्तनं
 हृत्पातश्च पराङ्मुखे गुणकथा कर्यास्य कथद्वयनम् ॥ ४ ॥

इमां च विन्द्यादनुरक्तचेष्टां
 प्रियाणि वक्ति स्वधनं ददति ।
 विलोक्य संहृष्यति वीतरेषा
 प्रमार्ष्टि दोषान् गुणकीर्तनेन ॥ ५ ॥
 तन्मित्रपूजा तदरिद्विषत्वं
 कृतस्मृतिः प्रेषितदौर्मनस्यम् ।
 स्तनोष्ठदानान्युपगुह्यन् च
 खेदो ऽथ चुम्बाप्रससाभियोगः ॥ ६ ॥
 विरक्तचेष्टा भङ्गुटीमुखत्वं
 पराङ्मुखत्वं कृतस्मृतिश्च ।

असन्धो दुर्वरितोपला
 तद्विद्वेषो यश्च यथात्म ॥ ७ ॥
 सृष्ट्वायवाशिवं पुनिति ना
 करोति नर्षं न रक्षां चान्तम् ॥
 चुम्बादिगजे वदनं प्रमादि
 पश्चात्समुत्तिष्ठति पूर्वसुता ॥ ८ ॥
 भिक्षुलिका प्रव्रजिता
 दासी घाची कुमारिका रजिका ।
 मालाकारी दुष्टाङ्गना
 सखी नापिती दूत्यः ॥ ९ ॥

कुलजनविनाशहेतुर्दूत्यो यस्मादतः प्रथमेन ।
 ताभ्यः स्त्रियो ऽभिरक्ष्या वंशयन्नामानष्टद्वयम् ॥ १० ॥

रात्रीविहारजागर-
 रोगव्यपदेशपरष्टहेक्षणिकाः ।
 व्यसनेनात्सवाद्य सङ्केत-
 हेतवस्तेषु रक्ष्याश्च ॥ ११ ॥

आदौ नेच्छति नेज्जति स्मरकथां व्रीडाविमिश्रालसा
 मध्ये ह्योपरिवर्जिताभ्युपरमे सज्जाविमन्धानमा ।
 भावैर्नैकविधैः करोत्यभिमयं भूयश्च या साहरा
 बुद्ध्या पुम्पृष्टति च यानुचरति स्तनितरैश्चेष्टितैः ॥ १२ ॥
 स्त्रीणां गुणा वैषम्यरूपवेष-
 दाक्षिण्यविज्ञानचिन्तासपूर्वाः ॥

स्त्रीरत्नसञ्ज्ञा च नुष्ठाञ्चिताम् ॥
 स्त्रीव्याधयो ज्ञातुं सुरस्य पुंसः ॥ १३ ॥
 न ग्राभ्यवर्षेर्मलदिग्धमाया
 निन्द्याङ्गसम्बन्धिकर्षा च नुर्थात् ।
 न चान्यकार्यस्मरत् रङ्गः स्वा
 मनो हि मूलं हरदम्भमूर्तेः ॥ १४ ॥
 श्वासं मनुष्येण समं त्यजन्ती
 बाह्वधामस्तनदानदक्षा ।
 सुगन्धकेशा सुसमीपरागा
 सुप्ते ऽनुसुप्ता प्रथमं विषुद्धा ॥ १५ ॥
 दुष्टस्वभावाः परिवर्जनीया
 विमर्दकालेषु च न क्षमा याः ।
 यासामसृग्वासितनीलपीत-
 माताम्रवर्षं च न ताः प्रशस्ताः ॥ १६ ॥
 या स्वप्नशीला बहुरक्तपित्ता
 प्रवाहिनी वातकफातिरिक्ता ।
 महाश्रना खेद्युताऽऽहुटा
 याऽऽस्ववेधी पक्षिताञ्चिता च ॥ १७ ॥
 मांसानि यस्याश्च चक्षुःशिराया
 महेदरा विविधमिमी च वा श्यात् ।
 स्त्रीलक्षणे वा कश्चिताश्च प्राणा-
 स्तामिने नुर्थात्तश्च कामधर्मम् ॥ १८ ॥

शशभोचितसप्तमं

लासाहससिद्धिवाच्यवना चम् ।

प्रक्षालितं विरचयति

यथास्तत्तद्वेद्युत्तमं ॥ १६ ॥

यच्छब्दवेदनापरितं

व्यहससिद्धिवाच्ये रत्नम् ।

तत् पुरुषसम्प्रयोगा-

द्विचारं गर्भलां वाति ॥ १७ ॥

न दिनपथं निवेद्येत्

स्नानं मास्त्रानुशेषनं च स्त्री ।

स्नायाच्चतुर्थदिवसे

शास्त्रोक्तेनोपदेवेन ॥ १८ ॥

पुण्यस्नानौषधयो

याः कथितास्ताभिरम्बुमित्राभिः ।

स्नायात्तथाच मन्त्रः

स एव यस्तत्र निर्दिष्टः ॥ १९ ॥

युग्मासु किल मनुष्या-

निष्ठासु नार्या भवन्ति विष्णुमासु ।

दीर्घायुषः सुरूपाः

सुखिनश्च विष्णुमासु ॥ २० ॥

दक्षिणपार्श्वे पुरुषो-

धये वासी युग्मासु भवन्तीति ।

यदुदरमध्यापगतं
 नपुंसकं तन्निकोद्यथम् ॥ २४ ॥
 केन्द्रत्रिकोणेषु शुभस्थितेषु
 लग्ने शशाङ्के च शुभैः समेते ।
 पापैस्त्रिलाभारिगतेषु वायात्
 पुञ्जन्मयोगेषु च सम्प्रयोगम् ॥ २५ ॥
 न नखदशनविह्वतामि कुर्याद्
 षट्सुसमये पुरुषः स्त्रियाः कथञ्चित् ।
 षट्सुरपि दश षट् च वासराणि
 प्रथमनिशाचितयं न तत्र गम्यम् ॥ २६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ वृहत्संहितायामन्तः-
 पुरचिन्तायां पुंस्त्रीसमायोगो नामाष्टासप्ततितमो-
 ऽध्यायः ॥ • ॥

सर्वस्य सर्वकालं
 यत्सादुपयोगमिति शास्त्रमिदम् ।
 राज्ञां विशेषतो ज्ञातः
 शयनासनलक्षणं च यथैव ॥ १ ॥
 असनस्यन्दनचन्दन-
 हरिद्रसुरदाहतिन्दुकीधौसाः ।
 काश्मर्यञ्जनपद्मक-
 शाका वा विह्वला च कुर्वन्तः ॥ २ ॥

अशनिजलानिलवृष्टि-
 प्रपातिता मधुविहङ्गकतजिहवाः ।
 चैत्यश्रमशानपश्चिजो-
 र्ध्वशुष्कवस्त्रीनिवहाश्च ॥ ३ ॥
 कण्टकिना वा ये स्यु-
 र्महानदीसङ्गमोद्भवा ये च ।
 सुरभवनजाश्च न शुभा
 ये चापरयाम्यदिक्रपतिताः ॥ ४ ॥
 प्रतिषिद्धदृष्टनिर्मित-
 शयनासनसेवनात् कुलविनाशः ।
 व्याधिभयव्ययकलहा
 भवन्त्यनर्थाश्च नैकविधाः ॥ ५ ॥
 पूर्वच्छिन्नं यदि वा
 दाह भवेत्तत्परीक्ष्यमारम्भे ।
 यद्यारोहेत्तस्मिन्
 कुमारकः पुत्रप्रशुद्धं तत् ॥ ६ ॥
 सितकुसुममत्तवारण-
 दध्वाक्षतपूर्वकुम्भाभ्यानि ।
 मङ्गलान्यन्यानि च
 दृष्ट्वाग्नेः शुभं ज्ञेयम् ॥ ७ ॥
 कर्माकुलं यवाष्टक-
 मुदरसकं तुल्यैः पतित्विजाम् ॥

अङ्गुलशतं नृपाणां
 महती शय्या अयाय कृता । ८ ।
 नवतिः सैव पद्भूना
 द्वादशहीना विषट्कहीना च ।
 नृपपुत्रमन्त्रिबलपति-
 पुरोधसां स्युर्यथासक्यम् । ९ ।
 अर्धमतो ऽष्टांशानं
 विष्कम्भो विश्वकर्मणा प्रोक्तः ।
 आयामत्वंशसमः
 पादोऽग्रयः सकुक्षिशिराः । १० ।
 यः सर्वः श्रीपथ्या
 पर्यङ्को निर्मितः स धनदाता ।
 असनकृतो रोगहर-
 स्तिन्दुकसादेव विष्णवरः । ११ ।
 यः केवलशिशुपथ्या
 त्रिनिर्मितो बहुविधं कुरुक्षेत्रकां
 चन्दममयो रिपुभो-
 धर्मयज्ञोऽर्धोऽपि जितकामः । १२ ।
 यः पद्मकपर्यङ्क-
 स दीर्घमातुः शिवं कुरुं विष्णुं
 कुरुते शाखेन कृतः
 कल्याणं आकरचितम् । १३ ।

केवलचन्दनरचितं
 काञ्चनगुप्तं विचित्ररत्नयुतम् ।
 अध्यासन् पर्यङ्कं
 विबुधैरपि पूज्यते नृपतिः ॥ १४ ॥
 अन्येन समायुक्ता
 न तिन्दुकी शिंशपा च शुभफलदा ।
 न श्रीपर्णी न च
 देवदारुदृष्टो न चाप्यसनः ॥ १५ ॥
 शुभदौ तु शाकशालौ
 परस्परं संयुतौ मृगव् चैव ।
 तद्वत्पृथक् प्रशस्तौ
 सहितौ च हरिद्रवकदम्बौ ॥ १६ ॥
 सर्वः स्पन्दनरचितो
 न शुभः प्राणान् हिनस्ति चाम्बुदतः ।
 असनो ऽन्यदासहितः
 क्षिप्रं दोषान् करोति बहून् ॥ १७ ॥
 अम्बुस्पन्दनचन्दन
 दृष्ट्वासां स्वन्दनाद्युमाः पादाः ।
 फलतरुणा शयनासन-
 मिष्टकार्णिकरति सर्वेषु ॥ १८ ॥
 गजदन्तः सर्वेषां
 प्रोक्तातरुणां प्रशस्यते योगि ।

कार्योऽलङ्कारविधि-
 र्गजदन्तेन प्रशस्तेन ॥ १८ ॥
 दन्तस्य मूलपरिधिं
 द्विरायतं प्रोज्झ कल्पयेच्छेषम् ।
 अधिकमनूपचराणां
 न्यूनं गिरिचारिणां किञ्चित् ॥ २० ॥
 श्रीवत्सवर्धमान-
 च्छ्वध्वजचामरानुरूपेषु ।
 छेदे दृष्टेष्वरोग्य-
 विजयधनदृष्टिसौस्थानि ॥ २१ ॥
 प्रहरणसदृशेषु जयो
 नन्धावर्ते प्रमददेशातिः ।
 लोष्ट्रे तु लब्धपूर्वस्य
 भवति देशस्य सम्प्राप्तिः ॥ २२ ॥
 स्त्रीरूपे स्वविज्ञाशो
 धृक्कारेऽभ्युत्थिते च्युतोत्थितिः ।
 कुम्भेन निधिप्राप्ति-
 र्याचतविघ्नं च दृष्टेन ॥ २३ ॥
 दृक्कलासकपिभुजङ्गे-
 प्रसुभिस्तथापि रिपुवर्धन-
 यधोसकधाङ्ग-
 श्येनाकारिषु जननरक ॥ २४ ॥

पाशे ऽथवा कबन्धे
 नृपमृत्युर्जन्मविपत् सुते रक्ते
 कृष्णे श्यावे रूक्षे
 दुर्गन्धे त्वाशुभं भवति ॥ २५ ॥
 शुक्लः समः सुगन्धिः
 द्विगन्धश्च शुभावहे भवेच्छेदः ।
 अशुभशुभच्छेदा ये
 शयनेष्वपि ते सदा फलदाः ॥ २६ ॥
 ईषायोगे दारु
 प्रदक्षिणाग्रं प्रशस्तमाचार्यैः ।
 अपसव्यैकदिगग्रे
 भवति भयं भूतसञ्जनितम् ॥ २७ ॥
 एकेनावाक्छिरसा
 भवति हि पादेन पादकैवल्यम् ।
 दाभ्यां न जीर्यते ऽस्य
 चिचतुर्भिः क्लेशप्रशान्ताः ॥ २८ ॥
 सुषिरे ऽथवा विवर्णे
 ग्रन्थौ पादस्य शीर्षने आधिना
 पादे कुम्भो यश्च
 ग्रन्थौ तद्विषुद्वारेण ॥ २९ ॥
 कुम्भाधस्ताज्जह्य
 तत्र सतो जह्वयोः करेति भावम् ।

तस्याश्चाधारो ऽधः
 क्षयकृद्ब्यस्य तत्र कृतः ॥ ३० ॥
 खुरदेशे यो ग्रन्थिः
 खुरिणां पीडाकरः स निर्दिष्टः ।
 ईषाशीर्षण्योश्च
 त्रिभागसंस्थो भवेन्न शुभः ॥ ३१ ॥
 निष्कृतमथ कोलाक्षं
 सूकरनयनं च वत्सनाभं च ।
 कालकमन्यधुन्युक्-
 मिति कथितं छिद्रं सद्यो ॥ ३२ ॥
 घटवत्सुषिरं मध्ये
 सङ्घटमास्ये च निष्कृतं छिद्रम् ।
 निष्पावमापमा-
 नोत्तं छिद्रं च कोलाक्षम् ॥ ३३ ॥
 सूकरनयनं विषमं
 विवर्षमध्यर्षपर्वदीर्घं च ।
 वामावर्तं भिन्नं
 पर्वमितं वत्सनाभाक्षम् ॥ ३४ ॥
 कालकसञ्चं द्रष्टव्यं
 धुन्युक्मिति यन्नवेद्विनिर्भयम् ।
 दासवर्षं छिद्रं
 न तथा पापं समुद्दिष्टम् ॥ ३५ ॥

निष्कृतसञ्ज्ञे द्रव्यस्यस्तु
 कोलेक्ष्ये कुलधंसः ।
 शस्त्रभयं सूकरके
 रोगभयं वत्सनाभास्ये ॥ ३६ ॥
 कालकधुन्धुकसञ्ज्ञं
 कीटैर्विभ्रं च न शुभदं छिद्रम् ।
 सर्वं ग्रन्थिप्रचुरं
 सर्वत्र न शोभनं दाह ॥ ३७ ॥
 एकद्रुमेण धन्यं
 दृक्ष्यद्यन्निर्मितं च पञ्चतरम् ।
 त्रिभिरात्मवद्विभ्रं
 चतुर्भिर्वीर्या यन्मयाश्रमम् ॥ ३८ ॥
 पञ्चवनस्थितिरचिते
 पञ्चत्वं याति तत्र न श्ये ।
 घटसप्ताष्टतरुणां
 काष्ठैर्यदिते कुलविनायः ॥ ३९ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृता दृष्टसंहितायां श्या-
 सनलक्षणं नामैकोनाशीतितमा अध्यायः ॥ • ॥

रत्नेन शुभेन शुभं
 भवति नृपायामनि
 यस्मादतः परोक्षं
 दैवं रत्नाश्रितं तन्मन्त्रो
 द्विपहयवनितादीनां
 स्वगुणविशेषेण रत्नशब्दो ऽस्ति ।
 इह तूपलरत्नाना-
 मधिकारो वज्रपूर्वाणाम् ॥ २ ॥
 रत्नानि बलादैत्याद्
 दधीचितो ऽग्न्ये वदन्ति जातानि ।
 केचिद्भुवः स्वभावाद्
 वैचित्त्वं प्राहुरपस्त्राणाम् ॥ ३ ॥
 वज्रेन्द्रनीलमरकत-
 कर्कतनपद्मरागरुधिरास्थाः ।
 वैडूर्यपुलकविमलक-
 राजमखिस्फटिकशशिकान्ताः ॥ ४ ॥
 सौगन्धिकगोमेदक-
 शङ्खमहानीलपुष्परामास्थाः ।
 ब्रह्ममखिज्योतीरस-
 सस्यकमुक्ताप्रयासानि ॥ ५ ॥
 वेणातटे विभुदं
 शिरोवकुसुमोपमं च कौशलकम् ।

सौराष्ट्रकमातायं ॥ १० ॥
 कर्णसौम्यैर्वायं यजम् ॥ ११ ॥
 ईषतासं हिमवति ॥ १२ ॥
 मतङ्गयं वलपुत्रस्यैव ॥ १३ ॥
 आपीतं च कलिङ्गे ॥ १४ ॥
 श्यामं पौण्ड्रेषु समूतम् ॥ १५ ॥
 ऐन्द्रं षडश्रि शुक्लं ॥ १६ ॥
 याम्यं सर्पास्वरूपमसितं च ॥ १७ ॥
 कदलीकाण्डनिकाशं ॥ १८ ॥
 वैष्णवमिति सर्वसंस्थानम् ॥ १९ ॥
 वारुणमबलानुद्योपमं ॥ २० ॥
 भवेत् कर्षिकारपुण्यनिभम् ॥ २१ ॥
 शृङ्गाटकसंस्थानं ॥ २२ ॥
 व्याघ्राक्षिनिभं च दैतभुजम् ॥ २३ ॥
 वायव्यं च यवोपम- ॥ २४ ॥
 मशोककुसुमग्रभं समुद्दिष्टम् ॥ २५ ॥
 स्रोतः खनिः प्रकीर्णक- ॥ २६ ॥
 मित्याकरसम्भवस्त्रिविधः ॥ २७ ॥
 रक्तं पीतं च शुभं ॥ २८ ॥
 राजन्यानां सितं द्विजतीनाम् ।
 शैरीषं वैश्यानां ॥ २९ ॥
 शूद्राणां शस्त्रे इतिनिभम् ॥ ३० ॥

सितसर्वपादकं

तखडुचो भवेत्तखडुसैस्तु विंशत्या ।

तुलितस्य द्वे लक्षे

मूल्यं द्विगुणिते चैतत् ॥ १२ ॥

पादस्यंशार्धेन

विभक्त्यपचाश्रयोऽर्थात्तथा च ।

भागस्य पञ्चविंशः

शतिकाः सप्तदशिकाश्चेति ॥ १३ ॥

सर्वद्रव्यामेवं

लब्धमौक्तं तैरिति रश्मिपरिच्छेदम् ।

तद्विद्वन्लक्षणं चाद्योपमं च

वज्रं द्वितायोक्तम् ॥ १४ ॥

काकपदमस्त्रिकाकेन-

धातुयुक्तानि चर्कराविह्वलम् ।

द्विगुणाश्रि दिग्धकल्प-

चस्तविशोर्कानि च सुभयानि ॥ १५ ॥

यानि च बुदुददलिताग्र-

चिपिटवासीफलप्रदीर्घाणि ।

सर्वेषां चैतेषां

मूल्याद्भागो ऽष्टमो यानिः ॥ १६ ॥

वज्रं न किञ्चिदपि धारयित्वा मेके

पुचारिणीभिरबलाभिरुन्नति तज्जनाः ।

शृङ्गाटकचिपुटधान्यकवत्स्थितं य-
च्छ्रोणीनिभं च शुभदं तनयार्थिनीनाम् ॥ १७ ॥

स्वजनविभवजीवितक्षयं
जनयति वज्रमनिष्टलक्षणम् ।

अशनिविषभयारिनाशनं

शुभमुरुभोगकरं च भ्रूयताम् ॥ १८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वज्रप-
रीक्षा नामाशीतितमो ऽध्यायः ॥ * ॥

द्विपभुजगशुक्तिशङ्खाध-
वेणुतिमिस्रकरप्रसृतानि ।

मुक्ताफलानि तेषां

बहुसाधु च शुक्तिजं भवति ॥ १ ॥

सिंहलकपारलौकिक-

सौराष्ट्रकताम्रपर्णिपारशवाः ।

कौबेरप्रण्ड्यवाटक-

हेमा इत्याकरा ह्यष्टौ ॥ २ ॥

बहुसंस्थानाः स्निग्धा

हंसाभाः सिंहलाकराः स्थूलाः ।

ईषत्ताम्राः श्वेता-

स्तमोवियुक्ताश्च ताम्राख्याः ॥ ३ ॥

दृष्णाः श्वेताः पीताः

सशर्कराः पारलौकिका विषमाः ।

न स्थूला नात्यल्पा
 नवनीतनिभाश्च सौराष्ट्राः ॥ ४ ॥
 ज्योतिष्मन्तः शुभ्रा
 गुरवो ऽतिमहागुणाश्च पारशवाः ।
 लघु जर्जरं दधिनिभं
 बृहद्विसंस्थानमपि हैमम् ॥ ५ ॥
 विषमं कृष्णं श्वेतं
 लघु कौबेरं प्रमाणतेजोवत् ।
 निम्बफलत्रिपुटधान्यक-
 चूर्णाः स्युः पाण्ड्यवटभवाः ॥ ६ ॥
 अतसीकुसुमश्यामं
 वैष्णवमैन्द्रं शशाङ्कसङ्काशम् ।
 हरितालनिभं वारुण-
 मसितं यमदैवतं भवति ॥ ७ ॥
 परिणतदाडिमगुलिका-
 गुञ्जाताम्रं च वायुदैवत्यम् ।
 निर्धूमानलकमल-
 प्रभं च विज्ञेयमाग्नेयम् ॥ ८ ॥
 माषकचतुष्टयधृत-
 स्यैकस्य शताहता त्रिपञ्चाशत् ।
 कार्षापणा निगदिता
 मूल्यं तेजोगुणयुतस्य ॥ ९ ॥

माषकदलहान्यातो
 द्वाविंशद्विंशतिस्त्रयोदश च ।
 अष्टौ शतानि च शतत्रयं
 त्रिपञ्चाशता सहितम् ॥ १० ॥
 पञ्चत्रिंशं शतमिति
 चत्वारः कृष्णला नवतिमूल्याः ।
 सार्धास्त्रिंशो गुञ्जाः
 सप्ततिमूल्यं धृतं रूपम् ॥ ११ ॥
 गुञ्जात्रयस्य मूल्यं
 पञ्चाशद्रूपका गुणयुतस्य
 रूपकपञ्चत्रिंशत्
 त्रयस्य गुञ्जार्धहीनस्य ॥ १२ ॥
 पलदशभागो धरणं
 तद्यदि मुक्तास्त्रयोदश सुरूपाः ।
 त्रिंशती सपञ्चत्रिंशा
 रूपकसङ्ख्या कृतं मूल्यम् ॥ १३ ॥
 षोडशकस्य द्विशती
 विंशतिरूपस्य सप्ततिः सशता ।
 यत्पञ्चत्रिंशतिधृतं
 तस्य शतं त्रिंशता सहितम् ॥ १४ ॥
 त्रिंशत् सप्ततिमूल्या
 चत्वारिंशच्छतार्धमूल्या च ।

षष्टिः पञ्चोना वा
 धरणं पञ्चाष्टकं मूल्यम् ॥ १५ ॥
 मुक्ताशीत्यास्त्रिंशत्
 शतस्य सा पञ्चरूपकविहीना ।
 द्वित्रिचतुःपञ्चशता
 द्वादशषट्पञ्चकचितयम् ॥ १६ ॥
 पिक्कापिच्चार्षार्धा
 रुक्मसिक्थं त्रयोदशाद्यानाम् ।
 सञ्ज्ञाः परतो निगरा-
 श्रुणाश्चाशीतिपूर्वाणाम् ॥ १७ ॥
 एतद्गुणयुक्तानां
 धरणघृतानां प्रकीर्तितं मूल्यम् ।
 परिकल्प्यमन्तराले
 हीनगुणानां क्षयः कार्यः ॥ १८ ॥
 कृष्णश्वेतकपीतक-
 ताम्राणामीषदपि च विषमाणाम् ।
 त्वंशानं विषमकपीतयोश्च
 षड्भागदलहीनम् ॥ १९ ॥
 ऐरावतकुलजानां
 पुष्यश्रवणेन्दुसूर्यदिवसेषु ।
 ये चात्तरायणभवा
 ग्रहणे ऽकन्दोश्च भद्रेभाः ॥ २० ॥

तेषां किल जायन्ते
 मुक्ताः कुम्भेषु सरदकोशेषु ।
 बहवो दृष्टप्रमाणा
 बहुसंस्थानाः प्रभायुक्ताः ॥ २१ ॥
 नैयामर्घः कार्यो
 न च वेधो ऽतीव ते प्रभायुक्ताः ।
 सुतविजयारोग्यकरा
 महापवित्रा धृता राज्ञाम् ॥ २२ ॥
 दंष्ट्रामूले शशिकान्ति-
 सप्रभं बहुगुणं च वाराहम् ।
 तिमिजं मत्स्याश्लिनिभं
 दृष्ट्यविचं बहुगुणं च ॥ २३ ॥
 वर्षीपलवज्जातं
 वायुस्कन्धाच्च सप्तमाङ्गुष्ठम् ।
 ह्रियते किल खाद्विष्यै-
 स्तडित्प्रभं मेघसम्भूतम् ॥ २४ ॥
 तक्षकवासुकिकुलजाः
 कामगमा ये च पन्नगास्तेषाम् ।
 स्निग्धा नीलद्युतयो
 भवन्ति मुक्ताः फणस्यान्ते ॥ २५ ॥
 शस्ते ऽवनिप्रदेशे
 रजतमये भाजने स्थिते च यदि ।

वर्षति देवो ऽकस्मात्
 तज्ज्ञेयं नागसम्भूतम् ॥ २६ ॥
 अपहरति विषमलक्ष्मीं
 क्षपयति शत्रून्यशो विकाशयति ।
 भौजङ्गं नृपतीनां
 घृतमकृतार्घं विजयदं च ॥ २७ ॥
 कर्पूरस्फटिकनिभं
 चिपिटं विषमं च वेणुजं ज्ञेयम् ।
 शङ्खोद्भवं शशिनिभं
 घृतं भ्राजिष्णु रुचिरं च ॥ २८ ॥
 शङ्खतिमिवेणुवारण-
 वराहभुजगाभ्रजान्यवेध्यानि ।
 अमितगुणत्वाच्चैषा-
 मर्घः शास्त्रे न निर्दिष्टः ॥ २९ ॥
 एतानि सर्वाणि महागुणानि
 सुतार्थसौभाग्ययशस्कराणि ।
 रुक्लोकहन्तृणि च पार्थिवानां
 मुक्ताफलानीप्सितकामदानि ॥ ३० ॥
 सुरभूषणं लतानां
 सहस्रमष्टोत्तरं चतुर्दशम् ।
 इन्द्रच्छन्दो नाम्ना
 विजयच्छन्दस्तदर्धेन ॥ ३१ ॥

शतमष्टयुतं हारो
 देवच्छन्दो ह्यशीतिरेकयुता ।
 अष्टाष्टको ऽर्धहारो
 रश्मिकलापश्च नवषट्कः ॥ ३२ ॥
 द्वात्रिंशता तु गुच्छो
 विंशत्या कीर्तितो ऽर्धगुच्छाख्यः ।
 षोडशभिर्माणवको
 द्वादशभिश्चार्धमाणवकः ॥ ३३ ॥
 मन्दरसञ्ज्ञो ऽष्टाभिः
 पञ्च लता हारफलकमित्युक्तम् ।
 सप्ताविंशतिमुक्ता
 हस्तो नष्टत्रमालेति ॥ ३४ ॥
 अन्तरमणिसंयुक्ता
 मणिसेपांनं सुवर्णगुलिकैर्वा ।
 तरलकमणिमध्यं तद्
 विज्ञेयं चाटुकारमिति ॥ ३५ ॥
 एकावली नाम यथेष्टसञ्ज्ञा
 हस्तप्रमाणा मणिविप्रयुक्ता ।
 संयोजिता या मणिना तु मध्ये
 यष्टीति सा भूषणविद्धिरुक्ता ॥ ३६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां मुक्ता-
 फलपरीक्षा नामैकाशीतितमो ऽध्यायः ॥ • ॥

सौगन्धिककुरुविन्द-
 स्फटिकेभ्यः पद्मरागसम्भूतिः ।
 सौगन्धिकजा भ्रमरा-
 ज्जनाञ्जजम्बूरसद्युतयः ॥ १ ॥
 कुरुविन्दभवाः शबला
 मन्दद्युतयश्च धातुभिर्विद्धाः ।
 स्फटिकभवा द्युतिमन्तो
 नानावर्णा विशुद्धाश्च ॥ २ ॥
 स्निग्धः प्रभानुलेपो
 स्वच्छो ऽर्चिष्मान् गुरुः सुसंस्थानः ।
 अन्तःप्रभो ऽतिरागा
 मणिरत्नगुणाः समस्तानाम् ॥ ३ ॥
 कलुषा मन्दद्युतयो
 लेखाकीर्णाः सधातवः खण्डाः ।
 दुर्विद्धा न मनोघ्नाः
 सशर्कराश्चेति मणिदोषाः ॥ ४ ॥
 भ्रमरशिखिकण्ठवर्णा
 दीपशिखासप्रभो भुजङ्गानाम् ।
 भवति मणिः क्लृप्तमूर्धनि
 यो ऽनर्घेयः स विज्ञेयः ॥ ५ ॥
 यस्तं विभर्ति मनुजाधिपतिर्न तस्य
 दोषा भवन्ति विषरोगकृताः कदाचित् ।

राष्ट्रे च नित्यमभिवर्षति तस्य देवः
 शत्रूंश्च नाशयति तस्य मणेः प्रभावात् ॥ ६ ॥
 षड्विंशतिः सहस्रा-
 ण्येकस्य मणेः पलप्रमाणस्य ।
 कर्षचयस्य विंशति-
 रूपदिष्टा पद्मरागस्य ॥ ७ ॥
 अर्धपलस्य द्वादश
 कर्षस्यैकस्य षट् सहस्राणि ।
 यच्चाष्टमाषकधृतं
 तस्य सहस्रत्रयं मूल्यम् ॥ ८ ॥
 माषकचतुष्टयं दशशतक्रयं
 द्वौ तु पञ्चशतमूल्यौ ।
 परिकल्प्यमन्तराले
 मूल्यं हीनाधिकगुणानाम् ॥ ९ ॥
 वर्णान्यूनस्यार्धं
 तेजोहीनस्य मूल्यमष्टांशः ।
 अल्पगुणो बहुदोषो
 मूल्यात्प्राप्नोति विंशांशम् ॥ १० ॥
 आधुमं व्रणबहुलं
 स्वल्पगुणं चाप्नुयाद्विशतभागम् ।
 इति पद्मरागमूल्यं
 पूर्वाचार्यैः समुद्दिष्टम् ॥ ११ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पद्मरा-
 गपरीक्षा नाम द्वाशीतितमोऽध्यायः ॥ * ॥

शुकवंशपत्रकदलीशिरीषकुसुमप्रभं गुणोपेतम् ।
 सुरपितृकार्ये रक्तमतीव शुभदं नृणां विधृतम् ॥ १ ॥
 इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां मरक-
 तपरीक्षा नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ * ॥

वामावर्तो मलिनकिरणः सस्फुलिङ्गोऽल्पमूर्तिः
 क्षिप्रं नाशं व्रजति विमलस्रेहवर्त्यन्वितोऽपि ।
 दीपः पापं कथयति फलं शब्दवान् वेपनश्च
 व्याकीर्णार्चिर्विशलभमरुद्यश्च नाशं प्रयाति ॥ १ ॥
 दीपः संहतमूर्तिरायततनुर्निर्वपनो दीप्तिमान्
 निःशब्दो रुचिरः प्रदक्षिणगतिर्वैडूर्यहेमद्युतिः ।
 लक्ष्मीं क्षिप्रमभिव्यनक्ति रुचिरं यश्चाद्यतं दीप्यते
 शेषं लक्षणमग्निलक्षणसमं योज्यं यथायुक्तितः ॥ २ ॥
 इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां दीप-
 लक्षणं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ * ॥

वल्लीलतागुल्मतुरुप्रभेदैः
 स्युर्दन्तकाष्ठानि सद्दन्तशो यैः ।
 फलानि वाच्यान्यति तत्रसङ्गो
 मा भूदतो वचम्यथ कामिकानि ॥ १ ॥
 अज्ञातपूर्वाणि न दन्तकाष्ठा-
 न्यद्यान् पचैश्च समन्वितानि ।

न युग्मपर्वाणि न पाटितानि
 न चोर्ध्वशुष्काणि विना त्वचा वा ॥ २ ॥
 वैकङ्कतश्रीफलकाश्मरीषु
 ब्राह्मी द्युतिः क्षेमतरौ सुदाराः ।
 वृद्धिर्वटे ऽर्के प्रचुरं च तेजः
 पुत्रा मधूके ककुभे प्रियत्वम् ॥ ३ ॥
 लक्ष्मीः शिरीषे च तथा करञ्जे
 लक्ष्णे ऽर्थसिद्धिः समभीप्सिता स्यात् ।
 मान्यत्वमायाति जनस्य जात्यां
 प्राधान्यमश्रुत्यतरौ वदन्ति ॥ ४ ॥
 आरोग्यमायुर्वद्रीवृहत्यो-
 रैश्वर्यवृद्धिः खदिरे सबिल्वे ।
 द्रव्याणि चेष्टान्यतिमुक्तके स्युः
 प्राप्नोति तान्येव पुनः कदम्बे ॥ ५ ॥
 निम्बे ऽर्थाप्तिः करवीरे ऽन्नलब्धि
 भण्डीरे स्यादिदमेव प्रभूतम् ।
 शम्यां शचूनपहन्त्यर्जुने च
 श्यामायां च द्विषतामेव नाशः ॥ ६ ॥
 शाले ऽश्वकर्णे च वदन्ति गौरवं
 सभद्रदारावपि चाटरूपके ।
 वासुभ्यमायाति जनस्य सर्वतः
 प्रियङ्ग्वपामार्गसजम्बुदाडिमैः ॥ ७ ॥

उदङ्मुखः प्राङ्मुख एव वाब्दं
 कामं यथेष्टं हृदये निवेश्य ।
 अद्यादनिन्द्यं चसुखोपविष्टः
 प्रक्षाल्य जह्याच्च शुचिप्रदेशे ॥ ८ ॥
 अभिमुखपतितं प्रशान्तदिकस्थं
 शुभमतिशोभनमूर्ध्वसंस्थितं यत् ।
 अशुभकरमतो ऽन्यथा प्रदिष्टं
 स्थितपतितं च करोति मृष्टमन्नम् ॥ ९ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां दन्त-
 काष्ठलक्षणं नाम पञ्चाशीतितमो ऽध्यायः ॥ * ॥

यच्छुक्रशक्रवागीशकपिष्ठलगरुत्मताम् ।
 मतेभ्यः प्राह ऋषभो भागुरेर्देवलस्य च ॥ १ ॥
 भारद्वाजमतं दृष्ट्वा यच्च श्रीद्रव्यवर्धनः ।
 आवन्तिकः प्राह नृपो महाराजाधिराजकः ॥ २ ॥
 सप्तर्षीणां मतं यच्च संस्कृतं प्राकृतं च यत् ।
 यानि चोक्तानि गर्गाद्यैर्यात्राकारैश्च भूरिभिः ॥ ३ ॥
 तानि दृष्ट्वा चकारेमं सर्वशाकुनसङ्ग्रहम् ।
 वराहमिहिरः प्रीत्या शिष्याणां ज्ञानमुत्तमम् ॥ ४ ॥
 अन्यजन्मान्तरकृतं कर्म पुंसां शुभाशुभम् ।
 यत्तस्य शकुनः पाकं निवेदयति गच्छताम् ॥ ५ ॥

ग्रामारण्याम्बुभूव्योमद्युनिशोभयचारिणः ।
 रुतयातेक्षितोक्तेषु ग्राह्याः स्त्रीपुत्रपुंसकाः ॥ ६ ॥
 पृथग्जात्यनवस्थानादेषां व्यक्तिर्न लक्ष्यते ।
 सामान्यलक्षणोद्देशे श्लोकावृषिकृताविमौ ॥ ७ ॥
 पीनोन्नतविकृष्टांसाः पृथुग्रीवाः सुवक्षसः ।
 स्वल्पगम्भीरविरुताः पुमांसः स्थिरविक्रमाः ॥ ८ ॥
 तनूरस्कशिरोग्रीवाः सूक्ष्मास्यपदविक्रमाः ।
 प्रसक्तमृदुभाषिण्यः स्त्रियो ऽतो ऽन्यन्नपुंसकम् ॥ ९ ॥
 ग्रामारण्यप्रचाराद्यं लोकादेवोपलक्षयेत् ।
 सञ्चिक्षिप्सुरहं वक्षि यात्रामात्रप्रयोजनम् ॥ १० ॥
 पथ्यात्मानं नृपं सैन्ये पुरे चोद्दिश्य देवताम् ।
 सार्थं प्रधानं साम्यं स्याज्जातिविद्यावयोऽधिकम् ॥ ११ ॥
 मुक्तप्राप्तैष्यदर्कासु फलं दिक्षु तथाविधम् ।
 अङ्गारिदीप्तधूमिन्यस्ताश्च शान्तास्ततो ऽपरा ॥ १२ ॥
 तत्पञ्चमदिशां तुल्यं शुभं चैकाल्यमादिशेत् ।
 परिशेषयोर्दिशोर्वाच्यं यथासन्नं शुभाशुभम् ॥ १३ ॥
 शीघ्रमासन्ननिम्नस्थैश्चिरादुन्नतदूरगैः ।
 स्थानवृद्ध्युपघाताच्च तद्वद्भूयात्फलं पुनः ॥ १४ ॥
 क्षणतिथ्युद्भवाताकैर्देवदीप्तो यथोत्तरम् ।
 क्रियादीप्तो गतिस्थानभावस्वरविचेष्टितैः ॥ १५ ॥
 दशधैवं प्रशान्तो ऽपि सैम्यस्तृणफलाशनः ।
 मांसामेध्याशनो रौद्रो विमिश्रो ऽन्नाशनः स्मृतः ॥ १६ ॥

हर्म्यप्रासादमङ्गल्यमनोज्ञस्थानसंस्थिताः ।
 श्रेष्ठा मधुरसक्षीरफलपुष्पद्रुमेषु च ॥ १७ ॥
 स्वकाले गिरितोयस्था बलिनो द्युनिशाचराः ।
 क्लीबस्त्रीपुरुषाश्चैषां बलिनः स्युर्यथोत्तरम् ॥ १८ ॥
 जवजातिबलस्थानहर्षसत्त्वस्वरान्विताः ।
 स्वभूमावनुलोमाश्च तदूनाः स्युर्विवर्जिताः ॥ १९ ॥
 कुक्कुटेभपिरिल्यश्च शिखिवञ्जुलच्छिकराः ।
 बलिनः सिंहनादश्च कूटपूरी च पूर्वतः ॥ २० ॥
 क्रोष्टुकोलूकहारीतकाककोकर्षापिङ्गलाः ।
 कपोतरुदिताक्रन्दकूरशब्दाश्च याम्यतः ॥ २१ ॥
 गोशशकौञ्चलोमाशहंसेत्क्रोशकपिञ्जलाः ।
 बिडालोत्सववादित्रगीतहासाश्च वारुणाः ॥ २२ ॥
 शतपत्रकुरङ्गाखुमृगैकशफकोकिलाः ।
 चाषशल्यकपुण्याहघण्टाशङ्करवा उदक् ॥ २३ ॥
 न ग्रामो ऽरण्यगो ग्राह्यो नारण्यो ग्रामसंस्थितः ।
 दिवाचरो न शर्वर्यां न च नक्तश्चरो दिवा ॥ २४ ॥
 इन्द्ररोगार्दितचस्ताः कलहामिषकाङ्गिणः ।
 आपगान्तरिता मत्ता न ग्राह्याः शकुनाः क्वचित् ॥ २५ ॥
 रोहिताश्चाजवालेयकुरङ्गोद्भृगाः शशः ।
 निष्फलाः शिशिरे ज्ञेया वसन्ते काककोकिलौ ॥ २६ ॥
 न तु भाद्रपदे ग्राह्याः सूकरश्चटकादयः ।
 शरद्यबादगोकौञ्चाः आवणे हस्तिचातकौ ॥ २७ ॥

व्याघ्रर्क्षवानरद्वीपिमहिषाः सबिलेशयाः ।
 हेमन्ते निष्फला ज्ञेया बालाः सर्वे विमानुषाः ॥ २८ ॥
 ऐन्द्रानलदिशोर्मध्ये त्रिभागेषु व्यवस्थिताः ।
 कोशाध्यक्षानलाजीवितपोयुक्ताः प्रदक्षिणम् ॥ २९ ॥
 शिल्पी भिक्षुर्विवस्त्रा स्त्री याम्यानलदिगन्तरे ।
 परतश्चापि मातङ्गगोपधर्मसमाश्रयाः ॥ ३० ॥
 नैर्ऋतीवारुणीमध्ये प्रमदासूतितस्कराः ।
 शौण्डिकः शाकुनी हिंस्रो वायव्यपश्चिमान्तरे ॥ ३१ ॥
 विषघातकगोस्वामिकुहकज्ञास्ततः परम् ।
 धनवानीक्षणीकश्च मालाकारः परं ततः ॥ ३२ ॥
 वैष्णवश्चरकश्चैव वाजिनां रक्षणे रतः ।
 एवं द्वात्रिंशतो भेदाः पूर्वदिग्भिः सहोदिताः ॥ ३३ ॥
 राजा कुमारो नेता च दूतः श्रेष्ठी चरो द्विजः ।
 गजाध्यक्षश्च पूर्वाद्याः क्षत्रियाद्याश्चतुर्दिशम् ॥ ३४ ॥
 गच्छतस्तिष्ठतो वापि दिशि यस्यां व्यवस्थितः ।
 विरौति शकुनो वाच्यस्तद्दिग्जेन समागमः ॥ ३५ ॥
 भिन्नभैरवदीनार्तपरुषक्षामजर्जराः ।
 स्वरा नेष्टाः शुभाः शान्ता हृष्टप्रकृतिपूरिताः ॥ ३६ ॥
 शिवा श्यामा रक्षा छुच्छुः पिङ्गला गृहगोधिका ।
 सूकरी परपुष्टा च पुन्नामानश्च वामतः ॥ ३७ ॥
 स्त्रीसञ्ज्ञा भासभषककपिश्रीकर्णच्छिकराः ।
 शिखिश्रीकण्ठपिप्पीकरुरुश्येनाश्च दक्षिणाः ॥ ३८ ॥

त्वेडास्फोटितपुण्याहगीतशङ्खाम्बुनिःस्वनाः ।
 सतूर्याध्ययनाः पुंवत् स्त्रीवदन्या गिरः शुभाः ॥ ३९ ॥
 ग्रामौ मध्यमषड्जै तु गान्धारश्चेति शोभनाः ।
 षड्जामध्यमगान्धारा ऋषभश्च स्वरा हिताः ॥ ४० ॥
 रुतकीर्तनदृष्टेषु भारद्वाजाजबर्हिणः ।
 धन्या नकुलचाषौ च सरटः पापदोऽग्रतः ॥ ४१ ॥
 जाह्नकाह्निशशक्रोडगोधानां कीर्तनं शुभम् ।
 रुतसन्दर्शनं नेष्टं प्रतीपं वानरर्क्षयोः ॥ ४२ ॥
 ओजाः प्रदक्षिणं शस्ता मृगाः सनकुलाण्डजाः ।
 चाषः सनकुलो वामो भृगुराहापराह्लतः ॥ ४३ ॥
 छिक्करः कूटपूरी च पिरिली चाह्नि दक्षिणाः ।
 अपसव्याः सदा शस्ता दंष्ट्रिणः सबिलेशयाः ॥ ४४ ॥
 श्रेष्ठे ह्यसिते प्राच्यां शवमांसे च दक्षिणे ।
 कन्यकादधिनी पश्चादुदग्गोविप्रसाधवः ॥ ४५ ॥
 जालश्वचरणौ नेष्टौ प्राग्याम्यौ शस्त्रघातकौ ।
 पश्चादासवषण्डी च खलासनहलान्युदक् ॥ ४६ ॥
 कर्मसङ्गमयुद्धेषु प्रवेशे नष्टमार्गणे ।
 यानव्यस्तगता ग्राह्या विशेषश्चाच वक्ष्यते ॥ ४७ ॥
 दिवा प्रस्थानवद्ग्राह्याः कुरङ्गरुवानराः ।
 अहश्च प्रथमे भागे चाषवञ्जुलकुक्कुटाः ॥ ४८ ॥
 पश्चिमे शर्वरीभागे नमृकोलूकपिङ्गलाः ।
 सर्व एव विपर्यस्ता ग्राह्याः सार्थेषु योषिताम् ॥ ४९ ॥

नृपसन्दर्शने ग्राह्याः प्रवेशे ऽपि प्रयाणवत् ।
 गिर्यरण्यप्रवेशे च नदीनां चावगाहने ॥ ५० ॥
 वामदक्षिणगौ शस्तौ यौ तु तावग्रष्टगौ ।
 क्रियादीप्तौ विनाशाय यातुः परिघसञ्जितौ ॥ ५१ ॥
 तावेव तु यथाभागं प्रशान्तरुतचेष्टितौ ।
 शकुनौ शकुनद्वारसञ्जितावर्थसिद्धये ॥ ५२ ॥
 केचित्तु शकुनद्वारमिच्छन्त्युभयतः स्थितैः ।
 शकुनैरेकजातीयैः शान्तचेष्टाविराविभिः ॥ ५३ ॥
 विसर्जयति यद्येक एकश्च प्रतिषेधति ।
 स विरोधो ऽशुभो यातुर्ग्राह्यो वा बलवत्तरः ॥ ५४ ॥
 पूर्वं प्रावेशिको भूत्वा पुनः प्रास्थानिको भवेत् ।
 सुखेन सिद्धिमाचष्टे प्रवेशे तद्विपर्ययः ॥ ५५ ॥
 विसर्ज्य शकुनः पूर्वं स एव निरुणद्धि चेत् ।
 प्राह यातुररेर्म्भ्यं डमरं रोगमेव वा ॥ ५६ ॥
 अपसव्यास्तु शकुना दीप्ता भयनिवेदिनः ।
 आरम्भे शकुनो दीप्तो वर्षान्तस्तद्भयङ्करः ॥ ५७ ॥
 तिथिवाय्वर्कभस्थानचेष्टादीप्ता यथाक्रमम् ।
 धनसैन्यबलाङ्गैकर्मणां स्युर्भयङ्कराः ॥ ५८ ॥
 जीमूतध्वनिदीप्तेषु भयं भवति मारुतात् ।
 उभयोः सन्ध्योर्दीप्ताः शस्त्रोद्भवभयङ्कराः ॥ ५९ ॥
 चित्तिकेशकपालेषु मृत्युबन्धवधप्रदाः ।
 कण्टकीकाष्ठभस्मस्थाः कलहायासदुःखदाः ॥ ६० ॥

अप्रसिद्धं भयं वापि निःसाराश्लव्यवस्थिताः ।
 कुर्वन्ति शकुना दीप्ताः शान्ता याप्यफलास्तु ते ॥ ६१ ॥
 असिद्धिसिद्धिदौ ज्ञेयौ निर्हादाहारकारिणौ ।
 स्थानाद्रुवन् ब्रजेद्याचां शंसते त्वन्यथागमम् ॥ ६२ ॥
 कलहः स्वरदीप्तेषु स्थानदीप्तेषु विग्रहः ।
 उच्चमादौ स्वरं कृत्वा नीचं पश्चाच्च मोषकृत् ॥ ६३ ॥
 एकस्थाने रुवन्दीप्तः सप्ताहाद्भ्रामघातकृत् ।
 पुरदेशनरेन्द्राणामृत्वर्धायनवत्सरात् ॥ ६४ ॥
 सर्वं दुर्भिक्षकतारः स्वजातिपिशिताशनाः ।
 सर्पमूषकमार्जारपृथुरोमविवर्जिताः ॥ ६५ ॥
 परयोनिषु गच्छन्तो मैथुनं देशनाशनाः ।
 अन्यत्र वेसरोत्पत्तेर्दृणां चाजातिमैथुनात् ॥ ६६ ॥
 बन्धघातभयानि स्युः पादोरुमस्तकान्तिगैः ।
 अपृष्यपिशितान्नादैर्वर्षमोषस्तग्रहाः ॥ ६७ ॥
 क्रूराग्रदोषदुष्टैश्च प्रधानन्दपवृत्तकैः ।
 चिरकालैश्च दीप्ताद्यास्वागमो दिष्टु तन्नृणाम् ॥ ६८ ॥
 सद्रव्यो बलवांश्च स्यात्सद्रव्यस्यागमो भवेत् ।
 दृतिमान्विनतप्रेक्षी सौम्यो दारुणवृत्तकृत् ॥ ६९ ॥
 विदिकस्थः शकुनेो दीप्तेो वामस्थेनानुवाशितः ।
 स्त्रियाः सङ्गृहणं प्राह तद्दिगाख्यातयोनितः ॥ ७० ॥
 शान्तः पञ्चमदीप्तेन विरुतो विजयावहः ।
 दिग्भरागमकारी वा दोषकृत्तद्विपर्यये ॥ ७१ ॥

वामसव्यरुतो मध्यः प्राह स्वपरयोर्भयम् ।
 मरणं कथयन्त्येते सर्वे समविराविणः ॥ ७२ ॥
 वृक्षाग्रमध्यमूलेषु गजाश्वरथिकागमः ।
 दीर्घाब्जमुषिताग्रेषु नरनौशिविकागमः ॥ ७३ ॥
 शकटेनोन्नतस्थे च छायास्थे छत्रसंयुतः ।
 एकत्रिपञ्चसप्ताहात् पूर्वाद्यास्वन्तरासु च ॥ ७४ ॥

सुरपतिहुतवहयमनिर्ऋति-
 वरुणपवनेन्दुशङ्कराः ।
 प्राच्यादीनां पतयो
 दिशः पुमांसो ऽङ्गना विदिशः ॥ ७५ ॥
 तरुतालीविदलाम्बरसलिलज-
 शरचर्मपट्टलेखाः स्युः ।
 द्वात्रिंशत्प्रविभक्ते
 दिक्चक्रे तेषु कार्याणि ॥ ७६ ॥
 व्यायामशिखिनिक्लृजित-
 कलहाम्भोनिगडमन्त्रगोशब्दाः ।
 वर्णाश्च रक्तपीतक-
 कृष्णसिताः कोणगा मिश्राः ॥ ७७ ॥
 चिह्नं ध्वजा दग्धमद्य भ्रमशानं
 दरी जलं पर्वतयज्ञघोषाः ।
 एतेषु संयोगभयानि विन्ध्याद्
 अन्यानि वा स्थानविकल्पितानि ॥ ७८ ॥

स्त्रीणां विकल्पे बृहती कुमारी
 व्यङ्गा विगन्धा त्वथ नीलवस्त्रा ।
 कुस्त्री प्रदीर्घा विधवा च ताश्च
 संयोगचिन्तापरिवेदिकाः स्युः ॥ ७६ ॥
 पृच्छासु रूप्यकनकातुरभामिनीनां
 मेषाव्ययानमखगोकुलसंश्रयासु ।
 न्यग्रोधरक्ततरुरोभ्रककीचकाख्या-
 श्रूतद्रुमाः खदिरबिल्वनगार्जुनाश्च ॥ ८० ॥

इति सर्वशाकुने मिश्रकाध्यायः प्रथमः ।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां षड-
 शीतितमो ऽध्यायः ॥ ० ॥

रेन्द्र्यां दिशि शान्तायां
 विरुवन्दृपसंश्रितागमं वक्ति ।
 शकुनिः पूजालाभं
 मणिरत्नद्रव्यसम्प्राप्तिम् ॥ १ ॥
 तदनन्तरदिशि कनका-
 गमो भवेद्वाञ्छितार्थसिद्धिश्च ।
 आयुधधनपूगफला-
 गमस्तृतीये भवेद्भागे ॥ २ ॥
 क्षिग्धद्विजस्य सन्दर्शनं
 चतुर्थे तथा हिताग्नेश्च ।

कोणे ऽनुजीविभिस्तु-
 प्रदर्शनं कनकलोहाप्तिः ॥ ३ ॥
 याम्येनाद्ये नृपपुत्र-
 दर्शनं सिद्धिरभिमतस्याप्तिः ।
 परतः स्त्रीधर्माप्तिः
 सर्षपयवलब्धिरप्युक्ता ॥ ४ ॥
 कोणाच्चतुर्थखण्डे
 लब्धिर्द्रव्यस्य पूर्वनष्टस्य ।
 यद्वा तद्वा फलमपि
 याचायां प्राप्नुयाद्याता ॥ ५ ॥
 याचासिद्धिः समदक्षिणेन
 शिखिमहिपकुक्कटाप्तिश्च ।
 याम्याद्धितीयभागे
 चारणसङ्गः शुभं प्रीतिः ॥ ६ ॥
 ऊर्ध्वं सिद्धिः कैवर्त-
 सङ्गमो मीनतित्तिराद्याप्तिः ।
 प्रव्रजितदर्शनं तत्परे च
 पक्वान्नफललब्धिः ॥ ७ ॥
 नैर्ऋत्यां स्त्रीलाभ-
 स्तुरगालङ्कारदूतलोखाप्तिः ।
 परतो ऽस्य चर्मतच्छिल्पि-
 दर्शनं चर्ममयलब्धिः ॥ ८ ॥

वानरभिक्षुश्रवणा-
 वलोकनं नैर्ऋतातृतीयांशे ।
 फलकुसुमदन्तघटिता-
 गमश्च कोणाच्चतुर्थांशे ॥ ९ ॥
 वारुण्यामर्णवजात-
 रत्नवैडूर्यमणिमयप्राप्तिः ।
 परतो ऽतः शबरव्याध-
 चौरसङ्गः पिशितलब्धिः ॥ १० ॥
 परतो ऽपि दर्शनं
 वातरोगिणां चन्दनागुरुप्राप्तिः ।
 आयुधपुस्तकलब्धि-
 स्तद्वृत्तिसमागमश्चार्ध्वम् ॥ ११ ॥
 वायव्ये फेनक-
 चामरौर्णिकाप्तिः समेति कायस्थः ।
 मृन्मयलाभो ऽन्यस्मिन्
 वैतालिकडिण्डिभाण्डानाम् ॥ १२ ॥
 वायव्याच्च तृतीये
 मित्रेण समागमो धनप्राप्तिः ।
 वस्त्राश्चाप्तिरतः पर-
 मिष्टसुहृत्सम्प्रयोगश्च ॥ १३ ॥
 दधितण्डुललाजानां
 लब्धिरुद्गदर्शनं च विप्रस्य ।

अर्थावाप्तिरनन्तर-
 मुपगच्छति सार्थवाहश्च ॥ १४ ॥
 वेश्यावटुदाससमागमः
 परे शुष्कपुष्पफललब्धिः ।
 अतः परं चित्रकरस्य
 दर्शनं वस्त्रसम्प्राप्तिः ॥ १५ ॥
 ऐशान्यां देवलकोपसङ्गमो
 धान्यरत्नपशुलब्धिः ।
 प्राक् प्रथमे वस्त्राप्तिः
 समागमश्चापि बन्धक्या ॥ १६ ॥
 रजकेन समायोगो
 जलजद्रव्यागमश्च परतो ऽतः ।
 हृत्युपजीविसमाज-
 श्चास्माद्बन्धनहस्तिलब्धिश्च ॥ १७ ॥
 द्वात्रिंशत्प्रविभक्तं
 दिक्चक्रं वास्तुबन्धने ऽप्युक्तम् ।
 अरनाभिस्थैरन्तः
 फलानि नवधा विकल्प्यानि ॥ १८ ॥
 नाभिस्थे बन्धुसुहृ-
 त्समागमस्तुष्टिरुत्तमा भवति ।
 प्राग्रक्तपट्टवस्त्रा-
 गमस्त्वरे नृपतिसंयोगः ॥ १९ ॥

आग्नेये कौलिकतक्ष-
 पारिकर्माश्वत्तसंयोगः ।
 लब्धिश्च तत्कतानां
 द्रव्याणामश्वलब्धिर्वा ॥ २० ॥
 नेमीभागं बुद्ध्या
 नाभीभागं च दक्षिणे यो ऽरः ।
 धार्मिकजनसंयोग-
 स्तत्र भवेद्धर्मलाभश्च ॥ २१ ॥
 उखाक्रीडककापालिका-
 गमो नैर्ऋते समुद्दिष्टः ।
 वृषभस्य चात्र लब्धि-
 र्माषकुलत्याद्यमशनं च ॥ २२ ॥
 अपरस्यां दिशि यो ऽर-
 स्तत्रासक्तिः कृषीवलैर्भवति ।
 सामुद्रद्रव्यसुसार-
 काचफलमद्यलब्धिश्च ॥ २३ ॥
 भारवहतक्षभिक्षुक-
 सन्दर्शनमपि च वायुदिकसंस्थे ।
 तिलककुसुमस्य लब्धिः
 सनागपुन्नागकुसुमस्य ॥ २४ ॥
 कौबेर्यां दिशि शकुनः
 शान्तायां वित्तलाभमास्थाति ।

भागवतेन समागम-
 माचष्टे पीतवस्त्रैश्च ॥ २५ ॥
 रेशाने व्रतयुक्ता
 वनिता सन्दर्शनं समुपयाति ।
 लब्धिश्च परिज्ञेया
 कृष्णायोवस्त्रघट्टानाम् ॥ २६ ॥
 याम्ये ऽष्टांशे पञ्चा-
 द्विषट्त्रिसप्ताष्टमेषु मध्यफला ।
 सौम्येन च द्वितीये
 शेषेषतिशोभना याथा ॥ २७ ॥
 अभ्यन्तरे तु नाभ्यां
 शुभफलदा भवति षट्सु चारेषु ।
 वायव्यानेर्धृतयो-
 रुभयोः स्त्रेशावहा याथा ॥ २८ ॥
 शान्तासु दिक्षु फलमिद-
 मुक्तं दीप्तास्त्रिता अभिधास्वामि ।
 ऐश्यां भयं नरेन्द्रात्
 समागमयेव च पूजाम् ॥ २९ ॥
 तदनन्तरदिशि याथा
 कर्गकस्य भयं सुवर्णकालात्
 अर्धव्यस्तृतीये
 कलशः प्रस्ताप्योपये ॥ ३० ॥

अग्निभयं च चतुर्थे
 भयमाग्नेये च भवति चैरेभ्यः ।
 कोणादपि द्वितीये
 धनक्षयो नृपसुतविनाशः ॥ ३१ ॥
 प्रमदागर्भविनाश-
 स्तृतीयभागे भवेच्चतुर्थे च ।
 हैरण्यककारकयोः
 प्रध्वंसः शस्त्रकोपश्च ॥ ३२ ॥
 अथ पञ्चमे नृपभयं
 मारीक्षतदर्शनं च वक्तव्यम् ।
 षष्ठे तु भयं ज्ञेयं
 गन्धर्वाणां सडोम्बानाम् ॥ ३३ ॥
 धीवरशाकुनिकानां
 सप्तमभागे भयं भवति दीने ।
 भोजनविधात उक्तो
 निग्रन्थभयं च तत्परतः ॥ ३४ ॥
 कलहो नैर्घतभागे
 रक्तखायोऽथ शस्त्रकोपश्च ।
 अपराधे चर्मक्षयः
 विनश्यति चर्मकारप्रयत्नः ॥ ३५ ॥
 तदन्तरे परिवाट-
 कप्रयत्नश्च तत्परः शस्त्रभयभयम् ।

दृष्टिभयं वारुण्यां
 श्वतस्कराणां भयं परतः ॥ ३६ ॥
 वायुग्रस्तविनाशः
 परे परे शस्त्रपुस्तवार्त्तानाम् ।
 कोणे पुस्तकनाशः
 परे विषस्तेनवायुभयम् ॥ ३७ ॥
 परतो वित्तविनाशो
 मित्रैः सह विग्रहश्च विघ्नेयः ।
 तस्यासन्ने ऽश्वघो
 भयमपि च पुरोधसः प्रोक्तम् ॥ ३८ ॥
 गोहरणशस्त्रघाता-
 बुदक् परे सार्यघातधननाशौ ।
 आसन्ने च श्वभयं
 ब्राह्मणद्विजदासगणिकानाम् ॥ ३९ ॥
 देशानस्थासन्ने
 चिन्तान्तरिक्षवद्वयं धातुम् ।
 देशान्ने स्वभिभयं
 दूषणमप्यस्यसीधाम् ॥ ४० ॥
 प्रोक्तस्त्वेषान्ने
 दुःखीयपि विद्या विद्याश्रम ।
 भयस्यैव स्वकारणं
 विघ्नेनैव विघ्नितम् ॥ ४१ ॥

इत्यारोहभयं स्याद्
 द्विरदविनाशश्च मण्डलसमाप्तौ ।
 अभ्यन्तरे तु दीप्ते
 पत्नीमरणं ध्रुवं पूर्वं ॥ ४२ ॥
 शस्त्रानलप्रकोपा-
 वाग्नेये वाजिमरणशिल्पिभयम् ।
 याम्ये धर्मविनाशः
 परे ऽग्न्यवस्कन्दचोक्षवधाः ॥ ४३ ॥
 अपरे तु कर्मिणां भय-
 मथ कोशे चानिले खरोद्भवधः ।
 अत्रैव मनुष्याणां
 विषूचिकाविषभयं भवति ॥ ४४ ॥
 उदगर्थविप्रपीडा
 दिश्यैशान्यां तु चित्तसन्तापः ।
 ग्रामीणगोपपीडा
 च तत्र नाभ्यां तद्यात्मवधः ॥ ४५ ॥

इति सर्वशाकुने ऽन्तरचक्रं नामाध्यायो द्वितीयः ।

इति श्रीवराहमिहिरकृता दृष्टसंहितायां सप्त-
 शीतितमो ऽध्यायः ॥ * ॥

श्यामाश्वेनशशन्नवञ्जुलशिखित्रीकर्णचक्राद्या-
 खाषाण्डीरकखञ्जरीटकशुकभाङ्गाः क्रयोतास्त्रयाः ।

भारद्वाजकुलालकुक्कुटखरा हारीतमृधौ कपिः
फेण्टःकुक्कुटपूर्णकूटचटकायोक्ता दिवासखराः ॥ १ ॥

लोमाशिका पिङ्गलक्ष्मिपिकास्थौ
वल्गुल्युलूकौ शशकश्च राजौ ।
सर्वे स्वकालोत्क्रमचारिणः स्यु-
र्देशस्वै नाशाय नृपान्तदा वा ॥ २ ॥
हयनरभुजगोष्ठ्रहीपिसिंहर्षगोधा
वृकनकुलकुरङ्गश्चाजगोव्याघ्रहंसाः ।
पृषतमृगमृगालश्चाविदास्थान्यपुष्टा
द्युनिशमपि बिडालः सारसः सूकरश्च ॥ ३ ॥

भषकूटपूरिकरबक-
करायिकाः पूर्णकूटसञ्जाः स्युः ।
नामान्युलूकचेव्याः
पिङ्गलिका पेचिका हका ॥ ४ ॥

कपोतकी च श्यामा
वञ्जुलकः कीर्त्यते खदिरचञ्चुः ।
कुञ्जुन्दरी नृपसुता
वासेयो गर्दभः प्रोक्तः ॥ ५ ॥

सोतस्तडागभेद्येकपुचकः
कलहकारिका च रला ।

धृङ्गारवच्च वाशति

निशि भूमौ यन्मुखशीरा । ६ ॥

दुर्बलिको भाण्डीकः
 प्राच्यानां दक्षिणः प्रशस्तो ऽसौ ।
 छिक्कारो मृगजातिः
 एकवाकुः कुक्कुटः प्रोक्तः ॥ ७ ॥
 गर्ताकुक्कुटकस्य
 प्रथितं तु कुलालकुक्कुटो नाम ।
 गृहगोधिकेति सञ्ज्ञा
 विज्ञेया कुक्ष्यमत्स्यस्य ॥ ८ ॥
 दिव्यो धन्वन उक्तः
 क्रोडः स्यात्सूकरो ऽथ गौरसा ।
 श्वा सारमेय उक्तो
 जात्या चटिका च सूकरिका ॥ ९ ॥
 एवं देशे देशे
 तद्विद्वाः समुपलभ्य नामानि ।
 शकुनरतज्ञानार्थं
 शास्त्रे सञ्चिन्थ योज्यानि ॥ १० ॥
 वञ्जुलकरतं तिस्रिडिति
 दीप्तमथ क्लिप्कलीति तत्पूर्यम् ।
 श्येनशुकगृध्रकङ्काः
 प्रकृतेरन्यस्वरा दीप्ताः ॥ ११ ॥
 यानासनशय्या-
 निलयनं कपोतस्य सञ्चिन्तनं वा ।

अशुभप्रदं नराणां
 जातिविभेदेन कालो ऽन्यः ॥ १२ ॥
 आपाण्डुरस्य वर्षा-
 च्चिकपोतस्य चैव षण्मासात् ।
 कुङ्कुमधूमस्य फलं
 सद्यःपाकं कपोतस्य ॥ १३ ॥
 चिचिदिति शब्दः पूर्णः
 श्यामायाः श्रुलिश्रुलिति च धन्यः ।
 चञ्चेति च दीर्घः स्यात्
 स्वप्रिययोगाय चिक्चिगिति ॥ १४ ॥
 हारीतस्य तु शब्दो
 गुग्गुः पूर्णो ऽपरे प्रदीप्ताः स्युः ।
 स्वरवैचित्र्यं सर्वं
 भारद्वाज्याः शुभं प्राक्तम् ॥ १५ ॥
 किष्किषिशब्दः पूर्णः
 करायिकायाः शुभः कश्कहेति ।
 क्षेमाय केवलं करकरेति
 न त्वर्धसिद्धिकरः ॥ १६ ॥
 कोटुक्लीति क्षेम्यः
 स्वरः कोटुक्लीति दृष्टये तस्याः ।
 अफलः कोटिक्लीति च
 दीप्तः सञ्जुं कृतः शब्दः ॥ १७ ॥

शस्तं वामे दर्शनं दिव्यकस्य
 सिद्धिर्ज्ञेया इस्तमाचोच्छ्रितस्य ।
 तस्मिन्नेव प्रोक्तस्ये शरीराद्
 धात्री वश्यं सागरान्ताभ्युपैति ॥ १८ ॥
 फणिना ऽभिमुखागमो ऽरिसङ्गं
 कथयति बन्धवधात्ययं च यातुः ।
 अथवा समुपैति सव्यभागान्
 न स सिद्धौ कुशलो गमागमे च ॥ १९ ॥
 अङ्गेषु मूर्धसु च वाजिगजेरगाणां
 राज्यप्रदः कुशलोऽप्युपिशाद्वेषु ।
 भस्मास्थिकाष्ठतुषकेशद्वेषु दुःखं
 दृष्टः करोति येषु सन्ततो ऽन्दमेकम् ॥ २० ॥
 किलिकिलिचि तिलरिखनः
 शालः शालपत्रो ऽप्युपिशाद्वेषु ।
 शशको निशि वामपार्श्वतो
 वाशकस्तफलो निमग्नो ॥ २१ ॥
 किलिकिलिचिर्कृतं कायेः प्रदीप्तं
 न शुभम् अथवा मुहिमनि यातुः ।
 शुभमपि कश्चन चतुर्भुजम्
 कपिसदृशं च सुखाद्युपुदस्य ॥ २२ ॥
 पूर्वामनाः समिपतन्निपीडितानो-
 ध्यायः प्रदक्षिणमुपैति नरस्य वास्य ।

खे स्वस्तिकं यदि करोत्यथवा यियासो-
 स्तस्यार्थलाभमचिरात्सुमहत्करोति ॥ २३ ॥
 चाषस्य काकेन विरुध्यतश्चेत्
 पराजयो दक्षिणभागस्य ।
 वधः प्रयातस्य तदा नरस्य
 विपर्यये तस्य जयः प्रदिष्टः ॥ २४ ॥
 केकेति पूर्णकुटवद्यदि वामपार्श्वे
 चाषः करोति विरुतं जयकृत्तदा स्यात् ।
 क्रक्रेति तस्य विरुतं न शिवाय दीप्तं
 सन्दर्शनं शुभदमस्य सदैव यातुः ॥ २५ ॥
 अण्डीरकष्टीति रुतेन पूर्ण-
 छिट्टिद्विशब्देन तु दीप्त उक्तः ।
 फोण्टः शुभो दक्षिणभागसंस्थो
 न वाशिते तस्य हतो विशेषः ॥ २६ ॥
 श्रीकर्णरुतं तु दक्षिणे
 कककेति शुभं प्रकीर्तितम् ।
 मध्यं खलु चिकचिकीति य-
 च्छेपं सर्वमुशन्ति निष्फलम् ॥ २७ ॥
 दुर्बलेरपि चिरिस्विरिस्विति
 प्रोक्तमिष्टफलदं हि वामतः ।
 वामतश्च यदि दक्षिणं व्रजेत्
 कार्यसिद्धिमचिरेण यच्छति ॥ २८ ॥

चिक्चिकिवाशितमेव तु कृत्वा
 दक्षिणभागमुपैति च वामात् ।
 क्षेमकृद्देव न साधयते ऽर्थान्
 व्यत्ययगो वधबन्धभयाय ॥ २९ ॥
 क्रक्रेति च सारिका द्रुतं
 चेचे वाप्यभया विरौति या ।
 सा वक्ति यियासतो ऽचिराद्
 गात्रेभ्य क्षतजस्य विस्रुतिम् ॥ ३० ॥
 फेण्टकस्य वामतश्चिरिख्वरिख्विति खनः ।
 शोभनो निगद्यते प्रदीप्त उच्यते ऽपरः ॥ ३१ ॥
 श्रेष्ठं खरं स्यात्सुमुशन्ति वाम-
 मोङ्कारशब्देन हितं च यातुः ।
 अतः परं गर्दभनादितं यत्
 सर्वाश्रयं तत्रवदन्ति दीप्तम् ॥ ३२ ॥
 आकाररावी समृगः कुरङ्ग
 ओकाररावी पृषतश्च पूर्णः ।
 ये ऽन्ये स्वरास्ते कथिताः प्रदीप्ताः
 पूर्णाः शुभाः पापफलाः प्रदीप्ताः ॥ ३३ ॥
 भीता रुवन्ति कुकुक्किति ताम्रचूडा-
 ल्यक्ता रुतानि भयदान्यपराणि रात्रौ ।
 स्वस्थैः स्वभावविरुतानि निशावसाने
 ताराणि राष्ट्रपुरपार्थिवद्विदानि ॥ ३४ ॥

नानाविधानि विरुतानि हि छिपिकाया-
स्तस्याः शुभाः कुलुकुलुर्न शुभान्तु शेषाः ।

यातुर्बिडालविरुतं न शुभं सदैव

गोस्तु क्षुतं मरणमेव करोति यातुः ॥ ३५ ॥

हुंहुंगुगुगिति प्रियामभिलषन् क्रोशत्यलूको मुदा

पूर्णां स्याद्गुरुलु प्रदीप्तमपि च ज्ञेयं सदा किस्किंसि ।

विज्ञेयः कलहो यदा बलबलं तस्याः सकृद्वाशितं

दोषायैव टटट्टेति न शुभाः शेषाश्च दीप्ताः स्वराः ॥ ३६ ॥

सारसकूजितमिष्टफलं तद्

यद्युगपद्विरुतं मिथुनस्य ।

एकरुतं न शुभं यदि वा स्याद्

एकरुते प्रतिरौति चिरेण ॥ ३७ ॥

चिरिल्विरिल्विति स्वनैः शुभं करोति पिङ्गला ।

अतोऽपरे तु ये स्वराः प्रदीप्तसञ्ज्ञितास्तु ते ॥ ३८ ॥

इशिविरुतं गमनप्रतिषेधि

कुशुकुशु चेत् कलहं प्रकरोति ।

अभिमतकार्यगतिं च यथा सा

कथयति तं च विधिं कथयामि ॥ ३९ ॥

दिनान्तसन्ध्यासमये निवास-

मागम्य तस्याः प्रयतश्च वृक्षम् ।

देवान् समभ्यर्च्य पितामहादीन्

नवाम्बरैस्तं च तदं सुगन्धैः ॥ ४० ॥

एको निशीथे ऽनलदिक्स्थितश्च
दिव्येतरैस्तां शपथैर्नियोज्य ।

पृच्छेद्यथाचिन्तितमर्थमेव-

मनेन मन्त्रेण यथा शृणोति ॥ ४१ ॥

विद्धि भद्रे मया यत्त्वमिममर्थं प्रचोदिता ।

कल्याणि सर्ववचसां वेदिची त्वं प्रकीर्त्यसे ॥ ४२ ॥

आपृच्छे ऽद्य गमिष्यामि वेदितश्च पुनस्त्वहम् ।

प्रातरागम्य पृच्छे त्वामाग्नेयीं दिशमाश्रितः ॥ ४३ ॥

प्रचोदयाम्यहं यत्त्वां तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।

स्वचेष्टितेन कल्याणि यथा वेद्मि निराकुलम् ॥ ४४ ॥

इत्येवमुक्ते तरुमूर्धगाया-

श्चिरिस्चिरिस्वीति रुते ऽर्थसिद्धिः ।

अत्याकुलत्वं दिशिकारशब्दे

कुचाकुचेत्येवमुदाहृते वा ॥ ४५ ॥

अवाकप्रदाने विहितार्थसिद्धिः

पूर्वोक्तदिकचक्रफलैरथान्यत् ।

वाच्यं फलं चोत्तममध्यनीच-

शाखास्थितायां वरमध्यनीचम् ॥ ४६ ॥

दिग्मण्डले ऽभ्यन्तरवाद्यभागे

फलानि विन्धाद्गृहगोधिकायाः ।

छुच्छुन्दरी चिच्चिडिति प्रदीप्ता

पूर्णा तु सा तिसिडिति स्वनेन ॥ ४७ ॥

इति सर्वशाकुने शकुनरुताध्यायस्तृतीयः ।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृष्टसंहितायामष्टा-
शीतितमो ऽध्यायः ॥ * ॥

न्तुरगकरिकुम्भपर्याणसशीरदृष्टेष्टका-
 सञ्चयच्छत्रशय्यासनेलूखलानि ध्वजं चामरं
 शाङ्खलं पुष्पितं वा प्रदेशं यदा श्वावमूत्याग्रतो
 याति यातुस्तदा कार्यसिद्धिर्भवेदार्द्रके गोमये
 मिष्टभोज्यागमः शुष्कसम्मूत्रणे शुष्कमन्त्रं
 गुडो मोदकावाप्तिरेवाथवा ।
 अथ विषतरुकण्टकीकाष्ठपाषाण-
 शुष्कद्रुमास्थिश्मशानानि मूत्यावहत्याथवा
 यायिनो ऽग्रेसरो ऽनिष्टमास्थाति शय्याकुलालादि-
 भाण्डान्यभुक्तान्यभिन्नानि वा मूत्रयन् कन्यकादोषकृद्
 भुज्यमानानि चेद्दुष्टतां तद्गृह्णियास्तथा
 स्यादुपानत्फलं गोस्तु सम्मूत्रणे वर्णजः सङ्करः ।
 गमनमुखमुपानहं सम्प्रगृह्योपतिष्ठेद्यदा
 स्यात्तदा सिद्धये मांसपूर्णानने ऽर्थाप्तिरार्द्रेण चास्या
 शुभं साग्न्यलातेन शुष्केण चास्या गृहीतेन मृत्युः
 प्रशान्तोल्मुकेनाभिघातो ऽथ पुंसः शिरोहस्तपादादि-
 वक्त्रे भुवो ह्यागमो वस्त्रचीरादिभिर्व्यापदः
 केचिदाहुः सवस्त्रे शुभम् ।
 प्रविशति तु गृहं सशुष्कास्थिवक्त्रे प्रधानस्य
 तस्मिन्वधः शृङ्खलाशोर्णवस्त्रोवरचादि वा बन्धनं
 चोपगृह्योपतिष्ठेद्यदा स्यात्तदा बन्धनं
 लेढि पादौ विधुन्वन् स्वकर्णावुपर्याक्रमंश्चापि

विघ्नाय यातुर्विरोधे विरोधस्तथा स्वाङ्गकण्डूयने
स्यात्स्वपञ्चोर्ध्वपादः सदा दोषकृत् ॥ १ ॥

सूर्योदये ऽर्काभिमुखो विरैति
ग्रामस्य मध्ये यदि सारमेयः ।

एको यदा वा बहवः समेताः
शंसन्ति देशाधिपमन्यमाशु ॥ २ ॥

सूर्योन्मुखः श्वानलदिकस्थितश्च
चौरानलत्रासकरो ऽचिरेण ।

मध्याङ्गकाले ऽनलमृत्युशंसी
सशोणितः स्यात्कलहे ऽपराङ्गे ॥ ३ ॥

रुवन्दिनेशाभिमुखो ऽस्तकाले
दृषीषलानां भयमाशु धत्ते ।

प्रदोषकाले ऽनिलदिक्षुखस्तु
धत्ते भयं मासततस्करोत्यम् ॥ ४ ॥

उदक्षुखश्चापि निशार्धकाले
विप्रव्यथां गोहरणं च शास्ति ।

निशावसाने शिवदिक्षुखश्च
कन्याभिदूपानलगर्भपातान् ॥ ५ ॥

उच्चैःस्वराः स्युस्तृणकूटसंस्थाः
प्रासादवेश्मोत्तमसंस्थिता वा ।

वर्षासु दृष्टिं कथयन्ति तीव्रा-
मन्यच मृत्युं दहनं रुजश्च ॥ ६ ॥

प्राट्काले ऽवग्रहे ऽभो ऽवगाह्य
 प्रत्यावृत्तौ रेचकैश्चाप्यभीक्षणम् ।
 आधुन्वन्तो वा पिबन्तश्च तोयं
 वृष्टिं कुर्वन्त्यन्तरे द्वादशाहात् ॥ ७ ॥
 द्वारे शिरो न्यस्य बहिः शरीरं
 रोरूयते श्वा गृहिणो विलोक्य ।
 रोगप्रदः स्यादथ मन्दिरान्त-
 र्बहिर्मुखः शंसति बन्धकीं ताम् ॥ ८ ॥
 कुक्ष्यमुत्किरति वेश्मनो यदा
 तत्र खानकभयं भवेत्तदा ।
 गोष्ठमुत्किरति गोग्रहं वदेद्
 धान्यलब्धिमपि धान्यभूमिषु ॥ ९ ॥
 एकेनाक्ष्णा साश्रुणा दीनदृष्टि-
 र्मन्दाहारो दुःखकृत्तद्गृहस्य ।
 गोभिः सार्धं क्रीडमाणः सुभिक्षं
 श्वेमरोग्यं चाभिधत्ते मुदं च ॥ १० ॥
 वामं जिघ्रेज्जानु वित्तागमाय
 स्त्राभिः साकं विग्रहो दक्षिणं चेत् ।
 ऊरुं वामं चेन्द्रियार्थोपभोगाः
 सव्यं जिघ्रेदिष्टमिच्चैर्विरोधः ॥ ११ ॥
 पादौ जिघ्रेद्यायिनश्चेद्याचां
 प्राहार्याग्निं वाञ्छिता निश्चलस्य ।

स्थानस्थस्योपनहौ चेद्विजिघ्रेत्
 क्षिप्रं यात्रां सारमेयः करोति ॥ १२ ॥
 उभयोरपि जिघ्रणे हि बाह्वो-
 र्विज्ञेयो रिपुचैरसम्प्रयोगः ।
 अथ भस्मनि गोपयति भक्षान्
 मांसास्थीनि च शीघ्रमग्निकोपः ॥ १३ ॥
 ग्रामे भषित्वा वा च बहिः प्रशशाने
 भषन्ति चेदुत्तमपुंविनाशः ।
 यियासतश्चाभिमुखो विरौति
 यदा तदा श्वा निरुणहि यात्राम् ॥ १४ ॥
 उकारवर्णेन रुते ऽर्थसिद्धि-
 रोकारवर्णेन च वामपार्श्वे ।
 व्याक्षेपमौकाररुतेन विद्यान्
 निषेधस्तत्सर्वरुतैश्च पश्चात् ॥ १५ ॥
 षञ्जेति चोच्चैश्च मुहुर्मुहुर्ये
 रुवन्ति दण्डैरिव ताश्चमानाः ।
 श्वानो ऽभिधावन्ति च मण्डलेन
 ते शून्यतां मृत्युभयं च कुर्युः ॥ १६ ॥
 प्रकाश्य दन्तान्यदि खेदि स्तृक्खी
 तदाशनं मिष्टमुशन्ति तद्दिदः ।
 यदाननं चावलिहेन्न स्तृक्खी
 प्रहतभोज्ये ऽपि तदान्नविघ्नकृत् ॥ १७ ॥

ग्रामस्य मध्ये यदि वा पुरस्य
 भवन्ति संहत्य मुहुर्मुहुर्ये ।
 ते क्लेशमास्थान्ति तदीश्वरस्य
 श्वारण्यसंस्थो मृगवद्विचिन्त्यः ॥ १८ ॥
 वृक्षोपगे क्रोशति तोयघातः
 स्यादिन्द्रकीले सचिवस्य पीडा ।
 वायोर्गृहे सस्यभयं गृहान्तः
 पीडा पुरस्यैव च गोपुरस्ये ॥ १९ ॥
 भयं च शय्यासु तदीश्वराणां
 याने भवन्ती भयदास्य पश्चात् ।
 अवापसव्या जनसन्निवेशे
 भयं भवन्तः कथयन्त्यरीषाम् ॥ २० ॥

इति सर्वशाकुने अचक्रं नामाध्यायस्तुर्यः ।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृष्टसंहितायामेकोन-
 नवतितमोऽध्यायः ॥ १० ॥

शक्तिः शृङ्गायाः सहसा चक्षेण
 निशित इवां शिथिले मदाति ।
 इन्द्रवज्रान्ते परात्पुंशुः
 पूर्णः सरोः स्थे कथितः प्रदीतः ॥ १ ॥
 सोमाग्निवायुः कुरु कुरु मन्दः
 पूर्णः सभापदभयः स सभायाः

ये ऽन्ये स्वरास्ते प्रकृतेरपेताः

सर्वे च दीप्ता इति सम्प्रदिष्टाः ॥ २ ॥

पूर्वादीच्योः शिवा शस्ता शान्ता सर्वत्र पूजिता ।

धूमिताभिमुखी हन्ति स्वरदीप्ता दिगीश्वरान् ॥ ३ ॥

सर्वदित्त्वशुभा दीप्ता विश्लेषेणाश्लशोभना ।

पुरे सैन्ये ऽपसव्या च कष्टा सूर्योन्मुखी शिवा ॥ ४ ॥

याहीत्यग्निभयं शास्ति टाटेति मृतवेदिका ।

धिग्धिग्दुःकृतमाचष्टे सज्वाला देशनाशिनी ॥ ५ ॥

नैव दारुणतामेके सज्वालायाः प्रचक्षते ।

अर्काद्यनलवत्तस्या वक्त्रं लालास्वभावतः ॥ ६ ॥

अन्यप्रतिरुता याम्या सोढन्यमृतशंसिनी ।

वारुण्यनुरुता सैव शंसते सखिणे मृतम् ॥ ७ ॥

अश्लोभः अवशं चेष्टं धनप्राप्तिः प्रियागमः ।

श्लोभः प्रधानभेदश्च वाहनानां च सम्पदः ॥ ८ ॥

फलमा सप्तमादेतदग्राह्यं परतो रुतम् ।

याम्यायां तद्विपर्यस्तं फलं षट्पञ्चमाहते ॥ ९ ॥

या रोमाञ्चं मनुष्याणां शक्तम्बूचं च वाजिनाम् ।

रावाचासं च जनयेत्सा शिवा न शिवप्रदा ॥ १० ॥

मौनं गता प्रतिरुते नरद्विरदवाजिनाम् ।

या शिवा सा शिवं सैन्ये पुरे वा सम्प्रयच्छति ॥ ११ ॥

भेमेति शिवा भयङ्करी

भोभो व्यापदमादिशेच सा ।

मृतिबन्धनिवेदिनी फिक
 ह्रह्म चात्महिता शिवा स्वरे ॥ १२ ॥
 शान्ता त्ववर्णात्परमौ रुवन्ती
 टाटामुदीर्णामिति वाश्यमाना ।
 टेटे च पूर्वं परतश्च येथे
 तस्याः स्वतुष्टिप्रभवं रुतं तत् ॥ १३ ॥
 उच्चैर्घोरं वर्णमुच्चार्य पूर्वं
 पश्चात्क्रोशेत्क्रोष्टुकस्यानु रूपम् ।
 या सा क्षेमं प्राह विसस्य चाग्निं
 संयोगं वा प्रोषितेन प्रियेण ॥ १४ ॥

इति सर्वशाकुने शिवारुतं नाम पञ्चमो ऽध्यायः ।

इति श्रीवराहमिहिरकृती दृष्टसंहितायां नवति-
 तमो ऽध्यायः ॥ • ॥

सीमागता बन्धमृगा रुवन्तः
 स्थिता ब्रजन्तो ऽथ समापतन्तः ।
 सम्पृथ्वतीतैष्यभयानि दीप्ताः
 कुर्वन्ति शून्यं परितो ध्रुमन्तः ॥ १ ॥
 ते प्राग्यसत्पैरनुवाश्यमाना
 भवाय रोषाय भवन्ति बन्धैः ।
 द्वाभ्यामपि प्रथमनुवाशितास्ते
 बन्दिप्रहायैव मृगा भवन्ति ॥ २ ॥

वन्य सत्त्वे द्वारसंस्थे पुरस्य
 रोधो वाच्यः सम्प्रविष्टे विनाशः ।
 सूते मृत्युः स्याद्भयं संस्थिते च
 गेहं याते बन्धनं सम्प्रदिष्टम् ॥ ३ ॥

इति सर्वशाकुने मृगषेष्टितं नाम षष्ठोऽध्यायः ।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ वृहत्संहितायामेक-
 नवतितमोऽध्यायः ॥ • ॥

गावो दीनाः पार्थिवस्याशिवाय
 पादैर्भूमिं कुट्टयन्त्यश्च रोगान् ।
 मृत्युं कुर्वन्त्यश्रुपूनीयतास्यः
 पत्युर्भीतास्तस्करानारुवन्त्यः ॥ १ ॥
 अकारणे क्रोशति चेदनर्था
 भयाय रात्रौ वृषभः शिवाय ।
 भृशं निरुद्धा यदि मक्षिकाभि-
 स्तदाशु वृष्टिं सरमात्मजैर्वा ॥ २ ॥
 आगच्छन्त्यो वेश्म बभ्रारवेण
 संसेवन्त्यो गोष्ठवृद्धौ गवां गाः ।
 आर्द्राज्ञो वा हृष्टरोन्मथः प्रहृष्टा
 धन्या गावः स्युर्महिष्योऽपि चैवम् ॥ ३ ॥

इति सर्वशाकुने गवेऋतं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ वृहत्संहितायां द्वाव-
 तितमोऽध्यायः ॥ * ॥

उत्सर्गान्न शुभदमांसनापरस्थं
 वामे च ज्वलनमतो ऽपरं प्रशस्तम् ।
 सर्वाङ्गज्वलनमष्टविदं हयानां
 द्वे वर्षे दहनकणाश्च धूपनं वा ॥ १ ॥

अन्तःपुरं नाशमुपैति भेद्रे
 कोशः क्षयं यात्युदरे प्रदीप्ते ।
 पायौ च पुच्छे च पराजयः स्याद्
 वक्त्रोत्तमाङ्गज्वलने जयश्च ॥ २ ॥

स्कन्धासनांसज्वलनं जयाय
 बन्धाय पादज्वलनं प्रदिष्टम् ।
 ललाटवक्षोऽक्षिभुजेषु धूमः
 पराभवाय ज्वलनं जयाय ॥ ३ ॥

नासापुटप्रोथशिरोऽश्रुपात-
 नेत्रेषु राशौ ज्वलनं जयाय ।

पालाशताम्रासितकर्बुराणां
 नित्यं शुकाभस्य सितस्य चेष्टम् ॥ ४ ॥

प्रद्वेषो यवसाम्भसां प्रपतनं स्वदेो निमित्तादिना
 कर्म्यो वा वदनाच्च रक्तपतनं धूमस्य वा सम्भवः ।
 अस्वप्नश्च विरोधिता मिश्रि दिवा निद्रालसधानता
 सादो ऽधोमुखता विचेष्टितमिदं नेष्टं स्मृतं वाजिनाम् ॥

आरोहणमन्धवाजिनां [५]

पर्याणादियुतस्य वाजिनः ।

उपवाह्यतुरङ्गमस्य वा
 कल्पस्यैव विपन्न शोभना ॥ ६ ॥
 कौश्वद्रिपुवधाय हेर्षितं
 ग्रीवया त्वचलया च सोऽम्बुखम् ।
 स्निग्धमुच्चमनुनादि हृष्टवद्
 ग्रासरुहवदनैश्च वाजिभिः ॥ ७ ॥
 पूर्वपाचदधिविग्रदेवता
 गन्धपुष्पफलकाञ्चनादि वा ।
 द्रव्यमिष्टमद्यवापरं भवे-
 हेषतां यदि समीपतो जयः ॥ ८ ॥
 भक्षपानखलिनाभिनन्दिनः
 पत्युरौपयिकनन्दिनो ऽथवा ।
 सव्यपार्श्वगतहृष्टयो ऽथवा
 वाञ्छितार्थफलदास्तुरङ्गमाः ॥ ९ ॥
 वामैश्च पादैरभिताडयन्तो
 मर्दो प्रवासाय भवन्ति भर्तुः ।
 सन्ध्यासु दीप्यामवशोऽप्यन्तो
 हेषन्ति चेदन्धपराजयाय ॥ १० ॥
 अतीव हेषन्ति क्षिरान्ति वायान्
 निद्रारताश्च पण्डितान् वाचान्
 रोमत्यक्षैश्च शीतलान् च
 पांशुन् प्रसक्तान् च भवन्ति ॥ ११ ॥

समुद्रवहदक्षिणपार्श्वशायिनः
 पदं समुत्क्षिप्य च दक्षिणं स्थिताः ।
 जयाय श्रेष्ठेषु वाहनेष्विदं
 फलं यथासम्भवमादिशेदुधः ॥ १२ ॥
 आरोहति क्षितिपतौ विनयोपपन्नो
 यात्रानुगोऽन्यतुरगं प्रति हेषते च ।
 वक्रोऽथ वा स्पृशति दक्षिणमात्मपार्श्वं
 योऽश्वः स भर्तुरचिरात्प्रचिनाति लक्ष्मीम् ॥
 मुहुर्मुहुर्मूषशकृत् करोति ॥ १३ ॥
 न ताश्चमानोऽप्यनुलोमयायो ।
 अकार्यभीतोऽश्रुविलोचनश्च
 शुभं न भर्तुस्तुरगोऽभिधत्ते ॥ १४ ॥

उक्तमिदं ह्यचेष्टितमत ऊर्ध्वं दन्तिनां प्रवक्ष्यामि ।
 तेषां तु दन्तकल्पनभङ्गस्थानादिचेष्टाभिः ॥ १५ ॥

इति सर्वशाकुनं अश्वचेष्टितं नामाध्यायोऽष्टमः ।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृष्टत्संहितायां चयो-
 नवतितमोऽध्यायः ॥ * ॥

दन्तस्य मूलापरिधिद्विराद्यां प्रोक्ताः कल्पनेच्छेधम् ।
 अधिकमनुपपत्त्यां चूर्णद्विरिचरिणां विचिन्त ॥ १ ॥
 श्रीवत्सवर्षसाम्बन्धवत्सामरासु कल्पेषु ।
 चेदे दृष्टेयानिभिरुपपन्नदृष्टितोऽस्मानि ॥ २ ॥

प्रहरणसदृशेषु जयो नन्दावर्ते प्रनष्टदेशाग्निः ।
 लोष्टे तु लब्धपूर्वस्य भवति देशस्य सम्प्राग्निः ॥ ३ ॥
 स्त्रीरूपे स्वविनाशे धृङ्गारे ऽभ्युत्थिते सुतोत्पत्तिः ।
 कुम्भेन निधिप्राप्तिर्याचाविघ्नं च दण्डेन ॥ ४ ॥
 ककलासकपिभुजङ्गेषुभिस्त्वव्याधयो रिपुवशत्वम् ।
 यध्रोलूकध्वाङ्गश्येनाकारेषु जनमरकः ॥ ५ ॥
 पाशे ऽथवा कबन्धे नृपसृत्युर्जनविपत्सुते रक्ते ।
 कृष्णे श्यावे रूक्षे दुर्गन्धे चाशुभं भवति ॥ ६ ॥
 शुक्लः समः सुगन्धिः स्निग्धश्च शुभावहो भवेच्छेदः ।
 गलनम्बानफलानि च दन्तस्य समानि भङ्गेन ॥ ७ ॥

मूलमध्यदशनाग्रसंस्थिता
 देवदैत्यमनुजाः क्रमात्ततः ।
 स्फोतमध्यपरिपेक्षवं फलं
 शीघ्रमध्यचिरकालसम्भवम् ॥ ८ ॥
 दन्तभङ्गफलमथ दक्षिणे
 भूपदेशबलविद्रवप्रदम् ।
 वामतः सुतपुरोहितेभपान्
 हन्ति साटविकदारनायकान् ॥ ९ ॥
 आदिश्रेदुभयभङ्गदर्शनात्
 पार्थिवस्य सकलं कुलक्षयम् ।
 सौम्यलप्रतिषिभादिभिः शुभं
 वर्धते ऽशुभमता ऽन्यथा भवेत् ॥ १० ॥

क्षीरदृष्टफलपुष्पपादपे-
 घापगतटविघट्टितेन वा ।
 वाममध्यरदभङ्गखण्डनं
 शत्रुनाशकदतोऽन्यथापरम् ॥ ११ ॥

खलितगतिरकस्माच्चस्तकर्णौ ऽतिदीनः
 सति मृदु सुदीर्घं न्यस्तहस्तः पृथिव्याम् ।

दुतमुकुलितदृष्टिः स्वप्नशीलो विलोमो
 भयकदहितभक्षी नैकशो ऽसृक् छलश्च ॥ १२ ॥

पक्षीकस्याणुगुल्मक्षुपतरुमथनः स्वेच्छया हृष्टदृष्टि-
 नोऽप्याचानुलोमं त्वरितपदगतिर्वक्त्रमुन्नाम्य चोच्चैः ।
 सप्तसन्नाहकाले जनयति च मुहुः शीकरं दृंहितं वा
 मृगस्य वा मदात्तिर्जयकदम्ब रदं वेष्टयन्दक्षिणं वा ॥ १३ ॥

प्रवेशनं वारिणि वारणस्य
 ग्राहेण नाशाय भवेन्नृपस्य ।
 ग्राहं गृहीत्वोत्तरणं द्विपस्य
 तोयात् स्थलं दृष्टिकरं नृभर्तुः ॥ १४ ॥

सर्वशाकुने हस्तीकृतं नामाध्यायो नवमः ।

श्रीवराहमिहिरकृता दृष्टसंहितायां चतु-
 र्थोऽध्यायः ॥ * ॥

प्राच्यानां दक्षिणतः
 शुभदः काकः करायिका वामा ।
 विपरीतमन्यदेशे-
 घवधिलोकप्रसिद्धौव ॥ १ ॥
 वैशाखे निरुपहते
 वृक्षे नोडः सुभिन्नशिवदाता ।
 निन्दितकण्टकिशुष्के-
 घसुभिन्नभयानि तद्देशे ॥ २ ॥
 नीडे प्राकक्षाखायां
 शरदि भवेत्प्रथमवृष्टिरपरस्याम् ।
 याम्योत्तरयोर्मध्या
 प्रधानवृष्टिस्तरोरुपरि ॥ ३ ॥
 शिखिदिशि मण्डलवृष्टि-
 नैर्ऋत्यां शारदस्य निष्पत्तिः ।
 परिशेषयोः सुभिन्नं
 मूषकसम्पत्तु वायव्ये ॥ ४ ॥
 शरदर्भगुल्मवल्ली-
 धान्यप्रासादमेहनिकेषु ।
 शून्यो भवति स देश-
 क्षीरान्तवृष्टिरेतानां ॥ ५ ॥
 द्विचिचतुःशावर्त्त
 सुभिन्नदं पश्चिमिदंशावर्त्तम् ।

अण्डावकिरण-
 मेकाण्डताप्रकृतिश्च न शिवाय ॥ ६ ॥
 शैरकवर्षे शौरा-
 श्चिचैर्मृत्युः सितैश्च वज्रिभयम् ।
 विकसैर्दुर्भिन्नभयं
 काकानां निर्दिशेच्छिशुभिः ॥ ७ ॥
 अनिमित्तसंहति-
 ग्राममध्यगैः क्षुद्रयं प्रवाशद्भिः ।
 रोधश्चक्राकारै-
 रभिघातो वर्गवर्गस्थैः ॥ ८ ॥
 अभयाश्च तुण्डपक्षै-
 श्चरखविघातैर्जनानभिभवन्तः ।
 कुर्वन्ति शशुष्टुष्टिं
 निशि विचरन्तो जनविनाशम् ॥ ९ ॥
 सद्येन खे धमद्भिः
 स्वभयं विपरीतमण्डलैश्च परात् ।
 अत्याकुलं धमद्भि-
 र्वातोद्ग्रासो भवति कायेः ॥ १० ॥
 कर्धमुहाश्चलपदाः
 पत्रि भवन्तः सुहृदोश्च भ्रातृमुखाः ।
 सेनाङ्गस्था युव
 परिमोर्ण शान्तापवाः ॥ ११ ॥

भस्मास्थिकेशपचाणि
 विन्ध्यसन् पतिवधाय शय्यायाम् ।
 मणिकुसुमाद्यवहनेन
 सुतस्य जन्माङ्गनायाश्च ॥ १२ ॥
 पूर्णानने ऽर्थलाभः
 सिकताधान्यार्द्रमृत्कुसुमपूर्वैः ।
 भयदे जनसंवासाद्
 यदि भाण्डान्यपनयेत्काकः ॥ १३ ॥
 वाहनशस्त्रोपान-
 च्छ्वच्छायाङ्गकुट्टने मरणम् ।
 तत्पूजायां पूजा
 विष्टाकरणे ऽन्नसम्प्राप्तिः ॥ १४ ॥
 यद्द्रव्यमुपनयेत्तस्य
 लब्धिरपहरति चेत्यणाशः स्यात् ।
 पीतद्रव्ये कनकं
 वस्त्रं कार्पासिके सिते रूप्यम् ॥ १५ ॥
 सश्वीरार्जुनवञ्जुल-
 कूलद्वयपुलिनगा रुवन्तश्च ।
 प्रावृषि वृष्टिं दुर्दिन-
 मन्दतौ स्नाताश्च पांशुकर्षीः ॥ १६ ॥
 दाहणनादस्तु-
 कोटरोपगो वायसो मयाभवाद् ॥

सलिलमवलोक्य विरुवन
 वृष्टिकरो ऽब्दानुरावी वा ॥ १७ ॥
 दीप्तोद्दिप्तो विटपे
 विकुट्टयन्वह्निहृदिधुतपक्षः ।
 रक्तद्रव्यं दग्धं
 तृणकाष्ठं वा गृहे विदधत् ॥ १८ ॥
 ऐन्द्यादिदिगवलोक्य
 सूर्याभिमुखो रुचन् गृहे गृह्यः ।
 राजभयचोरबन्धन-
 कलहाः स्युः पशुभयं चेति ॥ १९ ॥
 शान्तामैन्द्रीमवलोकयन्
 रुयाद्राजपुरुषमिषान्तिः
 भवति च सुवर्णलम्बिः
 शाल्यन्त्रगुडाशनातिश्च ॥ २० ॥
 आग्नेय्यामनलाजीविक-
 युवतिप्रवरधातुलाभश्च ।
 याम्ये माषकुलत्या
 भोज्यं गान्धर्विकैर्योगः ॥ २१ ॥
 नैर्ऋत्यां दूताश्चोपकरण-
 दधितैलपल्लवभोज्यातिः ।
 वारुण्यां मांससुरा-
 सबधान्त्रसमुत्तरातिः ॥ २२ ॥

मारुत्यां शस्त्रायुध-
 सरोजवल्लीफलाशमाप्तिश्च ।
 सौम्यायां परमान्नाशनं
 तुरङ्गाम्बरप्राप्तिः ॥ २३ ॥
 ऐशान्यां सम्प्राप्ति-
 र्घृतपूर्णानां भवेदननुहश्च ।
 एवं फलं गृहपते-
 र्गृहपृष्ठसमाश्रिते भवति ॥ २४ ॥
 गमने कर्णसमञ्चेत्
 क्षेमाय न कार्यसिद्धये भवति ।
 अभिमुखमुपैति यातु-
 र्विहवन्निवर्तयेद्याचाम् ॥ २५ ॥
 वामे वाशित्वादौ
 दक्षिणपार्श्वे ऽनुवाशते यातुः ।
 अर्थापहारकारी
 तद्विपरीतो ऽर्थसिद्धिकारः ॥ २६ ॥
 यदि वाम एव विह्वान्
 मुहुर्मुहुर्वापितो ऽनुशान्तिमाप्तिः ।
 अर्थस्य भवति सिद्धौ
 प्राच्यानां दक्षिणोत्तरेण ॥ २७ ॥
 वामः प्रतिशोभयति
 वाशन् वसनस्य विप्रशान्तिः ।

तत्रस्थस्यैव फलं
 कथयति यद्वाञ्छितं गमने ॥ २८ ॥
 दक्षिणविरुतं कृत्वा
 वामे विरुयाद्यथेक्षितावाप्तिः ।
 प्रतिवाश्य पुरो यायाद्
 द्रुतमग्रे ऽर्थागमो ऽतिमहान् ॥ २९ ॥
 प्रतिवाश्य पृष्ठतो दक्षिणेन
 यायाद् द्रुतं क्षतजकर्ता ।
 एकचरणो ऽर्कमीक्षन्
 विरुवंश्च पुरो रुधिरहेतुः ॥ ३० ॥
 दृष्टार्कमेकपाद-
 स्तुण्डेन लिखेद्यदा स्वपिच्छानि ।
 परतो जनस्य महतो
 वधमभिधत्ते तदा बलिभुक् ॥ ३१ ॥
 सस्योपेते श्वेचे
 विरुवति शान्ते ससस्यभूलाब्धिः ।
 आकुलचेष्टो विरुवन्
 सीमान्ते सोमस्यपातुः ॥ ३२ ॥
 सुविग्धपचपस्तं
 कुसुमपत्राणां सुविग्धपचपस्तं
 ससीरात्रसुविग्ध
 मनोपचपस्तं ॥ ३३ ॥

निष्पन्नसस्यशाञ्चल-
 भवनप्रासादहर्म्यहरितेषु ।
 धान्योच्छ्रयमङ्गल्येषु चैव
 विरुवन्धनागमदः ॥ ३४ ॥
 गोपुच्छस्थे वल्मीकगे ऽथवा
 दर्शनं भुजङ्गस्य ।
 सद्यो ज्वरो महिषगे
 विरुवति गुल्मे फलं स्वल्पम् ॥ ३५ ॥
 कार्यस्य व्याघात-
 स्तृणकूटे वामगे ऽस्थिसंस्थे वा ।
 ऊर्ध्वाम्बुष्टे ऽशनिहते च
 काके वधो भवति ॥ ३६ ॥
 कण्टकिमिश्रे सौम्ये
 सिद्धिः कार्यस्य भवति कलहस्य ।
 कण्टकिनि भवति कलहे
 वल्मीपरिवेष्टिते बन्धः ॥ ३७ ॥
 छिन्नाग्रे ऽङ्गच्छेदः
 कलहः शुष्कद्रुमस्थिते ध्वाङ्गे ।
 पुरतश्च पृष्ठतो वा
 गोमयसंस्थे धनप्राप्तिः ॥ ३८ ॥
 मृतपुरुषाङ्गावयव-
 स्थितो ऽभिवाशनं करोति मृत्युभयम् ।

भञ्जन्नस्थि च चङ्गा
 यदि वाश्वस्थिभङ्गाय ॥ ३९ ॥
 रज्ज्वस्थिकाष्ठकच्छकि-
 निःसारशिरोरुहानने स्वति ।
 भुजगगददंघ्रितस्कर-
 शस्त्राग्निभयान्यनुक्रमशः ॥ ४० ॥
 सितकुसुमाशुचिमांसा-
 नने ऽर्धसिद्धिर्यथेषिता यातुः ।
 धुन्वन् पक्षावूर्ध्वानने च
 विघ्नं मुहुः कणति ॥ ४१ ॥
 यदि शृङ्खलां वरचां
 वल्लीं वादाय वाशते बन्धः ।
 पाषाणस्थे च भयं
 क्लिष्टापूर्वाध्विकयुतिश्च ॥ ४२ ॥
 अन्योऽन्यभक्षसङ्ग्रामितानने
 तुष्टिरुत्तमा भवति ।
 विज्ञेयः स्त्रीलाभो
 दम्पत्योर्वीक्षणैर्युगपत् ॥ ४३ ॥
 प्रमदाशिरुपगत-
 पूर्णकुम्भसंस्थे ऽज्जनार्धसम्प्राप्तिः ।
 घटकुट्टने सुतविपद्
 घटोपहृदने ऽजसम्प्राप्तिः ॥ ४४ ॥

स्कन्धावारादीनां
 निवेशसमये ह्वंश्चलत्पक्षः ।
 ह्रचयते ऽन्यस्थानं
 निश्चलपक्षस्तु भयमात्रम् ॥ ४५ ॥
 प्रविशद्भिः सैन्यादीन्
 ससृधकङ्कैर्विनामिषं ध्वाङ्कैः ।
 अविरुद्धैस्तैः प्रीति-
 र्द्विषतां युद्धं विरुद्धैश्च ॥ ४६ ॥
 बन्धः ह्रकरसंस्थे
 पङ्काक्ते ह्रकरे द्विके ऽर्थाप्तिः ।
 क्षेमं खरोद्गसंस्थे
 केचित्प्राहुर्वधं तु खरे ॥ ४७ ॥
 वाहनलाभो ऽश्वगते
 विरुवत्यनुयायिनि क्षतजपातः ।
 अन्ये ऽप्यनुव्रजन्तो
 यातारं काकवद्विहगाः ॥ ४८ ॥
 द्वात्रिंशत्प्रविभक्ते
 दिक्चक्रे यद्यथा समुद्दिष्टम् ।
 तत्तत्तथा विधेयं
 गुणदोषफलं यियास्त्रनाम् ॥ ४९ ॥
 का इति काकस्य इत्तं
 स्वनिक्षयसंस्थस्य निष्फलं प्रोक्तम् ।

कव इति चात्मप्रीत्यै
 क इति रुते स्निग्धभिजातिः ॥ ५० ॥
 कर इति कलहं कुरुकुरु च
 हर्षमथ कटकटेति दधिभक्तम् ।
 केके विरुतं कुकु वा
 धनलाभं यायिनः प्राह ॥ ५१ ॥
 खरेखरे पथिकागम-
 माह कखाखेति यायिनो मृत्युम् ।
 गमनप्रतिषेधिक-
 माखलखल सद्योऽभिवर्षाय ॥ ५२ ॥
 काकेति विघातं
 काकटीति चाहारदूषणं प्राह ।
 प्रीत्यास्पदं कवकवेति
 बन्धमेवं कगाकुरिति ॥ ५३ ॥
 करकौ विरुते वर्षं
 गुडवच्चासाय वडिति वस्त्रातिः ।
 कलयेति च संयोगः
 शूद्रस्य ब्राह्मणैः साकम् ॥ ५४ ॥
 फडिति फलातिः
 फलवाहिदर्शनं टडिति प्रहाराः स्युः ।
 स्त्रीलाभः स्त्रीति बते
 गडिति गवां पुडिति पुष्याणाम् ॥ ५५ ॥

युञ्ज्याय टाकुटाकिति
 गुहु वह्निभयं कटेकटे कलहः ।
 टाकुलि चिष्टिचि केकिकेति
 पुरञ्चेति दोषाय ॥ ५६ ॥
 काकद्वयस्यापि समानमेतत्
 फलं यदुक्तं हतचेष्टिताद्यैः ।
 पतचिणो ऽन्ये ऽपि यथैव काको
 वन्याः श्रवचोपरिदंघ्रिणो ये ॥ ५७ ॥
 स्थलसलिलचराणां व्यत्ययो मेघकाले
 प्रचुरसलिलवृष्ट्यै श्रेयकाले भयाय ।
 मधु भवननिलीनं तत्करोत्याशु शून्यं
 मरणमपि निलीना मक्षिका मूर्ध्नि नीला ॥ ५८ ॥
 विनिक्षिपन्त्यः सलिले ऽण्डकानि
 पिपीलिका वृष्टिनिरोधमाहुः ।
 तरुस्थलं वापि नयन्ति निम्नाद्
 यदा तदा ताः कथयन्ति वृष्टिम् ॥ ५९ ॥
 कार्यं तु मूलशकुने ऽन्तरजे तदह्नि
 विन्द्यात्फलं नियतमेवमिमे विचिन्त्याः ।
 प्रारम्भयानसमयेषु तथा प्रवेशे
 ग्राह्यं क्षुतं न शुभदं क्वचिदप्युशन्ति ॥ ६० ॥
 शुभं दशापाकमविघ्नसिद्धिं
 मूलाभिरक्षामद्यवा सहायान् ।

इष्टस्य संसिद्धिमनामयत्वं

वदन्ति ते मानयितुर्नृपस्य ॥ ६१ ॥

क्रोशादूर्ध्वं शकुनिभिरुतं निष्फलं प्राहुरेके

तत्रानिष्टे प्रथमशकुने मानयेत्पञ्च षट् च ।

प्राणायामान्नृपतिरशुभे षोडशैव द्वितीये

प्रत्यागच्छेत्स्वभवनमतो यद्यनिष्टस्तृतीयः ॥ ६२ ॥

इति सर्वशाकुने वायसरुतं नाम दशमो ऽध्यायः ।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पञ्च-

नवतितमो ऽध्यायः ॥ * ॥

दिग्देशचेष्टास्वरवासरर्क्ष-

मुहूर्तहोराकरणोदयांशान् ।

चिरस्थिरोन्मिश्रबलाबलं च

बुद्ध्या फलानि प्रवदेद्द्रुतज्ञः ॥ १ ॥

द्विविधं कथयन्ति संस्थिताना-

मागामि स्थिरसञ्ज्ञितं च कार्यम् ।

नृपदूतचरान्यदेशजाता-

न्यभिघातः स्वजनादि चागमाख्यम् ॥ २ ॥

उदङ्गसङ्गृहणभोजनचौरवह्नि-

वर्षात्सवात्मजवधाः कलहो भयं च ।

वर्गः स्थिरो ऽयमुदयेन्दुयुते स्थिरर्क्षं
 विन्द्यात्स्थिरं चरगृहे च चरं यदुक्तम् ॥ ३ ॥
 स्थिरप्रदेशोपलमन्दिरेषु
 सुरालये भृजसन्निधौ च ।
 स्थिराणि कार्याणि चराणि यानि
 चलप्रदेशादिषु चागमाय ॥ ४ ॥
 आर्षोदयर्क्षक्षणादिगजलेषु
 पक्षावसानेषु च ये प्रदीप्ताः ।
 सर्वे ऽपि ते वृष्टिकरा रुवन्तः
 शान्तो ऽपि वृष्टिं कुरुते ऽम्बुचारी ॥ ५ ॥
 आग्नेयदिग्लग्नमुहूर्तदेशे-
 घर्कप्रदीप्तो ऽग्निभयाय रौति ।
 विष्ट्यां यमर्क्षोदयकण्ठकेषु
 निष्पत्रवल्लीषु च मोषकृत्यात् ॥ ६ ॥
 ग्राम्यः प्रदीप्तः स्वरचेष्टिताभ्या-
 मुग्रो रुवन् कण्ठकिनि स्थितश्च ।
 भौमर्क्षलग्ने यदि नैर्ऋतीं च
 स्थितो ऽभितश्चेत्कलहाय वृष्टः ॥ ७ ॥
 लग्ने ऽथवेन्दोर्भृगुभांशसंस्थे
 विदिकस्थितो ऽधोवदनश्च रौति ।
 दीप्तः स चेत्सङ्ग्रहणं करोति
 यान्या तथा या विदिशि प्रदिष्टा ॥ ८ ॥

पुंराशिलग्नौ विषमे तिथौ च
 दिक्स्थः प्रदीप्तः शकुनो नरास्थः ।
 वाचं तदा सङ्ग्रहणं नराणां
 मिश्रे भवेत्पण्डकसम्प्रयोगः ॥ ९ ॥
 एवं रवेः क्षेत्रनवांगलग्नौ
 लग्नौ स्थिते वा स्वयमेव सूर्ये ।
 दीप्तो ऽभिधत्ते शकुनो विवासं
 पुंसः प्रधानस्य हि कारणं तत् ॥ १० ॥
 प्रारभ्यमाणेषु च सर्वकार्यै-
 ष्वर्कान्विताद्वाङ्गणयेद्विलग्नम् ।
 सम्पद्विपश्चेति यथाक्रमेण
 सम्पद्विपद्वापि तथैव वाच्या ॥ ११ ॥
 काणेनाक्षणा दक्षिणेनैति सूर्ये
 चन्द्रे लग्नाद्वादशे चेतरेण ।
 लग्नस्थे ऽर्के पापदृष्टे ऽन्य एव
 कुलः स्वर्क्षे ओचहीनो जडो वा ॥ १२ ॥
 क्रूरः षष्ठे क्रूरदृष्टो विलग्नो
 यस्मिन्नाशौ तद्गृहाङ्गे व्रणः स्यात् ।
 एवं प्रोक्तं यन्मया जन्मकाले
 चिह्नं रूपं तत्तदस्मिन्विचिन्त्यम् ॥ १३ ॥
 द्यक्षरं चरयुहांशकोदये
 नाम चास्य चतुरक्षरं स्थिरे ।

नामयुग्ममपि च द्विमूर्तिषु
 व्यक्षरं भवति चास्य पञ्चभिः ॥ १४ ॥
 काद्यास्तु वर्गाः कुजशुक्रसौम्य-
 जीवार्कजानां क्रमशः प्रदिष्टाः ।
 वर्णाष्टकं यादि च शीतरश्मे
 रवेरकारात्क्रमशः स्वराः स्युः ॥ १५ ॥
 नामानि चाग्न्यम्बुकुमारविष्णु-
 शक्रेन्द्रपत्नीचतुराननानाम् ।
 तुल्यानि सूर्यात्क्रमशो विचिन्त्य
 द्वित्यादिवर्णैर्घटयेत्स्वबुद्ध्या ॥ १६ ॥
 वयांसि तेषां स्तनपानबाल्य-
 व्रतस्थिता यौवनमध्यवृद्धाः ।
 अतीववृद्धा इति चन्द्रभौम-
 शशुक्रजीवार्कशनैश्चराणाम् ॥ १७ ॥

इति शाकुनेत्तराध्यायः ।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रस-
 वतितमोऽध्यायः ॥ • ॥

पक्षाद्धानोः सोमस्य
 मासिकोऽङ्गारकस्य वक्रोक्तः ।
 आदर्शनाच्च पाको
 बुधस्य जीवस्य वर्षेण ॥ १ ॥

षड्भिः सितस्य मासै-
 रब्देन शनेः सुरद्विषो ऽब्दार्धात् ।
 वर्षात्सूर्यग्रहणे
 सद्यः स्यात्वाग्निशीलकयोः ॥ २ ॥
 त्रिभिरेव धूमकेतो-
 र्मासैः श्वेतस्य सप्तरात्रान्ते ।
 सप्ताहात्परिवेधेन्द्रचाप-
 सन्ध्याभ्रसूचीनाम् ॥ ३ ॥
 शीतोष्णविपर्यासः
 फलपुष्पमकालजं दिशां दाहः ।
 स्थिरचरयोरन्यत्वं
 प्रसूतिविकृतिश्च पणमासात् ॥ ४ ॥
 अक्रियमाणककरणं
 भ्रुकम्पो ऽनुत्सवो दुरिष्टं च ।
 शोषश्चाशोष्याणां
 स्रोतोऽन्यत्वं च वर्षार्धात् ॥ ५ ॥
 स्तम्भकुसूलार्चीनां
 जल्पितरुदितप्रकम्पितस्वेदाः ।
 मासत्रयेण कलहेन्द्रचाप-
 निर्घातपाकाश्च ॥ ६ ॥
 कीटाखुमक्षिकोरग-
 बाहुल्यं मृगविहङ्गमरुतं च ।

लोष्टस्य चाप्सु तरणं
 त्रिभिरेव विपच्यते मासैः ॥ ७ ॥
 प्रसवः शुनामरण्ये
 वन्यानां ग्रामसम्प्रवेशश्च ।
 मधुनिलयतोरणेन्द्रध्वजाश्च
 वर्षात्समधिकाद्वा ॥ ८ ॥
 गोमायुष्टधसङ्घा
 दशाहिकाः सद्य एव तूर्यरवः ।
 आक्रुष्टं पक्षफलं
 वल्मीको विदरणं च भुवः ॥ ९ ॥
 अहुताशप्रज्वलनं
 घृततैलवसादिवर्षणं चापि ।
 सद्यः परिपच्यन्ते
 मासे ऽध्यर्धे च जनवादः ॥ १० ॥
 छत्रचितियूपहुतवह-
 बीजानां सप्तभिर्भवति पक्षैः ।
 छत्रस्य तोरणस्य च
 केचिन्मासात्फलं ग्राहुः ॥ ११ ॥
 अत्यन्तविरुद्धानां
 स्नेहः शब्दश्च वियति भूतानाम् ।
 मार्जारनकुलयो-
 र्मूषकेण सङ्गश्च मासेन ॥ १२ ॥

गन्धर्वपुरं मासाद्
 रसवैकृत्यं हिरण्यविकृतिश्च ।
 ध्वजवेश्मपांशुधूमाकुला
 दिशश्चापि मामफलाः ॥ १३ ॥
 नवकैकाष्टदशकैक-
 षट्चिकचिकसङ्घमासपाकानि ।
 नक्षत्रान्यश्विनिपूर्वकानि
 सद्यःफलास्तेषां ॥ १४ ॥
 पित्यान्मासः षट् षट्
 चयो ऽर्धमष्टौ च त्रिषडेकैकाः ।
 मासचतुष्के ऽषाढे
 सद्यःपाकाभिजित्तारा ॥ १५ ॥
 सप्ताष्टावध्यर्धं
 त्रयस्त्रयः पञ्च चैव मासाः स्युः ।
 श्रवणादीनां पाको
 नक्षत्राणां यथासङ्घम् ॥ १६ ॥
 निगदितसमये न दृश्यते चेद्
 अधिकतरं द्विगुणे प्रपच्यते तत् ।
 यदि न कनकरत्नगोप्रदानै-
 रूपशमितं विधिवद्विजैश्च शान्त्या ॥ १७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृष्टसंहितायां पाका-
 ध्यायो नाम सप्तनवतितमो ऽध्यायः ॥ * ॥

शिखिगुणरसेन्द्रियानल-
 शशिविषयगुणतुपञ्चवसुपक्षाः ।
 विषयैकचन्द्रभूता-
 र्णवाग्निरुद्राश्विवसुदहनाः ॥ १ ॥
 भूतशतपक्षवसवो
 द्वाचिंशच्चेति तारकामानम् ।
 क्रमशो ऽश्विन्यादीनां
 कालस्ताराप्रमाणेन ॥ २ ॥
 नक्षत्रजमुद्वाहे
 फलमब्दैस्तारकामितैः सदसत् ।
 दिवसैर्ज्वरस्य नाशो
 व्याधेरन्यस्य वा वाच्यः ॥ ३ ॥
 अश्वियमदहनकमलज-
 शशिशूलभृददितिजीवफणिपितरः ।
 योन्यर्यमदिनकृत्वष्टृ-
 पवनशक्राग्निमित्राश्च ॥ ४ ॥
 शक्रो निर्वृतिस्तोयं
 विश्वे ब्रह्मा हरिर्वसुर्वरुणः ।
 अजपादो ऽहिर्बुध्न्यः
 पूषा चेतीश्वरा भानाम् ॥ ५ ॥
 चीण्युत्तराणि तेभ्यो
 रोहिण्यश्च ध्रुवाणि तैः कुर्यात् ।

अभिषेकशान्तिरुनगर-
 धर्मबीजध्रुवारम्भान् ॥ ६ ॥
 मूलशिवशक्रभुजगाधिपानि
 तीक्ष्णानि तेषु सिद्ध्यन्ति ।
 अभिघातमन्त्रवेताल-
 बन्धवधभेदसम्बन्धाः ॥ ७ ॥
 उग्राणि पूर्वभरणी-
 पिव्याण्युत्सादनाशशायेषु ।
 योज्यानि बन्धविषदहन-
 शस्त्रघातादिषु च सिद्धौ ॥ ८ ॥
 लघु हस्ताश्विनपुष्याः
 पण्यरतिज्ञानभूषणकलासु ।
 शिल्पौषधयानादिषु
 सिद्धिकराणि प्रदिष्टानि ॥ ९ ॥
 मृदुवर्गस्वनुराधा-
 चित्रापौष्णैन्दवानि मिचार्थे ।
 सुरतविधिवस्त्रभूषण-
 मङ्गलगीतेषु च हितानि ॥ १० ॥
 ह्यैतभुजं सविशाखं
 मृदुतीक्ष्णं तद्विमिश्रफलकारि ।
 अरुणाक्षयमादित्यानिले च
 चरकर्मणि हितानि ॥ ११ ॥

हस्ताक्षयं मृगशिरः श्रवणाक्षयं च
 पूषाश्विश्शक्रगुरुभानि पुनर्वसुश्च ।
 क्षौरे तु कर्मणि हितान्युदये क्षणे वा
 युक्तानि चोडुपतिना शुभतारया च ॥ १२ ॥
 न स्नातमात्रगमनोत्सुकभूषिताना-
 मभ्यक्तभुक्तरणकालनिरासनानाम् ।
 सन्धानिशोः कुजयमार्कदिने च रिक्ते
 क्षौरं हितं न नवमे ऽह्नि न चापि विष्याम् ॥ १३ ॥
 नृपाक्षया ब्राह्मणसम्भते च
 विवाहकाले मृतसूतके च ।
 बह्वस्य मोक्षे क्रतुदीक्षणासु
 सर्वेषु शस्तं क्षुरकर्म भेषु ॥ १४ ॥
 [हस्ता मूलं श्रवणा
 पुनर्वसुर्मृगशिरस्तथा पुष्यः ।
 पुंसञ्जितेषु कार्ये-
 धेतानि शुभानि धिष्यथानि ॥ १५ ॥]
 सावित्रपौष्णानिलमैत्रतिष्ये
 त्वाध्रे तथा चोडुगणाधिपक्षे ।
 संस्कारदीक्षाव्रतमेखलादि
 कुर्याद्गुरौ शुक्रबुधेन्दुयुक्ते ॥ १६ ॥
 लाभे तृतीये च शुभैः समेते
 पापैर्विहीने शुभराशिलभे ।

वेध्या तु कर्णा चिदग्नेज्यलम्ने
 तिष्येन्दुचिचाहरिरेवतीषु ॥ १७ ॥
 शुद्धैर्द्वादशकेन्द्रनैधनगृहैः पापैस्त्रिषष्टायगै-
 लम्ने केन्द्रगते ऽथवा सुरगुरौ दैत्येन्द्रपूज्ये ऽपिवा ।
 सर्वारम्भफलप्रसिद्धिरुदये राशौ च कर्तुः शुभे
 सग्राम्यस्थिरभेदये च भवनं कार्यं प्रवेशो ऽपिवा
 ॥ १८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नक्षत्र-
 गुणा नामाष्टानवतितमो ऽध्यायः ॥ ० ॥

कमलजविधातृहरियम-
 शशाङ्कषड्भक्तशक्रवसुभुजगाः ।
 धर्मेशसवितृमन्मथ-
 कलयो विश्वे च तिथिपतयः ॥ १ ॥
 पितरो ऽमावास्यायां
 सञ्ज्ञासदृशाश्च तैः क्रियाः कार्याः ।
 नन्दा भद्रा विजया
 रिक्ता पूर्णा च तास्त्रिविधाः ॥ २ ॥
 यत् कार्यं नक्षत्रे
 तद्दैवत्यासु तिथिषु तत् कार्यम् ।
 करणमुहूर्तेष्वपि तत्
 सिद्धिकरं देवतासदृशम् ॥ ३ ॥

बवबालवकौलब-

तैतिलाख्यगरवणिजविष्टिसञ्ज्ञानाम् ।

पतयः स्युरिन्द्रकमलज-

मिचार्यमभूत्रियः सयमाः ॥ ४ ॥

कृष्णचतुर्दश्याद्

ध्रुवाणि शकुनिश्रतुष्यदं नागम् ।

किंस्तुघ्नमिति च तेषां

कलिवृषफणिमारुताः पतयः ॥ ५ ॥

कुर्याद्दवे शुभचरस्थिरपौष्टिकानि

धर्मक्रिया द्विजहितानि च बालवाख्ये ।

सम्प्रीतिमिचवरणानि च कौलबे स्युः

सौभाग्यसंश्रयगृहाणि च तैतिलाख्ये ॥ ६ ॥

कृषिबीजगृहाश्रयजानि गरे

वणिजि ध्रुवकार्यवणिग्युतयः ।

नहि विष्टिकृतं विदधाति शुभं

परघातविघादिषु सिद्धिकरम् ॥ ७ ॥

कार्यं पौष्टिकमौषधादि शकुनौ मूलानि मन्त्रास्तथा

गोकार्याणि चतुष्यदे द्विजपितृनुद्दिश्य राज्यानि च ।

नागे स्थावरदारुणानि हरणं दौर्भाग्यकर्माण्यतः

किंस्तुघ्ने शुभमिष्टपुष्टिकरणं मङ्गल्यसिद्धिक्रियाः ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां तिथि-

करणगुणा नामैकौनशततमो ऽध्यायः ॥ • ॥

रोहिण्युत्तररेवतीमृगशिरोमूलानुराधामघा-
 इस्तस्वातिषु षष्ठतौलिमिथुनेषूद्यत्सु पाणिग्रहः ।
 सप्ताष्टान्त्यबहिः शुभैरुदुपतावेकादशद्विचिगे
 क्रूरैरुद्यायषडष्टगैर्न तु धृगौ षष्ठे कुजे चाष्टमे ॥ १ ॥
 दम्पत्योर्द्विनवाष्टराशिरहिते चारानुकूले रवौ
 चन्द्रे चार्ककुजार्कशुक्रवियुते मध्ये ऽथवा पापयोः ।
 त्यक्त्वा च व्यतिपातवैष्टतदिनं विष्टिं च रिक्तां तिथिं
 क्रूराहायनचैत्रपौषविरहे लग्नांशके मानुषे ॥ २ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां विवाह-
 नक्षत्रलग्ननिर्णयो नाम शततमो ऽध्यायः ॥ * ॥

प्रियभूषणः सुरूपः
 सुभगो दक्षो ऽश्विनीषु मतिमांश्च ।
 कृतनिश्चयसत्यारुग्
 दक्षः सुखितश्च भरणीषु ॥ १ ॥
 बहुभुक् परदाररत-
 स्तेजस्वी कृत्तिकासु विस्थातः ।
 रोहिण्यां सत्यशुचिः
 प्रियंवदः स्थिरसुरूपश्च ॥ २ ॥
 चपलश्चतुरो भीरुः
 पटुरुत्साही धनी मृगे भोगी ।

शठगर्वितचण्डकृतघ्न-
 हिंस्रपापश्च रौद्रर्षे ॥ ३ ॥
 दान्तः सुखी सुशीलो
 दुर्मेधा रोगभाक् पिपासुश्च ।
 अल्पेन च सन्तुष्टः
 पुनर्वसौ जायते मनुजः ॥ ४ ॥
 शान्तात्मा सुभगः पण्डितो
 धनी धर्मसंश्रितः पुष्ये ।
 शठसर्वभक्षपापः
 कृतघ्नधूर्तश्च भौजङ्गे ॥ ५ ॥
 बहुभृत्यधनो भोगी
 सुरपितृभक्तो महोद्यमः पित्ये ।
 प्रियवाग्दाता द्युतिमान्
 अटनो नृपसेवको भाग्ये ॥ ६ ॥
 सुभगो विद्याप्तधनो
 भोगी सुखभाग् द्वितीयफलगुन्याम् ।
 उत्साही धृष्टः पानपो
 ऽष्टणी तस्करो हस्ते ॥ ७ ॥
 चिचाम्बरमाल्यधरः
 सुलोचनाङ्गश्च भवति चिचायाम् ।
 दान्तो वणिक् कृपालुः
 प्रियवाग्धर्माश्रितः स्वातौ ॥ ८ ॥

ईर्ष्युर्लुब्धो द्युतिमान्
 वचनपटुः कलहकृद्दिशाखासु ।
 आढ्या विदेशवासी
 क्षुधालुरटनो ऽनुराधासु ॥ ९ ॥
 ज्येष्ठासु न बहुमित्रः
 सन्तुष्टो धर्मकृत् प्रचुरकोपः ।
 मूले मानी धनवान्
 सुखी न हिंस्रः स्थिरो भोगी ॥ १० ॥
 इष्टानन्दकलत्रो
 वीरो दृढसौहृदश्च जलदेवे ।
 वैश्वे विनीतधार्मिक-
 बहुमित्रकृतज्ञसुभगश्च ॥ ११ ॥
 श्रीमाञ्छ्रवणे श्रुतवान्
 उदारदारो धनान्वितः स्यातः ।
 दाताढ्यश्ररगीतप्रियो
 धनिष्ठासु धनलुब्धः ॥ १२ ॥
 स्फुटवाग्ब्यसनी रिपुहा
 साहसिकः शतभिषक्षु दुर्ग्राह्यः ।
 भद्रपदासूद्विभ्रः
 स्त्रीजितधनपटुरदाता च ॥ १३ ॥
 वक्ता सुखी प्रजावान्
 जितश्चुर्धार्मिको द्वितीयासु ।

सम्पूर्णोङ्गः सुभगः
शूरः शुचिरर्थवान् पौष्णे ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नक्षत्र-
जातकं नामैकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ * ॥

अश्विन्योऽथ भरण्यो
बहुलपादश्च कीर्त्यते मेघः ।
दृषभो बहुलाशेषं
रोहिण्यर्धं च मृगशिरसः ॥ १ ॥
मृगशिरसोऽर्धं रौद्रं
पुनर्वसोश्चांशकचयं मिथुनम् ।
पादश्च पुनर्वसोः संतिष्ठो
ऽश्लेषा च कर्कटकः ॥ २ ॥
सिंहेऽथ मघा पूर्वा
च फल्गुनी पाद उत्तरायाश्च ।
तत्परिशेषं हस्त-
श्चिचाद्यर्धं च कन्याख्यः ॥ ३ ॥
तौलिनि चिचान्त्यार्धं
स्वातिः पादचयं विशाखायाः ।
अलिनि विशाखापाद-
स्तथानुराधान्विता ज्येष्ठा ॥ ४ ॥

मूलमषाढा पूर्वा
 प्रथमश्चाप्युत्तरांशको धन्वी ।
 मकरस्तत्परिशेषं
 श्रवणः पूर्वं धनिष्ठार्धम् ॥ ५ ॥
 कुम्भो ऽन्त्यधनिष्ठार्धं
 शतभिषगंश्चयं च पूर्वायाः ।
 भद्रपदायाः शेषं
 तथोत्तरा रेवती च झषः ॥ ६ ॥
 अश्विनीपितृमूलाद्या मेषसिंहहयादयः ।
 विषमर्क्षान्निवर्तन्ते पाददृष्ट्या यथोत्तरम् ॥ ७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां राशि-
 प्रविभागो नाम द्युत्तरशततमो ऽध्यायः ॥ * ॥

मूर्त्ता करोति दिनकृद्विधवां कुजश्च
 राहुर्विपन्नतनयां रविज्ञो दरिद्राम् ।
 शुक्रः शशाङ्कतनयश्च गुरुश्च साध्वीम्
 आयुःक्षयं प्रकुरुते ऽथ विभावरीशः ॥ १ ॥
 कुर्वन्ति भास्करश्चरश्चरराहुभौमा
 दारिद्र्यदुःखममुलं नियतं द्वितीये ।

वित्तेश्वरीमविधवां गुरुशुक्रसौम्या
 नारीं प्रभूततनयां कुरुते शशाङ्कः ॥ २ ॥
 सूर्येन्दुभौमगुरुशुक्रबुधास्तृतीये
 कुर्युः सदा बहुसुतां धनभागिनीं च ।
 व्यक्तं दिवाकरसुतः सुभगां करोति
 मृत्युं ददाति नियमात् खलु सैहिकेयः ॥ ३ ॥
 स्वल्पं पयः स्रवति सूर्यसुते चतुर्थे
 दौर्भाग्यमुष्णकिरणः कुरुते शशी च ।
 राहुः सपत्न्यमपि च क्षितिजो ऽल्पवित्तां
 दद्याद्भृगुः सुरगुरुश्च बुधश्च सौख्यम् ॥ ४ ॥
 नष्टात्मजां रविकुजौ खलु पञ्चमस्थौ
 चन्द्रात्मजो बहुसुतां गुरुभार्गवौ च ।
 राहुर्ददाति मरणं शनिरुग्ररोगं
 कन्याप्रसूतिमचिरात् कुरुते शशाङ्कः ॥ ५ ॥
 षष्ठाश्रिताः शनिदिवाकरराहुजीवाः
 कुर्युः कुजश्च सुभगां श्वशुरेषु भक्ताम् ।
 चन्द्रः करोति विधवामुशना दरिद्राम्
 ऋद्धां शशाङ्कतनयः कलहप्रियां च ॥ ६ ॥
 सौरारजीवबुधराहुरवीन्दुशुक्राः
 कुर्युः प्रसह्य खलु सप्तमराशिसंस्थाः ।
 वैधव्यबन्धनवधक्षयमर्थनाशं
 व्याधिप्रवासमरणानि यथाक्रमेण ॥ ७ ॥

स्थाने ऽष्टमे गुरुबुधौ नियतं वियोगं
 मृत्युं शशी भृगुसुतश्च तथैव राहुः ।
 स्वयः करोत्यविधवां सरुजं महीजः
 सूर्यात्मजे धनवतीं पतिवल्गुभां च ॥ ८ ॥
 धर्मे स्थिता भृगुदिवाकरभूमिपुत्रा
 जीवश्च धर्मनिरतां शशिजस्वरोगाम् ।
 राहुश्च सूर्यतनयश्च करोति वन्ध्यां
 कन्याप्रसूतिमटनं कुरुते शशाङ्कः ॥ ९ ॥
 राहुर्नभस्तलगतो विधवां करोति
 पापे रतां दिनकरश्च शनैश्चरश्च ।
 मृत्युं कुजे ऽर्थरहितां कुलटां च चन्द्रः
 शेषा ग्रहा धनवतीं सुभगां च कुर्युः ॥ १० ॥
 आये रविर्बहुसुतां धनिनीं शशाङ्कः
 पुत्रान्वितां क्षितिसुतो रविजे धनाढ्याम् ।
 आयुष्मतीं सुरगुरुः शशिजः समृद्धां
 राहुः करोत्यविधवां भृगुरर्थयुक्ताम् ॥ ११ ॥
 अन्ते गुरुर्धनवतीं दिनकृद्दरिद्रां
 चन्द्रे धनव्ययकरीं कुलटां च राहुः ।
 साध्वीं भृगुः शशिसुतो बहुपुत्रपौत्रां
 पानप्रसक्तहृदयां रविजः कुजश्च ॥ १२ ॥
 गोपैर्यश्या हतानां खुरपुटदलिता या तु धूलिर्दिनान्ते
 सोद्वाहे सुन्दरीणां विपुलधनसुतारोग्यसौभाग्यकर्त्री ।

तस्मिन् काले न चर्षं न च तिथिकरणं नैव लग्नं न योगः
 ख्यातः पुंसां सुखार्थं शमयति दुरितान्युत्थितं गोरजस्तु
 [॥ १३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां विवा-
 हपटलं नाम व्युत्तरशततमो ऽध्यायः ॥ • ॥

प्रायेण सूत्रेण विनाकृतानि
 प्रकाशरन्ध्राणि चिरन्तनानि ।
 रत्नानि शास्त्राणि च योजितानि
 नवैर्गुणैर्भूषयितुं क्षमाणि ॥ १ ॥
 प्रायेण गोचरो व्यवहार्यो
 ऽतस्तत्फलानि वक्ष्यामि ।
 नानादृतेस्तन्नो
 मुखचपलत्वं क्षमन्वार्याः ॥ २ ॥
 माण्डव्यगिरं श्रुत्वा
 न मदीया रोचते ऽथवा नैवम् ।
 साध्वी तथा न पुंसां
 प्रिया यथा स्याज्जघनचपला ॥ ३ ॥

सूर्यः षट्चिदशस्थितस्त्रिदशषट्सप्ताद्यगश्चन्द्रमा
 जीवः सप्तनवद्विपञ्चमगतो वक्रार्कजौ षट्चिगौ ।
 सौम्यः षड्द्विचतुर्दशाष्टमगतः सर्वेऽप्युपान्ते शुभाः
 शुक्रः सप्तमषड्दशर्षसहितः शार्दूलवच्चासकृत् ॥ ४ ॥

जन्मन्यायामदोऽर्कः क्षपयति विभवान् कोष्ठरोगाध्वदाता
वित्तधंशं द्वितीये दिशति च न सुखं वञ्चनां हृद्युजं च ।
स्थानप्राप्तिं तृतीये धननिचयमुदाकल्यकृच्चारिहन्ता
रोगान्धत्ते चतुर्थे जनयति च मुहुः स्रग्धराभोगविघ्नम् ॥ ५ ॥
पीडाः स्युः पञ्चमस्ये सवितरि बहुशो रोगारिजनिताः
षष्ठेऽर्को हन्ति रोगान् क्षपयति च रिपूञ्छोकांश्च नुदति ।
अध्वानं सप्तमस्यो जठरगदभयं दैन्यं च कुरुते
रुक्मासौ चाष्टमस्ये भवति सुवदना न स्वापि वनिता ॥
रवावापदैन्यं रुगिति नवमे चित्तचेष्टाविरोधो ॥ ६ ॥
जयं प्राप्नोत्युग्रं दशमगृहगे कर्मसिद्धिं क्रमेण ।
जयं स्थानं मानं विभवमपि चैकादशे रोगनाशं
सुवृत्तानां चेष्टा भवति सफला द्वादशे नेतरेषाम् ॥ ७ ॥
शशी जन्मन्यन्नप्रवरशयनाच्छादनकरो
द्वितीये मानार्थं ग्लपयति सविघ्नश्च भवति ।
तृतीये वस्त्रस्त्रीधननिचयसौस्थानि लभते
चतुर्थे ऽविश्वासः शिखरिणि भुजङ्गेन सहशः ॥ ८ ॥
दैन्यं व्याधिं शुचमपि शशी पञ्चमे मार्गविघ्नं
षष्ठे वित्तं जनयति सुखं शत्रुरोगक्षयं च ।
मानं मानं शयनमशनं सप्तमे वित्तलाभं
अन्दाक्रान्ते फणिनि हिमगौ चाष्टमे भीर्न कस्य ॥ ९ ॥
नवमगृहगे बन्धोद्देगग्रमोदररोगकृद्
दशमभवने चाज्ञाकर्मप्रसिद्धिकरः ।

उपचयसुहृत्संयोगार्थप्रमोदमुपान्त्यगे
दृषभचरितान्दोषानन्ते करोति हि सव्ययान् ॥ १०

कुजे ऽभिघातः प्रथमे द्वितीये

नरेन्द्रपीडा कलहारिदोषैः ।

भृशं च पित्तानलरोगचौरै-

रूपेन्द्रवज्रप्रतिभो ऽपि यः स्यात् ॥ ११ ॥

तृतीयगश्चैरकुमारकेभ्यो

भौमः सकाशात् फलमादधाति ।

प्रदीप्तिमाज्ञां धनमौर्णिकानि

धात्वाकरास्थानि किलापरारिणि ॥ १२ ॥

भवति धरणिजे चतुर्थगे

ज्वरजठरगदासृगुद्भवः ।

कुपुरुषजनिताच्च सङ्गमात्

प्रसभमपि करोति चाशुभम् ॥ १३ ॥

रिपुगदकोपभयानि पञ्चमे

तनयकृताश्च शुचो महीसुते ।

द्युतिरपि नास्य चिरं भवेत् स्थिरा

शिरसि कपेरिव मालती कृता ॥ १४ ॥

रिपुभयकलहैर्विवर्जितः

सकनकविद्रुमताम्रकागमः ।

रिपुभवनगते महीसुते

किमपरवक्त्रविकारमीक्षते ॥ १५ ॥

कलत्रकलहास्त्रिरुजठररोगहृत् सप्तमे
 क्षरत्क्षतजरूक्षितः क्षयितवित्तमानो ऽष्टमे ।
 कुजे नवमसंस्थिते परिभवार्थनाशादिभि-
 र्विलम्बितगतिर्भवत्यबलदेहधातुक्लमैः ॥ १६ ॥
 दशमगृहगते समं महीजे
 विविधधनाप्तिरूपान्त्यगे जयश्च ।
 जनपदमुपरिस्थितश्च भुङ्क्ते
 वनमिव घट्चरणः सुपुष्पिताग्रम् ॥ १७ ॥
 नानाव्ययैर्द्वादशगे महीसुते
 सन्ताप्यते ऽनर्थशतैश्च मानवः ।
 स्त्रीकोपपित्तैश्च सनेत्रवेदनै-
 र्यो ऽपीन्द्रवंशाभिजनेन गर्वितः ॥ १८ ॥
 दुष्टवाक्यपिशुनाहितभेदै-
 र्बन्धनैः सकलहैश्च हृतस्वः ।
 जन्मगे शशिसुते पथि गच्छन्
 स्वागते ऽपि कुशलं न शृणोति ॥ १९ ॥
 परिभवो धनगते धनलब्धिः
 सहजगे शशिसुते सुहृदाप्तिः ।
 नृपतिश्चुभयशङ्कितचित्तो
 द्रुतपदं व्रजति दुश्चरितैः स्वैः ॥ २० ॥
 चतुर्थगे स्वजनकुटुम्बवृद्धयो
 धनागमो भवति च शीतरश्मिजे ।

सुतस्थिते तनयकलत्रविग्रहे
 निषेवते न च रुचिरामपि स्त्रियम् ॥ २१ ॥
 सौभाग्यं विजयमथोन्नतिं च घष्टे
 वैवर्ण्यं कलहमतीव सप्तमे ज्ञः ।
 मृत्युस्थे सुतजयवस्त्रवित्तलाभा
 नैपुण्यं भवति मतिप्रहर्षणीयम् ॥ २२ ॥
 विघ्नकरो नवमः शशिपुत्रः
 कर्मगतो रिपुहा धनदश्च ।
 सप्रमदं शयनं च विधत्ते
 तद्गृहदो ऽथ कुथास्तरणं च ॥ २३ ॥
 धनसुखसुतयोषिन्मित्रवाद्यान्निषुष्टि-
 स्तुहिनकिरणपुत्रे लाभगे मृष्टवाक्यः ।
 रिपुपरिभवरोगैः पीडितो द्वादशस्थे
 न सहति परिभोक्तुं मालिनीयोगसौख्यम् ॥ २४ ॥
 जीवे जन्मन्यपगतधनधीः
 स्थानभ्रष्टो बहुकलहयुतः ।
 प्राप्यार्थे ऽर्थान् व्यरिरपि कुरुते
 कान्तास्याञ्जे भ्रमरविलसितम् ॥ २५ ॥
 स्थानभ्रंशात्कार्यविघाताच्च तृतीये
 नैकैः क्लेशैर्बन्धुजनोत्थैश्च चतुर्थे ।
 जीवे शान्तिं पीडितचित्तश्च स विन्देन्
 नैव ग्रामे नापि वने मत्तमयूरे ॥ २६ ॥

जनयति च तनयभवनमुपगतः
 परिजनशुभसुतकरितुरगृष्टान् ।
 सकनकपुरगृह्युवतिवसनकान्
 मणिगुणनिकरकृदपि विबुधगुरुः ॥ २७ ॥
 न सखीवदनं तिलकोज्ज्वलं
 न भवनं शिखिकोकिलनादितम् ।
 हरिणस्रुतशावविचित्रितं
 रिपुगते मनसः सुखदं गुरौ ॥ २८ ॥
 त्रिदशगुरुः शयनं रतिभोगं
 धनमशनं कुसुमान्युपवाह्यम् ।
 जनयति सप्तमराशिमुपेता
 ललितपदां च गिरं धिषणां च ॥ २९ ॥
 बन्धं व्याधिं चाष्टमे श्लोकमुग्रं
 मार्गक्लेशं मृत्युतुल्यांश्च रोगान् ।
 नैपुण्याज्ञापुत्रकर्मार्थसिद्धिं
 धर्मे जीवः शालिनीनां च लाभम् ॥ ३० ॥
 स्थानकल्यधनहा दशर्षग-
 स्तत्रदे भवति लाभगो गुरुः ।
 द्वादशे ऽध्वनि विलोमदुःखभाग्
 याति यद्यपि नरो रथोद्धतः ॥ ३१ ॥
 प्रथमगृहोपगो धृगुसुतः स्मरोपकरणैः
 सुरभिमनोऽगन्धकुसुमान्बरैरुपचयम् ।

शयनगृहासनाशनयुतस्य चानु कुरुते
 समद्विलासिनीमुखसरोजषट्चरणताम् ॥ ३२ ॥
 शुक्रे द्वितीयगृहगे प्रसवार्थधान्य-
 भूपालसन्नतिकुटुम्बहितान्यवाप्य ।
 संसेवते कुसुमरत्नविभूषितश्च
 कामं वसन्ततिलकद्युतिमूर्धजे ऽपि ॥ ३३ ॥
 आञ्जार्थमानास्पदभूतिवस्त्र-
 शत्रुक्षयान् दैत्यगुरुस्तृतीये ।
 धत्ते चतुर्थश्च सुहृत्समाजं
 रुद्रेन्द्रवज्रप्रतिमां च शक्तिम् ॥ ३४ ॥
 जनयति शुक्रः पञ्चमसंस्थो
 गुरुपरितोषं बन्धुजनाप्तिम् ।
 सुतधनलब्धिं मित्रसहायान्
 अनवसितत्वं चारिबलेषु ॥ ३५ ॥
 षष्ठो भृगुः परिभवरोगतापदः
 स्त्रीहेतुकं जनयति सप्तमो ऽशुभम् ।
 यातो ऽष्टमं भवनपरिच्छेदप्रदे
 लक्ष्मीवतीमुपनयति स्त्रियं च सः ॥ ३६ ॥
 नवमे तु धर्मवनितासुखभाग
 भृगुजे ऽर्थवस्त्रनिचयश्च भवेत् ।
 दशमे ऽवमानकलहान्नियमात्
 प्रमिताक्षराख्यपि वदन् लभते ॥ ३७ ॥

उपान्त्यगो भृगोः सुतः सुहृद्द्वान्नागश्वदः ।

धनाम्बरागमो ऽन्त्यगे स्थिरस्तु नाम्बरागमः ॥ ३८ ॥

प्रथमे रविजे विषवह्नितः

स्वजनैर्वियुतः कृतबन्धवधः ।

परदेशमुपैत्यसुहृद्भवना

विमुखार्थसुतो ऽटकदीनमुखः ॥ ३९ ॥

चारवशाद्धितीयगृहगे दिनकरतनये

रूपसुखापवर्जिततनुर्विगतमदबलः ।

अन्यगुणैः कृतं वसुचयं तदपि खलु भव-

त्यम्बिव वंशपत्रपतितं न बहु न च चिरम् ॥ ४० ॥

सूर्यसुते तृतीयगृहगे धनानि लभते

दासपरिच्छदोद्गमहिपाश्वकुञ्जरखरान् ।

सद्भविभूतिसौख्यममितं गदव्युपरमं

भीरुरपि प्रशास्यधि रिपूंश्च वीरललितैः ॥ ४१ ॥

चतुर्थं गृहं सूर्यपुत्रे ऽभ्युपेते

सुहृद्वित्तभार्यादिभिर्विप्रयुक्तः ।

भवत्यस्य सर्वत्र चासाधुदुष्टं

भुजङ्गप्रयातानुकारं च चित्तम् ॥ ४२ ॥

सुतधनपरिहीणः पञ्चमस्थे

प्रचुरकलहयुक्तश्चार्कपुत्रे ।

विनिहतरिपुरोगः पृथयाते

पिबति च वनितास्यं श्रीपुटोष्ठम् ॥ ४३ ॥

गच्छत्यध्वानं सप्तमे चाष्टमे च
 हीनः स्त्रीपुत्रैः सूर्यजे दीनचेष्टः ।
 तद्वद्वर्मस्थे वैरहद्रोगबन्धै-
 र्धर्मो ऽप्युच्छिद्येद्वैश्वदेवोक्रियाद्यः ॥ ४४ ॥
 कर्मप्राप्तिर्दशमे ऽर्थक्षयश्च
 विद्याकीर्त्याः परिहाणिश्च सौरे ।
 तैश्चक्ष्यं लाभे परयोपार्थलाभा
 अन्ते प्राप्नोत्यपि शोकोर्मिमालाम् ॥ ४५ ॥
 अपि कालमपेक्ष्य च पाचं
 शुभकृद्विदधात्यनुरूपम् ।
 न मधौ बहु कं कुडवे च
 विसृजत्यपि मेघवितानः ॥ ४६ ॥

रक्तैः पुष्पैर्गन्धैस्ताम्रैः कनकवृषबकुलकुसुमै-
 र्दिवाकरभूसुतौ
 भक्त्या पूज्याविन्दुर्धन्वा सितकुसुमरजतमधुरैः
 सितश्च मदप्रदैः ।
 कृष्णद्रव्यैः सौरिः सौम्यो मणिरजततिलककुसुमै-
 र्गुरुः परिपीतकैः
 प्रीतैः पीडा न स्थादुच्चाद्यदि पतति विशति यदिवा
 भुजङ्गविजृम्भितम् ॥ ४७ ॥
 शमयोक्ततामशुभदृष्टि-
 मपि विबुधविप्रपूजया ।

शान्तिजपनियमदानदमैः
 सुजनाभिभाषणसमागमैस्तथा ॥ ४८ ॥
 रविभौमौ पूर्वार्धे
 शशिसौरौ कथयतो ऽन्त्यगौ राशेः ।
 सदसन्नक्षणमार्या-
 गोत्युपगीत्योर्यथासङ्घम् ॥ ४९ ॥
 आदौ यादृक् सौम्यः
 पश्चादपि तादृशो भवति ।
 उपगीतेर्माचाणां
 गणवत्सत्सम्प्रयोगो वा ॥ ५० ॥
 आर्याणामपि कुरुते
 विनाशमन्तर्गुरुर्विषमसंस्थः ।
 गण इव षष्ठे दृष्टश्च
 सर्वलघुतां गतो नयति ॥ ५१ ॥

अशुभनिरीक्षितः शुभफलो बलिना बलवान्
 अशुभफलप्रदश्च शुभदृग्विषयोपगतः ।
 अशुभशुभार्वापि स्वफलयोर्ब्रजतः समताम्
 इदमपि गीतकं च खलु नकुटकं च यथा ॥ ५२ ॥
 नीचे ऽरिभे ऽस्ते चारिदृष्टस्य
 सर्वं दृथा यत्परिकीर्तितम् ।
 पुरतो ऽन्धस्येव भामिन्याः
 सविलासकटाक्षनिरीक्षणम् ॥ ५३ ॥

नाटकं शास्त्रविज्ञानकाव्यानि सर्वाः कला युक्तयो
मन्त्रधातुक्रियावादनैपुण्यपण्य-

व्रतायोगदूतास्तथायुष्यमायानृतस्नान-

ह्रस्वानि दीर्घाणि मध्यानि च च्छन्दन-

श्चण्डवृष्टिप्रयातानुकारोणि कार्याणि सिध्यन्ति

सौम्यस्य लग्ने ऽह्नि वा ॥ ६१ ॥

सुरगुरुदिवसे कनकं रजतं तुरगाः

करिणो वृषभा भिषगोषधयः ।

द्विजपितृसुरकार्यपुरःस्थितघर्मनिवारण-

चामरभूषणभूपतयः ।

विबुधभवनधर्मसमाश्रयमङ्गलशास्त्र-

मनोन्नबलप्रदसत्यगिरः ।

व्रतहवनधनानि च सिद्धिकराणि

तथा रुचिराणि च वर्णकदण्डकवत् ॥ ६२ ॥

भृगुसुतदिवसे च चिचवस्त्रवृष्यवेश्य-

कामिनीविलासहासयौवनोपभोगरम्यभूमयः ।

स्फटिकरजतमन्मथोपचारवाहनेक्ष-

शरदप्रकारगोवणिक्कृषीवलौषधाम्बुजानि च ।

सवितृसुतदिने च कारयेन्महिष्यजोष्र-

कृष्णलोहदासदृङ्गनीचकर्मपक्षिचौरपाशिकान् ।

च्युतविनयविशोर्णभाण्डहस्त्यपेक्षविघ्न- ॥ ६३ ॥

कारणानि चान्यथा न साधयेत्समुद्रगो ऽप्यपां कणम् ॥

विपुलामपि बुद्ध्या
 छन्दोविचितं भवति कार्यमेतावत् ।
 श्रुतिसुखदृष्टसङ्ग्रह
 मिममाह वराहमिहिरो ऽतः ॥ ६४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहगो-
 चराध्यायो नाम चतुरुत्तरशततमो ऽध्यायः ॥ • ॥

पादौ मूलं जङ्घे
 च रोहिणी तथाश्विन्यः ।
 ऊरू चापाढाद्वयम्
 अथ गुह्यं फल्गुनीयुग्मम् ॥ १ ॥
 कटिरपि च कृत्तिका
 पार्श्वयोश्च यमला भवन्ति भद्रपदाः ।
 कुक्षिस्था रेवत्यो
 विज्ञेयमुरो ऽनुराधा च ॥ २ ॥
 पृष्ठं विद्धि धनिष्ठा
 भुजौ विशाखां स्मृतौ करौ हस्तः ।
 अङ्गुल्यश्च पुनर्वसु-
 राश्लेषासञ्जिताश्च नखाः ॥ ३ ॥
 ग्रीवा ज्येष्ठा श्रवणौ
 श्रवणः पुष्यो मुखं द्विजाः स्वातिः ।

हसितं शतभिषगथ नासिका
 मघा मृगशिरो नेत्रे ॥ ४ ॥
 चित्रा ललाटसंस्था
 शिरो भरण्यः शिरोरुहाश्चाद्र्नी ।
 नक्षत्रपुरुषको ऽयं
 कर्तव्यो रूपमिच्छद्भिः ॥ ५ ॥
 चैत्रस्य बहुलपक्षे
 ह्यष्टम्यां मूलसंयुते चन्द्रे ।
 उपवासः कर्तव्यो
 विष्णुं सम्पूज्य धिष्ण्यं च ॥ ६ ॥
 दद्याद्भूते समाप्ते
 घृतपूर्णं भाजनं सुवर्णयुतम् ।
 विप्राय कालविदुषे
 सरत्नवस्त्रं स्वशक्त्या वा ॥ ७ ॥

अन्नैः क्षीरघृतोत्कटैः सहगुडैर्विप्रान् समभ्यर्चयेद्
 दद्यात्तेषु तथैव वस्त्ररजतं लावण्यमिच्छन्नरः ।
 पादक्षीत्प्रभृति क्रमादुपवसन्नङ्गर्क्षनामस्वपि
 कुर्यात्केशवपूजनं स्वविधिना धिष्ण्यस्य पूजां तथा ॥ ८ ॥

प्रलम्बबाहुः पृथुपीनवक्षाः
 क्षपाकरास्यः सितचारुदन्तः ।
 गजेन्द्रगामी कमलायताक्षः
 स्त्रीचित्तहारी स्मरतुल्यमूर्तिः ॥ ९ ॥

शरदमलपूर्णचन्द्र-
 द्युतिसदृशमुखी सरोजदलनेत्रा ।
 रुचिरदशना सुकर्णा
 भ्रमरोदरसन्निभैः केशैः ॥ १० ॥
 पुंस्कोकिलसमवाणी
 ताम्रोष्ठी पद्मपत्रकरचरणा ।
 स्तनभारानतमध्या
 प्रदक्षिणावर्तया नाभ्या ॥ ११ ॥
 कदलीकाण्डनिभोरुः
 सुश्राणी वरकुकुन्दरा सुभगा ।
 सुस्निष्टाङ्गुलिपादा
 भवति प्रमदा मनुष्यो वा ॥ १२ ॥

यावन्नक्षत्रमाला विचरति गगने भूययन्तीह भासा
 तावन्नक्षत्रभूतो विचरति सह तैर्ब्रह्मणो ऽहो ऽवशेषम् ।
 कल्पादौ चक्रवर्ती भवति हि मतिमांस्तत्क्षयाच्चापि भूयः
 संसारे जायमानो भवति नरपतिर्ब्राह्मणो वा धनाढ्यः ॥

मृगशीर्षाद्याः केशव- ॥ १३ ॥

नारायणमाधवाः सगोविन्दाः ।

विष्णुमधुसूदनास्थौ

चिविक्रमो वामनश्चैव ॥ १४ ॥

श्रीधरनामा तस्मात्

सहस्रीकेशश्च पद्मनाभश्च ।

दामोदर इत्येते
 मासाः प्रोक्ता यथासङ्गम् ॥ १५ ॥
 मासनाम समुपोषितो नरो
 द्वादशीषु विधिवत् प्रकीर्तयन् ।
 केशवं समभिपूज्य तत्पदं
 याति यच्च नहि जन्मजं भयम् ॥ १६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नक्ष-
 चपुरुषव्रतं नाम पञ्चात्तरशततमो ऽध्यायः ॥ * ॥

ज्योतिःशास्त्रसमुद्रं
 प्रमथ्य मतिमन्दराद्रिणाथ मया ।
 लोकस्यालोककरः
 शास्त्रशशाङ्कः समुत्क्षिप्तः ॥ १ ॥
 पूर्वाचार्यग्रन्था
 नात्सृष्टाः कुर्वता मया शास्त्रम् ।
 तानवलोक्येदं च
 प्रयतध्वं कामतः सुजनाः ॥ २ ॥
 अथवा भृशमपि सुजनः
 प्रथयति दोषार्णवाङ्गुलं दृष्ट्वा ।
 नीचस्तद्विपरीतः
 प्रकृतिरियं साध्वसाधूनाम् ॥ ३ ॥

दुर्जनहुताशतमं
 काव्यसुवर्णं विश्वेष्टिमन्वसि ।
 आवयितव्यं तस्माद्
 दुष्टजनस्य प्रयत्नेन ॥ ४ ॥
 ग्रन्थस्य यत् प्रचरतो ऽस्य विनाशमेति
 लेख्याद्दुष्टश्रुतमुखाधिगमक्रमेण ।
 यद्वा मया कुतूहलमल्पमिहाकृतं वा
 कार्यं तदत्र विदुषा परिहृत्य रागम् ॥ ५ ॥
 दिनकरमुनिगुरुचरण-
 प्रणिपातकृतप्रसादमतिनेदम् ।
 शास्त्रमुपसङ्गृहीतं
 नमो ऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ दृष्टसंहितायामुपसं-
 हारो नाम षडुत्तरशततमो ऽध्यायः ॥ • ॥

शास्त्रोपनयः पूर्वं
 सांख्यसरस्वतमर्कचारम् ।
 शशिराहुभौमबुधगुरु-
 सितमन्दशिखिप्रहाणां च ॥ १ ॥

चारश्चागस्त्यमुनेः
 सप्तर्षीणां च कूर्मवेर्गञ्च ।
 नक्षत्राणां व्यूहो
 ग्रहभक्तिर्ग्रहविमर्दश्च ॥ २ ॥
 ग्रहशशियोगः सम्यग्
 ग्रहवर्षफलं ग्रहाणां च ।
 शृङ्गाटसंस्थितानां
 मेघानां गर्भधारणं चैव ॥ ३ ॥
 धारणवर्षणरोहिणि-
 वायव्याषाढभाद्रपदयोगाः ।
 क्षणवृष्टिः कुसुमखताः
 सन्ध्याचिह्नं दिशं द्वाहः ॥ ४ ॥
 भूकम्पोत्कापरिवेष-
 लक्षणं शक्रचोपखपुरं च ।
 प्रतिस्वर्यो निर्घातः
 सस्यद्रव्यार्धकारुडं च ॥ ५ ॥
 इन्द्रध्वजनीराजन-
 खञ्जनकोत्पातवर्हिचिचं च ।
 पुष्याभिषेकपट्ट-
 प्रमाणमसिखण्डं वास्तु ॥ ६ ॥
 उदगार्गुणमारामिकम्
 अमरावयवखण्डं कुलिशवेपः ।

प्रतिमा वनप्रवेशः
 सुरभवनाग्रेण प्रतिष्ठा च ॥ ७ ॥
 चिह्नं गवामथ शुनां
 कुक्षुटकूर्माजपुरुषचिह्नं च ।
 पञ्चमनुष्यविभागः
 स्त्रीचिह्नं वस्त्रविच्छेदः ॥ ८ ॥
 चामरदण्डपरीक्षा
 स्त्रीस्तोत्रं चापि सुभगकरणं च ।
 कान्दर्पिकानुलेपन-
 पूंस्त्रीकाध्यायशयनविधिः ॥ ९ ॥
 वज्रपरीक्षा मौक्तिक-
 लक्षणमथ पद्मरागमरकतयोः ।
 दीपस्य लक्षणं
 दन्तधावनं शाकुनं मिश्रम् ॥ १० ॥
 अन्तरचक्रं विरुतं
 श्वचेष्टितं विरुतमथ शिवायाश्च ।
 चरितं मृगाश्चकरिणां
 वायसविद्योत्तरं च ततः ॥ ११ ॥
 पाको नक्षत्रगुणा-
 स्तिथिकरणगुणाः सधिष्यजन्मगुणाः ।
 गोचरस्तथा ग्रहाणां
 कवितो नक्षत्रपुरुषश्च ॥ १२ ॥

शतमिदमध्यायानाम्
 अनुपरिपाटिकमाद्भुक्रान्तम् ।
 अथ श्लोकसहस्रा-
 यथाबद्धान्यूनचत्वारि ॥ १३ ॥

इति ग्रन्थानुक्रमणी ।

श्रीवराहमिहिरविरचिता बृहत्संहिता समाप्ता ॥

